प.पू. आचार्य श्री १०८ विमलसागर जी
महाराज की ६२वीं जन्म-जयन्ती के उपलक्ष्य में

श्री उमास्वामी आचार्य विरचित

मोक्षशास्त्र (तत्त्वार्थसूत्र)

विमल प्रश्नोत्तरी टीका

टीकाकर्त्री
गणिनी आर्यिका स्याद्वादमती माता जी

प्रकाशन सहयोगी
स्व० हरकचदजी सेठी धर्मपत्नी सोहनी देवी जैन सेठी
सेनिकफार्म दिल्ली

भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद्

भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद् पुष्प सख्या—७७

आशीर्वाद आचार्यश्री भरतसागर जी महाराज

वाचनाप्रमुख मर्यादा शिष्योत्तम आचार्य श्री भरतसागरजी

सयोजन ब्र० प्रभा पाटनी B Sc L L B

ग्रन्थ **मोक्षशास्त्र (तत्त्वार्थसूत्र)**

प्रणेता श्री आचार्य उमास्वामी

टीकाकर्त्री गणिनी आर्यिका स्याद्वादमती माताजी

सशोधित सस्करण **दसम्**

वीर० निर्वाण स० २५३५ सन् २००८

पुस्तक प्राप्ति स्थान

(१) गणिनी आर्यिका स्याद्वादमती माता जी
(२) अष्टापदतीर्थ जैन मंदिर बिलासपुर चौक गुडगाव
(३) जैन मंदिर गुलाब वाटिका, लोनी रोड, गाजियाबाद

मूल्य ५०-०० रुपये

मुद्रक शिवानी आर्ट प्रेस शाहदरा दिल्ली-32,

समर्पण

परम पूज्य सन्मार्ग दिवाकर आचार्य श्री

१०८ विमलसागर जी महाराज के

पट्ट शिष्य

मर्यादा-शिष्योत्तम

ज्ञान-दिवाकर

प्रशान्तमूर्ति

वाणीभूषण

भुवनभास्कर

समतामूर्ति

गुरुदेव परम पूज्य

आचार्यश्री १०८ भरतसागर जी महाराज के

कर कमलो सादर

मर्मार्पित

आमुख

"तत्त्वार्थसूत्र" जैनागमका एक अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रथ है। इस ग्रथ के कर्त्ता आचार्य उमास्वामी ने पथभ्रात ससारी जीवो को मोक्ष का सच्चा मार्ग बतलाया है। मोक्षमार्ग का प्ररूपण होने के कारण ही इसका दूसरा नाम "मोक्षशास्त्र" भी प्रचलित हो गया है। इसीलिये आचार्य उमास्वामी को सस्कृत के आद्य जैन सूत्रकार होने का गौरव प्राप्त है । यह जैन आगम का प्रधान ग्रथ माना जाता है। इसमे चारो अनुयोगो का समावेश है।

तत्त्वार्थसूत्र पर वैसे तो अनेक-अनेक टीकाएँ उपलब्ध हैं। किन्तु वर्तमान प्रश्नोत्तर शैली के द्वारा भव्य आत्मा को जल्दी ही समझ मे आ जाय इसी उद्देश्य से यह टीका लिखी गई है। अत पूर्व मे आर्यिका स्याद्वादमतीजी के द्वारा की गई प्रश्नोत्तर शृखला मे (स्याद्वाद बाल शिक्षा चार भाग, छहढाला, द्रव्यसग्रह, रत्नकरण्ड-श्रावकाचार, भक्तामर) तत्त्वार्थसूत्र पर "विमल प्रश्नोत्तरी" टीका भी तैयार की है। इस टीका मे लगभग २२०० प्रश्नोत्तर का समावेश है। इस टीका ग्रथ को माताजी ने सरल, सुबोध व रोचक बनाने का पूर्ण प्रयास किया है।

ग्रन्थ के अध्ययन व स्वाध्याय से भव्यात्माओं के अज्ञानरूपी अन्धकार का विनाश हो, हेय-उपादेय बुद्धि की जागृति हो, मोक्षमार्ग मे प्रशस्त हो यही मेरी भावना है ।

आर्यिका स्याद्वादमतीजी के द्वारा इसी प्रकार से जैनागम का प्रचार-प्रसार होता रहे यही हमारा आशीर्वाद है।

सम्मेदशिखरजी
वी० नि० २५२२ फाल्गुन शुक्ला ५ शुक्रवार
दि० २३-२-१९९६

आचार्य भरतसागर

अपनी बात

तत्त्वार्थसूत्र अपरनाम मोक्षशास्त्र, दिगम्बर जैनाचार्य उमास्वामीकृत अत्यन्त प्रसिद्ध व जैनागमो मे प्रतिष्ठित एक प्रामाणिक ग्रन्थराज है। आचार्यश्री ने जिनागम के मूल तत्त्वो को अतीव सक्षेप मे मात्र ३५७ सूत्रो मे निबद्ध किया है। आचार्य उमास्वामी का समय ई० सन् दूसरी शताब्दी माना जाता है । आपके द्वारा रचित यह ग्रन्थ सस्कृत भाषा व सूत्र शैली का प्रथम ग्रन्थ है। इसमे सबसे छोटा सूत्र "नाणो" मात्र दो अक्षरो से बना है। अधिकाश सूत्र पाँच सात शब्दो के हैं। अधिक दीर्घ सूत्र मात्र तीन या चार हैं-? तीर्थंकर प्रकृति के बधक हेतु का, व (२) नामकर्म की तिरानवे प्रकृतियो का और (३) बाईस परीषहो का सूत्र आदि ।

सूत्रकार आचार्यश्री ने प्रथम अध्याय मे जीवादि सप्ततत्त्वो के श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहा तथा हेय और उपादेय के रूप मे केवल सात तत्त्वो को श्रद्धेय और अधिगम्य बतलाया है । मोक्षमार्ग म इन्हीं की उपादेयता है, अन्य अनन्त पदार्थों की नहीं।

आचार्यश्री ने तत्त्वार्थसूत्र के दस अध्यायो मे से प्रथम, द्वितीय, तृतीय व चतुर्थ अध्यायो मे जीवतत्त्व का, पञ्चम अध्याय मे अजीव तत्त्व, षष्ठ और सप्तम अध्यायो मे आस्रव, अष्टम अध्याय मे बन्ध तत्त्व का और नवम अध्याय मे सवर निर्जरा का एव दशम अध्याय मे मोक्ष तत्त्व का विवेचन किया है।

प्रथम अध्याय मे ३३, द्वितीय मे ५३, तृतीय मे ३९, चतुर्थ मे ४२, पञ्चम मे ४२, षष्ठम मे २७, सप्तम मे ३९, अष्टम मे २६, नवम मे ४७ और दसम अध्याय मे मात्र ९ सूत्र हैं । कुल ३५७ सूत्र हैं ।

तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थ की रचना के आधार स्तभ ग्रथ हैं-नियमसार, पञ्चास्तिकाय, भावपाहुड, प्रवचनसार तथा षट्खण्डागम आदि। तथा तत्त्वार्थसूत्र ग्रथ को आधार स्तभ बनाकर रचिन ग्रथ हैं-ग्रन्थ के मगलाचरण रूप एक श्लोक पर ही आचार्य समन्तभद्र द्वारा रचित आप्तमीमासा (देवागम-स्तोत्र)। देवागम है जिस पर अकलक देव ने अष्टशती नाम की टीका की तथा आचार्य विद्यानन्द जी ने अष्टशती पर ८००० श्लोक प्रमाण अष्टसहस्री नाम की व्याख्या की है । मूल सूत्रो पर प्राचीन टीकाओं मे देवनन्दि पूज्यपादकृत सर्वार्थसिद्धि और अकलकदेवकृत तत्त्वार्थराजवार्तिक अपनी प्राचीनता, प्रामाणिकता एव विषय गाभीर्य और विस्तार आदि गुणो के लिये श्रेष्ठ टीकाएँ मानी जाती हैं।

जिज्ञासु भव्यात्माओं की उत्सुकता को ध्यान मे रखते हुए तत्त्वार्थसूत्र के हार्द को आबाल वृद्ध मे हृदयगम कराने की भावना से परमपूज्य आचार्य गुरुदेव श्री १०८ विमलसागरजी के आशीर्वाद व परमपूज्य आचार्य गुरुदेव भरतसागरजी की प्रेरणा से

तत्त्वार्थसूत्र प्रश्नोत्तरी टीका तैयार की गई है। इस टीका मे जितने भी प्रश्न हैं उन सभी का उत्तर आचार्यों के वचनो के आधार पर हैं। प्रस्तुत टीका मे मेरा अपना स्वकीय कुछ नहीं है। सभी आचार्यों के वचन हैं, उन्हीं आचार्यों के वचनो को इस ग्रन्थ मे प्रश्नोत्तर शैली मे सजोने का एक छोटा सा प्रयास मैंने अपनी तुच्छ लेखनी से किया है। गुरु आशीर्वाद की ही यह सफलता है कि प्रश्नोत्तर शैली मे लिपिबद्ध किये जाने वाले ग्रन्थ शिक्षण शिविर आदि मे विशेष उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

प्रस्तुत प्रश्नोत्तरी टीका मे प्रश्नो के उत्तरार्थ परमपूज्य सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थ तत्त्वार्थवृत्ति व तत्त्वार्थराजवार्तिक [हिन्दी टीका विदुषी गणिनी आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी] आदि ग्रन्थो का उपयोग किया है। साथ ही जीवकाड, कर्मकाण्ड [हिन्दी टीका आर्यिकारत्न आदिमतीजी माताजी] आदि ग्रन्थो का भी आश्रय लिया है।

वास्तविकता मे तत्त्वार्थसूत्र जैनधर्म का एक सक्षिप्त सारग्रन्थ है। इसके पढने या सुनने मात्र का फल एक उपवास का है तथा भाव सहित चिन्तन, आचरण करने का फल असख्यातगुणी कर्म निर्जरा है तथा परम्परा से मुक्ति प्राप्ति इसका फल है।

इस ग्रन्थ के प्रेरणास्रोत आचार्यदेव को मैं शत-शत वन्दना करती हुई सदा आशीर्वाद की कामना करती हूँ। ग्रन्थ के प्रकाशनार्थ अर्थसहयोगी श्री रतनलालजी धर्मपत्नी प्रेमलता बाई गगवाल, कलकत्ता विजयकुमार जी गणपत राय जी बगडा कलकत्ता, लादूलालजी सम्पतलालजी छवडा कलकत्ता गगवाल सभी को यही आशीर्वाद है कि आपकी चचला लक्ष्मी का सदुपयोग सदा शुभकार्यों मे होता रहे। तथा उत्तम छपाई के लिये श्री बाबूलालजी फागुल्ल, भेलूपुर को भी आशीर्वाद। इत्यलम् ।

ग्रन्थ की टीका करने या प्रश्नोत्तर मे अल्पज्ञतावश जो त्रुटि रह गई हो उनके लिये मैं क्षमाप्रार्थी हूँ। पुन मेरे परमाराध्य आचार्य गुरुदेव त्रिकालवन्दनीय, तपोनिष्ठ, करुणामूर्ति, श्रमण सस्कृति के उन्नायक नेता वीतरागी, समदृष्टा वात्सल्य-रत्नाकर विमलसागरजी के चरणारविन्द मे सिद्ध-श्रुत-आचार्य भक्ति पुरस्सर नमोस्तु। नमोस्तु। नमोस्तु। पूज्यश्री आचार्य भरतसागरजी महाराजश्री के चरणारविन्द मे त्रिभक्ति पूर्वक नमोस्तु। नमोस्तु। नमोस्तु।

आर्यिका स्याद्वादमती

आचार्यश्री भरतसागरजी महाराज

आचार्यश्री विमलसागरजी महाराज

गणिनी आर्यिका श्री स्याद्वादमती माताजी

आचार्य उमास्वामी : एक परिचय

डॉ० कमलेश कुमार जैन 'चौधरी'
शोध अध्येता, बी० एल० इस्टीट्यूट ऑफ इण्डालॉजी, दिल्ली।

'तत्त्वार्थसूत्र' जैन-धर्म-दर्शन का प्रमुख ग्रन्थ है। यह सूत्र-शैली में लिखा गया है। सभवत. इसकी रचना का वही समय है, जब अन्य-अन्य दर्शनधाराओं मे वैशेषिकसूत्र 'न्यायसूत्र' 'साख्यसूत्र' और 'योगसूत्र' आदि सूत्रग्रन्थो की रचना हो रही थी। और बहुत सभव है कि इन्हीं सबसे प्रेरित होकर तत्त्वार्थसूत्रकार ने इसको लिखा हो। तत्त्वार्थसूत्र प्राचीन प्राकृत आगम और आगमिक साहित्य को आलोडन-दोहन कर सक्षेप मे लिखा गया है। निर्ग्रन्थ परम्परा में सभवत. यह आद्य उपलब्ध सूत्रग्रन्थ है, जो सस्कृत भाषा मे रचा गया है। इसमें जैनाचार एव जैन तत्त्वज्ञान के प्राय सभी पहलुओं पर साररूप मे विचार प्राप्त होता है। जहाँ अन्य दर्शन परम्पराओं का विषय ज्ञेय-प्रधान या ज्ञान साधन-प्रधान रहा है अथवा चारित्रप्रधान रहा है। वहीं पर तत्त्वार्थमूत्र मे ज्ञान, ज्ञेय और चारित्र का समान रूप से विवेचन मिलता है। इसका का कारण यही है कि जहाँ जैनेतर दर्शनो मे केवल तत्त्वज्ञान, क्रियाकर्म-या अनुष्ठान आदि से नि श्रेयस् की प्राप्ति बतायी गयी है, वहाँ जैनदर्शन मे सम्यक् दर्शन, ज्ञान और चारित्र इस त्रिसमुदित रूप को मोक्ष का मार्ग या साधन माना गया है।

अर्हत् वर्धमान महावीर के समय से ही नहीं, अपितु अर्हत् पार्श्व के काल मे निर्ग्रन्थ आगम श्रुतकी मुख्य भाषा लोक-भाषा रही है। जिसे बाद मे सामस्तिक नाम प्राकृत दिया गया। प्राकृत भाषा के जो विविध रूप दिखाई देते हैं मिलते हैं, उनसे पता चलता है कि वर्द्धमान महावीर और उनके आगे-पीछे बहुत काल तक उक्त प्राकृत ही बोल चाल की भाषा रही। इससे स्पष्ट होता है कि प्रारम्भ से बहुत काल तक जैन परम्परा की प्रकृति जनता की भाषा मे उपदेश देने की रही है। इस दृष्टि से वर्धमान महावीर और तथागत बुद्ध दोनो ही क्रान्तिकारी रहे हैं।

कालान्तर मे तत्त्वार्थ जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना सस्कृत भाषा मे की गयी। निर्ग्रन्थ परम्परा के उपलब्ध साहित्य मे सस्कृत मे रचा गया यह सर्वप्रथम ग्रन्थ है। तत्त्वार्थ-सूत्र लघुकाय ग्रन्थ है, फिर भी इसमे प्रमेय का उत्तमता के साथ सकलन किया गया है। इस कारण इसे निर्ग्रन्थ परम्परा के सभी सम्प्रदायो ने समान रूप से अपनाया है।

तत्त्वार्थसूत्र मे जिनागम के मूल तत्त्वो को बहुत ही सक्षेप मे निबद्ध किया गया है। जिससे इसमे गागर मे सागर वाली युक्ति चरितार्थ होती है। इसमे कुल दस अध्याय और ३५७ या ३४४ सूत्र हैं। इसमे करणानु योग, द्रव्यानुयोग और चरणानुयोग का सार समाहित है। अत· सभी सम्प्रदायो मे समान रूप से प्रिय है। इस ग्रन्थ की महत्ता इससे भी सिद्ध है कि दोनो ही सम्प्रदायो के सिद्धहस्त आचार्यों ने इस पर टीकाएँ लिखी हैं, देवनदि पूज्यपाद भट्ट अकलक और विद्यानन्दि ने दार्शनिक टीकाएँ लिखी हैं जो इसका महत्त्व व्यक्त करती है

तत्त्वार्थसूत्र में दस अध्याय हैं इनमे प्रमुखता से जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, सवर, निर्जरा और मोक्ष, इन सात तत्त्वो का ही प्ररूपण है। प्रमाण के साथ ही नय सिद्धान्त का विवेचन तत्त्वार्थसूत्र की अपनी स्वतत्र विशेषता है। जो कि जैनधर्म दर्शन के अनेकान्तवाद को प्रमुख देन है ।

तत्त्वार्थसूत्र का एक नाम मोक्षशास्त्र भी है। मोक्षशास्त्र इस नाम का उल्लेख किसी प्राचीन टीकाकार या अन्य किसी ने नहीं किया है तथापि लोक मे इस नाम की अधिक प्रसिद्धि देखी जाती है। तत्त्वार्थसूत्र का प्रारभ मोक्षमार्ग के उपदेश से होता है और इसका अन्त भी मोक्ष के उपदेश के साथ होता है सभवत इसी कारण से यह नाम लोक मे अधिक प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ है ।

तत्त्वार्थसूत्र के रचयिता का मूल नाम क्या है? वे कहाँ जन्मे थे ? किस जाति या वश के थे इत्यादि की कोई स्पष्ट जानकारी नहीं मिलती है। इसका कारण यह है कि प्राचीन काल मे सभी शास्त्रकार शास्त्र के आरम्भ मे या अन्त मे अपने नाम, कुल जाति, गुरु-परम्परा और वास्तव्यस्थान आदि का उल्लेख नही करते थे। क्योकि वे उस शास्त्र का अपने को प्रणेता-रचयिता नहीं मानते थे। अधिकतर शास्त्रो मे स्थल-स्थल पर जिनेन्द्रदेव ने ऐसा कहा है, यह जिनदेव का उपदेश है, सर्वज्ञदेव ने जिस प्रकार कहा है, उसी प्रकार हम कहते है , जिनशासन जिन-आगम का यह सार है । इन वचनो के साथ प्रतिपाद्य विषय की चर्चा होती है ।

अन्य आचार्यों ने भी इनका उल्लेख किया है । आचार्य वीरसेन ने षट्-खण्डागम पर सुप्रसिद्ध धवला नामक टीका शकसवत् ७३८ मे पूरी की थी, जो अनेक उल्लेखो एव ऐतिहासिक साक्ष्यो को समेटे हुए हैं। वीरसेन ने तत्त्वार्थसूत्र के अनेक सूत्रो को अपनी इस टीका मे उद्धृत किया है।

श्रवणबेलगोला के चन्द्रगिरि पर्वत पर कुछ ऐसे शिलालेख है, जिनमे गृद्धपिच्छ उमास्वाति को तत्त्वार्थसूत्र का कर्त्ता कहा गया है।

दिगम्बर परम्परा मे एक श्लोक मिलता है, जिसमे गृद्धपिच्छ से उपलक्षित उमास्वामी मुनीश्वर को तत्त्वार्थसूत्र का कर्त्ता बतलाया है और उन्हे गणीन्द्र कहा गया है।

तत्त्वार्थसूत्र कर्त्तार गृद्धपिच्छोपलक्षितम् ।
वन्देगणीन्द्र सजातमुमास्वामिमुनीश्वरम् ।।

नगरताल्लुके के एक शिलालेख मे यह उल्लेख मिलता है कि तत्त्वार्थसूत्र का कर्त्ता उमास्वाति है और वे श्रुतकेवलिदेशीय तथा गुणमन्दिर हैं। पट्टावलियो, प्रशस्तियो और अभिलेखो के आधार पर विद्वानो ने तत्त्वार्थसूत्र का समय ई० सन् की द्वितीय शती सिद्ध किया है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनो परम्पराओं मे तत्त्वार्थसूत्र का विशेष महत्त्व है ।

✚

विषय-सूची

✿

❖ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ❖

ओंकारं विन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव ओंकाराय नमो नमः ।।१।।

अविरलशब्दघनौघाः प्रक्षालितसकलभूतलमलकलंकाः।
मुनिभिरुपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान् ।।२।।

अज्ञानतिमिरांधानां ज्ञानांजनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।
श्रीपरमगुरवे नमः परम्पराचार्य्य श्रीगुरवे नमः ।

सकलकलुषविध्वंसकं श्रेयसां परिवर्द्धकं धर्म्मसंबन्धकं भव्यजीवमनः प्रतिबोधकारकमिदं शास्त्रंश्रीमोक्षशास्त्रनामधेयम्, एतन्मूलग्रन्थकर्त्तारः श्री सर्वज्ञदेवास्तदुत्तरग्रंथकर्त्तारः श्रीगणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचनानुसारमासाद्य श्री आचार्य उमास्वामी विरचितम् ।

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी ।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यौ जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ।।

सर्वे श्रोतारः सावधानतया शृण्वन्तु ।।

❖

नव देवता स्तवन

दोहा

परमेष्ठी पांचो नमू, जिनवाणी उरलाय।
जिन मारग को धारकर, चैत्य चैत्यालय ध्याय ॥

(तर्ज—अहो जगत् गुरु देव सुनियो .)

अरिहन्त प्रभु का नाम, है जग मे सुखदाई।
घाति चतु क्षयकार, केवल ज्याति पाई।
वीतराग सरवज्ञ, हित उपदेशी कहाये।
ऋद्धि-सिद्धि सब पाय, जो नित भक्ति सुध्यावे ॥ १ ॥

सिद्ध प्रभु गुणखान, सिद्धि के हो प्रदाता।
कर्म आठ सब काट, करते मुक्ति वासा ॥
शुद्ध बुद्ध अविकार, शिव सुखकारी नाथा।
ऋद्धि-सिद्धि सब पाय, जो नित नावे माथा ॥ २ ॥

आचारज गुणकार, पञ्चाचार को पाले।
शिक्षा दीक्षा प्रधान, भविजन के दुख टाले ॥
अनुग्रह निग्रह काज, मुक्ति मारग चलते।
ऋद्धि-सिद्धि सब पाय, जो आचारज भजते ॥ ३ ॥

ज्ञान ध्यान लवलीन, जिनवाणी रस पीते।
अध्ययन शिक्षा प्रदान, सघ मे जो नित करते ॥
रत्नत्रय गुणधाम, उपदेशामृत देते।
ऋद्धि-सिद्धि सब पाय, जो नित उवज्झाय भजते ॥ ४ ॥

दर्शन ज्ञान चरित्र, मुकती मार्ग कहाये।
तिनप्रति साधन रूप, साधु दिगम्बर भाये ॥
विषयाशा को त्याग, निज आतम चित पावे।
ऋद्धि-सिद्धि सब पाय, जो नित साधु ध्यावे ॥ ५ ॥

तत्व द्रव्य गुण सार, वीतराग मुख निकसी।
गणधर ने गुणधार, जिनमाला इक गूथी ॥
'स्याद्वाद' चिह्न सार, वस्तु अनेकान्त गाई।
ऋद्धि-सिद्धि सब पाय, जो जिनवाणी ध्याई ॥ ६ ॥

सम्यक् श्रद्धा सार, देव शास्त्र गुरु भाई।
सम्यक् तत्त्व विचार, सम्यक् ज्ञान कहाई ॥
सम्यक् होय आचार, सम्यक् चारित गाई।
ऋद्धि-सिद्धि सब पाय, जो जिन मारग धाई ॥ ७ ॥

वीतराग जिनबिम्ब, मूरत हो सुखदाई।
दर्पण सम निजबिम्ब, दिखता जिसमे भाई ॥
कर्म कलक नशाय, जो नित दर्शन पाते।
ऋद्धि-सिद्धि सब पाय, जो नित चैत्य को ध्याते ॥ ८ ॥

वीतराग जिनबिम्ब, कृत्रिमाकृत्रिम जितने।
शोभत है जिस देश, है चैत्यालय उतने ॥
उन सबकी जो सार, भक्ति महिमा गावे।
ऋद्धि-सिद्धि सब पाय, जो चैत्यालय ध्यावे ॥ ९ ॥

दोहा– नव देवता को नित पूजे, कर्म कलक नशाय।
भव सागर से पार हो शिव सुख मे रम जाय ॥

नोट—प्रतिदिन प्रात पाठ करने से जीवन सुख, शान्ति और समृद्धि को प्राप्त होता है।

प्रथम अध्याय

विवेचना

मंगलाचरण–वीतराग-सर्वज्ञ-हितोपदेशी अरहत देव की तद्गुण प्राप्त्यर्थ वन्दना ।

प्रभो ! आत्मा का हित क्या है—भव्य मुमुक्षु के जिज्ञासापूर्ण भावो का निमित्त पाकर सुन्दर सूत्रावतरण—कुल सूत्र ३३

सूत्र १ से ८ तक—मोक्ष प्राप्ति का उपाय, सम्यग्दर्शन का लक्षण, उत्पत्ति, भेद सप्त तत्त्व, चार निक्षेप, सम्यग्दर्शन व तत्त्वो को जानने के उपायो का कथ २ (प्रमाण-नय), ६ (निर्देश, स्वामित्व आदि) और ८ (सत्, सख्यादि), अनुयोगद्वारो का कथन ।

सूत्र ९-१२ तक सम्यग्ज्ञान के भेद व नाम ।

सूत्र १३-१९ तक मतिज्ञान के पर्यायवाची नाम, मतिज्ञान की उत्पत्ति के कारण, स्वरूप, मतिज्ञान के भेद, अवग्रह आदि व उनके विषय भूतपदार्थों का कथन । तथा अर्थावग्रह, व्यञ्जनावग्रह का कथन ।

सूत्र २० मे श्रुतज्ञान की उत्पत्ति, क्रम और भेद का कथन है ।

सूत्र २१-२२ मे अवधिज्ञान, अवधिज्ञान के भेद व स्वामी का कथन है ।

सूत्र २३, २४ मे मन पर्ययज्ञान व उसके भेद दर्शाये हैं ।

सूत्र २५ मे अवधिज्ञान व मन पर्ययज्ञान मे विशेषता का कथन है ।

सूत्र २६ मे मति-श्रुतज्ञान का विषय वर्णित है ।

सूत्र २७-२८ मे अवधिज्ञान और मन.पर्ययज्ञान का विषय वर्णित है ।

सूत्र २९ मे केवलज्ञान का विषय दर्शाया है ।

सूत्र ३० मे एक साथ एक जीव के होने वाले ज्ञानों की सख्या का कथन है।

सूत्र ३१ व ३२ मे मति-श्रुत-अवधिज्ञान मे विपरीतता और विपरीतता का हेतु दर्शाया है ।

सूत्र ३३ मे नैगम आदि सात नयो का विवेचन है ।

इस प्रकार कुल ३३ सूत्रो मे सक्षेप मे प्रथम अध्याय पूर्ण होता है ।

●

प्रथम अध्याय

मंगलाचरण

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम् ।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्‌गुणलब्धये ॥

अर्थ–(मोक्षमार्गस्य) मोक्षमार्ग के (नेतार) नेता (कर्मभूभृताम्) कर्मरूपी पर्वतो के (भेत्तार) भेत्ता को (विश्वतत्त्वाना) विश्व तत्त्वो के (ज्ञातारं) ज्ञाता को (तद्‌गुणलब्धये) उनके गुणो की प्राप्ति के लिये (वन्दे) नमस्कार करता हूँ ।

मै मोक्षमार्ग के नेता, कर्मरूपी पर्वतो के भेदन करने वाले और विश्व के समस्त तत्त्वो को जानने वाले आप्त को उनके गुणो की प्राप्ति के लिये नमस्कार करता हूँ ।

प्रश्न १–मगलाचरण मे कौन से परमेष्ठी को नमस्कार किया है ?

उत्तर–मगलाचरण मे 'अरहत परमेष्ठी' को नमस्कार किया है ।

प्रश्न २–मगलाचरण मे अरहत परमेष्ठी का नाम नही आया फिर आपने यह कैसे जाना कि यहाँ अरहत परमेष्ठी को नमस्कार किया है ?

उत्तर–यद्यपि श्लोक मे विशेष्य अरहन्त (आप्त) का निर्देश नही है तथापि विशेषणो द्वारा उसका बोध हो जाता है क्योकि मोक्षमार्ग का नेतृत्व, कर्मरूपी पर्वतो का भेतृत्व और समस्त तत्त्वो का ज्ञातृत्व अर्हंत देव मे ही सभव होता है ।

प्रश्न ३–श्लोक मे आये नेतार, भेत्तार, ज्ञातारं शब्द आप्त के किन विशेषणो की सूचना देते है ?

उत्तर–श्लोक मे आये नेतार शब्द आप्त के हितोपदेशी ।
भेत्तार शब्द वीतरागी और
ज्ञातार शब्द सर्वज्ञता के सूचक हैं ।

अरहंतदेव तीन लोक के नाथ हैं अत· नेता हैं तथा प्राणीमात्र को हितोपदेश देते है । चार घातिया कर्मों के भेदन करने से वे अरहत वीतरागी है तथा त्रिकालवर्ती चराचर पदार्थों को युगपत् जानने से वे ही सर्वज्ञ हैं ।

प्रश्न ४–श्लोक मे मंगलाचरण मे किसी व्यक्ति विशेष को नमस्कार क्यो नही किया ?

उत्तर–जैनधर्म मे किसी व्यक्ति विशेष की आराधना नही होती । यहाँ गुणो की पूज्यता सदा रही, व्यक्ति की नही "को वन्दे गुणहीन" ।

जिसने रागद्वेष कामादिक, जीते सब जग जान लिया।
सब जीवों को मोक्षमार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया॥

अर्थात् जिसने राग-द्वेष कामादिक जीतकर, सर्वज्ञता प्राप्त की तथा सब जीवों को मोक्षमार्ग का उपदेश दिया वह ब्रह्मा हो, विष्णु हो, शंकर हो या महावीर हमारे लिये वंद्य है।

प्रश्न ५–परमेष्ठी की वन्दना से उनके गुण यदि हमें प्राप्त हो जायेंगे तो उनमें गुणो का अभाव हो जायेगा।

उत्तर–परमेष्ठी की वन्दना से उनके गुण हमे मिल जायेंगे ऐसा अर्थ नही लेना। प्रत्येक आत्मा अनन्त गुणो का स्वामी है। परमेष्ठी भगवान के गुण व्यक्त हो गये हैं हम ससारी आत्माओ के गुण अभी अव्यक्त है। अपने अनन्त गुणो को व्यक्त करने मे उनकी भक्ति-वन्दनादि निमित्त है। जैसे दीपक से दीपक जलता है वैसे ही अपने अनन्त गुणो से शोभायमान अरहंतादि की वन्दना करने से भव्यात्मा के अव्यक्त स्वगुणो का प्रकटीकरण / आविर्भाव होता है।

प्रश्न ६–मोक्षमार्ग अथवा मोक्षप्राप्ति का उपाय क्या है ?

उत्तर– **सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणिमोक्षमार्गः ॥ १ ॥**

सूत्रार्थ–(सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि) सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्-चारित्र ये तीनो मिलकर (मोक्षमार्गः) मोक्ष के मार्ग अर्थात् मोक्षप्राप्ति के उपाय हैं।

प्रश्न १–इस सूत्र का अवतार क्यो हुआ ?

उत्तर–आत्महित का इच्छुक कोई एक निकट भव्य बुद्धिमान मानव था। एक दिवस वह अत्यत रमणीय, भव्य जीवो के योग्य, एकान्त मे स्थित किसी एक आश्रम मे जा पहुँचा। वहाँ उसने वचन बोले बिना ही मात्र शरीर की आकृति से ही साक्षात् मोक्षमार्ग का निरूपण करने वाले वन्दनीय दिगम्बर यतिराज को देखा। आचार्यश्री युक्ति-आगम मे कुशल, परोपकारी, आत्महित के उपदेष्टा, आर्यपुरुषों के वन्दनीय, पूजनीय महान् सन्त थे। उस भव्यात्मा ने गुरुदेव के निकट जाकर सविनय अष्टाग नमस्कार किया और समीप मे बैठ गया।

आत्महित के इच्छुक उस बुद्धिमान ने निर्ग्रन्थ आचार्यवर्य से सविनय पूछा—गुरुदेव ! आत्मा का हित क्या है ?

आचार्यश्री ने उत्तर दिया—आत्मा का हित मोक्ष है।

भव्यात्मा ने पूछा—मोक्ष का स्वरूप क्या है ?

आचार्यश्री ने कहा— कर्ममल कलंक से रहित होने पर अचिन्त्य स्वाभाविक ज्ञान-दर्शनादि गुण, अव्याबाध सुखरूप, ससार से सर्वथा विलक्षण आत्मा की जो

अवस्था होती है उसे मोक्ष कहते है ।

अथवा

आत्मा से द्रव्यकर्म-नोकर्म-भावकर्म का अत्यन्त जुदा हो जाना मोक्ष है ।

पुन. उसने पूछा—भगवन् ! उस मोक्ष की प्राप्ति का उपाय क्या है ?

इसी प्रश्न के उत्तर मे इस सूत्र का अवतरण / रचना करते हुए आचार्यश्री ने कहा— **सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग: ।**

जैसे रोग का निवारण केवल दवाई के दर्शन-ज्ञान-आचरण मात्र एक-एक कारण से नही हो सकता उसी प्रकार मोक्ष की प्राप्ति भी एक-एक के द्वारा नही हो सकती । फिर मोक्ष प्राप्ति का उपाय क्या है । इसी प्रश्न के उत्तर मे प्रथम सूत्र का अवतार हुआ ।

प्रश्न २–सूत्रकर्ता आचार्य और प्रश्नकर्ता भव्य का नाम बताइये ?

उत्तर–सूत्रकर्ता आचार्यश्री का नाम "उमास्वामि" था और प्रश्नकर्त्ता भव्यात्मा का नाम 'द्वैयाक" था ।

प्रश्न ३–सूत्र मे मोक्षमार्ग इस पद मे बहुवचन होना चाहिये एक वचन क्यो रखा गया ?

उत्तर–सूत्र मे सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि पद बहुवचन है उसके साथ मोक्षमार्ग एक वचन पद देने से जैनसिद्धान्त का रहस्य स्पष्ट हो जाता है । वह यह कि अकेला सम्यक्दर्शन, अकेला सम्यक्ज्ञान या अकेला सम्यक्चारित्र अलग-अलग मोक्षमार्ग नही हो सकते । दर्शन-ज्ञान चारित्र तीनो की एकता एक मोक्षमार्ग है ।

प्रश्न ४–सूत्र मे सम्यक् शब्द का अर्थ क्या है ? सम्यक् शब्द की व्युत्पत्ति बताइये ?

उत्तर–सूत्र मे आया सम्यक् शब्द समीचीनता का द्योतक है । इसका अर्थ प्रशसा है । सम् उपसर्ग पूर्वक अञ्च् धातु से क्विप् प्रत्यय करने पर 'सम्यक्' शब्द बनता है ।

प्रश्न ५–सूत्र मे आया सम्यक् शब्द दर्शन-ज्ञान-चारित्र मे से किसके साथ जोड़ना चाहिये ?

उत्तर–सम्यक् शब्द तीनो के साथ जोड़ना चाहिये क्योकि मात्र दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग नही है सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र तीनो की एकता मोक्षमार्ग है ।

प्रश्न ६–दर्शन के साथ सम्यक् विशेषण क्यो दिया गया है ?

उत्तर–पदार्थो के यथार्थज्ञानमूलक श्रद्धान का सग्रह करने के लिये दर्शन के पहले सम्यक् विशेषण दिया है ।

प्रश्न ७–सम्यग्ज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर–जिस-जिस प्रकार से जीवादि पदार्थ अवस्थित हैं उस-उस प्रकार से उनका जानना सम्यग्ज्ञान है। येन येन प्रकारेण जीवादयः पदार्था व्यवस्थितास्तेन तेनावगमः सम्यग्ज्ञानम् (स सि अ १)

प्रश्न ८–ज्ञान के साथ सम्यक् विशेषण क्यों दिया ?

उत्तर–ज्ञान के पहले सम्यक् विशेषण सशय-विपर्यय-अनध्यवसाय (विमोह) ज्ञानों का निराकरण करने के लिये दिया है–विमोह सशय विपर्यय निवृत्यर्थं सम्यग्विशेषणम् ।

प्रश्न ९–सशय-विपर्यय-अनध्यवसाय के लक्षण बताइये ?

उत्तर–अनिश्चित ज्ञान सशय है, जैसे यह सीप है या चाँदी ।

विपरीत (उल्टा) ज्ञान विपर्यय है, जैसे रस्सी मे साँप का ज्ञान ।

अनिश्चित तथा विकल्परहित ज्ञान अनध्यवसाय है, जैसे चलते समय पावों से छुए हुए पत्थर "कुछ है" इस प्रकार का ज्ञान ।

प्रश्न १०–सम्यक्चारित्र का लक्षण बताइये ?

उत्तर–कर्मों के ग्रहण करने में निमित्तभूत क्रिया के त्याग को सम्यक्चारित्र कहते हैं। (सर्वार्थसिद्धि) कर्मादान निमित्त क्रियो परमः सम्यक्चारित्रम् ।

अथवा

अशुभक्रिया से निवृत्ति और शुभक्रिया मे प्रवृत्ति चारित्र है । वह चारित्र व्रत, समिति गुप्तिरूप है ।

असुहादो विणिवित्ती, सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं ।

वद समिदिगुत्ति रूव, ववहारणया दु जिणभणिय ।। (द्र० स० गा० ४५)

प्रश्न ११–अशुभ क्रियाएँ कौन-कौन सी हैं ?

उत्तर–हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह रूप क्रियाएँ अशुभ क्रियाएँ हैं । तथा मन-वचन-काय की दुष्प्रवृत्ति, अभक्ष्य भक्षण, अयत्नाचारपूर्वक की गई सभी क्रियाएँ अशुभ हैं ।

प्रश्न १२–शुभ क्रियाएँ कौन-कौन सी है ?

उत्तर–अहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप क्रियाएँ शुभ हैं । तथा यत्नाचारपूर्वक बोलना, चलना, खाना-पीना, उठना, बैठना, मन-वचन-काय की प्रवृत्ति शुभ रखना, पञ्चेन्द्रिय विषयों मे लम्पटता का त्याग करना, देव-शास्त्र-गुरु की पूजा-वन्दना, चारो प्रकार के दान, व्रत, शील,, पूजा और उपवास ये सभी शुभ क्रियाएँ हैं ।

प्रश्न १३–चारित्र के साथ सम्यक् विशेषण क्यों दिया गया है ?

उत्तर–चारित्र के पहले "सम्यक्" विशेषण अज्ञानपूर्वक आचरण के निराकरण करने के लिये दिया है–अज्ञानपूर्वकाचरण निवृत्त्यर्थ सम्यग्विशेषणम् (स०सि०)

प्रश्न १४–सूत्र में सबसे पहले ज्ञान न रखकर दर्शन क्यों रखा गया ? जबकि दर्शन ज्ञान पूर्वक होता है और ज्ञान में दर्शन की अपेक्षा अक्षर भी कम हैं ?

उत्तर–यद्यपि ज्ञान में दर्शन की अपेक्षा अक्षर कम हैं तथापि दर्शन पूज्य होने से उसे ज्ञान के पहले रखा गया है क्योंकि अल्पाक्षर से पूज्य महान् होता है ।

प्रश्न १५–सम्यक्दर्शन पूज्य क्यों है ?

उत्तर–सम्यक्-दर्शन से ज्ञान में समीचीनता आती है अतः सम्यक्दर्शन पूज्य है । सम्यक्दर्शन रहित ग्यारह-अंग नौ पूर्व का ज्ञान भी मोक्षमार्ग का साधक नहीं है वह तो भार मात्र है और सम्यक्दर्शन सहित अष्ट प्रवचन मातृका का ज्ञान भी मोक्ष-मार्ग में सहकारी, पर्याप्त है । कहा भी है–

मोक्षमहल की परथम सीढ़ी या बिन ज्ञान-चरित्रा ।

सम्यकता न लहै सो दरशन धारो भव्य पवित्रा ।।छ०३।।

प्रश्न १६–सम्यक्चारित्र मोक्ष का साक्षात् कारण है फिर चारित्र के पहले ज्ञान का प्रयोग क्यो किया गया है ?

उत्तर–सम्यक्चारित्र ज्ञानपूर्वक होता है अतः ज्ञान को पहले रखा है ।

प्रश्न १७–ज्ञान को मध्य में क्यों रखा गया है ?

उत्तर–ज्ञान मध्य दीपक है । इसकी स्थिति देहरी पर रखे दीपकवत् है। ज्ञान सम्यक्दर्शन को दृढ़ बनाये रखता है तथा चारित्र को निर्मल बनाने में महाकार्य करता है अतः इसे मध्य में रखा है । ज्ञान के अभाव मे श्रद्धा डगमगा सकती है तथा विवेक सो जाने से चारित्र का पतन भी हो सकता है, इसलिये भी इसे मध्य में रखा गया है । अर्थात् ज्ञान का कार्य दर्शन और चारित्र दोनों को मजबूत बनाये रखना है, इसीलिए इसे देहरी के दीपकवत् मध्य मे रखा गया है ।

प्रश्न १८–ज्ञान और चारित्र युगपत् होते हैं या इनमें काल भेद है ।

उत्तर–ज्ञान और चारित्र युगपत् नहीं होते इनमे काल भेद है । हाँ, यह सत्य है कि हम छद्मस्थों के वह काल भेद ज्ञान गोचर नहीं होता क्योंकि शीघ्र उत्पत्ति में सूक्ष्मकाल की अप्रतिपत्ति शतपत्रों के छेदन के समान है ।

प्रश्न १९–यथा मोहोदय से विकल स्त्री सेवन में आसक्त किसी पुरुष ने मेघोदय के कारण बहुत अन्धकार से आच्छादित रात्रि में जाती हुई अपनी व्यभिचारिणी माता को अपनी अभिलषित स्त्री समझ कर स्पर्श किया, इतने में बिजली चमकी । उस विद्युत् के प्रकाश से जैसे ही उसे यह ज्ञात हुआ कि यह मेरी "माता" है–वैसे ही वह अगम्य बोध होने से शीघ्र ही अगम्यगमन से निवृत्त हो जाता है । इस अगम्यबोध और अगम्यकालनिवृत्ति में कालभेद नहीं है । उसी प्रकार जैसे ही ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से इस जीव को यह सम्यग्ज्ञान होता है कि जीव हिंसा नहीं करनी चाहिये, इस अगम्यबोध से वह अगम्य (हिसादि) से निवृत्त हो जाता है हिसा के कारणों से निवृत्त होना ही चारित्र है । इस जीवज्ञान और हिसानिवृति में कालभेद नहीं है, इसलिये ज्ञान और चारित्र को एक मानना चाहिये ? (रा० वा०)

उत्तर–ऐसा कहना उचित नहीं है क्योंकि शीघ्र उत्पत्ति में सूक्ष्मकाल की अप्रतिपत्ति है । उसमे भी (ज्ञान चारित्र) कालभेद हैं परन्तु सूक्ष्म होने से कालभेद प्रतीत नहीं होता है । कैसे ? सौ कमलपत्रों में छेद करने के समान । जैसे ऊपर नीचे रखे हुए १०० कमलपत्रों को सुई के एकसाथ छेदने पर भी असंख्यात समय हैं वह सर्वज्ञ के प्रत्यक्ष और अतिसूक्ष्म है, छद्मस्थ के दृष्टिगोचर नहीं होते हैं । क्योंकि जब तक एक पत्र को छेदकर सुई दूसरे को छेदती है उतने समय में असंख्यात समय हो जाते हैं । इसी प्रकार ज्ञान और चारित्र में सूक्ष्म

कालभेद है ।

प्रश्न २०–सूत्र किसे कहते हैं ?

उत्तर– अल्पाक्षरमसंदिग्धं सारवद् गूढनिर्णयम्

निर्दोषहेतुमत्तथ्यं सूत्रमित्युच्यते बुधैः ।।१।। ध०पु०१।।

अर्थात् जो थोड़े अक्षरों में संयुक्त हो, सन्देह से रहित हो, गूढ़ पदार्थों का निर्णय करने वाला हो, निर्दोष हो, युक्तियुक्त हो और यथार्थ हो, उसे पंडितजन सूत्र कहते हैं । अथवा अतीव संक्षिप्त कथन को सूत्र कहते हैं । (ध० पु०१)

प्रश्न २१–सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं ? लक्षण बताइये ?

उत्तर–तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ।।२।।

सूत्रार्थ–(तत्त्वार्थश्रद्धानम्) तत्त्व–वस्तु के यथार्थ स्वरूप सहित, अर्थ–जीवादि पदार्थों का श्रद्धान करना (सम्यग्दर्शनम्) सम्यग्दर्शन है । अर्थात् जीवादि सात तत्त्वों का जैसा स्वरूप वीतराग सर्वज्ञ भगवान् ने कहा है उसका उसी प्रकार श्रद्धान करना सो सम्यग्दर्शन है ।

प्रश्न १अ–तत्त्वार्थ श्रद्धान सम्यग्दर्शनं यह परिभाषा किस अनुयोग की अपेक्षा है ? चारों अनुयोगों की अपेक्षा सम्यग्दर्शन की परिभाषा बताइये ?

उत्तर–सम्यग्दर्शन की "तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शन" यह परिभाषा द्रव्यानुयोग अपेक्षा है । प्रथमानुयोग अपेक्षा पाप-पुण्य का श्रद्धान कर पाप का त्यागना सम्यग्दर्शन है । चरणानुयोग अपेक्षा-देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा सम्यग्दर्शन है और करणानुयोग की अपेक्षा मिथ्यात्व क्षयोपशम सम्यग्दर्शन है । अनतानुबंधी ४ मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व व सम्यक् प्रकृति इन ७ प्रकृतियो का उपशम, क्षय क्षयोपशम सम्यग्दर्शन है ।

प्रश्न १ब–चार अनुयोग का स्वरूप बताइये ?

उत्तर–धर्म का स्वरूप-द्रव्यानुयोग । धर्म की सूक्ष्मता करणानुयोग । धर्म की प्राप्ति का उपाय चरणानुयोग व धर्मात्मा पुरुषों की चर्चा प्रथमानुयोग है ।

एक गिरते बालक को चार अनुयोग के माध्यम से माता की शिक्षा (बेटा गिर गया है)

माता–देखो बेटो ! देखकर चलना चाहिये–चरणानुयोग ।

बेटा ! तुमने कल अपने दादाजी को गिरते हुए हँसी उड़ाई थी ना । उसका फल तुम आज गिरे, कभी ऐसा न करो–करणानुयोग ।

मेरा बेटा ! इतनी सी चोट से क्यो रोना ? देखो दादाजी को कितनी गहरी चोट आई क्या वे रोए थे–प्रथमानुयोग ।

मेरा प्यारा बेटा ! कभी नहीं गिरता, यह तो घोड़ा (शरीर) गिरा था । उसे लगी है, बेटा को (आत्मा को) नहीं लगी ।–द्रव्यानुयोग ।

प्रश्न १स–तत्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर–पदार्थ जिस रूप से अवस्थित है उसका उस रूप होना तत्त्व है । (तस्याभावस्तत्त्वम्) (स० सि०) योऽर्थो यथावस्थितस्तथा तस्य भवनमित्यर्थः" ।

प्रश्न २–अर्थ किसे कहते हैं ?

उत्तर–अर्यते निश्चीयते इत्यर्थ अर्थात् जो निश्चय किया जाता है वह अर्थ है यह व्युत्पत्ति

अर्थ है । अर्थ का दूसरा अर्थ जीवादि पदार्थ है भावार्थ जीवादि पदार्थों को अर्थ कहते हैं ।

प्रश्न ३–तत्त्वार्थ शब्द की व्युत्पत्ति बताइये ?

उत्तर–तत्त्व और अर्थ इन दो शब्दों के संयोग से तत्त्वार्थ शब्द बना है । जो "तत्त्वेन अर्थस्तत्त्वार्थः" ऐसा समास करने पर प्राप्त होता है अथवा भाव द्वारा भाववाले पदार्थ का कथन किया जाता है क्योंकि भाव भाववाले से अलग नहीं पाया जाता । ऐसी स्थिति मे समास होता "तत्त्वमेव अर्थः तत्त्वार्थ " ।

प्रश्न ४–दर्शन शब्द कौन धातु से बना है उसका अर्थ क्या है ?

उत्तर–दर्शन शब्द दृशि धातु से बना है जिसका अर्थ आलोक है ।

प्रश्न ५–यदि पदार्थों का आलोक सम्यग्दर्शन माना जायेगा तो सम्यग्दर्शन कैसे होगा ?

उत्तर–धातुओ के अनेक अर्थ होते है, अतः दृशि धातु का अर्थ यहाँ आलोक नही लेकर श्रद्धान अर्थ लेना उचित है । (पदार्थों का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है)

प्रश्न ६–दृशि धातु का प्रसिद्ध अर्थ तो आलोक है उसे यहाँ ग्रहण क्यो नही किया ?

उत्तर–मोक्षमार्ग का प्रकरण होने से यहाँ दृशि धातु का अर्थ आलोक न लेकर श्रद्धान लिया है । तत्त्वार्थों का श्रद्धानरूप जो आत्मा का परिणाम होता है वह तो मोक्ष का साधन बन जाता है, क्योंकि वह भव्यो के ही पाया जाता है, किन्तु आलोक चक्षु आदि के निमित्त से होता है वह सामान्य भव्य-अभव्य सब ससारी जीवों के पाया जाता है अत. उसे मोक्षमार्ग मानना युक्त नहीं है ।

प्रश्न ७–सूत्र में तत्त्वार्थश्रद्धान न कहकर अर्थ श्रद्धान इतना मात्र कहना पर्याप्त था ? ऐसा क्यो नहीं किया ?

उत्तर–अर्थश्रद्धान इतना मात्र कहने से अर्थ शब्द के धन, प्रयोजन, अभिधेय आदि जितने भी अर्थ हैं उन सबके ग्रहण करने का प्रसग आता है जो युक्त नहीं है । अत "अर्थश्रद्धानम्" नही कहा है ।

प्रश्न ८–सूत्र में "तत्त्व श्रद्धानम्" इतना ही कहना भी पर्याप्त है ?

उत्तर–तत्त्व श्रद्धानम् इतना मात्र कहने से केवल भाव मात्र के ग्रहण का प्रसग प्राप्त होता है । क्योंकि अन्य मतों से तत्त्व पद से सत्ता, द्रव्यत्व, गुणत्व और कर्मत्व इत्यादि का ग्रहण किया है अत ऐसा मानने पर इन सबका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन हो जायेगा जो युक्त नही है ।

अत सब दोषो को दूर करने के लिये आचार्यश्री ने सूत्र मे तत्त्व और अर्थ इन दोनों पदो का ग्रहण किया है ।

प्रश्न ९–सम्यग्दर्शन के कितने भेद हैं ?

उत्तर–सम्यग्दर्शन दो प्रकार का है (१) सराग सम्यग्दर्शन (२) वीतराग-सम्यग्दर्शन । सम्यग्दर्शन के तीन भेद भी हैं–औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक ।

प्रश्न १०–सराग सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर–प्रशम, सवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य आदि की अभिव्यक्ति लक्षणवाला सराग सम्यग्दर्शन है ।

प्रश्न ११–वीतराग सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर–आत्मा की विशुद्धि मात्र वीतराग सम्यग्दर्शन है ।

प्रश्न १२–सम्यग्दर्शन् तो श्रद्धा का विषय है यह सराग-वीतराग कैसे है ?

उत्तर–सम्यग्दर्शन के सराग-वीतराग भेद पात्र की अपेक्षा से किये गये हैं । सरागी जीव के जो सम्यग्दर्शन होता है वह सराग सम्यग्दर्शन कहलाता है और वीतरागी जीव के जो सम्यग्दर्शन है वह वीतराग सम्यत्तव कहलाता है ।

प्रश्न १३–क्या उपर्युक्त कारण से सम्यग्दर्शन को सराग या वीतराग मानना उचित है ?

उत्तर–पात्र की अपेक्षा मात्र से सम्यग्दर्शन को सराग या वीतराग मानना उचित नहीं है । क्योकि सम्यग्दर्शन स्वय न तो सराग ही होता है और न वीतराग ही । सरागता-वीतरागता का सम्बन्ध तो कषाय के सद्भाव और असद्भाव से है । तथापि जिसके राग और द्वेषरूप प्रवृत्ति पायी जाती है उसके सम्यग्दर्शन जन्य आत्मविशुद्धि प्रकट तो हो जाती है पर वह स्पष्ट: लक्षित नहीं होती । बाह्य प्रवृत्ति मे रागाश या द्वेषाश की प्रधानता बनी रहती है । अत: सरागी जीव के सम्यत्तव को सराग और वीतरागी जीव के सम्यत्तव को वीतराग कहते हैं ।

प्रश्न १४–क्या औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक तीन सम्यक्-दर्शनों में सरागता, वीतरागता है ?

उत्तर–क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन तो सराग अवस्था मे ही पाया जाता है, किन्तु शेष दो सम्यग्दर्शन सराग और वीतराग दोनो अवस्थाओं में पाये जाते हैं ।

प्रश्न १५–प्रशम-सवेग-अनुकम्पा-आस्तिक्य के लक्षण बताइये ?

उत्तर– १ रागादि की तीव्रता का न होना प्रशम भाव है ।

२ ससार से भीतरूप परिणाम का होना सवेग है ।

३ सब जीवों में दयाभाव रखना अनुकम्पा है ।

४ "जीवादि पदार्थ हैं" ऐसी बुद्धि का होना आस्तिक्य है ।

प्रश्न १६–सम्यग्दर्शन के उत्पत्ति की अपेक्षा कितने भेद हैं ?

उत्तर–तन्निसर्गादधिगमाद्वा ।।३।।

सूत्रार्थ–(तत्) वह सम्यग्दर्शन (निसर्गात्) स्वभाव से (वा) अथवा (अधिगमात्) पर के उपदेश आदि से (उत्पद्यते) उत्पन्न होता है । इस प्रकार सम्यग्दर्शन के उत्पत्ति अपेक्षा दो भेद हैं–(१) निसर्गज (२) अधिगमज

प्रश्न २–निसर्गज सम्यग्दर्शन किसे कहते है ?

उत्तर–जो पर के उपदेश के बिना अपने आप (पूर्वभव के सस्कार से) उत्पन्न होता है उसे निसर्गज सम्यग्दर्शन कहते हैं ।

प्रश्न ३–अधिगमज सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर–जो गुरु आदि पर के उपदेश से उत्पन्न होता है वह अधिगमज सम्यग्दर्शन है ।

प्रश्न ४–निसर्गज और अधिगमज दोनों ही सम्यत्तव में पूर्वभव का सस्कार और परोपदेश ये दोनो बाह्य निमित्त हैं सम्यत्तव का अन्तरंग निमित्त क्या है ?

उत्तर–दोनो ही सम्यत्तव में मिथ्यात्व, सम्यक्-मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृति और अनन्तानुबधी क्रोध, मान, माया और लोभ इन सात प्रकृतियों का उपशम, क्षय व क्षयोपशम अत्यत आवश्यक है यह अन्तरंग निमित्त है ।

प्रश्न ५–निसर्गज और अधिगमज सम्यग्दर्शन में क्या भेद है ?

उत्तर–निसर्गज में भव्यात्मा ने पूर्व में किसी भी भव में गुरु का उपदेश सुना है उसके संस्कार से सम्यक्त्व होता है और अधिगमज में भव्यात्मा वर्तमान पर्याय में गुरु-उपदेश पाकर सम्यग्दर्शन को प्राप्त करता है मात्र पूर्व पर्याय और वर्तमान पर्याय अपेक्षा भेद है। उपदेश या देशनालब्धि की दोनों में मुख्यता है। अन्तरग निमित्त तो दोनों में ही समान है। लौकिक में इसे ऐसे भी समझा जा सकता है–दो बालकों में एक बालक जो स्वय पढ़ रहा है निसर्गज है और जो शिक्षको (घर पर पढाने आते हैं उनसे) से पढ़ रहा है वह अधिगमज है।

प्रश्न ६–क्या देशनालब्धि की सम्यग्दर्शन प्राप्ति मे अनिवार्यता है ?

उत्तर–जी हाँ ! आगम में पाँच लब्धियाँ बताई हैं–क्षयोपशम लब्धि, विशुद्धि लब्धि, देशनालब्धि, प्रायोग्यलब्धि और करण लब्धि। इनमे देशनालब्धि की सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में अनिवार्यता है। जिस जीव को वर्तमान पर्याय या पूर्व पर्याय मे कभी भी जीवादि पदार्थविषयक उपदेश नहीं मिला है उसे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं हो सकती।

प्रश्न ७–क्या क्षायिक-क्षायोपशमिक और औपशमिक तीनो सम्यक्त्व में निसर्गज-अधिगमज भेद हैं ?

उत्तर–जी हाँ। तीनो प्रकार के सम्यक्त्वों के निसर्गज और अधिगमज के भेद से दो-दो प्रकार आचार्यों ने बतलाये हैं।

प्रश्न ८–सात तत्त्व कौन से हैं ?

उत्तर–जीवाजीवास्रवबंधसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम् ।।४।।

सूत्रार्थ–(जीव-अजीव-आस्रवबधसवरनिर्जरामोक्षाः) जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, सवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात (तत्त्वम्) तत्त्व (सन्ति) हैं।

प्रश्न १–जीव का लक्षण बताइये ?

उत्तर–जिसमें चेतना पाई जाती है, जो जानने-देखने वाला ज्ञाता दृष्टा स्वभाव वाला है, सुख, सत्ता, चैतन्य व बोध से युक्त है वह जीव है।

प्रश्न १अ–चेतना के कितने भेद हैं व किन जीवों के कौन सी चेतना होती है ?

उत्तर–चेतना के तीन भेद हैं–कर्मफल चेतना, कर्म चेतना व ज्ञान चेतना। एकेन्द्रिय जीवों के कर्मफल चेतना, त्रस जीवों के कर्म चेतना तथा अन्तरात्मा सम्यग्दृष्टि अथवा किन्हीं आचार्य के मत से केवलज्ञानी परमात्मा के ज्ञान चेतना पाई जाती है।

प्रश्न २–अजीव का लक्षण बताइये ?

उत्तर–जीव से विपरीत अचेतन लक्षणवाला अजीव है।

प्रश्न ३–आस्रव तत्त्व का लक्षण बताइये ?

उत्तर–शुभ और अशुभ कर्मों के आने के द्वार रूप आस्रव है।

प्रश्न ४–बन्ध तत्त्व का लक्षण बताइये ?

उत्तर–आत्मा और कर्मों के प्रदेशों का परस्पर मिल जाना बन्ध है।

प्रश्न ५–सवर तत्त्व का लक्षण बताइये ?

उत्तर–आस्रव का रोकना संवर है ।

प्रश्न ६–निर्जरा तत्त्व का लक्षण बताइये ?

उत्तर–कर्मों का एकदेश क्षय होना निर्जरा है ।

प्रश्न ७–मोक्ष तत्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर–समस्त कर्मों का आत्मा से अलग हो जाना मोक्ष है ।

प्रश्न ८–सूत्र में जीव तत्त्व को सबसे पहले क्यों ग्रहण किया ?

उत्तर–अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष सबका फल जीवाश्रित होने से सबसे पहले जीव को ग्रहण किया है ।

प्रश्न ९–अजीव को जीव के बाद ग्रहण क्यों किया है ?

उत्तर–अजीव जीव का उपकारी है यह दिखलाने के लिये जीव के बाद अजीव का कथन किया गया है ।

प्रश्न १०–जीव-अजीव के बाद आस्रव का ग्रहण किस कारण किया है ?

उत्तर–आस्रव जीव-अजीव दोनों को विषय करता है अतः इन दोनों के बाद आस्रव का ग्रहण किया गया है ।

प्रश्न ११–आस्रव के बाद बन्ध तत्त्व के ग्रहण का कारण बताइये ?

उत्तर–बध आस्रवपूर्वक होता है इसलिये आस्रव के बाद बन्ध का कथन किया है ।

प्रश्न १२–बन्ध तत्त्व के बाद संवर के रखने का कारण बताइये ?

उत्तर–सवृत जीव के बंध नहीं होता अतः संवर बन्ध का उल्टा हुआ । इस बात का ज्ञान कराने के लिये बन्ध के बाद सवर का कथन किया है ।

प्रश्न १३–निर्जरा को सवर के बाद क्यों कहा ?

उत्तर–सवर होने के बाद निर्जरा होती है अतः सवर के बाद निर्जरा को कहा ।

प्रश्न १४–मोक्ष तत्त्व को अन्त में क्यों कहा ?

उत्तर–मोक्ष सबसे अन्त में प्राप्त होता है अतः उसका अन्त में कथन किया गया है ।

प्रश्न १५–आचार्यों ने पदार्थ ९ होते हैं ऐसा कहा है अतः पुण्य-पाप को भी सूत्र में ग्रहण क्यों नहीं किया ?

उत्तर–पुण्य और पाप का आस्रव और बन्ध तत्त्व में अन्तर्भाव हो जाता है अतः सूत्र में आचार्यश्री ने अलग से ग्रहण नहीं किया है ।

प्रश्न १६–यदि ऐसा है तो सूत्र में आस्रव आदि का भी ग्रहण निरर्थक होगा ?

उत्तर–सूत्र में आस्रव, सवर आदि का ग्रहण निरर्थक नहीं है क्योंकि यहाँ मोक्ष का प्रकरण है । वह मोक्ष ससार-पूर्वक होता है और ससार के प्रमुख कारण आस्रव-बंध है तथा मोक्ष का प्रधान कारण सवर और निर्जरा है । ससार और मोक्ष के प्रधान हेतु बतलाने के लिये तत्त्वों का अलग-अलग कथन किया है ।

प्रश्न १७–सप्त तत्त्वों को लौकिक दृष्टान्त द्वारा समझाइये ?

उत्तर–एक सेठ जी फैक्ट्री खोलते हैं, उसमें माल आता है, मशीनों द्वारा उसको नया-नया रूप दिया जाता है, माल अधिक होने पर माल मँगाने पर रोक लगा दी जाती है । माल

की खपत/बिक्री शुरू होती है, एक दिन ऐसा भी आता है माल पूरा बिक जाता है । यह क्रम सात तत्त्वों की रूपरेखा को प्राप्त हुआ उसी प्रकरण को इगित कर रहा है वह इस प्रकार है– फैक्ट्री खोलने वाले मालिक जीव तत्त्व हैं, फैक्ट्री अजीव तत्त्व है, फैक्ट्री में माल आना आस्रव तत्त्व है, माल को मशीनों मे डालकर नया-नया रूप देना बंध तत्त्व है । माल फैक्ट्री मे बहुत हो गया अतः मँगाना बन्द कर देना सवर तत्त्व है, माल की धीरे-धीरे बिक्री/विक्रय होना निर्जरा और माल का पूरा समाप्त हो जाना मोक्ष तत्त्व है ।

जीवात्मा जीव द्रव्य है, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश-काल ये अजीव तत्त्व हैं विभाव परिणामों का निमित्त पाकर कर्मों का आगमन आस्रव तत्त्व है, जीव और कर्मों का एकमेक हो जाना बन्ध तत्त्व है, कर्मों का आगमन द्वारा बन्द हो जाना संवर तत्त्व है, तपस्या आदि के बल से कर्मों का एकदेश खिर जाना निर्जरा तत्त्व है और आत्मा से कर्मों का पूर्ण अलग हो जाना मोक्ष तत्त्व है ।

इसी प्रकार प्रतिदिन की श्रावक की गृहस्थ क्रियाओ मे भी इसे दृष्टान्त से देखा जाता है–

एक श्रावक ने २५ श्रावकों को भोजन के लिये निमत्रण दिया । निमत्रण देने वाला श्रावक जीव तत्त्व है, उसका घर अजीव तत्त्व है । समय पर भोजनालय मे श्रावको का भोजन के लिये प्रवेश आस्रव तत्त्व । भोजन करना प्रारभ कर देना बध तत्त्व है, भोजनालय पूरा भर गया है अत. आगे आने वालों को रोक देना सवर तत्त्व है, धीरे-धीरे भोजन कर चुकने वालों का एक-एक करके निकलते जाना निर्जरा तत्त्व है । और २५ ही श्रावकों के भोजन करके चला जाना मोक्ष तत्त्व है ।

प्रश्न १८–सम्यग्दर्शन आदि और जीवादि पदार्थों के जानने का सुगम उपाय क्या है ?

उत्तर–नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यास. ।।५।।

सूत्रार्थ–(नामस्थापनाद्रव्यभावत) नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव से (तत्न्यास) उन सात तत्त्वों का सम्यग्दर्शन आदि का लोक व्यवहार (भवति) होता है । नाम आदि चार पदार्थ ही चार निक्षेप कहलाते है ।

प्रश्न १–निक्षेप किसे कहते हैं ?

उत्तर–नाम आदि के द्वारा वस्तु मे भेद करने के उपाय को न्यास या निक्षेप कहते हैं (ध० पु० १/१८) प्रमाण और नय के अनुसार प्रचलित हुए लोक व्यवहार को निक्षेप कहते है । अनिर्णीत वस्तु को निर्णीत करने वाला निक्षेप कहलाता है । अथवा अव्यवस्था का जो निराकरण करे वह निक्षेप है ।

प्रश्न २–निक्षेप शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थ बताइये ?

उत्तर–नि उपसर्ग पूर्वक क्षिप् धातु से निक्षेप शब्द बना है । निक्षेप का अर्थ रखना है ।

प्रश्न ३–निक्षेप का कार्य क्या है, इस विधि का कथन क्यों किया जाता है ?

उत्तर–एक-एक शब्द का लोक में और शास्त्र मे अनेक अर्थों में प्रयोग किया जाता है । यह प्रयोग कहाँ किस अर्थ में किया गया है इस बात का स्पष्टीकरण करना, बतलाना निक्षेप विधि का काम है ।

२ अप्रकृत का निराकरण करने के लिये और प्रकृत का निरूपण करने के

लिये इसका कथन किया जाता है। तात्पर्य यह है कि किस शब्द का क्या अर्थ है यह निक्षेप विधि के द्वारा विस्तार से बतलाया जाता है।

प्रश्न ४–निक्षेप के कितने भेद हैं ?

उत्तर–नाम-स्थापना-द्रव्य और भाव के भेद से निक्षेप के ४ भेद हैं।

प्रश्न ५–नाम निक्षेप का लक्षण व उदाहरण दीजिये ?

उत्तर–गुण, जाति, द्रव्य और क्रिया की अपेक्षा के बिना ही इच्छानुसार किसी का नाम रखने को नाम-निक्षेप कहते हैं। जैसे किसी का नाम महावीर है पर वह शक्ति मे क्षीण है, तथापि लोक व्यवहार चलाने के लिए उसका नाम महावीर रख लिया गया है। इसी प्रकार दरिद्री का नाम धनपाल, अधे का नाम नयनसुख, अञ्जन सहित का निरञ्जन, क्रोधी का नाम शान्ति आदि नाम निक्षेप के उदाहरण हैं।

प्रश्न ६–स्थापना निक्षेप का लक्षण व उदाहरण दीजिये ?

उत्तर–धातु, काष्ठ, पाषाण आदि की प्रतिमा तथा अन्यान्य पदार्थों मे "यह वह है" इस प्रकार किसी की कल्पना करना स्थापना निक्षेप है। जैसे—पार्श्वनाथ की प्रतिमा मे पार्श्वनाथ की कल्पना करना।

प्रश्न ७–स्थापना निक्षेप के कितने भेद है ?

उत्तर–स्थापना निक्षेप के दो भेद है—१ तदाकार स्थापना, २ अतदाकार स्थापना।

प्रश्न ८–तदाकार-अतदाकार स्थापना के लक्षण बताइये ?

उत्तर–जिस पदार्थ का जैसा आकार है उसमे उसी आकार की कल्पना करना तदाकार स्थापना है।

जैसे—पार्श्वनाथजी की प्रतिमा मे पार्श्वनाथ की कल्पना करना।

भिन्न आकार वाले पदार्थों मे किसी भिन्न आकार वाले की कल्पना करना अतदाकार स्थापना है। जैसे शतरज की गोटो मे बादशाह, वजीर वगैरह की कल्पना करना।

प्रश्न ९–नाम निक्षेप और स्थापना निक्षेप मे क्या अन्तर है ?

उत्तर–नाम निक्षेप मे पूज्य-अपूज्य का व्यवहार नहीं होता, परन्तु स्थापना निक्षेप मे पूज्य-अपूज्य का व्यवहार होता है यही दोनो में अन्तर है।

प्रश्न १०–द्रव्य निक्षेप का लक्षण व उदाहरण दीजिये ?

उत्तर–भूत-भविष्यत् पर्याय की मुख्यता लेकर वर्तमान कहना सो द्रव्य निक्षेप है। जैसे—पहले कभी पूजा करने वाले पुरुष को वर्तमान मे पुजारी कहना और भविष्य मे राजा होने वाले राजपुत्र को राजा कहना।

प्रश्न ११–भाव निक्षेप किसे कहते हैं ?

उत्तर–केवल वर्तमान पर्याय की मुख्यता से अर्थात् जो पदार्थ जैसा है उसको उसी रूप कहना भाव निक्षेप है।

जैसे—काष्ठ को काष्ठ अवस्था मे काष्ठ, आग होने पर आग और कोयला होने पर कोयला कहना।

प्रश्न १२–एक ही उदाहरण से चार निक्षेप घटाइये।

उत्तर–एक जिन शब्द है यह चारों निक्षेपो मे प्रयुक्त देखा जाता है यथा—

णामजिणा जिणणामा, ठवण जिणा पुण जिणंदपडिमाओ।
दव्वजिणा जिणजीवा, भावजिणा समवसरणत्था।।

जिनेन्द्र के गुण की अपेक्षा न करके किसी का नाम "जिन" रखना नाम निक्षेप जिन है, जिन प्रतिमा स्थापना निक्षेप मे जिन है, भव्यात्मा शक्ति अपेक्षा जिन होने से द्रव्य निक्षेप से जिन हैं तथा साक्षात् समवसरण मे स्थित भगवान ही वास्तव मे भाव निक्षेप से जिन हैं।

प्रश्न १३–निक्षेप विधि का जैन परम्परा मे क्या महत्त्व है ?

उत्तर–निक्षेप विधि के द्वारा अप्रकृत अर्थ का निराकरण होकर प्रकृत अर्थ का ग्रहण हो जाता है जिससे व्यवहार मे किसी प्रकार की गड़बड़ी नहीं होती। इससे वक्ता और श्रोता दोनो एक दूसरे के भाव/आशय को भली प्रकार समझ सकते हैं। जैन ग्रन्थो का हार्द समझने के लिये वक्ता का निक्षेप विधि का ज्ञान अति आवश्यक है। जैन परम्परा मे निक्षेप विधि एक थर्मामीटर है नाम-स्थापना-द्रव्य और भाव से वस्तु तत्त्व का ज्ञान कराने मे पूर्ण समर्थ है।

प्रश्न १४–नाम निक्षेप का उपयोग क्या है ?

उत्तर–नाम निक्षेप का उपयोग किसी वस्तु का विवरण करने व सम्बोधन के लिये आवश्यक है। ससार का कोई कार्य नाम निक्षेप के बिना नही होता है अर्थात् प्रत्येक वस्तु नाम निक्षेप युक्त ही है जिस वस्तु का नाम निक्षेप नही उसका कोई उपयोग भी नही है।

प्रश्न १५–स्थापना निक्षेप का उपयोग क्या है ?

उत्तर–(१) अपरिचित से परिचित का ज्ञान कराना, (२) परिचित से परिचय और परिचित से स्मृति का व्यवहार यह स्थापना निक्षेप का उपयोग है।

प्रश्न १६–कौन मत मिथ्यादृष्टि ह ?

उत्तर–जो स्थापना निक्षेप को नही मानते है वे सब मिथ्यादृष्टि हैं।

प्रश्न १७–द्रव्य निक्षेप का उपयोग बताइये ?

उत्तर–आधार-आधेय सबंध व निमित्त की उपयोगिता बताना द्रव्य निक्षेप का कार्य है।

यथा—१. जिनवाणी यद्यपि जड़ है फिर भी उसे चेतन कहना द्रव्यनिक्षेप से युक्त ही है कारण कि जिनवाणी तीर्थंकर के मुख से निकसी है यहाँ आधार चेतन होने से आधेय को भी चेतन कहा है।

२ भगवान आदिनाथ या महावीर का आज गर्भ-जन्म-तप-ज्ञान-मोक्ष कल्याणक है ऐसा कहना द्रव्य निक्षेप अपेक्षा सत्य है।

प्रश्न १८–आज पौषवदी एकादशी को पार्श्वनाथ का जन्म कल्याणक है ऐसा मानना किस निक्षेप अपेक्षा सत्य है तथा क्यो ?

उत्तर–द्रव्य निक्षेप अपेक्षा सत्य है क्योंकि जो भूतकाल मे था या भावी काल मे होगा वर्तमान पर्याय मे उस पर्याय से अयुक्त है वह द्रव्य निक्षेप का विषय है।

प्रश्न १९–भगवान महावीर की माँ त्रिशला यह कौन से निक्षेप का विषय है?

उत्तर–द्रव्य निक्षेप का विषय है।

प्रश्न २०–द्रव्य निक्षेप और भाव निक्षेप मे क्या अन्तर है ?

उत्तर–१ द्रव्य निक्षेप भूत और भावी पर्याय को विषय करता है वर्तमान मे उस पर्याय से रहित होता है तथा भाव निक्षेप मात्र वर्तमान पर्याय को विषय करता है।

२ सयोग सबध द्रव्य निक्षेप का विषय है तथा भाव निक्षेप तादात्म्य सबंध का विषय है।

प्रश्न २१–पद्मावती आदि यक्ष-यक्षिणियो की मूर्तियाँ स्थापना मगल है क्या ? उसे विराजमान कर सकते हैं क्या ?

उत्तर–यद्यपि पद्मावती आदि मगल नही है फिर भी तीर्थंकर का परिकर होने से द्रव्यनिक्षेप रूप से मगल होने से स्थापना निक्षेप मे द्रव्य निक्षेप का सद्भाव कर यक्ष-यक्षिणियो की मूर्तियो की स्थापना की जा सकती है।

प्रश्न २२–सम्यक्दर्शन आदि तथा जीवादिक तत्त्वो के जानने के उपाय।

उत्तर– **प्रमाणनयैरधिगमः ॥ ६ ॥**

सूत्रार्थ–सम्यग्दर्शन आदि रत्नत्रय और जीवादि तत्त्वो (अधिगम) ज्ञान (प्रमाणनयैः) प्रमाण और नयो से [भवति] होता है।

प्रश्न १–प्रमाण किसे कहते हैं ?

उत्तर–१. जो पदार्थ के सर्वदेश को ग्रहण करे उसे प्रमाण कहते हैं।

२ सकलादेश प्रमाण विषय है। [सकलादेश प्रमाणाधीन]

प्रश्न २–प्रमाण के कितने भेद हैं ?

उत्तर–प्रमाण के दो भेद हैं—१ प्रत्यक्ष प्रमाण २. परोक्ष प्रमाण।

प्रश्न ३–प्रत्यक्ष प्रमाण किसे कहते है उसके कितने भेद है ?

उत्तर—आत्मा जिस ज्ञान के द्वारा किसी बाह्य निमित्त की सहायता के बिना ही पदार्थों को स्पष्ट जाने उसे प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं। इसके दो भेद है—१ विकल प्रत्यक्ष २ सकल प्रत्यक्ष। अवधिज्ञान व मन पर्ययज्ञान विकल प्रत्यक्ष है और केवलज्ञान सकल प्रत्यक्ष है।

प्रश्न ४–परोक्ष प्रमाण किसे कहते हैं ?

उत्तर–जो इन्द्रिय तथा प्रकाश आदि की सहायता से पदार्थों को एक देश जाने उसे परोक्ष प्रमाण कहते हैं। इसके दो भेद है—मतिज्ञान और श्रुतज्ञान।

प्रश्न ५–नय किसे कहते है ? इसके कितने भेद हैं ?

उत्तर– १ जो पदार्थ के एकदेश को विषय करे—जाने उसे नय कहते है।

२ विकलादेश नयाधीन —वस्तु का एक देश कथन करने वाला नय कहलाता है।

३ ज्ञाता के अभिप्राय को नय कहते है [ज्ञातुरभिप्रायो वा नय]

प्रश्न ६–नय के कितने भेद हैं ?

उत्तर–नय के दो भेद है—(१) द्रव्यार्थिक (२) पर्यायार्थिक।

प्रश्न ७–द्रव्यार्थिक नय की परिभाषा बताइये ?

उत्तर–द्रव्य जिसका प्रयोजन है वह द्रव्यार्थिक नय है। द्रव्य का अर्थ सामान्य, उत्सर्ग और अनुवृत्ति है इसको विषय करने वाला द्रव्यार्थिक नय है।

प्रश्न ८–द्रव्य किसे कहते है ?

उत्तर–जो उन पर्यायो को प्राप्त होता है, प्राप्त होगा अथवा प्राप्त हुआ था वह द्रव्य है। द्रव्य ही जिसका प्रयोजन है वह द्रव्यार्थिक है।

प्रश्न ९–पर्यायार्थिक नय किसे कहते हैं ?

उत्तर– १ पर्याय ही जिस नय का प्रयोजन है वह पर्यायार्थिक नय है। पर्याय का अर्थ विशेष, अपवाद और व्यावृत है, इसको विषय करने वाला पर्यायार्थिक नय है।

२ "परि" जो कालकृत भेद को प्राप्त होता है उसे पर्याय कहते है। वह पर्याय जिसका प्रयोजन है वह पर्यायार्थिक नय है।

प्रश्न १०–प्रमाण से नय मे अक्षर कम है अत. सूत्र मे पहले नय फिर प्रमाण कहना चाहिये ?

उत्तर–नय मे अल्प अक्षर होने पर भी प्रमाण श्रेष्ठ व पूज्य होने से सूत्र मे पहले प्रमाण को कहा है।

प्रश्न११—प्रमाण श्रेष्ठ व पूज्य क्यो है ?

उत्तर—प्रमाण की श्रेष्ठता या पूज्यता दो करणा म है—प्रथम तो प्रमाण से ही नय की उत्पत्ति हुई ह अत प्रमाण श्रेष्ठ है। दूसरी बात प्रमाण समग्र वस्तु को विषय करता है अत श्रेष्ठ है।

प्रश्न१२—चार निक्षेप कोन से नय के विषय है तथा य प्रमाण क भी विषय ह क्या ?

उत्तर—पर्यायार्थिक नय का विषय भाव निक्षेप है और नाम स्थापना द्रव्य इन तीनो निक्षपो को विषय करने वाला द्रव्यार्थिक नय है क्योकि द्रव्यार्थिक नय सामान्य रूप है। तथा द्रव्य और पर्याय अथवा चारो निक्षेप मिलकर प्रमाण के विषय भी है।

प्रश्न१३—यह सूत्र प्रमाण नयेरधिगम किन शिष्यो को लक्ष्य कर लिखा गया है ?

उत्तर—सक्षेपरुचि शिष्या को लक्ष्यकर यह लिखा गया है।

प्रश्न१४—नय और प्रमाण क द्वारा जाने गये जीवादि पदार्थो के जानने के और भी उपाय है क्या ?

उत्तर—जी हॉ। और भी उपाय है उसे ही आचार्यश्री आगे के सूत्र मे कहते ह—

निर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधानतः ।।७।।

सूत्रार्थ—निर्देश स्वामित्व, साधन, अधिकरण स्थिति और विधान से सम्यग्दर्शन क विषया का तथा जीवादि तत्त्वा का ज्ञान होता ह।

प्रश्न१—निर्देश किस कहते है ?

उत्तर—वस्तु के स्वरूप का कथन करना सो निर्देश ह।

प्रश्न२—स्वामित्व किसे कहते ह ?

उत्तर—वस्तु के अधिकार को स्वामित्व कहते है।

प्रश्न३—साधन का लक्षण बताइये ?

उत्तर—वस्तु की उत्पत्ति के कारण को साधन कहत ह।

प्रश्न४—अधिकरण किसे कहते ह ?

उत्तर—वस्तु क आधार को अधिकरण कहते ह।

प्रश्न५—स्थिति का लक्षण बताइय ?

उत्तर—वस्तु क काल की अवधि का स्थिति कहत ह।

प्रश्न६—विधान का लक्षण बताइय ?

उत्तर—वस्तु के भदा का विधान कहत ह।

प्रश्न७—एक उदाहरण द्वारा छह अनुयोगा को स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर—१ वस्तु कान सी है ?—निर्देश २ इसका स्वामी कान है ?—स्वामित्व ३ कस बनी ह ?—साधन ४ कहाँ रहती है ?—अधिकरण। ५ कितन काल से है ?—काल/स्थिति ६ इसके भेद कितने है ?—विधान। इस प्रकार एक सम्यग्दर्शन भी का छह अनुयाग द्वारा स जाना जा सकता ह—

सम्यग्दर्शन क्या है ? जीवादि तत्त्वो का यथार्थ श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है । **-निर्देश**

सम्यग्दर्शन का स्वामी कौन है ? सज्ञी, पञ्चेन्द्रिय, पर्याप्तक, भव्य जीव सम्यर्ग्दशन का स्वामी है । **-स्वामित्व**

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का साधन क्या है ? सम्यग्दर्शन प्राप्ति के साधन दो प्रकार के है एक अन्तरग दूसरा बाह्य ।

दर्शनमोह का उपशम, क्षय, क्षयोपशम ये अन्तरग कारण है जो सभी जीवो के समान होते हैं । बाह्य साधन नरकादि चारो गतियो मे अनेक प्रकार के है जैसे— जाति स्मरण, धर्म श्रवण, जिनदर्शन आदि । **-साधन**

सम्यग्दर्शन का अधिकरण क्या है ? अधिकरण के भी बाह्य अभ्यन्तर दो भेद है । सम्यग्दर्शन का अभ्यन्तर अधिकरण आत्मा है । और बाह्य अधिकरण एक रज्जु चौड़ी, और चौदह रज्जु लम्बी त्रसनाड़ी है । **-अधिकरण**

सम्यग्दर्शन की स्थिति क्या है ? तीनो सम्यग्दर्शन की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त है तथा औपशमिक सम्यक्त्व की उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त है । क्षायोपशमिक की उत्कृष्ट स्थिति ६६ सागर और क्षायिक की ससार मे रहने की उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागर अन्तर्मुहूर्त सहित आठ वर्ष कम दो कोटि वर्ष पूर्व की है । **-स्थिति**

समयग्दर्शन का विधान क्या है ? सम्यग्दर्शन के औपशमिक, क्षायोपशमिक आर क्षायिक के भेद से तीन प्रकार का है । **-विधान**

इसी प्रकार सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र तथा जीवादि तत्त्वो का भी ज्ञान छह अनुयोगो द्वारा किया जा सकता है ।

प्रश्न ८–नरकगति मे सम्यक्त्व की उत्पत्ति के बाह्य कारणो को बताइये ?

उत्तर–नरकगति मे तीसरे नरक तक "जातिस्मरण" धर्मश्रवण और दु खानुभव या वेदनानुभव ये तीन साधन है तथा चौथे मे सातवे नरक तक जातिस्मरण और दु खानुभव ये दो साधन है ।

प्रश्न ९–तिर्यञ्चगति मे सम्यक्त्व की उत्पति के बाह्य कारणो को बताइये ?

उत्तर–तिर्यञ्चगति मे जातिस्मरण, धर्मश्रवण और जिनबिम्ब दर्शन ये तीन साधन है ।

प्रश्न १०–मनुष्यगति मे सम्यक्त्व उत्पत्ति के बाह्य साधन कौन से है ?

उत्तर–मनुष्यगति मे भी जातिस्मरण, धर्मश्रवण और जिनबिम्ब दर्शन ये साधन है ।

प्रश्न ११–देवगति मे सम्यक्त्व उत्पत्ति के साधन बताइये ?

उत्तर–देवगति मे बारहवे स्वर्ग के पहले जातिस्मरण, धर्मश्रवण, जिनकल्याण,

दर्शन और देवर्द्धिदर्शन ये चार कारण हैं । उसके आगे सोलहवे स्वर्ग तक देवर्द्धिदर्शन को छोड़कर तीन तथा नव ग्रैवेयको मे "जातिस्मरण" और धर्मश्रवण ये दो साधन है । इसके आगे सम्यग्दृष्टि जीव ही उत्पन्न होते है ।

प्रश्न १२–चारो गतियो मे तीनो सम्यक्त्व की उत्पत्ति हो सकती है क्या ?

उत्तर–चारो गतियो मे उपशम व क्षयोपशम सम्यक्त्व की उत्पत्ति हो सकती है परन्तु क्षायिक सम्यक्त्व का प्रस्थापक कर्मभूमि का मनुष्य ही होता है अर्थात् क्षायिक सम्यक्दर्शन का प्रारभ या उत्पत्ति केवली–श्रुतकेवली के पादमूल मे कर्मभूमियाँ मनुष्य के ही होती है हाँ क्षायिक सम्यग्दर्शन का प्रस्थापक जीव बीच मे ही आयु क्षय होने पर यदि मरण करे तो ऐसा जीव कृतकृत्यवेदक या क्षायिक सम्यग्दृष्टि होकर चारो गतियो मे जन्म ले सकता है ।

प्रश्न १३–सम्यग्दृष्टि जीव कौन से नरक तक जाता है ?

उत्तर–क्षायिक सम्यक्त्व का प्रस्थापक या क्षायिक सम्यक्त्व लेकर वा अन्य किसी सम्यक्त्व को लेकर जीव यदि पूर्व मे आयु बध किया है तो प्रथम नरक तक ही जाता है नीचे दूसरे आदि नरको मे वह नही जाता है ।

प्रश्न १४–सम्यक्दृष्टि जीव मरकर कहाँ-कहाँ पैदा होते है कहाँ-कहाँ नही होते है ?

उत्तर–१ सम्यग्दृष्टि जीव यदि पूर्व मे आयु बध नही किया है तो नियम से वैमानिक देवो मे उत्पन्न होता है ।

२ मनुष्य-तिर्यञ्च आयु का बध पहले किया हो तो भोगभूमि का ही पुरुषवेदी मनुष्य या तिर्यञ्च होगा क्योकि सम्यग्दृष्टि जीव कभी भी स्त्रीवेदी, भवनत्रिक, दुष्कुल, अल्पायु, नपुसकवेदी, स्थावर व विकलत्रय मे उत्पन्न नही होता है । कहा भी है ।

प्रथम नरक बिन षड भू ज्योतिष, वान भवन षँड नारी ।
थावर विकलत्रय पशुमे नहि, उपजत सम्यक् धारी ॥—छ०/३

३ क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव मरकर देव और मनुष्यगति मे ही जन्म लेते है नरक और तिर्यञ्चगति मे नही । ऐसे जीव यदि तिर्यञ्चगति और मनुष्यगति के होते है तो वे देवो मे उत्पन्न होते है । यदि नरक व देवगति के होते है तो वे मनुष्यो मे ही उत्पन्न होते है ।

४ सम्यग्दृष्टि जीव नपुसक वेदियो मे उत्पन्न होता हुआ भी प्रथम नरक के नपुसकवेदियो मे ही उत्पन्न होता है मनुष्य व तिर्यञ्चगति के नपुसकवेदियो मे नही ।

प्रश्न १५–क्षायिक सम्यक्त्व की स्थिति (उत्कृष्ट) आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्त कम दो पूर्व कोटि वर्ष अधिक तेतीस सागर कहाँ वह कैसे घटित होता है ?

उत्तर–क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव उसी भव मे, तीसरे भव मे या चौथे भव मे मोक्ष

जाता है चौथे भव का उल्लघन नही करता है। जो चौथे भव मे मोक्ष जाता है वह पहले भोगभूमि मे उसके बाद देव पर्याय मे जन्म लेकर और अन्त मे मनुष्य होकर मोक्ष जाता है। जो तीसरे भव मे मोक्ष जाता है वह पहले नरक मे या देव पर्याय मे जन्म लेकर अन्त मे मनुष्य होकर मोक्ष जाता है। यहाँ तीन और चार भवो मे क्षायिक सम्यग्दर्शन के उत्पन्न होने के भव को भी ग्रहण कर लिया है। ससारी जीव के क्षायिक सम्यग्दर्शन की यह उत्कृष्ट स्थिति तीन भव की अपेक्षा बतलायी है। प्रथम और अन्त के दो भव मनुष्य पर्याय के लिये गये है और दूसरा भव देव पर्याय का लिया है। इस प्रकार क्षायिक सम्यग्दर्शन की उत्कृष्ट स्थिति आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्त कम दो पूर्व कोटि वर्ष अधिक तेतीस सागर घटित होती है। [स०सि०]

प्रश्न १६—क्षायिक सम्यक्त्व की उत्कृष्ट स्थिति मे आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्त कम क्यो किया है ?

उत्तर—क्षायिक सम्यग्दर्शन केवली-श्रुतकेवली के पादमूल मे कर्मभूमिया मनुष्य को ही होता है। वहाँ भी क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्त के पहले हो नही सकती इसीलिये इतना समय कम कर दिया है।

प्रश्न १७—क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन की उत्कृष्ट स्थिति ६६ सागर किस प्रकार घटित होती है ?

उत्तर—कोई एक जीव उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त होकर शेष भुज्यमान आयु से कम बीस सागर की आयु वाले देवो मे उत्पन्न हुआ। फिर मनुष्यगति मे जाकर भुज्यमान मनुष्यायु से कम बाईस सागर की आयु वाले देवो मे उत्पन्न हुआ फिर मनुष्यगति मे जाकर भुज्यमान मनुष्यायु मे तथा दर्शनमोह की क्षपणा पर्यन्त आगे भोगी जाने वाली मनुष्यायु से कम चोबीस सागर की आयु वाले देवो मे उत्पन्न हुआ। वहाँ से फिर मनुष्यगति मे आकर वहाँ वेदक सम्यक्त्व के काल मे अन्तर्मुहूर्त रह जाने पर दर्शनमोह की क्षपणा का प्रारभ करके कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि हो गया। यह जीव जब कृतकृत्य वेदक के अन्तिम समय मे स्थित होता है तब क्षायोपशमिक सम्यक्त्व का उत्कृष्टकाल छ्यासठ सागर प्राप्त होता है। [स०सि० टिप्पण, पृ० २०]

प्रश्न १८—इस सूत्र की रचना किन शिष्यो को लक्ष्य मे रखकर हुई ?

उत्तर—मध्यमरुचि शिष्यो को लक्ष्यकर इस सूत्र की रचना हुई है ऐसा जानना चाहिये।

प्रश्न १९—सम्यग्दर्शन आदि तथा जीवादि तत्त्वो के जानने के और भी अनुयोग द्वार बताइये ?

उत्तर— **सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालान्तरभावाल्पबहुत्वैश्च ॥८॥**

सूत्रार्थ—(च) और (सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालान्तरभावाल्पबहुत्वैः) सत् सख्या, क्षेत्र स्पर्शन काल अन्तर भाव और अल्पबहुत्व इन आठ अनुयोगो के द्वारा भी पदार्थो का ज्ञान [भवति] होता है।

प्रश्न १—सत् सख्या आदि के लक्षण बताइये ?

सत् —वस्तु के अस्तित्व को सत् कहते है।

संख्या –वस्तु के परिमाण की गिनती का सख्या कहते है। अथवा सख्या से भेदो की गणना ली है।

क्षेत्र –वस्तु के वर्तमान काल के निवास को क्षेत्र कहते है।

स्पर्श –वस्तु के तीनो काल सम्बन्धी निवास को स्पर्शन कहते है।

काल –वस्तु के ठहरने की मर्यादा को काल कहते है।

अन्तर –वस्तु के विरहकाल को अन्तर कहते है।

भाव –औपशमिक आदि परिणामो को भाव कहते है।

अल्पबहुत्व–अन्य पदार्थ की अपेक्षा किसी वस्तु की हीनाधिकता का वर्णन करने को अल्पबहुत्व कहते है। यथा—ग्राहक दुकानदार से—कपडा है ?–हॉ—सत्। कितना है ?–सख्या। कहॉ रखा है ?–क्षेत्र। आप कहॉ से लाते हो और आपका माल/कपडा कहॉ-कहॉ जाता है ?—स्पर्शन। कितने समय तक चलेगा ? काल। पहले भी ले गये थे अब एक वर्ष बाद लेने आये है—अन्तर। कितना मूल्य है—भाव—पहले वाले से ये कीमत अधिक का है–अथवा पूर्व मे ज्यादा लिया था अब कम चाहिये—अल्पबहुत्व। इसी प्रकार सातो तत्त्वों व रत्नत्रय मे भी लगाना चाहिये ?

प्रश्न २–निर्देश स्वामित्व मूत्र ७ से ही सत् आदि का ग्रहण हो जाता है अर्थात् निर्देश से ही सत् का, विधान से सख्या का, अधिकरण के ग्रहण से क्षेत्र और स्पर्शन का तथा स्थिति स काल का ग्रहण हो जाता है भाव का ग्रहण हो जाता है फिर सूत्र ८ लिखने की क्या आवश्यकता रही ?

उत्तर–शिष्य तीन प्रकार के होते है—१ सक्षेप रुचि वाले २ विस्तार रुचि वाले और ३ अतिसक्षेप रुचि वाले। सक्षेप रुचिवाले के लिये सूत्र ७ हैं [निर्देश विधानत] विस्तार रुचि वाले शिष्य को दृष्टि म रखकर सूत्र ८ [सत्सख्या च] तथा अतिसक्षेप रुचि वाले शिष्य के लिये तो प्रमाणनयैरधिगम इतना कथन ही पर्याप्त है। आचार्यो की दृष्टि प्राणी मात्र के लिये उपकारक होती है। शिष्यो के अभिप्रायानुसार आचार्यो की देशना मे विविधता पाई जाती है।

प्रश्न ३–जीवद्रव्य मे सत् आदि अनुयोगद्वारो का सामान्य कथन कीजिये ?

उत्तर–जीव चौदह गुणस्थानो मे पाये जाते है।

प्रश्न ४–१४ गुणस्थानो के नाम बताइये ?

उत्तर–१ मिथ्यात्व २ सासादन ३ मिश्र ४ अविरत ५ देशसयत ६ प्रमत्तसयत ७ अप्रमत्तसयत ८ अपूर्वकरण ९ अनिवृत्तिकरण १० सूक्ष्मसाम्पराय ११ उपशान्तमोह १२ क्षीणमोह १३ सयोगकेवली और १४ अयोगकेवली।

प्रश्न ५–जीव द्रव्य मे सत् प्ररूपणा का सामान्य प्ररूपण कीजिये ?

उत्तर–जीव प्रथम गुणस्थान से चौदह ही गुणस्थानो म पाये जाते है

प्रश्न ६–जीव द्रव्य मे सख्या प्ररूपणा सामान्य का कथन करिये ?

उत्तर–सामान्य से मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तानन्त सख्या वाले है। द्वितीय तृतीय

चतुर्थ, पञ्चम गुणस्थान मे जीव पल्य के असख्यातवे भाग है । यह इस प्रकार है— सासादन सम्यग्दृष्टि बावन करोड़ ५२,००००००० , तृतीय मिश्र गुणस्थान मे एक सौ चार करोड़ १०४,००००००० , चतुर्थ गुणस्थान मे सात सौ करोड़ ७००,००००००० और पञ्चम गुणस्थान मे तेरह करोड़ १३,००००००० सख्या है । प्रमत्त सयत कोटि पृथक्त्व प्रमाण है । पृथक्त्व प्रमाण कितने ? प्रमत्त गुणस्थानवर्ती जीवो की सख्या पाँच करोड़ तिरानवे लाख अट्ठानवे हजार दो सौ छह [५,९३,९८,२०६] प्रमाण है । अप्रमत्त सयत जीव सख्यात है ।

प्रश्न ७–अप्रमत्त जीव सख्यात भी कितने है ?

उत्तर–दो करोड छ्यानवे लाख निन्यानवे हजार एक सौ तीन [२,९६,९९,१०३] अप्रमत्त सयत गुणस्थानवर्ती है अर्थात् प्रमत्त गुणस्थान से आधी इनकी सख्या है । ४ उपशमक श्रेणी वालो मे अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय, उपशान्तमोह प्रत्येक की सख्या २९९ है । इस प्रकार इनकी कुल सख्या ११९६ है । चारो क्षपक श्रेणी पर आरूढ होने वाले अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय और क्षीणमोह इनकी प्रत्येक की सख्या ५९८-५९८ है । इस प्रकार क्षीण कषायो की अथवा क्षपक श्रेणी वालो की सख्या २३९२ प्रमाण है ।

सयोगीकेवली परमात्मा की सख्या आठ लाख अठानवे हजार पॉच सौ दो है (८९८५०२) ।

अयोगी केवली परमात्माओ की सख्या पॉच सौ अट्ठानवे [५९८] प्रमाण है ।

प्रश्न ८–सर्वसयमी जीवो की सख्या बताइये ?

उत्तर–	षष्ठम गुणस्थानवर्ती	५,९३,९८,२०६	[प्रमत्त सयमी]
	सप्तम गुणस्थानवर्ती	२,९६,९९,१०३	[अप्रमत्त सयमी]
	उपशमश्रेणी मे	१,१९६	[८-९-१०-११ गु०]
	क्षपकश्रेणी मे	२,३९२	[८-९-१०-१२ गु०]
	सयोगकेवली	८,९८,५०२	
	अयोगकेवली	५९८	
	कुल सख्या	८,९९,९९,९९७ =	तीन कम नौ करोड़ सर्व सयमी ।

प्रश्न ९–क्या इतने तीन कम नौ करोड़ सयमी हमेशा रहते है ?

उत्तर–नही, यह सख्या अधिक से अधिक सयमियो की है । कदाचित् अधिक से अधिक सयमी किसी काल मे हो तो इतने ही होंगे इससे अधिक कभी नही होते।

प्रश्न १०–क्षेत्र अपेक्षा जीव का सामान्य क्षेत्र बताइये ।

उत्तर– १ सामान्य से मिथ्यादृष्टियो का क्षेत्र सर्वलोक है ।

२ सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असयतसम्यग्दृष्टि, देशसयत, प्रमत्त, अप्रमत्त, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय, उपशान्तकषाय और अयोगकेवली का क्षेत्र लोक के असख्यातवे भाग प्रमाण है ।

३ सयोग केवली का क्षेत्र लोक के असख्यातवे भाग, लोक के असख्यात बहुभाग प्रमाण और सर्वलोक है । अर्थात् समुद्घातरहित का लोक का असख्यातवा भाग, दण्ड, कपाट, प्रतरसमुद्घात मे लोक के असंख्यातवें भाग का बहुभाग और लोकपूरण अवस्था मे सर्वलोक क्षेत्र है ।

प्रश्न ११–जीव का सामान्य रूप से स्पर्श बताइये ?

उत्तर– १ सामान्य से मिथ्यादृष्टियो के द्वारा सर्वलोक स्पृष्ट है ।

२ स्वस्थान विहार की अपेक्षा सासादनसम्यग्दृष्टियो के द्वारा लोक का असख्यातवा भाग स्पर्श किया जाता है ।

३ परस्थान विहार की अपेक्षा सासादन देवो द्वारा तृतीय नरक पर्यन्त विहार होने से दो राजू क्षेत्र स्पृष्ट है । अच्युत स्वर्ग के उपरिम भाग पर्यन्त विहार होने से ६ राजू क्षेत्र स्पृष्ट है । इस प्रकार लोक के ८, १२ या कुछ कम १४ भाग स्पृष्ट है ।

४ सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असयतसम्यग्मिथ्यादृष्टियो के द्वारा लोक का असख्यातवा भाग, लोक के आठ भाग अथवा कुछ कम १४ भाग स्पृष्ट है ।

५ सयतासयतो के द्वारा लोक का असख्यातवाँ भाग, छह भाग अथवा कुछ कम चौदह भाग स्पृष्ट है ।

६ प्रमत्तसयत, अप्रमत्त, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय, उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय और अयोगकेवली जीवो का स्पर्शन लोक के असंख्यातवे भाग प्रमाण है ।

७ सयोगकेवली जिनो का स्पर्श लोक के असख्यातवे भाग, लोक के असख्यात बहुभाग प्रमाण और सर्वलोक है ।

प्रश्न १२–लोक किसे कहते हैं ?

उत्तर–असंख्यात करोड़ योजन प्रमाण आकाश के प्रदेशो को एक राजू कहते हैं और तीन सौ तैंतालिस समचतुरस्र राजू प्रमाण लोक होता है ।

प्रश्न १३–जीवो के द्वारा लोक का स्पर्श कैसे किया जाता है ?

उत्तर–लोक मे स्वस्थानविहार, परस्थान विहार, मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद युक्त प्राणियो के द्वारा स्पर्श किया जाता है ।

प्रश्न १४–सामान्य से जीव का काल बताइये ?

उत्तर-१ सामान्य से नाना जीवो की अपेक्षा मिथ्यादृष्टियो का सर्वकाल है। एक जीव की अपेक्षा काल के तीन भेद हैं । किसी जीव का काल अनादि-अनन्त है, किसी का अनादि और सान्त है तथा किसी का सादि और सान्त है ।

२ सादि और सान्त काल जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अर्द्धपुद्गलपरिवर्तन काल से कुछ कम है ।

३ सासादनसम्यग्दृष्टियो मे सब जीवो की अपेक्षा जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्य के असख्यातवे भाग है । एक जीव की अपेक्षा जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल छ· आवली है ।

४ सम्यग्मिथ्यादृष्टि मे नाना जीवो की अपेक्षा जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल पल्यके असख्यातवे भाग है । एक जीव की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त ही है । अर्थात् एक जीव की अपेक्षा सम्यग्मिथ्यादृष्टि का काल जघन्य से जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । इससे अधिक काल तक जीव इस गुणस्थान मे नही ठहरता ।

५ असयतसम्यग्दृष्टियो के नाना जीवो की अपेक्षा सर्वकाल है । एक जीव की अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ अधिक तैतीस सागर है । कुछ अधिक तैतीस सागर क्यो ? कोई पूर्वकोटि आयु वाला मनुष्य आठ वर्ष और अन्तर्मुहूर्त के बाद सम्यक्त्व को प्राप्त कर विशेष तप के द्वारा सर्वार्थसिद्धि मे उत्पन्न हो सकता है । वही जीव सर्वार्थसिद्धि से मनुष्य भव मे आकर आठ वर्ष बाद सयम ग्रहण करके मोक्ष प्राप्त कर लेता है । इस प्रकार कुछ अधिक तैतीस सागर काल होता है ।

६ देशसयत के नाना जीवो की अपेक्षा सर्वकाल है । एक जीव की अपेक्षा जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल कुछ कम एक पूर्वकोटि है ।

७ प्रमत्त और अप्रमत्त सयमी जीवो मे नाना जीवो की अपेक्षा सर्वकाल है । एक जीव की अपेक्षा जघन्यकाल एक समय है । एक समय क्यो व कैसे ? क्योकि सभी जीव परिणामो की विशेषतावश सर्वप्रथम अप्रमत्तगुणस्थान को ही प्राप्त करते है। पश्चात् प्रमतगुणस्थान मे आते है । अत कोई प्रमत्तगुणस्थानवर्ती जीव अपनी आयु का एक समय शेष रहने पर अप्रमत्तगुणस्थान को प्राप्त कर मरण करता है । इसी प्रकार अप्रमत्तगुणस्थानवर्ती जीव अपनी आयु का एक समय शेष रहने पर प्रमत्तगुणस्थान को प्राप्त कर मृत्यु को प्राप्त होता है । इस प्रकार दोनो गुणस्थानो मे एक जीव का जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

चारो उपशमको के नाना और एक जीव की अपेक्षा जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । क्योकि चारो उपशमक एक साथ ५४ हो सकते है

और यह सभव है कि उपशमक श्रेणी मे प्रवेश करते ही सबका एक साथ मरण हो जाय । इसलिये नाना और एक जीव की अपेक्षा जघन्य से एक समय काल बन सकता है ।

चारो क्षपक और अयोगकेवली का जघन्य और उत्कृष्टकाल एक जीव और नाना जीवो की अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त है । क्योकि चारो क्षपक व अयोगकेवली (गु० ८, ९, १०, १२, १४) नियम से मोक्ष जाते है । अत इनका बीच मे मरण नही हो सकता है ।

सयोगकेवली का नाना जीवो की अपेक्षा सर्वकाल है । एक जीव की अपेक्षा जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है, क्योकि सयोगकेवली गुणस्थानवर्ती अन्तर्मुहूर्त के बाद अयोगकेवली गुणस्थान प्राप्त कर सकता है । तथा उत्कृष्टकाल कुछ कम एक पूर्वकोटि है । क्योकि कोई एक पूर्व कोटि की आयु वाले जीव आठ वर्ष के बाद म तप को ग्रहण करके केवलज्ञान को प्राप्त कर सकता है । अत आठ वर्ष कम हो जाने म कुछ कम पूर्वकोटि काल होता है ।

प्रश्न १५–अन्तर किसे कहते हैं ?

उत्तर–जब विवक्षित गुण–गुणान्तर से सक्रमित हो जाता है और पुन· उसकी प्राप्ति होती है तो मध्य के काल को अन्तर कहते है । वह सामान्य और विशेष दो प्रकार का है ।

प्रश्न १६–अन्तर अनुयोग का सामान्य कथन कीजिये ?

उत्तर–१ सामान्य से मिथ्यादृष्टि का नाना जीवो की अपेक्षा अन्तर नही है। एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक सौ बत्तीस सागर ।

२ सासादन सम्यग्दृष्टि का नाना जीवो की अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्य का असख्यातवा भाग है । एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर पल्य का असख्यातवा भाग और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्द्धपुद्गलपरिवर्तन है ।

३ सम्यग्मिथ्यादृष्टि का नाना जीवो की अपेक्षा अन्तर सासादनसम्यग्दृष्टियो के समान है । एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तन है ।

४ असयतसम्यग्दृष्टि से लेकर अप्रमत्तसयत का प्रत्येक का नानाजीवो की अपेक्षा अन्तर नही है ।

५ एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्द्धपुद्गलपरिवर्तन है ।

६ चारो उपशमको का नाना जीवो की अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय और

उत्कृष्ट अन्तर वर्ष पृथक्त्व है।

७ अयोगकेवलियो का नाना जीवो की अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है। एक जीव की अपेक्षा अन्तर नही है।

८ सयोगकेवलियो का नाना जीवो की अपेक्षा अन्तर नही है।

प्रश्न १७—पृथक्त्व किसे कहते है ?

उत्तर—आगम म तीन स ऊपर और नो से नीचे की सख्या को पृथक्त्व कहा गया है।

प्रश्न १८—भाव का सामान्य प्ररूपण कीजिये ?

उत्तर—मिथ्यात्व गुणस्थान म औदयिकभाव, सासादनगुणस्थान मे पारिणामिकभाव, मिश्रगुणस्थान व असयतगुणस्थान मे औपशमिक क्षायिक व क्षायोपशमिक तीन भाव है किन्तु असयतपना औदयिकभाव की अपेक्षा है। सयतासयत प्रमत्तसयत और अप्रमत्तसयत यह क्षायोपशमिक भाव है। चारो उपशमको के औपशमिक भाव है। चारो क्षपक सयोगकेवली और अयोगकेवली के क्षायिक भाव है।

प्रश्न १९—अल्पबहुत्व का सामान्य प्ररूपण कीजिये ?

उत्तर—सामान्य की अपेक्षा तीनो उपशामक सबसे थोड़े है। तीन क्षपक गुणस्थानवर्ती जीव उपशमको मे सख्यातगुने हैं। इनमे सूक्ष्मसाम्पराय सयत विशेष अधिक है, क्षीणकषाय वीतराग उतने ही हैं। सयोगकेवली अयोगकेवली प्रवेश की अपेक्षा समान सख्या वाले हैं। इनसे अपने काल मे समुदित हुए सयोगकेवली सख्यातगुणे है। वे कितने ? ८९८५०२ है। इनमे अप्रमत्तसयत सख्यातगुने है। इनमे प्रमत्तसयत सख्यातगुने है। सयतासयतो मे अल्पबहुत्व नही है इनकी सख्या तेरह करोड है। सासादनसम्यग्दृष्टि सख्यातगुणे बावन करोड है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि सख्यातगुणे एक सो चार करोड है। असयतसम्यग्दृष्टि सख्यातगुण सात सो करोड है तथा मिथ्यादृष्टि अनन्तगुणे हैं।

प्रश्न १९अ— ३रत्नत्रय व ७ तत्त्व इन १० का कितनी बातो से जाना जाता है।

उत्तर—रत्नत्रय व ७ तत्त्वो को ४ निक्षेप, २ नय-प्रमाण ६ निर्देशादि व ८ सत् आदि=२० बातो मे जाना जाता है।

प्रश्न २०—अन्तर्मुहूर्त किसे कहते है ?

उत्तर—तीन हजार सात सौ तेहत्तर (३७७३) उच्छ्वास का एक मुहूर्त होता है। एक समय अधिक आवलि से लेकर मुहूर्त के बीच का काल अन्तर्मुहूर्त होता है। इस अन्तर्मुहूर्त के असख्यात भेद होते है।

प्रश्न २१—आवलि किसे कहते है ?

उत्तर—असख्यात समयो की एक आवली होती है। सो ही कहा है—असख्यात समयो की एक आवली होती है और सख्यात आवलियो के समूह को उच्छ्वास कहते है। सात उच्छ्वास का एक स्तोक होता है। सात स्तोक का एक लव होता है। ३८-१/२ लव की एक नाली होती है। दो नाली का एक मुहूर्त होता

है अर्थात् ३७७३ उच्छ्वासो के समूह को मुहूर्त कहते हैं। एक समय अधिक आवली से और एक समय कम मुहूर्त के समय को अन्तर्मुहूर्त कहते है। इसके असख्यात भेद है। इसका दूसरा नाम भिन्न अन्तर्मुहूर्त भी है।

प्रश्न २२–त्रस पर्याय का काल कितना है ?

उत्तर–त्रस पर्याय का उत्कृष्ट काल २००० सागर है। इसके बाद या तो निकट भव्य जीव मुक्ति मे पहुँच जाता है अथवा भव्य या अभव्य कोई भी जीव हो अनन्तकाल के लिये निगोद मे वास करने पहुँचता है। त्रस पर्याय के २००० सागर के काल मे २-३-४ इन्द्रिय रूप विकलेन्द्रिय जीवो की अवस्था मे १००० सागर और पचेन्द्रिय अवस्था मे १००० सागर व्यतीत करता है।

प्रश्न २३–श्रेणी किसे कहते हैं ?

उत्तर–चारित्रमोहनीय की २१ प्रकृतियो के उपशम या क्षय करने के लिये महान् सन्त के द्वारा की जाने वाली विशेष साधना अप्रमत्तदशा, यथाख्यातचारित्र की अवस्था (क्रमिक व्यवस्था) श्रेणी कहलाती है।

प्रश्न २४–श्रेणी के भेद कितने है ?

उत्तर–श्रेणी के दो भेद हैं—१ उपशमश्रेणी २ क्षपकश्रेणी।

प्रश्न २५–उपशमश्रेणी व क्षपकश्रेणी के लक्षण बताइये ?

उत्तर–चारित्रमोह की २१ प्रकृतियो का उपशम करने के लिये होने वाली दिगम्बर महान् मुनिराज की शुद्ध परिणति उपशम श्रेणी है तथा—चारित्रमोह की २१ प्रकृतियो के क्षय के लिये की जाने वाली दिगम्बर महामुनि की विशुद्ध परिणति ही क्षपक श्रेणी हैं।

प्रश्न २६–सम्यक् ज्ञान के भेद बताइये ?

उत्तर– **मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानम् ॥ ९ ॥**

सूत्रार्थ–(मतिश्रुतावधिमन पर्ययकेवलानि) मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान (ज्ञानम्) ये पॉच ज्ञान है।

प्रश्न १–मतिज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर–इन्द्रिय और मन के द्वारा जो यथायोग्य पदार्थ मनन किये जाते है वह मतिज्ञान है अथवा जो मनन करता है या मनन मात्र मतिज्ञान कहलाता है। अथवा जो पॉच इन्द्रिय और मन की सहायता से पदार्थो का जाने वह मतिज्ञान है। इसका दूसरा नाम आभिनिबोधिक ज्ञान भी है [ध प १]

प्रश्न २–श्रुतज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर–श्रुतज्ञानावरणकर्म के क्षयोपशम से निरूप्यमाण पदार्थ जिसके द्वारा सुना जाता है, जो सुनता है या सुनना मात्र श्रुतज्ञान कहलाता है। अथवा जो मतिज्ञान के द्वारा जाने हुए पदार्थों को विशेष रूप से जानता है वह श्रुतज्ञान है।

प्रश्न ३–अवधिज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर–जो इन्द्रियों की सहायता के बिना ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादा लेकर रूपी पदार्थों को ही जानता है उसको अवधिज्ञान कहते है। अथवा जो अधिकतर नीचे के विषय को जानने वाला होने से अवधि कहलाता है। देव अवधिज्ञान के द्वारा नीचे सप्तम नरक पर्यन्त देखते (जानते) है और ऊपर के भाग मे अपने विमान के ध्वजदड पर्यत ही जानते है अत इसका अधोभाग का विषय अधिक है।

प्रश्न ४–मन:पर्ययज्ञान का स्वरूप बताइये ?

उत्तर–जो इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना ही अन्य पुरुष के मन मे स्थित रूपी पदार्थों को स्पष्ट जाने उसे मन.पर्ययज्ञान कहते है।

प्रश्न ५–केवलज्ञान का लक्षण बताइये ?

उत्तर–जो ज्ञान सब द्रव्यो तथा उनकी त्रिकालवर्ती सब पर्यायो को युगपत् जानता है उसे केवलज्ञान कहते है।

प्रश्न ६–सूत्र मे मतिश्रुतावधिमन पर्ययकेवलानि बहुवचन के साथ ज्ञानम् एक वचन क्यो दिया गया ?

उत्तर–ज्ञान गुण है यह विशेष है अत इसको सूत्र मे एकवचन मे दिया है तथा मतिश्रुतादिज्ञान ज्ञानगुण की पर्याये है, विशेष्य हैं अत इन्हे बहुवचन मे दिया गया है।

प्रश्न ७–केवलज्ञान पूज्य और महान् है अत सबसे पहले रखना था फिर ऐसा विपरीत क्रम क्यों रखा ?

उत्तर–यद्यपि ज्ञान सब ही पूज्य हैं। तो भी केवलज्ञान महान् है। वह जीवो को सबसे अन्त मे प्राप्त होता है। इसलिये अन्त मे रखा है। मन पर्यय के समीप केवलज्ञान होता है अत मन पर्यय के समीप केवलज्ञान को रखा अर्थात् ये दोनो ज्ञान सयमी के ही होते है अत दोनो को सामीप्य है। अवधिज्ञान को केवलज्ञान से दूर रखा है क्योकि यह सयमी, असयमी दोनो के होता है। अवधि-मन पर्यय और केवलज्ञान इन तीनो के पहले परोक्ष मति श्रुत ज्ञान इसलिये रखे है कि सभी प्राणी दोनो ज्ञानो का अनुभव करते है अर्थात् प्राय ये दो ज्ञान सब प्राणियो के द्वारा प्राप्त किये जाते है।

प्रश्न ८–कितने ज्ञान प्रमाण है ?

उत्तर– **तत्प्रमाणे ॥ १० ॥**

सूत्रार्थ– (तत्) ऊपर कहा हुआ पाँच प्रकार का ज्ञान ही (प्रमाणे) प्रमाण (अस्ति) है।

प्रश्न १–प्रमाण किसे कहते है

उत्तर–'प्रमिणोति इति प्रमाण' जो सम्यक् प्रकार से जानता है वह प्रमाण है यहाँ कर्तरि साधन मे युट् प्रत्यय होता है ।

"प्रमीयते अनेनेति प्रमाण" जिसके द्वारा अच्छी तरह जाना जाता है, वह प्रमाण है । करण साधन मे भी युट् प्रत्यय होता है ।

प्रमिति मात्र को प्रमाण कहते हैं । भाव साधन मे भी युट् प्रत्यय होता है ।

प्रश्न २–सूत्र मे "तत्प्रमाणे" प्रमाण शब्द को द्विवचन क्यो दिया है ?

उत्तर–प्रमाण के प्रत्यक्ष और परोक्ष दो भेद बताने के लिये सूत्र मे प्रमाण को द्विवचन मे रखा है ।

प्रश्न ३–परोक्ष प्रमाण के भेद बताओ ?

उत्तर– **आद्ये परोक्षम् ॥ ११ ॥**

सूत्रार्थ–आदि के मतिज्ञान और श्रुतज्ञान परोक्ष हैं ।

प्रश्न १–आदि का अर्थ क्या है ?

उत्तर–आदि शब्द प्रथम का वाचक है ।

प्रश्न २–आदि शब्द प्रथम का वाचक है पर दो ज्ञान प्रथम कैसे हो सकते हैं ?

उत्तर–मतिज्ञान तो मुख्यकल्पना से प्रथम है और श्रुतज्ञान भी मतिज्ञान के समीप होने से प्रथम है ऐसा उपचार किया जाता है ।

प्रश्न ३–दो ज्ञान परोक्ष क्यो है ?

उत्तर–मति-श्रुतज्ञान पराधीन है अत इन्हे परोक्ष कहते है । मतिज्ञान इन्द्रिय मन की सहायता से उत्पन्न होता है ।

प्रश्न ४–प्रत्यक्ष प्रमाण क्या है ?

उत्तर– **प्रत्यक्षमन्यत् ॥ १२ ॥**

सूत्रार्थ–शेष सब ज्ञान प्रत्यक्ष है । अर्थात् अवधिज्ञान, मन·पर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये प्रत्यक्ष प्रमाण हैं ।

प्रश्न १–प्रत्यक्ष ज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर–जो ज्ञान बाह्य इन्द्रियादिक की अपेक्षा से न होकर केवल आत्मा से होते हैं वे ज्ञान अवधि मन पर्यय और केवलज्ञान है । ये प्रत्यक्ष कहलाते है ।

प्रश्न २–साक्षात् इन्द्रियो के द्वारा देखा-सुना जाने वाला ज्ञान इन्द्रियो के व्यापार से उत्पन्न होता है वह प्रत्यक्ष है और जो इन्द्रिय व्यापार से रहित है वह परोक्ष ऐसा क्यो नही मानते ?

उत्तर–यदि इन्द्रियो के निमित्त से उत्पन्न होने वाले ज्ञान को ही प्रत्यक्ष मान

लिया जावेगा तो अरहत/आप्त के प्रत्यक्ष ज्ञान का अभाव होने का प्रसग प्राप्त होता है क्योकि आप्त के इन्द्रियपूर्वक पदार्थ का ज्ञान नही होता । यदि आप्त के इन्द्रियपूर्वक ज्ञान भी यदि कदाचित् मान लिया जावे तो उनके सर्वज्ञता नही रहती । अत स्पष्ट है कि आत्मा से होने वाला ज्ञान प्रत्यक्ष है और इन्द्रियो के निमित्त से होने वाला ज्ञान परोक्ष है ।

प्रश्न ३–मतिज्ञान का विशेष वर्णन कीजिये ?

उत्तर– मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम् ॥ १३॥

सूत्रार्थ–मति, स्मृति, सज्ञा, चिन्ता, अभिनिबोध इत्यादि अन्य पदार्थ नही है । मतिज्ञान के ही नामान्तर है ॥१३॥

प्रश्न १–मति, स्मृति, सज्ञा, चिन्ता अभिनिबोध इन शब्दो के व्युत्पत्ति अर्थ बताइये ?

उत्तर—मनन मति । स्मरण स्मृति । सज्ञान सज्ञा । चिन्तन चिन्ता । अभिनिबोधन अभिनिबोध यह इन शब्दो के व्युत्पत्ति अर्थ है ।

प्रश्न २–मति किसे कहते है ?

उत्तर–पॉच इन्द्रिय और मन से जो अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणाज्ञान होता है वह मति है ।

प्रश्न ३–स्मृति किसे कहते है ?

उत्तर–तत् (वह) इस प्रकार अतीत अर्थ के स्मरण करने को स्मृति कहते है। अथवा पहले जाने हुए पदार्थ का वर्तमान मे स्मरण करने को स्मृति कहते है ।

प्रश्न ४–सज्ञा किसे कहते है ?

उत्तर–"यह वही है", यह उसके सदृश है इस प्रकार पूर्व और उत्तर अवस्था मे रहने वाली पदार्थ की एकता सदृशता आदि के ज्ञान को सज्ञा (प्रत्यभिज्ञान) कहते है । अथवा यह वही है जिसे पूर्व मे देखा था ऐसे स्मृति और प्रत्यक्ष के जोड़रूप ज्ञान को सज्ञा कहते है इसी का दूसरा नाम प्रत्यभिज्ञान है ।

प्रश्न ५–चिन्ता किसे कहते है ?

उत्तर–जहॉ-जहॉ धूम होती है वहॉ-वहॉ अग्नि अवश्य होती है जैसे रसोईघर। इस प्रकार व्याप्ति के ज्ञान को चिन्ता कहते है ।

प्रश्न ६–अभिनिबोध किसे कहते है ?

उत्तर–साधन से साध्य के ज्ञान को अभिनिबोध कहते है—जैसे उस पहाड़ मे अग्नि है, क्योकि उस पर धूम है । इसी का दूसरा नाम अनुमान है ।

प्रश्न ७–सूत्र मे "इति" शब्द आया है उससे किसका ग्रहण होता है ?

उत्तर–इति शब्द से प्रतिभा, बुद्धि, मेधा आदि का ग्रहण किया है इनको भी मतिज्ञान जानना चाहिये ।

प्रश्न ८–प्रतिभा, बुद्धि, मेधा किसे कहते है ?

उत्तर–दिन या रात्रि मे कारण के बिना ही जो एक प्रकार का स्वत प्रतिभास हो जाता है उसे प्रतिभा कहते है ।

जैसे—प्रात मुझे इष्ट वस्तु प्राप्त होगी या कल मेरा भाई आयेगा ।

अर्थ को ग्रहण करने की शक्ति को बुद्धि कहते है ।

पाठ को ग्रहण करने की शक्ति मेधा है ।

प्रश्न ९–मतिज्ञान की उत्पत्ति का कारण बताइये ?

उत्तर– **तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् ॥ १४ ॥**

सूत्रार्थ–(तत्) वह मतिज्ञान (इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम्) पाँच इन्द्रिय और मन के निमित्त से होता है ॥१४॥ अर्थात् जो इन्द्रिय और मन की सहायता से पदार्थों को जानता है उसे मतिज्ञान कहते है ।

प्रश्न १–इन्द्रिय किसे कहते है ?

उत्तर–जो आज्ञा और ऐश्वर्य को प्राप्त होता है उसे इन्द्र कहते है । यहाँ इन्द्र शब्द का अर्थ आत्मा है । उस आत्मा का जो लिग या चिन्ह है उसे इन्द्रिय कहते है । अथवा नामकर्म रूपी इन्द्र के द्वारा जो रची जाती है वे इन्द्रियाँ कहलाती है ।

प्रश्न २–इन्द्रियो को आत्मा का लिग या चिह्न क्यो कहा स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर–जैसे लोक मे धूम अग्नि का ज्ञान कराने मे कारण है वैसे ही जो सूक्ष्म आत्मा के अस्तित्व का ज्ञान कराने मे लिग या कारण है उसे इन्द्रिय कहते है । ये स्पर्शन आदि इन्द्रियॉ आत्मा को ज्ञान कराने मे कारण है अत ये आत्मा का लिग हैं । जैसे अग्नि के बिना धूम नही होता उसी प्रकार आत्मा के बिना इन्द्रियॉ नही होती है अत वे आत्मा का लिग है ।

प्रश्न ३–अनिन्द्रिय किसे कहते है ?

उत्तर–अनिन्द्रिय मन को कहते है । अनिन्द्रिय, मन, अन्त करण तीनो एकार्थवाची है ।

प्रश्न ४–मन को अनिन्द्रिय क्यो कहते है ?

उत्तर–जिस प्रकार इन्द्रियॉ नियतदेश और नियतविषय को ग्रहण करने वाली है वैसा मन नियत देश, नियतविषय वाला और कालान्तर स्थायी नही है इसलिये इसको अनिन्द्रिय कहते है ।

प्रश्न ५–मन को अन्त करण क्यो कहते है ?

उत्तर–मन को गुण दोष विचार आदि कार्यों में इन्द्रियो की अपेक्षा नही रहती हैं तथा चक्षु आदि इन्द्रियो के समान मन की बाह्य पुरुषो के द्वारा उपलब्धि भी नही होती इसलिये अन्त करण होने से इसे अन्त करण कहते हैं ।

प्रश्न ६–मतिज्ञान के कितने भेद हैं ?

उत्तर– अवग्रहेहावायधारणा: ॥ १५ ॥

सूत्रार्थ–मतिज्ञान के अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ये मतिज्ञान के चार भेद हैं ।

प्रश्न १–अवग्रह किसे कहते हैं ?

उत्तर–विषय-विषयी के सन्निपात रूप दर्शन के पश्चात् जो अर्थ का ग्रहण होता है, वह अवग्रह कहलाता है । जैसे चक्षु इन्द्रिय के द्वारा यह "शुक्लरूप" है ऐसा ग्रहण करना अवग्रह है ।

प्रश्न २–ईहा ज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर–अवग्रह के द्वारा जाने हुए पदार्थों को विशेषरूप से जानने की चेष्टा करना ईहा है । जैसे—यह शुक्लरूप बगुला है या पताका ।

प्रश्न ३–ईहाज्ञान तो सशयरूप हो जायेगा क्योकि यह बगुला है या पताका ऐसा सशय बना हुआ है ?

उत्तर–ईहाज्ञान यह चादी है या सीप की तरह सशयरूप नही है यहाँ बगुला या पताका का कथन मात्र दो उदाहरणो की अपेक्षा है । उसका स्पष्ट भाव है कि यदि वह बगुला है तो बगुला होना चाहिये और यदि पताका है तो पताका होना चाहिये। यह सशय ज्ञान नही है क्योकि सशय मे अनिश्चित अनेक कोटियो का अवलम्बन रहता है । जो कि ईहा मे नही है ।

प्रश्न ४–अवाय ज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर–विशेष चिह्न देखने से वस्तु का निर्णय हो जाना सो अवाय है । जैसे—उस शुक्ल पदार्थ मे पखो का फड़फड़ाना, उड़ना आदि चिह्न देखने से बगुला का निश्चय होना ।

प्रश्न ५–धारणा ज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर–अवाय से निश्चय किये हुए पदार्थ को कालान्तर मे नही भूलना धारणा है ।

प्रश्न ६–धारणा, स्मृति और प्रत्यभिज्ञान मे क्या अन्तर है ?

उत्तर–धारणा और स्मृति कारण है प्रत्यभिज्ञान कार्य है । स्मृति और प्रत्यभिज्ञान मे कारण कार्य का भेद है ।

प्रश्न ७–अवग्रह, ईहा आदि चारो मे कितना काल लगता है ?

षट् द्रव्य
जीव
मनुष्य
देव
नारकी
तिर्यंच
पुद्गल
धर्म
अधर्म
आकाश
निश्चय
व्यवहार
काल

उत्तर–अवग्रह-ईहा-अवाय और धारणा चारो क्षणभर मे भी हो सकते ह और अनेक काल के बाद भी हो सकते है।

प्रश्न ८–सन्निपात लक्षण दर्शन क्या है ?

उत्तर–विषय और विषयी का सम्बन्ध होने पर जो होता है वह सन्निपात लक्षण दर्शन है।

प्रश्न ९–अवग्रह आदि के विषयभूत पदार्थ कितने है ?

उत्तर– बहुबहुविधक्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवाणां सेतराणां ॥ १६ ॥

सूत्रार्थ–(बहु बहुविधक्षिप्र-अनि.सृत-अनुक्त ध्रुवाणाम्) बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनि सृत, अनुक्त, ध्रुव (सेतराणाम्) इनके उल्टे एक, एकविध, अक्षिप्र, नि सृत, उक्त तथा अध्रुव इन भेदो सहित इन बारह प्रकार के पदार्थों का अवग्रह ईहादि रूप ज्ञान होता है।

प्रश्न १–बहु आदि १२ पदार्थों का सामान्य लक्षण बताइये ?

उत्तर–१ एक जाति की बहुत सी वस्तुओं को बहु कहते हैं।

२ अनेक जाति के बहुत पदार्थों को बहुविध कहते हैं।

३ एक जाति की एक वस्तु को एक (अल्प) कहते हैं।

४ दो या अनेक जातियों की अनेक वस्तुओ को अनेकविध कहते है।

५ शीघ्र गति से चलने वाले पदार्थ को क्षिप्र कहते हैं जैसे–तेजी से बहता हुआ जलप्रवाह।

६ मन्दगति से चलने वाले पदार्थ को अक्षिप्र कहते हैं। जैसे–कछुआ, अथवा धीरे-धीरे चलने वाला घोडा मनुष्य आदि।

७ छिपे हुए अप्रकट पदार्थ को अनिःसृत कहते हैं, जैसे–जल में डूबा हुआ हस्ती आदि।

८ प्रकट पदार्थ को निःसृत कहते है जैसे सामने खडा हुआ हस्ती।

९ जो पदार्थ अभिप्राय से समझा जा सकता है उसे अनुक्त कहते है। जैसे– किसी के हाथ या शिर के इशारे से किसी काम के विषय में हाँ, ना समझना।

१० जो शब्द के द्वारा कहा जाय उसे उक्त कहते हैं। जैसे–यह घर है।

११ स्थिर पदार्थ को ध्रुव कहते हैं जैसे–पर्वत आदि।

१२ क्षणस्थायी (अस्थिर) पदार्थ को अध्रुव कहते हैं जैसे–बिजली आदि।

प्रश्न २–ये बहु आदि विशेषण किसके हैं ?

उत्तर– अर्थस्य ॥ १७ ॥

सूत्रार्थ–ये बहु आदि पदार्थ के भेद हैं। अर्थात् बहु आदि विशेषण से युक्त

पदार्थ के ही अवग्रह आदि ज्ञान होते हैं ।

प्रश्न १–अवग्रह ज्ञान की क्या विशेषता है ?

उत्तर– व्यञ्जनस्यावग्रहः ॥ १८ ॥

सूत्रार्थ–(व्यञ्जनस्य) अप्रकट रूप शब्दादि पदार्थों का (अवग्रह) सिर्फ अवग्रह ज्ञान होता है । ईहादिक तीन ज्ञान नही होते हैं ।

प्रश्न १–अवग्रह के कितने भेद है ?

उत्तर–अवग्रह के दो भेद हैं—(१) व्यञ्जनावग्रह और (२) अर्थावग्रह ।

प्रश्न २–व्यञ्जनावग्रह किसे कहते हैं ?

उत्तर–अव्यक्त-अप्रकट पदार्थ के अवग्रह को व्यञ्जनावग्रह कहते हैं ।

प्रश्न ३–अर्थावग्रह किसे कहते हैं ?

उत्तर–व्यक्त-प्रकट पदार्थ के अवग्रह को अर्थावग्रह कहते है ।

प्रश्न ४–व्यञ्जनावग्रह कौनसी इन्द्रियो से नही होता है ?

उत्तर– न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ॥ १९ ॥

सूत्रार्थ–नेत्र और मन से व्यञ्जनावग्रह नही होता है ।

प्रश्न १–मतिज्ञान के सामान्य से और विस्तार से कुल कितने भेद हो जाते है ।

उत्तर–मतिज्ञान के सामान्य से ४ भेद है—(१) अवग्रह (२) ईहा (३) अवाय (४) धारणा । तथा विस्तार से मतिज्ञान के ३३६ भेद होते है—

ये चार ज्ञान बहुआदि पदार्थों के होते है अत ४ x १२ = ४८

ये चार प्रकार के ज्ञान पॉच इन्द्रिय और मन इन छह की सहायता से होते है अत ४ x १२ x ६ = २८८ ।

अर्थावग्रह के २८८ भेद ।

व्यञ्जनावग्रह चक्षु और मन से नही होता । इसमे मात्र अवग्रह ही होता ह ईहा आदि नही होते । अत १२×४=४८ व्यञ्जनावग्रह के ४८ भेद । इस प्रकार २८८+४८=३३६ भेद मतिज्ञान के होते हे ।

प्रश्न २–श्रुतज्ञान किसे कहते है उसका लक्षण व भेद-प्रभेद बताइये ?

उत्तर– श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदम् ॥ २० ॥

सूत्रार्थ–(श्रुतम्) श्रुतज्ञान (मतिपूर्वम्) मतिज्ञानपूर्वक होता है अर्थात् मतिज्ञान के पश्चात् श्रुतज्ञान होता है और वह श्रुतज्ञान (द्व्यनेकद्वादशभेदम्) दो, अनेक तथा बारह भेद वाला है । अर्थात् श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है इसके दो, अनेक, बारह भेद है ।

प्रश्न १–"मतिपूर्वक श्रुतज्ञान होता है" यह श्रुत का लक्षण घटित नहीं होता कारण कि श्रुतज्ञान पूर्वक भी श्रुतज्ञान होता है।

उत्तर–श्रुतपूर्वक श्रुत होता है यह कथन यद्यपि सत्य है तथापि जहाँ पर श्रुतज्ञान होता है वहाँ पर प्रथम श्रुतज्ञान उपचार से मतिज्ञान माना गया है। अत: श्रुत से उत्पन्न श्रुत को किसी प्रसंग में मतिज्ञान रूप से उपचरित किया जाता है—क्योंकि श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक ही होता है, ऐसा नियम है। इस नियम का कही भी उल्लघन नही होता।

प्रश्न २–श्रुतज्ञान के दो भेद कौन से है ?

उत्तर–श्रुतज्ञान के अगबाह्य और अगप्रविष्ट दो भेद हैं।

प्रश्न ३–श्रुतज्ञान के अनेक भेद कौन से है ?

उत्तर–अगबाह्य श्रुतज्ञान के दशवैकालिक उत्तराध्ययन आदि अनेक भेद है। उस अपेक्षा श्रुतज्ञान अनेक भेद वाला है।

प्रश्न ४–श्रुतज्ञान के बारह भेद बताइये ?

उत्तर–अगप्रविष्ट के बारह भेदो की अपेक्षा श्रुतज्ञान के बारह भेद हैं वे इस प्रकार है—

१ आचाराग २ सूत्रकृताग ३ स्थानाग ४ समवायाग ५ व्याख्याप्रज्ञप्तिअंग ६ ज्ञातृधर्मकथाङ्ग ७ उपासकाध्ययनाग ८ अंतकृद्दशाग ९ अनुत्तरोपपादिकदशाग १० प्रश्नव्याकरणाग ११ विपाकसूत्राग १२ दृष्टिप्रवादाग।

इनमे से दृष्टिवादअग के प्रभेद हैं—१ परिकर्म, २ सूत्र, ३ प्रथमानुयोग, ४ पूर्वगत, ५ चूलिका।

परिकर्म के ५ भेद हे—१ व्याख्याप्रज्ञप्ति २ द्वीपसागरप्रज्ञप्ति ३ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति ४ सूर्यप्रज्ञप्ति ओर ५ चन्द्रप्रज्ञप्ति।

चूलिका के ५ भेद हैं—१ जलगता २ स्थलगता ३. मायागता ४ आकाशगता और ५ रूपगता। सूत्र और प्रथमानुयोग के एक-एक ही भेद हैं।

पूर्वगत के १४ भेद हैं—१ उत्पादपूर्व २ अग्रायणी ३ वीर्यानुवाद ४ अस्तिनास्तिप्रवाद ५ ज्ञानप्रवाद ६ सत्यप्रवाद ७ आत्मप्रवाद ८. कर्मप्रवाद ९ प्रत्याख्यान १० विद्यानुवाद ११ कल्याणानुवाद १२ प्राणावायप्रवाद १३ क्रियाविशाल और १४ लोकबिन्दुसारपूर्व।

प्रश्न ५–अगबाह्य श्रुत के भेद कितने है बताइये ?

उत्तर–अगबाह्य श्रुत के १४ भेद हैं—१ सामायिक २ स्तव ३ वन ४ प्रतिक्रमण ५ वैनयिक ६ कृतिकर्म ७ दशवैकालिक ८ उत्तराध्य ९ कल्पव्यवहार १० कल्पाकल्प ११ महाकल्प १२ पुण्डरीक १३ महापुण्, और १४ अशीतिका। श्रुतज्ञान के ये ही अनेक भेद भी हैं।

प्रश्न ६–यहाँ श्रुतज्ञान के दो, अनेक बारह भेदो मे पर्याय ज्ञान आदि बीस भेदो को ग्रहण क्यो नहीं किया ?

उत्तर–सम्यक्ज्ञान का प्रकरण होने से यहाँ ज्ञान के दो भेद अगबाह्य और अंगप्रविष्ट को ही ग्रहण किया है पर्याय-पर्यायसमासादि बीस को नही ।

प्रश्न ७–अवधिज्ञान कितने प्रकार का है ?

उत्तर- **भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम् ॥ २१ ॥**

सूत्रार्थ -भवप्रत्यय अवधिज्ञान देव व नारकियो के होता है ॥२१॥

प्रश्न १–भव किसे कहते हैं ?

उत्तर–आयु और नामकर्म के उदयका निमित्त पाकर जो जीव की पर्याय होती है उसे भव कहते है ।

प्रश्न २–भवप्रत्यय अवधिज्ञान किसे कहते है ? वह किन जीवो के होता है?

उत्तर–भव ही जिसका निमित्त होता है उस अवधिज्ञान को भवप्रत्यय अवधिज्ञान कहते है । यह ज्ञान देव और नारकियो के होता है ।

प्रश्न ३–यदि नारकियो व देवो के भवप्रत्यय अवधिज्ञान होता है तो वहाँ अवधिज्ञानावरणकर्म का क्षयोपशम आवश्यक है या नही ?

उत्तर–यद्यपि देव-नारकियो के अवधिज्ञान होता तो क्षयोपशम से ही है पर वह क्षयोपशम भव के निमित्त से होता है अत भवप्रत्यय कहते है ।

प्रश्न ४–जब देव-नारकियो के अवधिज्ञान क्षयोपशम से ही होता है तब भव निमित्तक क्यो कहा है ?

उत्तर–जैसे पक्षियो का आकाश मे गमन करना भव निमित्तक है शिक्षा गुण की अपेक्षा से नही होता वैसे ही देवनारकियो के व्रतनियम आदि के अभाव मे भी अवधिज्ञान होता है अत उसे भव निमित्तक कहा ।

प्रश्न ५–प्रत्यय किसे कहते हैं ?

उत्तर–प्रत्यय, निमित्त, कारण ये सब एकार्थवाची हैं ।

प्रश्न ६–देव-नारकियो के अवधिज्ञान मे क्षयोपशम को कारण नही माना जावे तो क्या हानि है ?

उत्तर–देव-नारकियो के अवधिज्ञान मे क्षयोपशम कारण नही माना जावे तो भव तो सबके साधारण रूप से पाया जाता है अत सब देव-नारकियो के समान अवधिज्ञान प्राप्त होगा, पर ऐसा है नही । वहाँ पर अवधिज्ञान न्यूनाधिक कहा ही गया है ।

प्रश्न ७–क्या सभी देव-नारकियो के अवधिज्ञान होता है ?

उत्तर–ऐसा नही। सम्यग्दृष्टि देव–नारकी के अवधिज्ञान होता है तथा मिथ्यादृष्टि के कुअवधिज्ञान होता है।

प्रश्न ८–क्या अन्य भी किसी जीव को भवप्रत्यय अवधिज्ञान होता है ?

उत्तर–जी हाँ। तीर्थंकरो के भी भव–प्रत्यय अवधिज्ञान होता है।

प्रश्न ९–अवधिज्ञान के कितने भेद हैं, कौन से हैं ?

उत्तर–अवधिज्ञान के भव–प्रत्यय व गुण प्रत्यय या क्षयोपशम हेतुक ऐसे दो भेद हैं।

प्रश्न १०–क्षयोपशमनिमित्तक (गुणप्रत्यय) अवधिज्ञान किसे कहते हैं ? यह किन जीवो के होता है ?

उत्तर–(१) अवधिज्ञानावरण कर्म के देशघाती स्पर्धको का उदयाभावीक्षय और अनुदय प्राप्त इन्ही का सदवस्थारूप उपशम इन दोनो के निमित्त से जो होता है वह क्षयोपशमनिमित्तक अवधिज्ञान है। अथवा

(२) अवधिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से होने वाले ज्ञान को गुणप्रत्यय अथवा क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञान कहते हैं।

यह अवधिज्ञान मनुष्य व तिर्यञ्चों के होता है। उनमे भी सभी के नही। संज्ञी, पर्याप्तक सम्यग्दृष्टि, पञ्चेन्द्रिय पर्याययुक्त सामर्थ्यवान जीव के ही यह होता है।

प्रश्न ११–क्षयोपशमनिमित्तक अवधिज्ञान के कितने भेद हैं ? तथा यह किसके होता है ?

उत्तर– **क्षयोपशमनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ॥ २२ ॥**

सूत्रार्थ–(क्षयोपशमनिमित्त) क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञान (षड्विकल्पः) अनुगामी, अननुगामी, वर्धमान, हीयमान, अवस्थित, अनवस्थित इस प्रकार छह भेद वाला है और वह (शेषाणाम्) शेष मनुष्य व तिर्यञ्चो के [भवति] होता है।

प्रश्न १–अवधिज्ञान अवधिज्ञानावरण के क्षयोपशम से होता ही है फिर सूत्र मे क्षयोपशम शब्द अलग क्यों दिया ?

उत्तर–यद्यपि अवधिज्ञान मात्र क्षयोपशम के निमित्त से होता है तथापि मनुष्य–तिर्यञ्चो के मात्र क्षयोपशम निमित्त है भव नही यह नियम करने के लिये सूत्र मे क्षयोपशम शब्द दिया है।

प्रश्न २–क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञान के कितने भेद हैं नाम बताइये ?

उत्तर-१ अनुगामी-जो अवधिज्ञान अपने स्वामी जीव के साथ जाय उसको अनुगामी कहते हैं। तीन भेद हैं-१ क्षेत्रानुगामी २ भवानुगामी ३ उभयानुगामी।

१ क्षेत्रानुगामी-जो दूसरे क्षेत्र में अपने स्वामी जीव के साथ जाये।

२ भवानुगामी-जो दूसरे भव में साथ जाये।

३ उभयानुगामी-जो दूसरे क्षेत्र तथा भव दोनों में साथ-साथ जाये।

२ अननुगामी-जो अपने स्वामी जीव के साथ न जावे उसको अननुगामी कहते हैं।

३ अवस्थित-जो सूर्यमडल के समान न घटे न बढे उसके अवस्थित कहते हैं।

४ अनवस्थित-जो चद्रमडल की तरह कभी-कम कभी अधिक हो उसको अनवस्थित कहते हैं।

५ वर्धमान-जो शुक्ल पक्ष के चन्द्र की तरह अपने अन्तिम स्थान तक बढता जाये उसको वर्द्धमान अवधिज्ञान कहते हैं।

६ हीयमान-जो कृष्णपक्ष के चन्द्र की तरह अन्तिम स्थान तक घटता जाये उसको हीयमान कहते हैं।

प्रश्न ९-अवधिज्ञान के अन्य भी भेद है क्या ?

उत्तर-जी हाँ ! अन्य ग्रथो मे अवधिज्ञान के तीन भेद भी आचार्यों ने बतलाये हैं। (१) देशावधि (२) परमावधि और (३) सर्वावधि। इनमे देशावधि ज्ञान चारो गतियो मे हो सकता है परन्तु परमावधि और सर्वावधि ज्ञान चरमशरीरी मुनियो के ही होता है।

प्रश्न १०-इनमे गृहस्थावस्था मे तीर्थकर भगवान को व देव तथा नारकियो के कोनसा अवधिज्ञान होता है ?

उत्तर-तीर्थकर भगवान के गृहस्थावस्था मे व देव तथा नारकियो के देशावधिज्ञान ही होता है।

प्रश्न ११-मन पर्ययज्ञान के भेद कौन से है ?

उत्तर- **ऋजुविपुलमती मन:पर्यय: ॥ २३ ॥**

सूत्रार्थ-(मन पर्यय) मन पर्ययज्ञान (ऋजुविपुलमती) ऋजुमति और विपुलमति के भेद से दो प्रकार का है।

प्रश्न १–ऋजु किसे कहते है ?

उत्तर–ऋजु का अर्थ सरल, निर्वर्तित और प्रगुण है ।

प्रश्न २–ऋजुमति किसे कहते हैं ?

उत्तर–सरल, मन, वचन, काय कृत परकीय मनोगत अर्थ को जानने वाली ऋजुमति कहलाती है ।

प्रश्न ३–विपुलमति किसे कहते हैं ?

उत्तर–सरल और असरल इन दोनो को जानती है वह विपुलमति कहलाती है।

प्रश्न ४–ऋजुमति मन पर्यय किसे कहते हैं ?

उत्तर–ऋजु है मति जिस मन पर्यय की वह ऋजुमति मन पर्यय ज्ञान है । अर्थात् जो मन, वचन, काय की सरलता से चिंतित दूसरे के मन मे स्थित पदार्थों को जाने वह ऋजुमति मन पर्ययज्ञान है ।

प्रश्न ५–विपुलमति मन पर्यय किसे कहते है ?

उत्तर–विपुल है मति जिस मन पर्यय की वह विपुलमति मन.पर्ययज्ञान है अर्थात् जो सरल तथा कुटिलरूप से चिंतित पर के मन मे स्थित रूपी पदार्थों को जाने ।

प्रश्न ६–मन.पर्ययज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर–वीर्यान्तराय और मन पर्ययज्ञानावरण के क्षयोपशम और आगोपाग नाम-कर्म के आलम्बन से आत्मा मे दूसरे के सबध से जो उपयोग जन्म लेता है उसे मन पर्ययज्ञान कहते है ।

प्रश्न ७–मन पर्ययज्ञान मतिज्ञान की तरह मन के सम्बध से होता है अत इसे भी मतिज्ञान क्यो नहीं कहते हैं ?

उत्तर–यह ज्ञान अन्य के मन मे स्थित पदार्थों को जानता इतनी मात्र यहाँ मन की अपेक्षा है । इतने मात्र से यह मतिज्ञान नही हो सकता ।

प्रश्न ८–मन पर्ययज्ञान कितने काल और कितने क्षेत्र की बात को जानता है?

उत्तर–मन पर्ययज्ञान जघन्य से दो तीन भवो को, उत्कृष्ट से असख्यात भव को जानता है तथा उत्कृष्ट से मानुषोत्तर पर्वत के भीतर की बात जानता है इससे बाहर की नही जानता ।

प्रश्न ९–ऋजुमति और विपुलमति मन·पर्ययज्ञान मे क्या अन्तर है ?

उत्तर– **विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ॥ २४ ॥**

सूत्रार्थ–(विशुद्धि-अप्रतिपाताभ्याम्) परिणामो की विशुद्धता और अप्रतिपात इन दो कारणो से (तत् विशेष) ऋजुमति और विपुलमति मे विशेषता है ।

प्रश्न १–विशुद्धि किसे कहते है ?

उत्तर–मन:पर्ययज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम होने पर आत्मा मे जो निर्मलता आती है उसे विशुद्धि कहते है ।

प्रश्न २–अप्रतिपात किसे कहते हैं ?

उत्तर–गिरने का नाम प्रतिपात है और नही गिरना अप्रतिपात कहलाता है ।

प्रश्न ३–ऋजुमति और विपुलमति मन पर्यय का अन्तर स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर– १ ऋजुमति स्थूल ज्ञान है और विपुलमति सूक्ष्मज्ञान है । यह विशुद्धिकृत अन्तर है ।

२ ऋजुमति प्रतिपाती है विपुलमति अप्रतिपाती है । क्योंकि विपुलमति के स्वामियो के प्रवर्धमान चारित्र पाया जाता है । जबकि ऋजुमति के स्वामियो के कषाय के उदय से घटता हुआ चारित्र होता है ।

३ विपुलमति मन·पर्ययज्ञान उसी के होता है जो तद्भव मोक्षगामी होते हुए भी क्षपकश्रेणी पर चढ़ता है किन्तु ऋजुमति मन पर्ययज्ञान के लिये ऐसा कोई नियम नही है । ऋजुमति तद्भव मोक्षगामी के भी हो सकता है और अन्य के भी हो सकता है । इसी प्रकार जो क्षपकश्रेणी या उपशमश्रेणी चढ़े दोनो के भी हो सकता है और श्रेणी नही चढ़े उनके भी हो सकता है । इस कारण भी ऋजुमति प्रतिपाती और विपुलमपि अप्रतिपाति माना गया है ।

प्रश्न ४–अवधिज्ञान और मन पर्ययज्ञान मे क्या विशेषता है ?

उत्तर–विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमन:पर्यययो: ॥ २५ ॥

सूत्रार्थ–(अवधिमन पर्यययो) अवधि और मन पर्ययज्ञान मे (विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्य) विशुद्धता, क्षेत्र, स्वामी और विषय की अपेक्षा विशेषता होती है ।

प्रश्न १–विशुद्धि क्षेत्र, स्वामी और विषय किसे कहते है ?

उत्तर– १ विशुद्धि का अर्थ निर्मलता है ।

२ जितने स्थान मे स्थित भावो को जानता है वह क्षेत्र है ।

३ स्वामी का अर्थ प्रयोक्ता है ।

४ विषय ज्ञेय को कहते हैं ।

प्रश्न २–विशुद्धि की अपेक्षा अवधिमन पर्यय का अन्तर बताइये ?

उत्तर–अवधिज्ञान से मन.पर्ययज्ञान विशुद्धतर है ।

प्रश्न ३–क्षेत्र की अपेक्षा दोनो ज्ञानो का अन्तर बताइये ?

उत्तर–मन पर्ययज्ञान का क्षेत्र मानुषोत्तर पर्वत के भीतर को जानना है ।

अवधिज्ञान का क्षेत्र सर्वलोक है। क्षेत्र की अपेक्षा मन पर्ययज्ञान का क्षेत्र अवधिज्ञान से कम है।

प्रश्न ४–स्वामी की अपेक्षा दोनो ज्ञानो मे विशेषता बताइये ?

उत्तर–मन पर्ययज्ञान प्रमत्तसंयत से लेकर क्षीणकषाय तक के उत्कृष्ट चारित्र गुणयुक्त जीवो के ही पाया जाता है। उनमे भी प्रवर्धमान चारित्र वालो के ही होता है। सबके नहीं घटते हुए चारित्रवालो के नही। प्रवर्धमान चारित्रवालो मे भी सात प्रकार की ऋद्धियो मे से किसी एक ऋद्धि प्राप्त जीव के ही उत्पन्न होता है। ऋद्धिप्राप्त जीवो मे भी किन्हीं के ही उत्पन्न होता है सबके नही।

प्रश्न ५–विषय की अपेक्षा दोनो ज्ञानो का भेद बताइये ?

उत्तर–अवधिज्ञान की प्रवृत्ति रूपी पदार्थों मे होती है। मन पर्ययज्ञान की प्रवृत्ति अवधिज्ञान के विषय के अनन्तवे भाग मे होती है।

प्रश्न ६–मति-श्रुत ज्ञान का विषय क्या है ?

उत्तर– **मतिश्रुतयोर्निबन्धोद्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु ॥ २६ ॥**

सूत्रार्थ–(मतिश्रुतयो.) मतिज्ञान और श्रुतज्ञान का (निबन्ध) विषय सम्बन्ध (असर्वपर्यायेषु) सब पर्यायो से रहित (द्रव्येषु) जीव पुद्गल आदि सब द्रव्यो मे है। अर्थात् मतिज्ञान और श्रुतज्ञान रूपी-अरूपी सभी द्रव्यो को जानते हैं पर उनकी सभी पर्यायो को नही जान पाते हैं।

प्रश्न १–मतिज्ञान और श्रुतज्ञान की प्रवृत्ति अरूपी धर्म-अधर्म, आकाश, काल द्रव्यो मे कैसे होती है ?

उत्तर–अनिन्द्रिय (मन) नाम की एक इन्द्रिय है। इन्द्रियावरण कर्म का क्षयोपशम होने पर अनिन्द्रिय के द्वारा धर्मादि द्रव्यो की पर्यायो का अवग्रह आदि रूप से ग्रहण होता है। और मतिज्ञानपूर्वक श्रुतज्ञान भी उन विषयो मे प्रवृत्त होता है अत मति और श्रुत के द्वारा धर्मादि अरूपी द्रव्यो की पर्यायो को जानने मे कोई विरोध नही है।

प्रश्न २–अवधिज्ञान का विषय बताइये ?

उत्तर– **रूपिष्ववधे: ॥ २७ ॥**

सुत्रार्थ–(अवधे) अवधिज्ञान का विषय-सम्बन्ध (रूपिषु) रूपी द्रव्यो मे है। अर्थात् अवधिज्ञान रूपी पदार्थों को जानता है।

प्रश्न १–अवधिज्ञान रूपी द्रव्य मे भी किसको विषय करता है ?

उत्तर–अवधिज्ञान रूपी पुद्गल और कर्मसहित ससारी जीव की कुछ पर्यायो को विषय करता है।

प्रश्न २–अवधिज्ञान रूपी द्रव्य की सब पर्यायो को विषय करता है क्या ?

उत्तर–अवधिज्ञान रूपी पदार्थों को जानता हुआ भी उनकी अपने योग्य अल्प पर्यायो को विषय करता है । पुद्गल की व ससारी जीव की अनन्त पर्यायो मे इसकी प्रवृत्ति नही होती अत "सूत्र २६ का असर्वपर्यायेषु" सबध यहाँ भी लगाना चाहिये।

प्रश्न ३–मन पर्ययज्ञान का विषय सम्बन्ध क्या है ?

उत्तर– **तदनन्तभागे मन:पर्ययस्य ॥ २८ ॥**

सूत्रार्थ–(तदनन्तभागे) उस अवधिज्ञान के अनन्तवे भाग मे (मन.पर्ययस्य) मन पर्ययज्ञान की प्रवृत्ति होती है । अर्थात् मन.पर्ययज्ञान का विषय सम्बन्ध अवधिज्ञान के अनन्तवे भाग मे होता है ।

प्रश्न १–मन पर्ययज्ञान का सूक्ष्म विषय स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर–जिस रूपी द्रव्य को सर्वावधिज्ञान जानता है उसके अनन्त भाग करने पर उसके एक भाग को मन पर्ययज्ञान जानता है । अवधिज्ञान से मन·पर्ययज्ञान का विषय अत्यन्त सूक्ष्म है ।

प्रश्न २–केवलज्ञान का विषय बताइये ?

उत्तर– **सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य ॥ २९ ॥**

सूत्रार्थ–(केवलस्य) केवलज्ञान का विषय सम्बन्ध (सर्वद्रव्यपर्यायेषु) सर्वद्रव्य व सर्व पर्यायो मे है । अर्थात् केवलज्ञान सब द्रव्य व उनकी सब पर्यायो को जानता है ।

प्रश्न १–सब द्रव्य कितने हैं ?

उत्तर–जीवद्रव्य अनन्तानन्त है, पुद्गल द्रव्य उनसे भी अनन्तानन्तगुणे है । जिनके अणु व स्कध दो भेद हैं । धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य ये एक-एक है, कालद्रव्य असख्यात हैं ।

प्रश्न २–द्रव्य किसे कहते है ?

उत्तर–जो सत् हो, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य गुण युक्त हो तथा गुण पर्याय सहित हो वह द्रव्य है ।

प्रश्न ३–पर्याय कितनी है ?

उत्तर–छहो द्रव्यो की पृथक्-पृथक् तीनो कालो मे होने वाली अनन्तानन्त पर्यायें है ।

प्रश्न ४–पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर–१ परि (समन्तात्) चारो तरफ से द्रव्य के प्रत्येक गुण को प्राप्त होती है वह पर्याय है ।

२ व्यतिरेकी पर्याय है ।

प्रश्न ५–केवलज्ञान का माहात्म्य क्या है ?

उत्तर–लोक मे ऐसा न कोई द्रव्य है और न कोई पर्यायसमूह है जो केवलज्ञान का विषय न हो। केवलज्ञान का माहात्म्य अपरिमित है यह त्रिकालवर्ती समस्त द्रव्य व उनकी समस्त पर्यायो को युगपत् जानता है। इसका अक्षय अनन्तकाल है। यह ज्ञान निरावरण है। क्षायिक है। अत इसका विषय सब द्रव्य व उनकी सब पर्याये है।

प्रश्न ६–एक आत्मा में एक साथ कितने ज्ञान हो सकते हैं ?

उत्तर– **एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥ ३० ॥**

सूत्रार्थ–(एकस्मिन) एक जीव मे (युगपत्) एक साथ (एकादीनि) एक को आदि लेकर (आचतुर्भ्य) चार ज्ञान तक (भाज्यानि) विभक्त करने योग्य हैं अर्थात् हो सकते हैं।

प्रश्न १–यदि एक आत्मा मे एक को आदि लेकर चार ज्ञान होते हैं तो कौन-कौन से ?

उत्तर–किसी आत्मा मे एक ज्ञान हो तो केवलज्ञान होता है। दो हो तो मति-श्रुत होते हैं। तीन ज्ञान हो तो मति-श्रुत अवधि या मति-श्रुत-मन.पर्यय होते है। चार ज्ञान हो तो मति-श्रुत-अवधि और मन·पर्यय होते हैं। पाँच ज्ञान एक साथ किसी भी जीव मे नही होते है।

प्रश्न २–पाँच ज्ञान एक आत्मा मे एक साथ क्यो नहीं हो सकते हैं ?

उत्तर–पाँच ज्ञानो मे केवलज्ञान निरावरण और क्षायिक है तथा मति-श्रुत-अवधि तथा मन पर्ययज्ञान ये चार ज्ञान सावरण और क्षायोपशमिक हैं। क्षायिक और क्षायोपशमिक दो ज्ञान एक आत्मा मे एक समय मे नही रह सकते अत पाँच ज्ञान एक साथ एक आत्मा मे कभी नही होते हैं।

प्रश्न ३–क्या मति-श्रुत और अवधिज्ञान मिथ्या भी होते हैं ?

उत्तर–जी हाँ, तीनो ज्ञान मिथ्या भी होते हैं—

मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च ॥ ३१ ॥

सूत्रार्थ–(मतिश्रुतावधयो) मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान (विपर्ययश्च) विपरीत भी होते है।

प्रश्न १–पाँच ज्ञान मे सम्यक् कितने हैं और मिथ्या कितने हैं ?

उत्तर–मति-श्रुत-अवधि-मन पर्यय-केवलज्ञान इस प्रकार पाँच ज्ञानो मे मन पर्यय केवलज्ञान तो सम्यक् ही हैं मति-श्रुत और अवधि तीन ज्ञान सम्यक् भी हैं और मिथ्या भी है। मिथ्याज्ञान होने पर मति-श्रुत को कुमति-कुश्रुत कहा जाता है और अवधिज्ञान को कुअवधि या विभगावधि नाम से कहा जाता है।

प्रश्न २–मति-श्रुत-अवधि ज्ञान विपरीत भी क्यो / कैसे होते हैं ?

उत्तर–मिथ्याज्ञान अज्ञान रूप होता है। सम्यक् ज्ञान सम्यक् रूप होता है। जैसे रज सहित कड़वी तुम्बी मे रखने से दूध कड़वा हो जाता है उसी प्रकार मिथ्यादर्शन के संसर्ग से इन ज्ञानो मे विपरीतता आ जाती है।

प्रश्न ३–मणि, सोना आदि द्रव्य अपवित्र विष्ठा घर में पड़ जाने पर दूषित नही होते उसी प्रकार मिथ्यादर्शन के ससर्ग से मति आदि ज्ञान भी दूषित नही होना चाहिये ?

उत्तर–मणि, सोना आदि पदार्थ भी विपरिणमन कराने वाले पदार्थों का ससर्ग पाकर दूषित हो जाते हैं उसी प्रकार मिथ्यादर्शन के ससर्ग से मति आदि ज्ञान भी दूषित हो जाते हैं।

प्रश्न ४–मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि दोनो ही चक्षु आदि से पदार्थों को समान देखकर मति-श्रुतादि ज्ञानो से समान निरूपण भी करते है फिर सम्यग्दृष्टि के ज्ञान को समीचीन मिथ्यादृष्टि के ज्ञान को मिथ्या क्यो कहते है ?

उत्तर- **सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥ ३२ ॥**

सूत्रार्थ–(सदसतो.) सत्-असत् पदार्थों मे (अविशेषात्) विशेष ज्ञान न होने से (यदृच्छोपलब्धे.) अपनी इच्छानुसार जैसा तैसा जानने के कारण (उन्मत्तवत्) पागल पुरुष के ज्ञान की तरह मिथ्यादृष्टि का ज्ञान मिथ्या ही होता है। अर्थात् जैसे पागल पुरुष सत्य-असत्य वस्तु के निर्णय के अभाव मे अपनी इच्छानुसार सत्य को असत्य, सत्य को सत्य, असत्य को असत्य भी कहता है वैसे ही मिथ्यादृष्टि भी इच्छानुसार बकवास करता है, तत्त्व-अतत्त्व का निर्णय नही कर पाता।

प्रश्न १–सत्-असत् किसे कहते है ?

उत्तर–सत्-प्रशस्त तत्त्वज्ञान को कहते है। असत्-अप्रशस्त तत्त्वज्ञान को कहते है।

प्रश्न २–मति-श्रुत-अवधिज्ञान मे विपर्यय किस कारण से होता है ?

उत्तर–सत्-असत् सम्बन्धी निर्णय न करके यदृच्छा से ग्रहण करने से मति आदि ज्ञानो मे विपर्यय होता है।

प्रश्न ३–दृष्टान्त द्वारा मति-श्रुत-अवधिज्ञान की विपर्यय अवस्था का स्पष्टीकरण कीजिये ?

उत्तर–मिथ्यादर्शन क उदय मे ज्ञान मे विपर्यय को प्राप्त आत्मा कभी तो रूपादिक अविद्यमान को विद्यमान कहता है ओर कभी विद्यमान वस्तु को भी अविद्यमान कहता है। कदाचित् सत् को सत् असत् को असत् ही मानता है। जैसे पित्त के उदय से आकुलित बुद्धिवाला माता को भार्या, भार्या को माता मानता है। अपनी इच्छानुसार माता को माता और भार्या को भार्या भी मानता है तथापि वह ज्ञान

सम्यग्ज्ञान नही है । वैसे ही आत्मा मे स्थित मिथ्यादर्शनरूप परिणाम के उदय से ज्ञान मे विपरीतता आती है ।

प्रश्न ४–विपर्यास कितने प्रकार से होता है ?

उत्तर–विपर्यास तीन प्रकार से होता है—१ कारण विपर्यास २ भेदाभेद विपर्यास ३ स्वरूप विपर्यास ।

प्रश्न ५–कारण विपर्यास किसे कहते हैं ?

उत्तर–कोई मानते हैं कि रूपादिक का मूल कारण अमूर्त और नित्य है, कोई जल के, कोई अग्नि व वायु के अलग-अलग परमाणु मानते है अर्थात् पृथ्वी मे काठिन्य, जल मे द्रवत्व, अग्नि मे उष्णात्व और वायु मे ईरणत्व गुण भिन्न जाति के है ऐसा मानते हे यह कारण विपर्यास है ।

प्रश्न ६–भेदाभेद विपर्यास किसे कहते है ?

उत्तर–नैयायिक मानते है कि कारण से कार्य भिन्न ही होता है । कुछ लोग कार्य को कारण से अभिन्न ही मानते है यह भेदाभेद विपर्यास है ।

प्रश्न ७–स्वरूप विपर्यास किसे कहते है ?

उत्तर–कोई रूपादिक को निर्विकल्प, कोई रूपादिक हैं ही नही आदि भिन्न कल्पनाएँ करते है । इसी प्रकार मिथ्यादर्शन के उदय से ये जीव प्रत्यक्ष-अनुमान के विरुद्ध नाना कल्पानाएँ करते है और उनमे श्रद्धान उत्पन्न करते हैं । यह स्वरूप विपर्यास है ।

प्रश्न ८–मति-श्रुत-अवधि ये तीनो विपरीत किस कर्म के उदय से होते है ? क्या ज्ञानावरण कर्म से उदय से होते है ?

उत्तर–नही । ज्ञान का कार्य जानना है । परन्तु जब ज्ञानावरणीय कर्म का उदय होता है तब ज्ञान की शक्ति कुठित हो जाती है परन्तु विपरीत नही होती । किन्तु मोहनीय कर्म के उदय से ज्ञान विपरीत रूप मे परिणमन कर लेता है ।

प्रश्न ९–मति-अज्ञान अथवा कुमति ज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर–दूसरे के उपदेश के बिना ही विष, यंत्र, कूट, पजर तथा बन्ध आदि के विषय में जो बुद्धि प्रवृत्त होती है उसे मत्यज्ञान कहते हैं ।

प्रश्न १०–कुश्रुत ज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर–हिसादि पाप कर्मो के विधायक तथा, असमीचीन तत्त्व के प्रतिपादक ग्रन्थो को कुश्रुत और उनके ज्ञान को कुश्रुतज्ञान कहते है ।

प्रश्न ११–सम्यग्ज्ञान और मिथ्याज्ञान का स्वरूप बताइये ?

उत्तर–ज्ञेय के अनुरूप जो ज्ञान होता है उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं । ज्ञेय के अनुरूप जो ज्ञान नही होता उसे मिथ्याज्ञान कहते है ।

प्रश्न १२–प्रमाण का एकदेश नय है उसके भेद बताइये ?

उत्तर–नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरूढैवम्भूता नयाः ॥ ३३ ॥

सूत्रार्थ–नैगम, सग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ और एवभूत ये सात हैं ।

प्रश्न १–नैगम नय किसे कहते हैं उदाहरण देकर बताइये ?

उत्तर–अनिष्पन्न अर्थ मे सकल्पमात्र को ग्रहण करने वाला नैगम नय है । जैसे चावल को चुगती हुई किसी महिला को देखकर कोई पूछता है—आप क्या कर रही हैं ? वह कहती है "मै भात पका रही हूँ" उस समय यद्यपि वह भात पका नही रही है परन्तु भात पकाने का सकल्प होने से नैगमनय इसे सत्यार्थ मानता है ।

प्रश्न २–संग्रह नय किसे कहते है ?

उत्तर–भेदसहित सब पर्यायो को अपनी जाति के अविरोध द्वारा एक मानकर सामान्य से सबको ग्रहण करनेवाला नय सग्रहनय है । जैसे–सत्, द्रव्य और घट आदि ।

प्रश्न ३–व्यवहार नय किसे कहते है ?

उत्तर–सग्रहनय के द्वारा ग्रहण किये गये पदार्थों का विधिपूर्वक भेद करना व्यवहार नय है ।

प्रश्न ४–विधि क्या है ?

उत्तर–जो सग्रहनय के द्वारा ग्रहीत अर्थ है उसी के आनुपूर्वी क्रम से व्यवहार प्रवृत्त होता है, यह विधि है । यथा—द्रव्य के दो भेद । जीव-अजीव । जीव के दो भेद—ससारी और मुक्त । ससारी के दो भेद—त्रस,स्थावर । स्थावर के पाँच भेद। त्रस के दो भेद विकलेन्द्रिय-सकलेन्द्रिय । विकलेन्द्रिय के तीन भेद—दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय । सकलेन्द्रिय के दो भेद—असैनी सैनी । इस प्रकार इस नय की प्रवृत्ति वही तक होती है जहाँ तक वस्तु मे फिर कोई विभाग करना सभव न हो ।

प्रश्न ५–ऋजुसूत्र नय किसे कहते है ?

उत्तर–ऋजु का अर्थ सरल है अर्थात् जो सरल को स्वीकार करता है वह ऋजुसूत्र नय है । यह भूत और भावि काल के विषयो को ग्रहण न करके मात्र वर्तमान काल के विषयो को ग्रहण करता है ।

प्रश्न ६–वर्तमान को ही ग्रहण क्यों करता है ?

उत्तर–क्योंकि अतीत के नाश और अनागत के अनुत्पन्न होने से उनमे व्यवहार नही हो सकता । वर्तमान काल समयमात्र है और उसके विषयभूत पर्यायमात्र को विषय करने वाला ऋजुसूत्र नय है ।

प्रश्न ७–शब्दनय किसे कहते है ?

उत्तर–लिंग, सख्या, साधन आदि के व्यभिचार की निवृत्ति करने वाला शब्दनय है। यथा-पुष्य, तारका और नक्षत्र। ये भिन्न-भिन्न लिंग के शब्द है। इनको मिलाकर प्रयोग लिंग व्यभिचार है। जल आप , वर्षा. ऋतु ये एकवचनान्त और बहुवचनान्त शब्द है। इनका विशेषण विशेष्य रूप से प्रयोग करना सख्या व्यभिचार है।

"सेना-पर्वतमधिवसति" सेना पर्वत पर रहती है। यहाँ अधिकरण कारक के अर्थ मे सप्तमी विभक्ति न होकर द्वितीया विभक्ति है अत साधन व्यभिचार है।

प्रश्न ८–समभिरूढ़ नय किसे कहते है ?

उत्तर–जो नाना अर्थों को सम् अर्थात् छोड़कर प्रधानता से एक अर्थ मे रूढ़ होता है वह समभिरूढ़ नय है। यथा—१ "गो" इस शब्द के वचन आदि अनेक अर्थ पाये जाते हैं तो भी वह "पशु" इस अर्थ मे रूढ़ है। २ यथा—आप कहाँ रहते है ? अपने मे, क्योंकि अन्य वस्तु की अन्य मे वृत्ति नही हो सकती।

प्रश्न ९–एवभूत नय किसे कहते है ?

उत्तर–जो वस्तु जिस पर्याय को प्राप्त हुई है उसी रूप निश्चय करानेवाले नय को एवभूत नय कहते है। तात्पर्य यह है कि जिस शब्द का जो वाच्य है उस रूप क्रिया के परिणमन के समय ही उस शब्द का प्रयोग करना युक्त है अन्य समय मे नही। जैसे राज्य करता हुआ ही राजा है अन्य समय नही। आज्ञा ऐश्वर्यवाला हो तभी इन्द्र है अभिषेक पूजा करने वाला नही।

अथवा आत्मा जिस ज्ञान से परिणत हो उसी रूप से उसका निश्चय कराने वाला एवभूत नय है यथा इन्द्ररूप ज्ञान से परिणत आत्मा इन्द्र है। तीर्थ रूप ज्ञान से परिणत आत्मा तीर्थ है। क्रोधरूपज्ञान से परिणत आत्मा क्रोध है।

प्रश्न १०–नैगम, सग्रह, व्यवहार आदि नयो का इस क्रम से ही वर्णन क्यो किया ?

उत्तर–१ ये नैगम आदि सातो ही नय आगे-आगे सूक्ष्म विषयवाले होने के कारण इनका यह क्रम रखा गया है।

२ पहला-पहला नय आगे-आगे के नय का हेतु है इसलिये भी यह क्रम कहा। यथा नैगम नय सग्रह नय का, संग्रहनय व्यवहारनय का, व्यवहारनय ऋजुसूत्र का, ऋजुसूत्र शब्दनय का, शब्दनय समभिरूढ़नय का और समभिरूढ़नय एवभूतनय का हेतु है।

प्रश्न ११–क्या ये सातो नय निरपेक्ष रूप से सम्यक्त्व के हेतु हो सकते है?

उत्तर–सातो ही नय निरपेक्ष होंगे तो मिथ्या हो जायेंगे, सापेक्ष होने पर ही ये सम्यक्त्व के हेतु बनते हैं। कहा भी है—"निरपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षतेऽर्थकृत"।

प्रश्न १२–ये सातो नय स्वतत्र रहकर पुरुष की अर्थक्रिया मे समर्थ होते हैं या नही ?

उत्तर–जिस प्रकार तन्तु पृथक्-पृथक् रहकर शीत निवारण आदि कार्य करने मे समर्थ नहीं होते हैं उसी प्रकार परस्पर निरपेक्ष नय पुरुष की अर्थक्रिया करने मे समर्थ नहीं हो सकते अर्थात् सम्यग्दर्शन आदि कार्य को करने मे समर्थ नही होते ।

प्रश्न १३–तन्तु का दृष्टान्त समीचीन नही है क्योकि एक तन्तु त्वचा की रक्षा करने मे समर्थ है, एक वल्कल, पलाशादि बाँधने मे समर्थ होती है परन्तु निरपेक्षनय तो थोड़ा भी सम्यग्दर्शनरूपी कार्य को उत्पन्न नही कर सकते हैं । अत अन्य कोई दृष्टान्त दीजिये ?

उत्तर–आचार्य श्री का यह दृष्टान्त युक्त ही है । क्योकि उनका अभिप्राय यह है कि निरपेक्ष तन्तु से वस्त्रादि कार्य नहीं हो सकता । पृथक्-पृथक् तन्तु का कार्य वस्त्र का कार्य नही है । तन्तु का कार्य भी स्वीकार करे तो वहाँ तन्तु मे भी परस्पर सापेक्ष अवयव होते है अत. दृष्टान्त समीचीन ही है । अत सिद्ध है कि परस्पर सापेक्ष नय ही सम्यग्दर्शन की सिद्धि के कारण है ।

प्रश्न १४–कार्य सिद्धि कितने नयो से होती है ?

उत्तर–सातो नय कार्य सिद्धि के हेतु है । पूर्व–पूर्व का हेतु है आगे आगे का साध्य है ।

प्रश्न १५–सात नय मे द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक या शब्द–अर्थ नय कौन–कौन से हैं ?

उत्तर–जहाँ कालकृतभेद है वह पर्यायार्थिक नय है तथा जहाँ कालकृत भेद नही वह द्रव्यार्थिकनय हैं । सप्त नयो मे नैगम-सग्रह-व्यवहार द्रव्यार्थिक नय ह तथा ऋजुसूत्र-शब्द-समभिरूढ और एवभूत ये पर्यायार्थिक नय ह । नैगम-सग्रह-व्यवहार शब्दनय है । ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवभूत ये अर्थनय ह ।

प्रश्न १६–नय की आवश्यकता जीवन मे क्या है ?

उत्तर–नय का ज्ञान सुखी सतोषी जीवन जीने की एक कला है । नय का ज्ञान एक दूसरे के विचारो का आदान–प्रदान करने मे सहायक बन किसी को तिरस्कृत नही करता । नयापेक्षा नही जानने से मन भेद–मतभेद खड़े हो जाते हैं । नयापेक्षा वात्सल्य का प्रतीक है यह एक दूसरे को जोड़ती है । नयापेक्षा से रहित मानव मस्तिष्क मात्र एक हठवाद है, पतन, द्वेष, व आपसी मतभेद का कारण है । नय की सत्यता का ज्ञान जीवन के पग–पग पर एक मार्गदर्शक है । "सफल जीवन की यह कुञ्जी है" ।

प्रश्न १७–दर्शन ज्ञान चारित्र को लोक मे क्या कहते हैं ?

उत्तर– Right faith, Right knowledge and Right Charactor

सत्य श्रद्धा, सत्य ज्ञान और सत्य चारित्र ।

प्रश्न१८–नैगम आदि नयो का उदाहरण दीजिये।

उत्तर–किसी मनुष्य का पापी लोगो की संगति करते हुए देखकर **नैगमनय** से कहा जाता है कि यह पुरुष नारकी है।

जब वह मनुष्य प्राणीवध का विचार-कर सामग्री का सग्रह करता है तब वह **सग्रहनय** से नारकी है।

जब वह मनुष्य हाथ में धनुष-बाण आदि लिये मृगो की खोज मे भटकता फिरता है तब वह **व्यवहारनय** से नारकी है।

जब आखेट स्थान मे बैठकर पापी मृगो का आघात करता है तब वह **ऋजुसूत्र नय** का नारकी कहलाता है।

जब वह मनुष्य हिसा कर्म से युक्त हो जीवो को प्राणो से रहित कर देता है तब वह **शब्दनय** से नारकी कहलाता है।

जब वह जीव नरकायु का बधक होकर नारक कर्म से सयुक्त हो जावे तभी वह **समभिरूढनय** से नारकी कहलाता है तथा

जब वह मनुष्य नरक गति मे नरक के दु खो का अनुभव करता है तब वह **एवभूतनय** से नारकी है। [ध पु ७ पृ २८-२९]

इसी प्रकार दूसरा उदाहरण और देखिये—

किसी व्यक्ति को ग्राम से चलते हुए चिडिया के चहचहाने की आवाज सुनाई दी। उसने अपने मित्र से पूछा—मित्र यह चिडिया कहाँ चहचहा रही है ? मित्र ने कहा—चिड़िया ग्राम मे चहचहाती है–नैगमनय

पुरुष—गॉव मे कहाँ ?

मित्र—गॉव मे वृक्ष पर—सग्रहनय

पुरुष—वृक्ष पर कहाँ ?

मित्र—झाडी मे—व्यवहारनय

पुरुष—झाडी मे कहाँ ?

मित्र—शाखा मे—ऋजुसूत्रनय

पुरुष—शाखा मे कहाँ ?

मित्र—शाखा के एक भाग मे—शब्दनय

पुरुष—शाखा के एक भाग मे कहाँ ?

मित्र—अपने शरीर मे—समभिरूढनय

पुरुष—अपने शरीर मे कहाँ ?

मित्र—चिडिया अपने शरीर मे कठ मे चहचहाती है—एवभूतनय

जैसे यहाँ उदाहरण मे आगे आगे विषय सूक्ष्म होता गया है इसी प्रकार नैगम नयादि सप्तनयो का विषय भी आगे-आगे सूक्ष्म होता गया है।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे प्रथमोऽध्याय ।।१।।

द्वितीय अध्याय

विवेचना (सूत्र ५३)

सूत्र १-७ मे—जीव के असाधारण भावो के नाम । भावो के उत्तरभेद व नामो का कथन ।

सूत्र ८-१४ मे—जीव का लक्षण, उपयोग के भेद, जीव के भेद, ससारी जीवो के भेद, त्रस जीवो के भेद ।

सूत्र १५-२४ मे—इन्द्रियॉं, इन्द्रियो के मूलभेद, द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय स्वरूप, पचेन्द्रिय के नाम व इन्द्रियो के विषय, मन का विषय, इन्द्रियो के स्वामी व सैनी जीव का कथन ।

सूत्र २५-३० मे—विग्रहगति मे योग, गमन कैसा, जीवो की गति [मुक्त व ससारी की] अविग्रहगति, विग्रहगति मे आहारक-अनाहारक व्यवस्था का कथन ।

सूत्र ३१-३५ मे—जन्म के भेद, योनियो के भेद, गर्भ, उपपाद व सम्मूर्छनजन्म के स्वामी का कथन है ।

सूत्र ३६-३९ मे—शरीरो के नाम, भेद । शरीरो की सूक्ष्मता, शरीर के प्रदेशो का कथन है ।

सूत्र ४०-४२ मे—तैजस और कार्माण शरीर की विशेषता का कथन है ।

सूत्र ४३ मे—एक जीव के एक साथ होने वाले शरीरो की सख्या वर्णित है।

सूत्र ४४ मे—कार्मणशरीर की विशेषता ।

सूत्र ४५-४९ मे—औदारिक, वैक्रियिक, तैजस, आहारक शरीर के लक्षण स्वामी व विशेषता का कथन है ।

सूत्र ५०-५२ मे—तीन वेदो के स्वामी का कथन है तथा

सूत्र ५३ मे—किन जीवो की अकालमृत्यु नही होती का वर्णन है ।

इस प्रकार द्वितीय अध्याय के ५३ सूत्रो मे जीवो के भाव, जीव का स्वरूप, इन्द्रियॉं, जन्म, शरीर आदि का सागोपाग विवेचन है ।

●

अथ द्वितीयोऽध्यायः

प्रश्न १–जीवादि पदार्थों का श्रद्धान सम्यग्दर्शन कहलाता है। परन्तु जीव पदार्थ का स्वतत्त्व क्या है इसका स्पष्टीकरण कीजिये ?

उत्तर– औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्व-मौदयिकपारिणामिकौ च ॥ १ ॥

सूत्रार्थ–(औपशमिकक्षायिकौभावौ) औपशमिक, क्षायिकभाव (मिश्रश्च) मिश्र (औदयिकपारिणामिकौ च) और औदयिक, पारिणामिक भाव (जीवस्य) जीव के (स्वतत्त्वम्) स्वतत्त्व है। अर्थात् औपशमिक, क्षायिक, मिश्र, औदयिक और पारिणामिक भाव ये जीव के स्वतत्त्व कहलाते है।

प्रश्न १–औपशमिक भाव किसे कहते हैं ?

उत्तर–उपशम ही जिस भाव का प्रयोजन है वह औपशमिक भाव है। अथवा कर्मों के उपशम से आत्मा का जो भाव होता है वह औपशमिक भाव है।

प्रश्न २–उपशम किसे कहते है ? उदाहरण देकर बताइये ?

उत्तर–कर्मों का उदय मे नही आना ही उपशम है। जैसे कतकादि द्रव्य को पानी मे डालने पर कीचड़ नीचे बैठ जाने पर जल की स्वच्छता होती है, वैसे ही आत्मा मे कर्म की निजशक्ति का उदय न होने पर जीव के परिणामो की जो निर्मलता होती है उसे उपशम कहते हैं।

प्रश्न ३–क्षायिकभाव किसे कहते हैं ?

उत्तर–क्षय ही जिस भाव का प्रयोजन है वह क्षायिकभाव कहलाता है। अथवा कर्मों के क्षय से जो भाव होता है वह क्षायिकभाव है।

प्रश्न ४–क्षय किसे कहते है ?

उत्तर–कर्मों का आत्मा से अत्यन्त अलग हो जाना क्षय कहलाता है, जैसे कीचड़ रहित जल को दूसरे बर्तन मे डाल देने से जल अत्यत स्वच्छ हो जाता है वैसे ही आत्मा से कर्मों का अत्यन्त पृथक् हो जाना क्षय है।

प्रश्न ५–मिश्र या क्षायोपशमिक भाव किसे कहते हैं ?

उत्तर–कर्मों के क्षयोपशम से जो भाव होता है उसे क्षायोपशमिक (मिश्र) भाव कहते हैं। जैसे पानी की स्वच्छता को बिल्कुल नष्ट करने वाले कीचड़ के परमाणुओ के मिले रहने पर पानी मे स्वच्छास्वच्छ अवस्था होती है वैसे ही उभय रूप भाव को क्षयोपशम (मिश्र) भाव कहते हैं।

प्रश्न ६–क्षयोपशम किसे कहते हैं ?

उत्तर–वर्तमानकाल मे उदय आनेवाले सर्वघाती स्पर्द्धको का उदयाभावी क्षय तथा उन्ही के आगामीकाल मे उदय आनेवाले निषेको का सदवस्थारूप उपशम और देशघातिस्पर्द्धको का उदय होने को क्षयोपशम कहते है ।

प्रश्न ७–सर्वघाती किसे कहते है ?

उत्तर–जो जीव के सम्यक्त्व तथा ज्ञानादि अनुजीवी गुणो को पूरी तौर से घाते उसे सर्वघाती कहते है ।

प्रश्न ८–उदयाभावी क्षय किसे कहते हैं ?

उत्तर–बिना फल दिये हुए उदयागत कर्मों का खिर जाना उदयाभावीक्षय है।

प्रश्न ९–निषेक किसे कहते हैं ?

उत्तर–एक समय मे जितने कर्मपरमाणु उदय मे आते है उन सबके समूह को निषेक कहते है ।

प्रश्न १०–देशघाति किसे कहते है ?

उत्तर–जो जीव के ज्ञानादि गुणो को एकदेश घाते वह देशघाति है ।

प्रश्न ११–औदयिक भाव किसे कहते है ?

उत्तर–कर्मों के उदय से जो भाव होता है वह औदयिक भाव है । अथवा उदय ही जिस भाव का प्रयोजन है वह औदयिक भाव है ।

प्रश्न १२–उदय किसे कहते है ?

उत्तर–द्रव्यादि निमित्त के वश से कर्मों का फल होना उदय है अर्थात् स्थिति को पूरी करके कर्मों के फल देने को उदय कहते है ।

प्रश्न १३–पारिणामिक भाव किसे कहते है ?

उत्तर–जो भाव कर्मों के उपशम, क्षय, क्षयोपशम तथा उदय की अपेक्षा न रखता हुआ आत्मा का स्वभाव मात्र हो उसे पारिणामिक भाव कहते है ।

प्रश्न १४–आठ कर्मों मे किस कर्म की कौन–कौन सी अवस्था होती है ?

उत्तर–ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इन तीन घातिया कर्मों की उदय, क्षय और क्षयोपशम तीन अवस्थाएँ होती हैं । मोहनीय कर्म की उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम चारो तथा शेष कर्मों की उदय और क्षय दो ही अवस्थाए होती है ।

चार्ट

	उदय	उपशम	क्षय	क्षयोपशम
ज्ञानावरण	✓	x	✓	✓
दर्शनावरण	✓	x	✓	✓
वेदनीय	✓	x	✓	x
मोहनीय	✓	✓	✓	✓
आयु	✓	x	✓	x
नाम	✓	x	✓	x
गोत्र	✓	x	✓	x
अन्तराय	✓	x	✓	✓

प्रश्न १५–कौन-कौन से कर्म के निमित्त से कौन-कौन से भाव होते है ?

उत्तर–ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इनके क्षय से क्षायिकभाव, ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इनके क्षयोपशम से क्षायोपशमिक भाव, ज्ञानावरणादि आठो कर्मों के उदय मे औदयिकभाव होते हैं ।

दर्शनमोहनीय कर्म के उपशम से
व चारित्रमोहनीय कर्म के उपशम से
औपशमिक भाव होते हैं ।

प्रश्न १६–पारिणामिक भाव व परम पारिणामिक भाव मे क्या अन्तर है ?

उत्तर–पारिणामिक भाव शब्द तत्त्वार्थसूत्र मे आया है यह भाव भव्य-अभव्य दोनो जीवो के होता है परन्तु परम पारिणामिक भाव द्रव्यानुयोग का शब्द है इसका अर्थ होता है "आत्मा की ओर लक्ष्य" , यह भव्यजीवो के ही होता है ।

प्रश्न १७–सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि के कौन-कौन से भाव होते है ?

उत्तर–१ क्षायिक और औपशमिक भाव सम्यग्दृष्टि जीव को ही होते है ।

२ क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक भाव सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि दोनो जीवो को होते है ।

प्रश्न १८–भाव का अर्थ क्या है ?

उत्तर–भाव का अर्थ पर्याय है । ये पर्याये किसी न किसी निमित्त से होती है।

प्रश्न १९–भावो का जीव के साथ क्या सम्बन्ध है ?

उत्तर–जीव आधार है और भाव आधेय है । जीव और भाव का आधार-आधेय सम्बन्ध है ।

प्रश्न २०–सूत्र मे पहले उपशम फिर क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक यह क्रम क्यो रखा गया है ?

उत्तर–सम्यग्दर्शन का प्रकरण होने से यह क्रम रखा है अर्थात् तीनो सम्यक्त्व मे सबसे पहले औपशमिक सम्यक्त्व होता है अत सबसे पहले उपशम भाव को लिया है। क्षायिकभाव औपशमिकभाव का प्रतियोगी है तथा औपशमिक सम्यग्दृष्टियो से क्षायिक सम्यग्दृष्टि (ससारी अपेक्षा) असख्यातगुणे है अत औपशमिक के बाद क्षायिक को लिया है। क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि उपशम और क्षायिक दोनो से असख्यातगुणे हैं अत तीसरे क्रम मे उनको लिया है। इन सबसे अनन्तगुणे होने के कारण इन सबके अन्त मे औदयिक और पारिणामिक भावो को रखा है।

प्रश्न २१–पाँच भावो मे निमित्त की प्रधानता से कितने और योग्यता की प्रधानता से कितने भाव होते है ?

उत्तर–पाँच भावो मे उपशम-क्षायिक-क्षायोपशमिक और औदयिक ये चार भाव निमित्त की प्रधानता से कहे गये हैं तथा पारिणामिकभाव योग्यता की प्रधानता से। यद्यपि कार्य तो अपनी योग्यता से होता है किन्तु जिसके बिना जो कार्य नही होता वह उसका सुनिश्चित निमित्त कहा जाता है। तदनुसार औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और औदयिक ये चार नैमित्तिक भाव ठहरते हैं।

प्रश्न २२–भावो के उत्तर भेद कितने हैं ?

उत्तर– **द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम् ॥ २ ॥**

सूत्रार्थ–ऊपर कथित पाँचो भाव (यथाक्रमम्) क्रम से (द्विनवाष्टादशैकविशति-त्रिभेदा) दो, नव, अठारह, इक्कीस और तीन भेदवाले हैं ॥२॥

प्रश्न १–भावो के उत्तरभेद कितने हैं ?

उत्तर–औपशमिक भाव के दो, क्षायिक के नौ, क्षायोपशमिक के अठारह, औदयिक के इक्कीस और पारिणामिक भाव के तीन भेद हैं। २ + ९ + १८ + २१ + ३ = ५३ भेद। पाँच भाव मूल है इनके उत्तर भेद ५३ है।

प्रश्न २–औपशमिक भाव के दो भेद कौन से है ?

उत्तर– **सम्यक्त्वचारित्रे ॥ ३ ॥**

सूत्रार्थ–औपशमिक सम्यक्त्व और औपशमिक चारित्र ये दो औपशमिक भाव के भेद हैं।

प्रश्न १–औपशमिक सम्यक्त्व किसे कहते है ?

उत्तर–अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ और मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व तथा सम्यक्प्रकृति इन सात प्रकृतियो के उपशम से जो सम्यक्त्व होता ह उसे औपशमिक सम्यक्त्व कहते है।

प्रश्न २–औपशमिक सम्यक्त्व के लिये सात प्रकृतियो का ही उपशम है या पाँच का भी ?

उत्तर—अनादि मिथ्यादृष्टि और किसी-किसी सादि मिथ्यादृष्टि के अनन्तानुबन्धी की ४ और मिथ्यात्व १ = प्रकृतियो के उपशम से औपशमिक सम्यक्त्व होता है।

प्रश्न २ अ—औपशमिक चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर—समस्त मोहनीय कर्म के उपशम से होने वाले चारित्र को औपशमिक चारित्र कहते है।

प्रश्न ३—अनादिकाल से मिथ्यादृष्टि भव्य जीव के कर्मो के उदय से प्राप्त कलुषता के रहते हुए उपशम कैसे होता है ?

उत्तर—काललब्धि आदि के निमित्त से अनादि मिथ्यादृष्टि भव्य जीव के कर्मोदय से प्राप्त कलुषता का उपशम होता है।

प्रश्न ४—काललब्धि कितने प्रकार की है ?

उत्तर—कर्मयुक्त कोई भी भव्य आत्मा अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल के शेष रहने पर प्रथम सम्यक्त्व के ग्रहण करने के योग्य होता है यह एक काललब्धि है। दूसरी काललब्धि का सम्बध कर्मस्थिति से है। अर्थात् जब बँधने वाले कर्मो की स्थिति अन्त कोड़ाकोड़ी सागर पड़ती हे और विशुद्ध परिणामो के वश से सत्ता मे स्थित कर्मो की स्थिति सख्यात हजार सागर कम अन्त कोड़ाकोड़ी सागर प्राप्त होती है तब यह जीव प्रथम सम्यक्त्व से योग्य होता हे।

तीसरी काललब्धि भव अपेक्षा से है–जो भव्य है, सज्ञी हे, चारो गतियो मे से किसी भी गति का हो पर्याप्तक और सर्वविशुद्ध है वही प्रथम सम्यक्त्व को प्राप्त करता हैं।

विशेष—अर्द्धपुद्गल परावर्तन प्रत्येक परिवर्तन मे आता है। यह एक सधिकाल हे यदि जहॉ जीव ने पुरुषार्थ करके सम्यक्त्व प्राप्त कर लिया तो उसका ससार परिभ्रमण काल अर्द्धपुद्गल परावर्तन मात्र रह जाता है यदि सम्यक्त्व प्राप्त नही किया तो अनन्तकाल ससार परिभ्रमण करना होता है।

प्रश्न ५—अर्द्धपुद्गल परावर्तन का काल कितना है ?

उत्तर—परिवर्तन पॉच होते है–द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव। इनमे द्रव्य परिवर्तन के दो भेद हे–कर्म और नोकर्म। नोकर्म परिवर्तन का जितना काल है वही अर्द्धपुद्गल परावर्तन का काल जानना चाहिये।

प्रश्न ६—भव्यजीव के अर्द्धपुद्गल परावर्तनकाल शेष रहने पर ही सम्यक्त्व प्राप्त होना है या कोई विशेषता है ?

उत्तर—अर्द्धपुद्गल परावर्तनकाल शेष रहने पर सम्यक्त्व की प्राप्ति होनी ही चाहिये ऐसा कोई नियम नही है। हॉ इसके पहले सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नही होती यह सुनिश्चित है।

प्रश्न ७—क्षायिकभाव के नौ भेदो के नाम बताइये ?

ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च ।।४।।

सूत्रार्थ—क्षायिक ज्ञान, क्षायिक दर्शन, क्षायिक दान, क्षायिक लाभ, क्षायिक भोग,

क्षायिक उपभोग, क्षायिक वीर्य, क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिक चारित्र ये क्षायिक भाव के नौ भेद हैं।

प्रश्न १–क्षायिक ज्ञान, दर्शन, लाभ, भोगोपभोगादि का स्वरूप अलग-अलग बताइये ?

उत्तर–ज्ञानावरण कर्म के अत्यन्त क्षय से **क्षायिक केवलज्ञान** होता है। दर्शनावरण कर्म के अत्यन्त क्षय से **क्षायिक केवलदर्शन** होता है।

दानान्तराय कर्म के क्षय से अनन्त प्राणियो के समुदाय का उपकार करनेवाला **क्षायिक अभयदान** होता है।

लाभान्तराय कर्म के क्षय से कवलाहार क्रिया से रहित केवलियो के **क्षायिक लाभ** होता है जिससे उनके शरीर को बल प्रदान करने मे कारणभूत, दूसरे मनुष्यो को असाधारण अर्थात् कभी न प्राप्त होने वाले, परम शुभ और सूक्ष्म ऐसे अनन्त परमाणु प्रतिसमय सम्बन्ध को प्राप्त होते है। यह **क्षायिक लाभ** है।

समस्त भोगान्तराय कर्म के क्षय से अतिशयवाला **क्षायिक अनन्त** भोग होते ह जिससे कुसुमवृष्टि आदि होते है।

समस्त उपभोगान्तराय के नष्ट हो जाने से अनन्त क्षायिक उपभोग होता है जिससे सिंहासन, चामर, तीन छत्र आदि होते हैं।

वीर्यान्तराय कर्म के अत्यन्त क्षय से **अनन्त वीर्य** प्रकट होता है जिससे पूर्ण ज्ञान (केवलज्ञान) धारण करने की अनन्तशक्ति आती है।

अनन्तानुबंधी की चार और मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व तथा सम्यक्प्रकृति सात-प्रकृतियो के क्षय से क्षायिक सम्यक्त्व होता है।

चारित्रमोह की इक्कीस प्रकृतियो के क्षय से **क्षायिक चारित्र** होता है।

प्रश्न २–सूत्र मे जो च शब्द आया है इससे किसका ग्रहण होता है।

उत्तर–सूत्र मे च शब्द स क्षायिकयम्यक्त्व औरक्षायिक चारित्र का ग्रहण करना चाहिय।

प्रश्न ३–क्षायोपशमिक भाव के कितने भेद है ?

उत्तर– **ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्ध्यश्चतुस्त्रित्रिपञ्चभेदाः, सम्यक्त्व-चारित्रसंयमासंयमाश्च ॥५॥**

सूत्रार्थ–(ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्ध्यश्चतुस्त्रित्रिपञ्चभेदा) मति-श्रुत-अवधि-मन पर्यय ये चार ज्ञान, कुमति-कुश्रुत-कुअवधि ये तीन अज्ञान, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन ये तीन दर्शन, क्षायोपशमिक दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य ये पाँच लब्धियाँ तथा (सम्यक्त्वचारित्रसयमासंयमाश्च) क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक चारित्र और सयमासयम ये अठारह भाव क्षायोपशमिक भाव हैं।

प्रश्न १–क्षायोपशमिक भाव किसे कहते हैं ?

उत्तर–वर्तमान काल मे सर्वघाती स्पर्द्धको का उदयाभावी क्षय, आगामी काल अपेक्षा उन्हीं का सदवस्थारूप उपशम होने से तथा देशघाती स्पर्द्धको का उदय होने पर क्षायोपशमिक भाव होता है ।

प्रश्न २–क्षायोपशमिक सम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर–अनन्तानुबन्धी चार कषाय, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन छह प्रकृतियो के उदयाभावीक्षय और सदवस्थारूप उपशम से देशघाती स्पर्द्धकवाली सम्यक्त्व प्रकृति के उदयमे जो तत्त्वार्थश्रद्धान होता है वह क्षायोपशमिक सम्यक्त्व है।

प्रश्न ३–क्षायोपशमिक चारित्र किसे कहते है ?

उत्तर–अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण ओर प्रत्याख्यानावरण इन बारह कषायो के उदयाभावी क्षय होने मे और इन्ही के सदवस्थारूप उपशम होने मे तथा चार सज्वलनो मे से किसी एक देशघाती प्रकृति के उदय होने पर और नौ नोकषायो का यथासभव उदय होने पर जो त्यागरूप परिणाम होता है वह क्षायोपशमिक चारित्र हैं ।

प्रश्न ४–सयमासयम किसे कहते है ?

उत्तर–अनन्तानुबन्धी और अप्रत्याख्यानावरण कषाय की आठ प्रकृतियो के उदयाभावी क्षय होने तथा सदवस्थारूप उपशम होने से तथा प्रत्याख्यानावरण कषाय के और सज्वलन कषाय के देशघाती स्पर्द्धको के उदय होने पर तथा नौ नोकषायो का यथासभव उदय होने पर जो विरताविरत परिणाम होते है वह सयमासयम कहलाता है ।

प्रश्न ५–सयमासयम भाव मे सयम और असयम किस अपेक्षा होता है ?

उत्तर–त्रस जीवो की हिसा के त्याग की अपेक्षा सयम होता है तथा स्थावर जीवो की हिसा के त्याग के अभाव की अपेक्षा असयम होता है इसीलिये संयमासयम भाव कहते है ।

प्रश्न ६–क्षायिक भावो मे भी पॉच लब्धियो का कथन किया और क्षायोशमिक भावो मे भी किया गया दोनो मे क्या अन्तर है ?

उत्तर–क्षायिक भावो मे ५ लब्धियॉ अन्तराय कर्म के क्षय से कही है तथा क्षायोपशमिक भावो मे ५ लब्धियाँ अन्तराय कर्मके क्षयोपशम से कही हैं ।

प्रश्न ७–औदयिक भाव के २१ भेद कौन से है ?

उत्तर–**गतिकषायलिङ्गमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतु-स्त्र्येकैकैकैकषड्भेदाः ॥६॥**

सूत्रार्थ–चार गति, चार कषाय, तीन लिंग, मिथ्यादर्शन, अज्ञान, असंयम और असिद्धत्व और छह लेश्याएँ ये औदयिक भाव २१ है ।

प्रश्न १–गति कषाय और तीन लिंग को औदयिक भाव क्यो कहा गया है ?

उत्तर–गति नामकर्म उदय से प्राप्त होती है, कषाय व लिंग मोहनीय कर्म के उदय का फल है अत इनको औदयिक भाव कहा है । स्त्रीवेद के उदय से स्त्रीलिंग, पुरुष व नपुसकवेद के उदय से पुरुष व नपुसक लिंग होते है ।

प्रश्न २–मिथ्यादर्शन किसे कहते है वह किस कर्म के उदय से होता है ?

उत्तर–मिथ्यादर्शन कर्म के उदय से जो तत्वो का अश्रद्धानरूप परिणाम होता है वह मिथ्यादर्शन है । यह दर्शनमोहनीय कर्म की मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से होता है अत औदयिक भाव है ।

प्रश्न ३–अज्ञान, असयम व असिद्धत्व इनका लक्षण बताते हुए ये किस कर्म के उदय से होते है बताइये ?

उत्तर–पदार्थों के नही जानने को अज्ञान कहते है, यह ज्ञानावरण कर्म के उदय से होता है अत औदयिक है । सयम का अभाव असयमभाव है, यह चारित्रमोह के सर्वघाती स्पर्द्धको के उदय से होता है अत औदयिक है । सिद्धत्व अवस्था का अभाव असिद्धभाव है, यह भाव कर्मोदय सामान्य की अपेक्षा होता है अत औदयिक है ।

प्रश्न ४–लेश्या को औदयिक भाव क्यो कहा गया है ?

उत्तर–भाव लेश्या कषाय के उदय से अनुरजित योग की प्रवृत्तिरूप है इसलिये वह औदयिक कही जाती है ।

प्रश्न ५–उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय व सयोगकेवली गुणस्थान मे शुक्ललेश्या है परन्तु वहाँ कषाय का उदय नही है अत लेश्या को औदयिकपना नही बनता ?

उत्तर–उपशान्तकषाय आदि तीनो गुणस्थानो मे भी जो योगप्रवृत्ति के उदय से अनुरञ्जित है वही यह है इस प्रकार भूतभावप्रज्ञापन नय की अपेक्षा लेश्या को औदयिक भाव कहा गया है ।

प्रश्न ६–गति कषाय आदि भावो को औदयिक भाव क्यो कहा गया है ?

उत्तर–गति आदि २१ भावो मे कर्मों का उदय निमित्त है अत· इन्हे औदयिक भाव कहा गया है ।

प्रश्न ७–पारिणामिक भाव के ३ भेद बताइये ?

उत्तर– **जीवभव्याभव्यत्वानि च ॥ ७ ॥**

सूत्रार्थ–जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व ये तीन पारिणामिक भाव है ।

प्रश्न १–जीवत्व भाव किसे कहते हैं ?

उत्तर–जीवत्व का अर्थ चैतन्य है, जिसमे ज्ञान-दर्शन चेतना पाई जाती है वह जीवत्वभाव है ।

प्रश्न २–भव्य-अभव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर–जिसके सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र भाव प्रगट होने की योग्यता है वह भव्य कहलाता है जिसके रत्नत्रय भाव प्रगट होने की योग्यता नही है वह अभव्य है ।

प्रश्न ३–आप भव्य है या अभव्य ?

उत्तर–हम भव्य हैं क्योकि हमने तीर्थराज सम्मेद-शिखर की वन्दना की है । अभव्य को तीर्थराज की वन्दना कभी नही होती है ।

प्रश्न ४–जीवत्व आदि को पारिणामिक भाव क्यो कहते है ?

उत्तर–जीवत्व-भव्यत्व-अभव्यत्व ये तीनो भाव कर्म के उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशम के बिना होते है, इसलिये पारिणामिक कहे जाते है ।

प्रश्न ५–अस्तित्व, वस्तुत्व आदि अनेक भाव भी जीव मे पारिणामिक रूप मे पाये जाते है फिर तीन भावो का ही ग्रहण क्यो किया ?

उत्तर–जीवत्व आदि तीन भाव जीव के असाधारण धर्म है शेष अस्तित्वादि भाव जीव के असाधारण भाव नही है वे जीव को छोड़कर अन्य द्रव्यो मे भी पाये जाते है अत उन्हे यहाँ ग्रहण नही किया है ।

प्रश्न ६–जीव अमूर्त है, कर्म मूर्त है । अमूर्त जीव का मूर्त कर्मों के साथ बन्ध नही हो सकता है अत औपशमिक, क्षायोपशमिक आदि भाव जीव के नही हो सकते है ?

उत्तर–जैनदर्शन अनेकान्तरूप है । यहॉ आत्मा एकान्त से अमूर्तिक ही नही है, अनादि कर्मबध युक्त आत्मा मूर्तिक है अत मूर्त जीवो के औपशमिक, क्षायोपशमिक आदि भाव होते ही है

प्रश्न ७–वर्तमान मे हमारे (ससारी जीवो के) व सिद्धो के कितने भाव हैं ?

उत्तर–हम ससारी जीवो के ४ भाव अभी वर्तमान मे है—औपशमिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक । सिद्ध जीवो के २ भाव है—क्षायिक और पारिणामिक ।

प्रश्न ८–सबसे अधिक भाव कौन से है व सबसे कम भाव कौन से है ?

उत्तर–सबसे अधिक भाव औदयिक है और सबसे कम भाव ओपशमिक हे ।

प्रश्न ९–भाव रहित कौन सा जीव होता है ? अजीव के कितने भाव होते है तथा भावो के गुणस्थान बताओ ?

उत्तर–भावरहित कोई भी जीव नही होता है । अजीव के कोई भाव नही होता है । औपशमिक भाव मे गुणस्थान ४-११ होते है । क्षायिक भाव में गुणस्थान ४-१३-१४ सिद्ध तक । क्षयोपशमिक भाव मे गुणस्थान १-१२ तक औदयिकभाव मे गुणस्थान १-१३-१४ तक और पारिणामिक भाव मे गुणस्थान १-१४ तथा सिद्धो तक होते है ।

प्रश्न १०–शुभभाव, अशुभभाव, शुद्धभाव, शुद्ध-अशुद्धभाव, कर्म निरपेक्ष (स्वाभाविक), मोक्षमार्ग के भाव कितने हैं ?

उत्तर–शुभभाव २२ हैं, अशुभभाव १९ हैं, शुद्धभाव ९ है, स्वाभाविकभाव ३ हैं। कर्मसापेक्षभाव ५० हैं, कर्म निरपेक्षभाव ३ हैं तथा मोक्षमार्ग के भाव १९। चार भाव निमित्त की अपेक्षा रखते हैं और पारिणामिक भाव योग्यता की अपेक्षा रखता है।

प्रश्न ११–एक जीव के एक काल मे कितने भाव हो सकते है ?

उत्तर–एक जीव के एक काल मे १७ भाव हो सकते है। पारिणामिक २, क्षायोपशमिक के ७, ज्ञान १, दर्शन १ और लब्धि ५=७। औदयिक के ८–गति १, कषाय १, लिग १, मि० १, अज्ञा० १, असयम १, असि० १ और ले० १।

प्रश्न १२–अरहन्त भगवान को कितने भाव होते है ?

उत्तर–अरहन्त भगवान के सयोग अवस्था मे १४ व अयोग अवस्था मे १३ भाव होते है। मूलभाव ३ होते है। यथा—क्षायिक के ९, औदयिक के ३ पारिणामिक, २ = १४ सयोगकेवली मे। क्षायिक के ९ औदयिक के २ पारिणामिक २ = १३ अयोगकेवली के भाव।

प्रश्न १३–सिद्ध भगवान को कितने भाव होते है ?

उत्तर–सिद्ध भगवान को कुल ५ भाव होते है। मूलभाव दो होते है। क्षायिक भाव ४ पारिणामिक भाव १ = ५

प्रश्न १४–चौदह गुणस्थानो मे भावो की सख्या गिनाइये ?

उत्तर–

गुण० १	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४ सि०
भाव ३४	३२ या ३३	३२	३६	३१	३१	३१	२९ या २८	२९ या २८	२२ या २३	२१	२०	१४	१३ ५

प्रश्न १५–जीव का लक्षण क्या है ?

उत्तर– **उपयोगो लक्षणम् ॥ ८ ॥**

सूत्रार्थ–उपयोग जीव का लक्षण है।

प्रश्न १–उपयोग किसे कहते है ?

उत्तर–जो अन्तरग और बहिरग दोनो प्रकार के निमित्तो से होता है और चैतन्य का अन्वयी है अर्थात् चैतन्य को छोड़कर अन्यत्र नही रहता वह परिणाम उपयोग कहलाता है।

प्रश्न २–उपयोग और आत्मा मे क्या अन्तर है ?

उत्तर–यद्यपि उपयोग जीव का लक्षण होने से आत्मा का स्वरूप (स्वतत्त्व) ही है तथापि इनमें लक्ष्य-लक्षण की अपेक्षा महान् भेद है। आत्मस्वरूप (स्वतत्त्व) लक्ष्य है और उपयोग लक्षण है। लक्ष्य कभी लक्षण नही हो सकता।

प्रश्न ३–उपयोग के कितने भेद हैं ?

उत्तर– **सद्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥ ९ ॥**

सूत्रार्थ–(स) वह उपयोग (द्विविध) दो प्रकार (अष्टचतुर्भेद) आठ व चार प्रकार रूप है।

प्रश्न १–उपयोग दो, चार, आठ भेद रूप किस प्रकार है ?

उत्तर–ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग के भेद से उपयोग दो भेद रूप है। ज्ञानोपयोग के आठ भेद मति-श्रुत-अवधि-मन·पर्यय और केवलज्ञान तथा कुमति, कुश्रुत, कुअवधिज्ञान हैं तथा दर्शनोपयोग के चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन चार भेद है।

प्रश्न २–जीव के भेद कितने हैं ?

उत्तर– **संसारिणो मुक्ताश्च ॥ १० ॥**

सूत्रार्थ–(ससारिण) ससारी (च) और (मुक्ता) मुक्त इस प्रकार दो भेद वाले है।

प्रश्न १–ससार किसे कहते हैं ?

उत्तर–ससरण करने को ससार कहते हैं। ससरण का अर्थ परिवर्तन है।

प्रश्न १–ससारी जीव किसे कहते हैं ?

उत्तर–कर्म सहित जीवो को संसारी कहते हैं। अथवा

परिवर्तन जिसके पाया जाता है वे ससारी हैं।

प्रश्न २–परिवर्तन कितने प्रकार का होता है ?

उत्तर–द्रव्य परिवर्तन, क्षेत्र परिवर्तन, काल परिवर्तन, भव परिवर्तन और भाव परिवर्तन के भेद से परिवर्तन पाँच प्रकार के हैं।

प्रश्न ३–ससारी जीव कितने प्रकार के होते हैं ?

उत्तर– **समनस्कामनस्काः ॥ ११ ॥**

सूत्रार्थ–मनसहित और मनरहित ऐसे ससारी जीव दो प्रकार के हैं।

प्रश्न १–मन के कितने भेद है ?

उत्तर–द्रव्यमन और भावमन दो भेद मन के हैं।

प्रश्न २–द्रव्यमन और भावमन के लक्षण बताइये ?

उत्तर–पुद्‌गलविपाकी आंगोपाग नामकर्म के उदय से द्रव्यमन होता है। वीर्यान्तराय और नोइन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम की अपेक्षा रखने वाले आत्मा की विशुद्धि को भावमन कहते हैं।

प्रश्न ३–समनस्क अमनस्क मे समनस्क पहले क्यो रखा ?

उत्तर–पूज्य होने से समनस्क को पहले रखा है। सैनी जीव गुण और दोषो के विचारक होते है।

प्रश्न ४–ससीरी जीव के भेद बताइये।

उत्तर– **संसारिणस्त्रसस्थावराः ॥ १२ ॥**

सूत्रार्थ–ससारी जीव त्रस और स्थावर के भेद से दो प्रकार के है।

प्रश्न १–त्रस और स्थावर का लक्षण बताओ ?

उत्तर–जिन जीवो के त्रस नामकर्म का उदय है वे त्रस है जिनके स्थावर नामकर्म का उदय है वे स्थावर है।

प्रश्न २–त्रसो को पहले ग्रहण क्यो किया है ?

उत्तर–प्रथम तो स्थावर से त्रस मे अल्प अक्षर है, दूसरी बात त्रस जीव पूज्य है। त्रसो की श्रेष्ठता का कारण उनमे सब उपयोग होते है। त्रस जीव ही रत्नत्रय की पूर्णता को पाता है।

प्रश्न ३–स्थावर जीवो के भेद बताइये ?

उत्तर– **पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ॥ १३ ॥**

सूत्रार्थ–पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक ये पॉच स्थावर हैं।

प्रश्न १–पृथ्वी आदि के चार-चार भेद कौन से है ?

उत्तर–पृथ्वी, पृथ्वीकाय, पृथ्वीकायिक और पृथ्वीजीव ये पृथ्वी के चार भेद है इसी प्रकार जल, अग्नि, वायु, वनस्पति आदि के भी चार-चार भेद है।

पृथ्वी–यह सामान्य है इसमे जीव नही है। **पृथ्वीकाय** भी जीव रहित है। जिस जीवके पृथ्वी रूप काय विद्यमान है वे **पृथ्वीकायिक** है तथा विग्रहगति मे स्थित जीव पृथ्वीजीव है। अर्थात् कार्माण काययोग मे स्थित जिस जीव ने जब तक पृथ्वी को काय रूप से ग्रहण नही किया है तब तक वह **पृथिवी जीव** कहलाता है।

प्रश्न २–त्रस जीव कौन से है ?

उत्तर– **द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः ॥ १४ ॥**

सूत्रार्थ–द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय जीव त्रस कहलाते है ।

प्रश्न १–त्रस किसे कहते हैं ?

उत्तर–त्रस नामकर्म के उदय से प्राप्त जीव की अवस्था विशेष को त्रस कहते है ।

प्रश्न २–द्वीन्द्रिय जीव कौन-कौन से हैं ?

उत्तर–स्पर्शन और रसना इन्द्रिय से युक्त उदरकृमि, शख (जो वादन के काम आते हैं), छोटे शख, कौड़ी (छोटी, बड़ी) बालका, गिडोले, केचुवा आदि द्वीन्द्रिय जीव हैं । इसके अलावा पानी मे उत्पन्न सीप, लघुशख, पुलविका (उद्देई), जौंक और फोड़ा आदि मे होने वाले कृमि आदि भी द्वीन्द्रिय जीव है ।

प्रश्न ३–त्रीन्द्रिय जीव कौन-कौन से है ?

उत्तर–स्पर्शन, रसना, घ्राण से युक्त कुथु, उद्देहिका, बिच्छू, खर्जूरका, गोमिका (कासलाप) कर्णशलाका शतपद्म, इन्द्रगोपका, इन्द्रवधूटिका, जू, लीख, खटमल, चिउटी ये सब तीन इन्द्रिय जीव है ।

प्रश्न ४–चतुरिन्द्रिय जीवो के नाम बताइये ?

उत्तर–जिनके स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु ये चार इन्द्रियाँ होती हैं, वे दश वनमक्षिका, डास, मशक, मच्छर, मक्षिका, पतंगा, गोबर के कीट, रुधिर के कीट, भ्रमर, मधुमक्खी, मधुकरी, गोमक्षिका, बगायिका, विश्वभरा, लूत, मकड़ी, कोलिका आदि चार इन्द्रिय जीव है ।

प्रश्न ५–पञ्चेन्द्रिय जीव कौन-कौन से है ?

उत्तर–स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण पाँच इन्द्रियो सहित जीव पञ्चेन्द्रिय है ये अनेक प्रकार के है—अडे से उत्पन्न होने वाले सर्प, बमनी, पक्षी आदि । कुत्ता, बिल्ली, सिह, व्याघ्र आदि आवरण रहित जन्म लेने वाले पोतायिक जीव पञ्चेन्द्रिय है । गाय, भैस, मनुष्य आदि **जर सहित** सावरण जन्म लेने वाले जीव पञ्चेन्द्रिय है। चर्म आदि के योग मे घृतादि मे उत्पन्न होने वाले वा शराब आदि मे उत्पन्न होने वाले सूक्ष्म, वचनागोचर **रसायिक जीव** पञ्चेन्द्रिय हैं । पसी मे, चक्रवर्ती की सेना आदि मे (चक्रवर्ती की सेना जहाँ ठहरती है उस स्थान मे) उत्पन्न **सस्वेदिम जीव** पञ्चेन्द्रिय है । पुद्गलसमूह से स्वयमेव उत्पन्न होने वाले **सम्मूर्च्छन** जीव पञ्चेन्द्रिय है यथा- गर्मी-सर्दी-वर्षा आदि से उत्पन्न सर्प, चूहे, गौ, मेढक, मनुष्यो की काख आदि मे उत्पन्न जीव । पृथ्वी, काठ, पत्थर आदि को भेदकर उत्पन्न होने वाले दुर्दुर **उद्भेदिम जीव** पञ्चेन्द्रिय है । **उपपाद** जन्म वाले देव, नारकी पञ्चेन्द्रिय हैं ।

प्रश्न ६–धातुएँ कितनी हैं ?

उत्तर–रस असृग् (रुधिर), मास, मेद, अस्थि, मज्जा और वीर्य ये सात धातुएँ है ।

प्रश्न ७–एकेन्द्रिय से पञ्चेन्द्रिय तक जीवो के कितने प्राण होते हैं ?

उत्तर–एकेन्द्रिय के—स्पर्शन इ०, कायबल, आयु और श्वासोच्छ्वास चार प्राण होते हैं ।

द्वीन्द्रिय के—स्पर्शन, रसना, काय बल, वचन बल, आयु और श्वासोच्छवास छ प्राण होते हैं ।

त्रीन्द्रिय के—स्पर्शन, रसना, घ्राण, काय व वचन बल, आयु और श्वासोच्छ्वास सात प्राण होते है ।

चतुरिन्द्रिय के—स्पर्शादि ४ इन्द्रिय, २ बल, आयु श्वासो०, आठ प्राण होते है।

पञ्चेन्द्रिय असैनी के—स्पर्शादि ५ इन्द्रिय, २ बल, आयु, श्वासो०, नव प्राण होते है । पञ्चेन्द्रिय सैनी से—स्पर्शादि ५ इन्द्रिय, ३ बल, आयु, श्वासो०, दस प्राण होते हैं । ये दस प्राण सज्ञी पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्य, देव और नारकियो के होते है ।

प्रश्न ८–इन्द्रियाँ कितनी हैं ?

उत्तर– **पञ्चेन्द्रियाणि ॥ १५ ॥**

सूत्रार्थ–सब इन्द्रियॉ पॉच हैं—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत ।

प्रश्न १–इन्द्रिया ५ ही क्यो स्वीकार की गई है । पायु, उपस्थ, वचन, हाथ, पैर को भी इन्द्रियाँ कहना उचित था ?

उत्तर–यहाँ उपयोग का प्रकरण होने से उपयोग की साधनभूत स्पर्शनादि पॉच ज्ञान इन्द्रियो को ही ग्रहण किया है । क्रिया की साधनभूत पायु, उपस्थ, हाथ, पैर आदि अनेक इन्द्रियॉ का यहॉ ग्रहण नही है ।

प्रश्न २–ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियॉ कितनी हैं ?

उत्तर–ज्ञानेन्द्रियाँ ५ ही हैं—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु व श्रोत ।

कर्मेन्द्रियाँ—हाथ-पैर, वचन, उपस्थ आदि । आगोपाग नामकर्मोदय से जितने भी आगोपागो की रचना होती है वे सब क्रिया के साधन हैं इसलिये कर्मेन्द्रियो की सख्या का कोई नियम नही किया जा सकता ।

प्रश्न ३–इन्द्रियाँ किसे कहते हैं ?

उत्तर–जिनसे जीव की पहचान हो उन्हे इन्द्रियाँ कहते हैं । अथवा इन्द्र शब्द से आत्मा कहा जाता है और उस आत्मा का लिंग (चिन्ह) इन्द्रिय कहलाता है ।

प्रश्न ४–इन्द्रियो के मूल भेद कितने है ?

उत्तर– **द्विविधानि ॥ १६ ॥**

सूत्रार्थ–दो है प्रकार जिन इन्द्रियो के उनको द्विविध कहते है अर्थात् पॉचो ही इन्द्रियॉ दो-दो प्रकार की है ।

प्रश्न १–वे दो प्रकार कौन से हैं ?

उत्तर–द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय।

प्रश्न २–द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय का स्वरूप बताइये ?

उत्तर–नामकर्म की रचना द्रव्येन्द्रिय है तथा ज्ञानावरण का क्षयोपशम भावेन्द्रिय है।

प्रश्न ३–द्रव्येन्द्रियो का स्वरूप बताइये ?

उत्तर– **निर्वृत्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् ॥ १७ ॥**

सूत्रार्थ–निर्वृत्ति और उपकरण द्रव्येन्द्रिय हैं।

प्रश्न १–निर्वृत्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर–कर्मों के द्वारा जिसकी रचना की जाती है उसको निर्वृत्ति कहते हैं। अर्थात् पुद्गलविपाकी नामकर्म के उदय से निर्वृत्त–रची गई नियत आकार वाली पुद्गल की रचना विशेष को निर्वृत्ति कहते हैं।

प्रश्न २–निर्वृत्ति के कितने भेद है ?

उत्तर–निर्वृत्त के दो भेद हैं—१ आभ्यन्तर निर्वृत्ति २ बाह्य निर्वृत्ति।

प्रश्न ३–आभ्यन्तर निर्वृत्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर–उत्सेधाङ्गुल के असख्येय भाग प्रमाण शुद्धात्मा के प्रदेशो का चक्षु आदि इन्द्रियो के आकार होनेवाले परिणमन को आभ्यन्तर निर्वृत्ति कहते हैं।

प्रश्न ४–बाह्य निर्वृत्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर–इन्द्रिय व्यपदेश को प्राप्त हुए आत्मा के उन प्रदेशों मे नामकर्म के उदय से होने वाले चक्षु आदि इन्द्रियो के आकार परिणत पुद्गल प्रचय को बाह्य निर्वृत्ति कहते हैं।

प्रश्न ५–उपकरण किसे कहते हैं ?

उत्तर–जो निर्वृत्ति का उपकार करे उसे उपकरण कहते हैं अथवा जिसके द्वारा निर्वृत्ति का उपकार किया जाता है वह उपकरण है।

प्रश्न ६–उपकरण के कितने भेद हैं ?

उत्तर–बाह्य उपकरण और आभ्यन्तर उपकरण के भेद से उपकरण दो भेद रूप है।

प्रश्न ७–बाह्य आभ्यन्तर उपकरण को उदाहरण से बताओ ?

उत्तर–जैसे चक्षु इन्द्रिय मे जो कृष्ण, शुक्ल मडल है वह आभ्यन्तर उपकर हैं और पलके, बिरूनी वगैरह बाह्य उपकरण हैं।

प्रश्न ८–भाव इन्द्रिय का स्वरूप बताइये ?

उत्तर- **लब्ध्युपयोगी भावेन्द्रियम् ॥ १८ ॥**

सूत्रार्थ–लब्धि और उपयोग को भावेन्द्रिय कहते हैं ।

प्रश्न १–लब्धि किसे कहते हैं ?

उत्तर–लम्भन लब्धि· जिसका अर्थ है प्राप्त होना यह लब्धि शब्द का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ है । सार्थक अर्थ है—आत्मा मे ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से होने वाली अर्थ ग्रहण करने की शक्ति को लब्धि कहते हैं ।

प्रश्न २–उपयोग किसे कहते है ?

उत्तर–अर्थ ग्रहण करने के प्रति आत्मा के उद्यम, प्रवर्तन या व्यापार को उपयोग कहते है ।

प्रश्न ३–उपयोग और योग मे क्या अन्तर है ?

उत्तर–उपयोग ज्ञान की परिणति है और योग मन-वचन-काय की परिणति है । शुभयोग मिथ्यादृष्टि के भी हो सकता है पर शुभोपयोग सम्यग्दृष्टि के ही होता है ।

प्रश्न ४–उपयोग के भेद व लक्षण बताइये ?

उत्तर–उपयोग के ३ भेद हैं—अशुभोपयोग, शुभोपयोग और शुद्धोपयोग । अशुभोपयोग मे किञ्चित् भी धर्म परिणति नही है । शुभोपयोग मे किंचित् धर्म परिणति है और शुद्धोपयोग मे पूर्ण धर्म परिणति है ।

प्रश्न ५–पञ्चेन्द्रियो के नाम बताइये ?

उत्तर- **स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुः श्रोत्राणि ।।१९।।**

सूत्रार्थ–स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र ये पॉच इन्द्रियॉ है ।

प्रश्न–स्पर्शनादि पॉच इनिद्रयो के लक्षण बताइये ?

उत्तर–१ वीर्यान्तराय और मतिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से तथा आगोपाग नामकर्म के आलम्बन से जिसके द्वारा स्पर्श करता है वह स्पर्शन इन्द्रिय है ।

२ जिसके द्वारा स्वाद आता है वह रसना इन्द्रिय है ।

३ जिसके द्वारा सूघता है वह घ्राण इन्द्रिय है ।

४ जिसके द्वारा पदार्थों को देखता है वह चक्षु-इन्द्रिय है ।

५ जिसके द्वारा सुनता है वह श्रोत इन्द्रिय है ।

विशेष—वीर्यान्तराय व मतिज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम तथा आंगोपाग नाम-कर्म का आलम्बन सभी इन्द्रियो के लिये आवश्यक है ।

प्रश्न १–इन्द्रियो के विषय कौन-कौन से है बताइये ?

उत्तर- **स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दास्तदर्थाः ॥ २० ॥**

सूत्रार्थ–स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण और शब्द ये क्रमश इन्द्रियो के विषय हैं।

प्रश्न २–स्पर्श आदि के लक्षण बताइये ?

उत्तर–जो स्पर्श किया जाता है वह स्पर्श है। जो स्वाद को प्राप्त होता है वह रस है, जो सूघा जाता है वह गन्ध है, जो देखा जाता है वह वर्ण है और जो शब्द रूप होता है वह शब्द है।

प्रश्न ३–इन्द्रियो की उत्कृष्ट और जघन्य अवगाहना किन-किन जीवो की होती है ?

उत्तर–जघन्य अवगाहना सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव की होती है और उत्कृष्ट अवगाहना पञ्चेन्द्रिय जीवो मे मत्स्य के होती है।

प्रश्न ४–सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव की जघन्य अवगाहना कब और कितनी होती है ?

उत्तर–ऋजुगति के द्वारा उत्पन्न होने वाले सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव की उत्पत्ति से तीसरे समय मे शरीर की जघन्य अवगाहना होती है और इसका प्रमाण घनाङ्गुल के असख्यातवे भाग प्रमाण है।

प्रश्न ५–उत्कृष्ट अवगाहना कौनसे मत्स्य की, व कितने प्रमाण होती है ?

उत्तर–उत्कृष्ट अवगाहना स्वयभूरमण समुद्र के मध्य होने वाले महामत्स्य की होती है। इसका प्रमाण एक हजार योजन लम्बा, पाँचसौ योजन चौड़ा और ढाईसौ योजन मोटा है।

प्रश्न ६–इन्द्रिय की अपेक्षा एकेन्द्रिय से पचेन्द्रिय जीवो मे उत्कृष्ट अवगाहना का प्रमाण बताइये ?

उत्तर–एकेन्द्रिय मे सबसे उत्कृष्ट अवगाहना कमल की—एक हजार योजन है।

द्वीन्द्रिय जीवो मे उत्कृष्ट अवगाहना शख की—बारह योजन है।

तीन इन्द्रिय जीवो मे उत्कृष्ट अवगाहना ग्रैष्मी (चीटी) की—तीन कोश है।

चतुर इन्द्रिय जीवो मे उत्कृष्ट अवगाहना भ्रमर की—एक योजन है।

पञ्चेन्द्रिय जीवो मे उत्कृष्ट अवगाहना महामत्स्य की—एक हजार योजन है।

(मत्स्य की अवगाहना पद्म की अवगाहना से क्षेत्रफल की अपेक्षा अधिक है)

प्रश्न ७–द्विइन्द्रिय आदि जीवो की जघन्य अवगाहना का प्रमाण बताइये ?

उत्तर–द्वि इन्द्रिय मे जघन्य अवगाहना—अनुन्धरी की।

तीन इन्द्रिय मे जघन्य अवगाहना—कुन्थु की।

चार इन्द्रिय मे जघन्य अवगाहना—काणमक्षिका की।

और पञ्चेन्द्रिय जीवो मे जघन्य अवगाहना—सिक्थक मत्स्य की होती है।

इनमे प्रथम की अवगाहना घनांगुल के असख्यातवे भाग प्रमाण है आगे क्रम से सख्यातगुणी सख्यातगुणी अधिक है ।

प्रश्न ८–स्पर्शनादिक इन्द्रिय कितनी दूर रक्खे हुए अपने विषय का ज्ञान कर सकती है ?

उत्तर–स्पर्शन इन्द्रिय का विषय क्षेत्र एक इन्द्रिय जीव के ४०० धनुष है, दो इन्द्रिय जीव के ८०० धनुष, तीन इन्द्रिय जीव के १६०० धनुष, चार इन्द्रिय जीव के ३२०० धनुष और असज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव के चौंसठसौ धनुष प्रमाण है । पञ्चेन्द्रिय जीव के स्पर्शन का क्षेत्र नौ योजन है । अर्थात् इतने दूर की वस्तुओ का एकेन्द्रियादि जीव स्पर्श कर सकते है ।

प्रश्न ९–रसना इन्द्रिय कितने दूर रक्खे अपने विषय का ज्ञान कर सकती है?

उत्तर–रसना इन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र—

दो इन्द्रिय जीव के—६४ धनुष

तीन इन्द्रिय जीव के—१२८ धनुष

चतुर इन्द्रिय जीव के—२५६ धनुष

असज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव के—५१२ धनुष होता है ।

तथा संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव के ९ योजन प्रमाण होता है । अर्थात् इतने दूर की वस्तु का ये जीव स्वाद ले सकते है ।

प्रश्न १०–घ्राण इन्द्रिय कितने दूर रक्खे अपने विषय का ज्ञान कर सकती है?

उत्तर–घ्राणइन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र—

३ इन्द्रिय जीव के १०० धनुष प्रमाण

४ इन्द्रिय जीव के २०० धनुष प्रमाण

असज्ञी जीव के ४०० धनुष प्रमाण

तथा सज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव के—९ योजन प्रमाण होता है । इतने दूर की वस्तु को ये जीव सूघ सकते हैं ।

प्रश्न ११–चक्षु इन्द्रिय कितने दूर रक्खे अपने विषय का ज्ञान कर सकती है?

उत्तर–चक्षु इन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र—चतुरिन्द्रिय जीव के २९५४ योजन और असंज्ञी पचेन्द्रिय के ५९०८ योजन है तथा सज्ञी पञ्चेन्द्रिय के चक्षु का विषय क्षेत्र—४७२६३ योजन से कुछ अधिक होता है । अर्थात् इतने दूर की वस्तु को ये जीव देख सकते हैं ।

प्रश्न १२–कर्णेन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र कितना है ?

उत्तर–असज्ञी पचेन्द्रिय जीव के कर्णेन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र ८००० धनुष

है तथा सञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रिय के उत्कृष्ट विषय क्षेत्र बारह योजन है । अर्थात् इतनी दूर की आवाज को वे सुन सकते है ।

प्रश्न १३–पाँच इन्द्रियो का आकार बताइये ?

उत्तर–स्पर्शन इन्द्रिय के अनेक आकार है ।

रसना इन्द्रिय का खुरपा के समान आकार है ।

घ्राण इन्द्रिय का तिल के पुष्प समान आकार है ।

चक्षु इन्द्रिय का मसूर के समान आकार है और

श्रोत इन्द्रिय का जव की नली के समान आकार है ।

प्रश्न १४–मन का विषय क्या है ?

उत्तर– **श्रुतमनिन्द्रियस्य ॥ २१ ॥**

सूत्रार्थ–श्रुत मन का विषय है ।

प्रश्न १–मन का विषय श्रुत किस कारण से होता है ?

उत्तर–श्रुतज्ञानावरण के क्षयोपशम को प्राप्त हुए जीव के श्रुतज्ञान के विषय मे मन के आलम्बन से ज्ञान होता है । अत मन का विषय श्रुत कहा गया है ।

प्रश्न २–अनिन्द्रिय / मन के निमित्त से मात्र श्रुतज्ञान ही होता है क्या ?

उत्तर–ऐसा नही है । आचार्यश्री का अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार मतिज्ञान इन्द्रिय और अनिन्द्रिय दोनो के निमित्त से होता है उस प्रकार श्रुतज्ञान दोनो से न होकर केवल अनिन्द्रिय के निमित्त से होता है ।

प्रश्न ३–स्पर्शन इन्द्रिय के स्वामी कौन है ?

उत्तर– **वनस्पत्यन्तानामेकम् ॥ २२ ॥**

सूत्रार्थ–वनस्पतिकायिक तक के जीवो के एक अर्थात् स्पर्शन इन्द्रिय होती है।

प्रश्न १–सूत्र मे आये वनस्पतिकायिक तक के जीवो से कौन–कौन से जीव ग्राह्य है ?

उत्तर–पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और अन्त मे है वनस्पतिकायिक ये सभी ग्राह्य है ।

प्रश्न २–वनस्पतिकायिक को अन्त मे ग्रहण क्यो किया जाता है ?

उत्तर–आचार्यश्री ने सूत्र न० १३ मे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति इस क्रम को ग्रहण किया है । इसका कारण बताते हुए राजवार्तिक मे आचार्यश्री ने लिखा है कि—सुखपूर्वक ग्रहण होने से, स्थूलमूर्तित्व होने से, भूय (बहुत) उपकारक होने से पृथ्वी को प्रथम ग्रहण किया है । पृथ्वी नही होती तो पानी आदि कहाँ पर स्थित होकर उपकार करते इसलिये भी पृथ्वी को पहले ग्रहण किया है ।

पृथ्वी के बाद जल को ग्रहण किया है क्योंकि पृथ्वी जल का आधार है जल आधेय है ।

पृथ्वी और जल का परिपाक अग्नि के द्वारा होता है अत पृथ्वी और जल के बाद अग्नि का ग्रहण होता है ।

अग्नि का उपकारक होने से अग्नि के बाद उसके मित्र वायु को ग्रहण किया है ।

वनस्पति की उत्पत्ति मे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु चारो ही निमित्त होते हैं तथा सब जीवो की अपेक्षा इनकी सख्या अनन्तगुणी भी है इसलिये सबके अन्त मे वनस्पति का ग्रहण किया जाता है ।

प्रश्न ३–एकेन्द्रिय पर्याय किन कारणो से होती है ?

उत्तर–स्पर्शन इन्द्रिय वीर्यान्तराय तथा स्पर्शन इन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर, शेष इन्द्रियो के सर्वघाती स्पर्द्धको का उदय होने पर और शरीर नामकर्म का आलम्बन होने पर एव एकेन्द्रिय जाति नामकर्म के उदय की आधीनता के रहने पर यह एकेन्द्रिय पर्याय प्रगट होती है ।

प्रश्न ४–द्वीन्द्रियादि के स्वामी जीवो के नाम बताइये ?

उत्तर–**कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि ॥ २३॥**

सूत्रार्थ–लट आदि, चिऊटी आदि, भ्रमर आदि तथा मनुष्य आदि के क्रम से एक-एक इन्द्रिय बढ़ती हुई है अर्थात् लट आदि के स्पर्शन रसना दो, चिवटी की स्पर्शन, रसना, घ्राण तीन, भ्रमर के स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु चार और मनुष्यादि (देव-नारकी-पञ्चेन्द्रियतिर्यंच) के श्रोत्र सहित पाँचो इन्द्रियाँ होती है ।

प्रश्न ५–पञ्चेन्द्रिय जीव के कितने भेद है ?

उत्तर–　　　　**संज्ञिनः समनस्काः ॥ २४ ॥**

सूत्रार्थ–मन सहित जीव सज्ञी होते है ?

प्रश्न १–पञ्चेन्द्रिय जीव के कितने भेद हैं ?

उत्तर–दो भेद है सज्ञी और असज्ञी ।

प्रश्न २–सूत्र मे तो सिर्फ मन सहित को सैनी सज्ञी कहा, असज्ञी भेद कहाँ से ग्रहण किया है ?

उत्तर–मन सहित जीव को ही सज्ञी कहते हैं । परिशेष न्याय से यह सिद्ध हुआ कि इनके अतिरिक्त सब ससारी जीव असज्ञी होते हैं । एकेन्द्रिय से चार इन्द्रिय पर्यन्त सब जीव असज्ञी ही होते है, सम्मूर्च्छनोत्पन्न कोई तिर्यञ्च पचेन्द्रिय भी असज्ञी होते है ।

प्रश्न ३–असञ्ज्ञी संज्ञी किसे कहते हैं ?

उत्तर–संज्ञान अर्थात् विचार शक्ति को संज्ञा कहते हैं। संज्ञियों के शिक्षा, आलाप (शब्दार्थ) ग्रहण लक्षण क्रिया होती है। असञ्ज्ञियों के शिक्षा, आलाप ग्रहणादिक क्रिया नहीं होती है।

प्रश्न ४–जीवो के हिताहित मे प्रवृत्ति मन के निमित्त से होती है तो जिसने पूर्व शरीर छोड़ दिया है और जो मनरहित है उसकी नवीन शरीर प्राप्ति के लिये क्रिया किस निमित्त से होती है ?

उत्तर– **विग्रहगतौ कर्मयोगः ॥ २५ ॥**

सूत्रार्थ–विग्रहगति मे कर्मयोग होता है।

प्रश्न १–विग्रहगति किसे कहते हैं ?

उत्तर–विग्रह का अर्थ शरीर है। शरीर के लिये जो गति होती है वह विग्रह-गति है।

प्रश्न २–विग्रहगति मे नोकर्मरूप पुद्गलो का ग्रहण होता है या नहीं ?

उत्तर–विग्रहगति मे कर्म के ग्रहण होने पर नोकर्मरूप पुद्गलो का ग्रहण नही होता है।

प्रश्न ३–कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर–सब शरीरो की उत्पति के मूल कारण कार्मणशरीर को कर्म कहते हैं।

प्रश्न ४–योग किसे कहते हैं ?

उत्तर–वचनवर्गणा, मनोवर्गणा और कायवर्गणा के निमित्त से होनेवाले आत्मप्रदेशो के हलन-चलन को योग कहते हैं।

प्रश्न ५–कर्मयोग किसे कहते हैं वह कब होता है ?

उत्तर–कर्म के निमित्त से जो योग होता है वह कर्मयोग है वह विग्रहगति मे होता है।

प्रश्न ६–जीव और पुद्गलो का एक देश से दूसरे देश मे गमन आकाश प्रदेशो की पक्तिक्रम से होता है या इसके बिना होता है ?

उत्तर– **अनुश्रेणि गतिः ॥ २६ ॥**

सूत्रार्थ–गति श्रेणी के अनुसार होती है।

प्रश्न १–श्रेणी किसे कहते हैं ?

उत्तर–लोक के मध्य से लेकर ऊपर नीचे और तिरछे क्रम से स्थित आकाशप्रदेशो की पक्ति को श्रेणी कहते हैं।

प्रश्न २–अनुश्रेणी का अर्थ क्या है ?

उत्तर–अनुश्रेणी का अर्थ "श्रेणी की आनुपूर्वी" से होता है ।

प्रश्न ३–अनुश्रेणी गति कौन-कौन से द्रव्यो की होती है ?

उत्तर–अनुश्रेणी गति जीव और पुद्गलो की होती है ।

प्रश्न ४–अनुश्रेणी गति किस समय होती है ?

उत्तर–अनुश्रेणी गति के लिये काल नियम और देश नियम है ।

कालनियम—मरण के समय जब जीव एक भव को छोड़कर दूसरे भव के लिये गमन करते है और मुक्त जीव जब ऊर्ध्व गमन करते हैं तब उनकी गति अनुश्रेणी ही है ।

देशनियम—जब कोई जीव उर्ध्वलोक से अधोलोक के प्रति या अधोलोक से ऊर्ध्वलोक के प्रति आता जाता है । इसी प्रकार तिर्यग्लोक से अधोलोक के प्रति या उर्ध्वलोक के प्रति जाता है तब उस अवस्था मे गति अनुश्रेणी ही होती है ।

जो पुद्गल लोक के अन्त को प्राप्त करने वाले है उनकी भी अनुश्रेणी ही गति होती है । शेष समयो मे जीव पुद्गलो की गति अनुश्रेणि भी होती है और विश्रेणि भी होती है ।

प्रश्न ५–मुक्त जीवो की गति कौन सी होती है ?

उत्तर– **अविग्रहा जीवस्य ॥ २७ ॥**

सूत्रार्थ–मुक्त जीवो की गति विग्रह रहित अर्थात् सीधी होती है ।

प्रश्न –ससारी जीवो की गति कैसी होती है ?

उत्तर– **विग्रहवती च संसारिण: प्राक् चतुर्भ्य: ॥ २८ ॥**

सूत्रार्थ–ससारी जीव की गति कुटिल और सीधी दोनो ही प्रकार की होती है। विग्रह / कुटिल वाली गति चार समय से पहले अर्थात् तीन समय तक होती है ।

प्रश्न १–ससारी जीवो की अविग्रहा गति सूत्र मे कैसे ग्रहण की ?

उत्तर–सूत्र मे "च" शब्द से अविग्रहागति को ग्रहण किया है ।

प्रश्न २–अविग्रहागति कितने समय की होती है ?

उत्तर– **एकसमयाऽविग्रहा: ॥ २९ ॥**

सूत्रार्थ–(अविग्रहा) मोड़ा रहित गति (एकसमया) एक समय मात्र होती है अर्थात् उसमे एक समय ही लगता है ।

प्रश्न १–एक समय की गति का नाम क्या है ?

उत्तर–इषु गति । जिस प्रकार इषु (बाण) की गति वेध्यपर्यन्त सरल होती है, उसी प्रकार सिद्ध और ससारी जीवो की गति अविग्रहा एक समय की होती है ।

प्रश्न २–विग्रहगति के कितने भेद हैं ?

उत्तर–तीन भेद हैं—१.पाणिमुक्ता २ लाङ्गलिका ३. गोमूत्रिका ।

प्रश्न ३-पाणिमुक्ता गति मे समय और मोड़ा कितने लगते हैं ?

उत्तर–पाणिमुक्ता गति मे एक मोड़ा और दो समय लगते हैं । जैसे हाथ के द्वारा तिरछे फेके हुए द्रव्य की गति एक मोड़ा वाली होती है ।

प्रश्न ४–लाङ्गलिका गति मे समय और मोड़ा कितने लगते हैं ?

उत्तर–लाङ्गलिका गति मे दो मोड़ा और तीन समय लगते हैं । जैसे हल दो मोड़ा वाला होता है वैसे लाङ्गलिका गति भी दो मोड़ा वाली होती है ।

प्रश्न ५–गोमूत्रिका गति के समय व मोड़ा बताइये ?

उत्तर–गोमूत्रिका गति बहुवक्रा तीन मोड़ा वाली होती है यह गति संसारी जीवो के चार समय की होती है ।

प्रश्न ६–त्रिवक्रा गति किन जीवो की होती है ?

उत्तर–निष्कुट क्षेत्र से निष्कुट क्षेत्र मे जन्म ले वालो की त्रिवक्रा चार समय वाली गति होती है। क्योकि वहाँ आनुपूर्वी से अनुश्रेणी का अभाव होने से इषुगति नही हो पाती।

प्रश्न ७–मरण के बाद दूसरे शरीर मे जन्म का धारण कितने समय मे हो जाता है ?

उत्तर–मरण के बाद दूसरी पर्याय मे जन्म कम से कम एक समय और अधिक चौथे समय मे तो नवीन जन्म धारण कर ही लेता अर्थात् ४ समय से अधिक विग्रहगति का काल नही है ।

प्रश्न ८–विग्रहगति का काल कितना है ?

उत्तर–विग्रहगति तीन समय तक ही होती है चौथे मे नहीं ।

प्रश्न ९–विग्रहगति मे आहारक होता है या अनाहारक ?

उत्तर– **एकं द्वौ त्रीन्वानाहारकः ॥ ३० ॥**

सूत्रार्थ–विग्रहगति मे जीव एक, दो अथवा तीन समय तक अनाहारक रहता है ।

प्रश्न १–आहार किसे कहते है ?

उत्तर–औदारिक, वैक्रियिक और आहारक शरीर ६ पर्याप्तियो के योग्य पुद्गल परमाणुओ के ग्रहण को आहार कहते हैं ।

प्रश्न २–आहारक व अनाहारक किसे कहते है ?

उत्तर–छ पर्याप्तियो व तीन शरीर के योग्य पुद्गल परमाणुओ को ग्रहण करना आहारक व नही ग्रहण करना अनाहारक अवस्था कहलाती है ।

प्रश्न ३–जीव विग्रहगति मे आहारक कब होता है और अनाहारक कब होता है ?

उत्तर–संसारीजीव अविग्रहा गति मे आहारक ही होता है । एक, दो, तीन, मोड़ावाली विग्रहगतियो मे क्रम से एव दो, तीन समय तक अनाहारक रहता है । चौथे समय मे नियम से आहारक हो जाता है ।

प्रश्न ४–जन्म के कितने भेद है ?

उत्तर– **सम्मूर्च्छनगर्भोपपादा जन्म ॥ ३१ ॥**

सूत्रार्थ–(जन्म) जन्म (सम्मूर्च्छनगर्भोपपादा) सम्मूर्च्छन, गर्भ और उपपाद के भेद से तीन प्रकार का होता है ।

प्रश्न १–जन्म किसे कहते है ?

उत्तर–जन्म का अर्थ नवीन शरीर धारण करना है ।

प्रश्न २–सम्मूर्च्छन जन्म किसे कहते हैं ?

उत्तर–अपने शरीर के योग्य पुद्गल परमाणुओ के द्वारा माता-पिता के रज और वीर्य के बिना ही अवयवो की रचना होने को सम्मूर्च्छन जन्म कहते है ।

प्रश्न ३–गर्भ जन्म किसे कहते हैं ?

उत्तर–स्त्री के उदर मे रज और वीर्य के मिलने से जो जन्म लेता है उसे गर्भ जन्म कहते है । माता के द्वारा उपभुक्त आहार के मरण होने को गर्भ कहते है।

प्रश्न ४–उपपाद जन्म किसे कहते है ?

उत्तर–माता-पिता के रज और वीर्य के बिना देव, नारकियो के उत्पत्ति स्थान-विशेष को उपपाद जन्म कहते है ।

प्रश्न ५–जन्म की आधारभूत योनियों के भेद बताइये ?

उत्तर–**सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ॥३२॥**

सूत्रार्थ–(सचित्तशीतसवृता) सचित्त, शीत, सवृत तीन (सेतरा) इनसे उल्टी तीन अचित्त, उष्ण, विवृत (च) और (एकश) एक-एक कर (मिश्रा) क्रम से मिली हुई तीन सचित्ताचित्त, शीतोष्ण, सवृत-विवृत ये नौ (तद्योनय) सम्मूर्च्छन आदि जन्मो की योनियाँ हैं ।

प्रश्न १–योनि किसे कहते है ?

उत्तर–जीवो की उत्पत्ति स्थान को योनि कहते है ।

प्रश्न २–योनि और जन्म मे क्या भेद है ?

उत्तर–योनि और जन्म मे आधार-आधेय का भेद है । योनि आधार है जन्म आधेय है ।

प्रश्न ३–सचित्त-संवृत और विवृत योनि के लक्षण बताओ ?

उत्तर–१ आत्मा के चैतन्यविशेषरूप परिणाम को चित्त कहते हैं। चित्त अर्थात् जीव सहित योनि को **सचित्तयोनि** कहते हैं।

२ जो किसी के देखने मे न आवे ऐसे जीव के उत्पत्ति स्थान को **संवृतयोनि** कहते है।

३ जो सबके देखने मे आवे उस उत्पत्ति स्थान को **विवृत योनि** कहते हैं।

प्रश्न ४–कौन योनि किस जीव के होती है ?

उत्तर–

सचित्त	साधारण शरीर
अचित्त	देव-नारकी
सचित्ताचित्त	गर्भज
शीत	तेजस्कायिक और देव नारकियो को छोड़कर।
उष्ण	तेजस्कायिक
शीतोष्ण	देव-नारकी
सवृत	देव, नारकी, एकेन्द्रिय
विवृत	विकलेन्द्रिय
सवृत-विवृत	गर्भज

प्रश्न ५–योनि के भेद कितने हैं ?

उत्तर–योनि के मुख्य दो भेद हैं—१ गुण योनि और २ आकार योनि।

प्रश्न ६–गुणयोनि और आकार योनि के कितने-कितने भेद हैं ?

उत्तर–गुणयोनि के मूल भेद नौ और उत्तर भेद चौरासी लाख हैं। मूल ९ भेद—१ सचित्त २ अचित्त ३ सचित्ताचित्त ४ शीत ५ उष्ण ६ शीतोष्ण ७ सवृत ८ विवृत ९ सवृत-विवृत।

उत्तर भेद ८४ लाख—नित्यनिगोद ७ लाख, इतर लाख ७ लाख, पृथ्वीकायिक ७ लाख, अपकायिक ७ लाख, तेजकायिक ७ लाख और वायुकायिक ७ लाख। वनस्पति १० लाख, विकलेन्द्रिय २-२ लाख = ६ लाख। देव नारकी और तिर्यञ्चो मे प्रत्येक के चार-चार लाख और मनुष्यो की चौदह लाख योनियाँ होती है। इस प्रकार ७ + ७ + ७ + ७ + ७ + ७ + १० + ६ + ४ + ४ + ४ + १४ = ८४ लाख योनियाँ।

आकार योनि के भेद—शखावर्त योनि, कुर्मोन्नतयोनि और वशपत्रयोनि।

प्रश्न ७–शखावर्त आदि तीनो योनियो मे कौन जीव उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर–शंखावर्त योनि मे गर्भ रुकता नही है ।

कुर्मोन्नतयोनि मे त्रेसठ शलाका पुरुष उत्पन्न होते हैं । तथा

वशपत्र योनि मे सामान्य जीव उत्पन्न होते है ।

प्रश्न ८–गर्भ जन्म किन जीवो के होता है ?

उत्तर– **जरायुजाण्डजपोतानां गर्भः ॥ ३३ ॥**

सूत्रार्थ–जरायुज, अण्डज और पोत इन तीन प्रकार के जीवो के गर्भजन्म ही होता है ।

प्रश्न १–जरायु किसे कहते है ?

उत्तर–जो जाल के समान प्राणियो का आवरण है और जो मास तथा शोणित से बना है इसे जरायु कहते हैं । जर से उत्पन्न होने वाले जीव जरायुज कहलाते है।

प्रश्न २–अण्डज किसे कहते हैं ?

उत्तर–जो नख की त्वचा के समान कठिन है, गोल है और जिसका आवरण शुक्र और शोणित से बना है इसे अण्ड कहते है । जो अण्डो से पैदा होते है वे अण्डज कहलाते है ।

प्रश्न ३–पोत किसे कहते हैं ?

उत्तर–जिसके सब अवयव बिना आवरण के पूरे हुए है और जो योनि से निकलते ही हलन-चलन आदि सामर्थ्य से युक्त हैं उन्हे पोत कहते हैं ।

प्रश्न ४–देव नारकियो का कौन सा जन्म होता है ?

उत्तर– **देवनारकाणामुपपादः ॥ ३४ ॥**

सूत्रार्थ–देव और नारकियो का उपपाद जन्म होता है ।

प्रश्न १–उपपाद किसे कहते हैं ?

उत्तर–प्राप्त होकर जिसमे जीव हलन-चलन करता है उसे उपपाद कहते है। उपपाद यह देव नारकियो के उत्पत्तिस्थान विशेष की सज्ञा है ।

प्रश्न २–शेषजीवो का कौन सा जन्म होता है ?

उत्तर– **शेषाणां सम्मूर्च्छनम् ॥ ३५ ॥**

सूत्रार्थ–शेष सब जीवो का सम्मूर्च्छन जन्म होता है ।

प्रश्न १–शेष जीव कौन से ग्राह्य है ?

उत्तर–एकेन्द्रिय से लेकर असैनी पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो का नियम से सम्मूर्च्छन जन्म होता है । लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यो का भी सम्मूर्च्छन जन्म होता है । स्वयभूरमण समुद्र मे उत्पन्न सैनी पञ्चेन्द्रिय जीव भी सम्मूर्च्छन हैं । सालिसिक्थ मत्स्य, तदुल मत्स्य आदि ।

प्रश्न २–शरीर कितने हैं ?

उत्तर– **औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानि शरीराणि ॥ ३६ ॥**

सूत्रार्थ–औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण ये पाँच शरीर हैं।

प्रश्न १–शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर–जो विशेष नामकर्म के उदय से प्राप्त होकर शीर्यन्ते अर्थात् गलते हैं वे शरीर हैं।

प्रश्न २–औदारिक शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर–उदार शब्द का अर्थ स्थूल है। उदार शब्द से ठक् प्रत्यय होकर औदारिक शब्द बनता है। मनुष्य और तिर्यञ्चो के स्थूल शरीर को औदारिक शरीर कहते हैं।

प्रश्न ३–वैक्रियिक शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर–अणिमा आदि आठ गुणो के ऐश्वर्य के सम्बन्ध से एक, अनेक, छोटा, बड़ा आदि नाना प्रकार का शरीर बनाना विक्रिया है। विक्रिया जिस शरीर का प्रयोजन है वह वैक्रियिक शरीर है।

प्रश्न ४–आहारक शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर–सूक्ष्म पदार्थ का ज्ञान करने के लिये या असयम को दूर करने की इच्छा से प्रमत्तसयत जिस शरीर की रचना करता है वह आहारक शरीर है। अथवा सूक्ष्म पदार्थ के निर्णय के लिये या सयम की रक्षा के लिये छठवे गुणस्थानवर्ती मुनि के मस्तक से एक हाथ का जो सफेद रग का पुतला निकलता है उसे आहारक शरीर कहते हैं।

प्रश्न ५–तैजस शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर–जो दीप्ति का कारण है उसे तैजस शरीर कहते हैं।

प्रश्न ६–कार्मण शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर–कर्मों का कार्य कार्मण शरीर है।

प्रश्न ७–औदारिक आदि पाँचो शरीरो के स्वामियो को बताइये ?

उत्तर–	औदारिक शरीर	–	मनुष्य तिर्यञ्चो के होता है।
	वैक्रियिक शरीर	–	देव नारकियो के होता है।
	आहारक शरीर	–	प्रमत्तसयत मुनि को होता है।
	तैजस-कार्मणशरीर	–	सभी ससारी जीवो को होता है।

प्रश्न ८–इन पाँच शरीर मे कौन से शरीर इन्द्रियो के द्वारा जाने जाते है ?

उत्तर–मात्र औदारिक शरीर को इन्द्रियाँ जानती है।

प्रश्न ९–अन्य चार शरीरो को इन्द्रियाँ क्यो नही जानती हैं ?

उत्तर– **परं परं सूक्ष्मम् ॥ ३७ ॥**

सूत्रार्थ–आगे-आगे का शरीर सूक्ष्म है।

औदारिक शरीर स्थूल है, वैक्रियिक शरीर इससे सूक्ष्म है, आहारक शरीर इससे सूक्ष्म है, तैजस शरीर इससे सूक्ष्म है और कार्मण शरीर इससे भी सूक्ष्म है। (आगे-आगे शरीर सूक्ष्म होने से इन्द्रियो द्वारा दिखाई नही देते है)

प्रश्न १–आगे आगे के शरीर उत्तरोत्तर सूक्ष्म है तो प्रदेशो की अपेक्षा भी क्या आगे-आगे हीन होगे ?

उत्तर– **प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक् तैजसात् ॥ ३८ ॥**

सूत्रार्थ–(प्रदेशत) प्रदेशो की अपेक्षा (तैजसात् प्राक्) तैजस शरीर से पहले पहले के शरीर (असख्येयगुणम्) असख्यातगुणे है।

प्रश्न १–प्रदेश से यहाँ क्या लेना चाहिये ?

उत्तर–प्रदेश से यहाँ परमाणु ग्रहण करना चाहिये।

प्रश्न २–किस शरीर से किस शरीर मे अधिक प्रदेश (परमाणु) है स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर–औदारिक शरीर से असख्यात गुणे प्रदेश (परमाणु) वैक्रियिक शरीर मे और वैक्रियिक से असख्यातगुणे प्रदेश आहारक शरीर मे है।

प्रश्न ३–तैजस और कार्मण शरीरो मे प्रदेशो का प्रमाण बताइये ?।

उत्तर– **अनन्तगुणे परे ॥ ३९ ॥**

सूत्रार्थ–(परे) बाकी के दो शरीर (अनन्तगुणे) अनन्तगुणे प्रदेशवाले है। आहारक शरीर से अनन्तगुणे प्रदेश तैजस शरीर मे और तैजस शरीर की अपेक्षा अनन्तगुणे प्रदेश कार्मण शरीर मे है।

प्रश्न ४–आगे-आगे के शरीरो मे प्रदेश (परमाणु) अधिक होने पर वे बाह्य मे सूक्ष्म क्यो है ?

उत्तर–आगे-आगे के शरीरो मे प्रदेशो की अधिकता होने पर भी उनका सन्निवेश लोहपिण्ड की तरह सघन होता है अत वे बाह्य मे अल्प (सूक्ष्म) रूप होते हैं।

प्रश्न ५–तैजस और कार्मण शरीर की विशेषता क्या है ?

उत्तर– **अप्रतीघाते ॥ ४० ॥**

सूत्रार्थ–तैजस और कार्मण शरीर प्रतीघात रहित है।

प्रश्न १–प्रतीघात किसे कहते हैं ?

उत्तर–एक मूर्तिक पदार्थ का दूसरे मूर्तिक पदार्थ के द्वारा जो व्याघात होता है इसे प्रतीघात कहते हैं।

प्रश्न २–तैजस और कार्मण शरीर प्रतीघात रहित कैसे हैं ?

उत्तर–जिस प्रकार सूक्ष्म होने से अग्नि लोहे मे प्रवेश कर जाती है वैसे ही तैजस कार्मण शरीर भी सूक्ष्म होने से वज्रपटलादिक मे भी इनका प्रतीघात नही होता है।

प्रश्न ३–वैक्रियिक और आहारक शरीर भी सूक्ष्म है फिर उन्हे भी अप्रघात घात क्यो नही कहा ?

उत्तर–वैक्रियिक और आहारक सर्वत्र प्रतीघात रहित नही है। तैजस और कार्मण शरीर का लोक पर्यन्त सर्वत्र प्रतीघात नही होता है। अत दो का ही ग्रहण किया है।

प्रश्न ४–तैजस और कार्मण शरीर मे और क्या विशेषता है ?

उत्तर– **अनादिसम्बन्धे च ॥ ४१ ॥**

सूत्रार्थ–तैजस और कार्मण आत्मा के साथ अनादि सम्बन्ध वाले हैं।

प्रश्न १–सूत्र मे च शब्द क्यो आया है ?

उत्तर–"च" का अर्थ है—तैजस कार्मण आत्मा के साथ अनादि सम्बन्ध है और सादि सम्बन्ध भी। कार्यकारणभाव की परम्परा की अपेक्षा अनादि सम्बन्ध है और विशेष अपेक्षा सादि सम्बन्ध है।

प्रश्न २–तैजस कार्मण शरीर किन जीवो के होते है ?

उत्तर– **सर्वस्य ॥ ४२ ॥**

सूत्रार्थ–सब ससारी जीवो के होते है।

प्रश्न १–एक जीव के एक साथ कितने शरीर संभव हैं ?

उत्तर– **तदादीनि भाज्यानि युगपदकस्मिन्ना चतुर्भ्यः ॥४३॥**

सूत्रार्थ–एक साथ एक जीव के तैजस और कार्मण से लेकर चार शरीर तक विकल्प से होते हैं।

प्रश्न १–दो, तीन, चार शरीर एक साथ किस जीव के होते है।

उत्तर–विग्रहगति मे जीव के तैजस, कार्मण दो शरीर होते है।

मनुष्यो के वा तिर्यञ्चो के औदारिक, तैजस, कार्मण तीन शरीर होते है अथवा देव, नारकियो के वैक्रियिक, तैजस, कार्मण तीन शरीर होते हैं।

संयमी जीवो मे आहारक ऋद्धि वाले प्रमत्तसयत मुनि के औदारिक, आहारक, तैजस, कार्मण ये चार शरीर होते हैं। एक जीव के एक समय मे पाँच शरीर कभी नही होते हैं।

प्रश्न २–तपोविशेष से किसी ऋद्धिधारी साधु के एक साथ पाँच शरीर का सद्भाव हो सकता है या नही ?

उत्तर–प्रथम तो आहारक ऋद्धि और वैक्रियिक शरीर दोनों एक साथ नही होते।

दूसरा नियम यह है कि तपोविशेष से जो विक्रिया प्राप्त होती है वह औदारिक शरीर सम्बन्धी ही विक्रिया है। उसे वैक्रियिक शरीर मानना उचित नही है।

प्रश्न ३–चक्रवर्ती, नारायण, बलभद्र आदि के तथा कई तिर्यञ्चो के औदारिक, वैक्रियिक, तैजस, कार्मण चार शरीर हैं क्या ? यदि नही तो वे अनेक शरीर कैसे बनाते है ?

उत्तर–मनुष्य तिर्यञ्चो के औदारिक शरीर ही होता है। औदादिक शरीर दो प्रकार के है—विक्रियात्मक और अविक्रियात्मक। जो विक्रियात्मक औदारिक शरीर है वह मनुष्यो और तिर्यञ्चो के वैक्रियिकरूप से कहा गया है किन्तु उसमे नाना गुण और ऋद्धियो का अभाव होने के कारण उसको वैक्रियिक शरीर मे ग्रहण नही किया गया। अत स्पष्ट है कि मनुष्य व तिर्यञ्चो के जो विक्रिया देखी जाती है वह औदारिक विक्रिया ही है वैक्रियिक शरीर की नही है।

प्रश्न ४–कार्मण शरीर उपभोग योग्य है या नही ?

उत्तर– **निरुपभोगमन्त्यम् ।।४४।।**

सूत्रार्थ–(अन्त्यम्) अन्त का कार्मण शरीर (निरूपभोगम्) उपभोग रहित होता है।

प्रश्न १–उपभोग किसे कहते है ?

उत्तर–इन्द्रियो के द्वारा शब्दादिक के ग्रहण करने को उपभोग कहते है।

प्रश्न २–कार्मणशरीर को निरुपभोग क्यो कहा गया है ?

उत्तर–विग्रहगति मे भावेन्द्रियाँ तो होती हैं पर द्रव्येन्द्रियाँ नही होती हैं इसलिये यहाँ शब्दादि विषयो का ग्रहण नही होता यही कारण है कि अन्त के शरीर को निरूपभोग कहा है।

प्रश्न ३–औदारिक शरीर का लक्षण बताइये ?

उत्तर– **गर्भसम्मूर्छनजमाद्यम् ॥ ४५ ॥**

सूत्रार्थ–(गर्भसम्मूर्छनजम्) गर्भ और सम्मूर्छन जन्म से उत्पन्न हुआ शरीर

(आद्यम्) औदारिक शरीर कहलाता है। अर्थात् गर्भज और सम्मूर्छन जीवो का शरीर औदारिक शरीर कहलाता है।

प्रश्न–वैक्रियिक शरीर किसे कहते है ?

उत्तर– **औपपादिकं वैक्रियिकम् ॥ ४६ ॥**

सूत्रार्थ–(औपपादिकम्) उपपाद जन्म से होने वाला देव, नारकियो का शरीर (वैक्रियिकम्) वैक्रियिक कहलाता है।

प्रश्न १–वैक्रियिक शरीर उपपाद जन्म से ही होता है या अन्य के भी ?

उत्तर– **लब्धिप्रत्ययं च ॥ ४७ ॥**

सूत्रार्थ–लब्धि के कारण भी वैक्रियिक शरीर उत्पन्न होता है।

प्रश्न १–लब्धि किसे कहते हैं ?

उत्तर–तपोविशेष से प्राप्त होने से ऋद्धि की प्राप्ति को लब्धि कहते है।

प्रश्न २–लब्धिनिमित्तक और कौन सा शरीर होता है।

उत्तर– **तैजसमपि ॥ ४८ ॥**

सूत्रार्थ–तैजस शरीर भी लब्धि से पैदा होता है।

प्रश्न १–तैजस शरीर कितने भेद वाला है ?

उत्तर–तैजस शरीर के दो भेद है—१ नि सरणात्मक २ अनि सरणात्मक।

प्रश्न २–नि सरणात्मक के कितने भेद है ?

उत्तर–नि स[illegible]त्मक के दो भेद है—१ अशुभ तैजस, २ शुभ तैजस।

प्रश्न ३–अशु[illegible] तैजस किसे कहते है यह किनके होता है, इसका क्या कार्य है ?

उत्तर–अशुभ तैजस—कोई उग्रचारित्र वाला यति किसी के द्वारा अपमानित होने से जब क्रोधित हो जाता है तब उसके बाये स्कन्ध से जीव प्रदेश सहित तैजस शरीर (काहल-बिल्ला के आकार का पुतला) बाहर निकलता है। बारह योजन लम्बा और नौ योजन चौड़ा जलते हुए अग्नि पुञ्ज के समान जाज्वल्यमान सिन्दूर के समान लाल रग वाला यह तैजस शरीर उतने क्षेत्र की जलाने योग्य वस्तुओ मे परिवेष्टित करता है। जितनी देर तक रहता है दाह्य वस्तुओ को भस्म करता है दाह्यवस्तु को भस्मकर पुन लौटकर यति के शरीर मे प्रवेश करता है और यतिराज का भी विनाश कर देता है।

प्रश्न ४–शुभ तैजस किसे कहते है इसका कार्य क्या है ?

उत्तर–शुभ तैजस—शुभ तैजस उग्रचारित्र वाले यति के दाहिने कन्धे से निकलता है। यह सफेद रग का होता है। शुभ तैजस से १२ योजन मे सुभिक्ष आदि होते हैं।

प्रश्न ५–अनि·सरणात्मक तैजस का लक्षण क्या है यह किनको होता है ?

उत्तर–अनि सरणात्मक—अनि सरणात्मक तैजस शरीर औदारिक, वैक्रियिक और आहारक इन तीनो शरीरो के अन्तर्गत रहता है तथा तीनो शरीरो की दीप्ति का कारण बनता है।

प्रश्न ६–आहारक शरीर का लक्षण बताते हुए उसके स्वामी बताइये ?

उत्तर–शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव ॥ ४९॥

सूत्रार्थ–(आहारकम्) आहारक शरीर (शुभम्) शुभ है अर्थात् शुभ कार्य को करता है (विशुद्धम्) अर्थात् विशुद्ध कर्म का कार्य है (च) और (अव्याघाति) व्याघात बाधा रहित है तथा (प्रमत्तसयत्तस्यैव) प्रमत्तसयत्त नामक छठवे गुणस्थानवर्ती मुनि के ही होता है।

प्रश्न १–आहारक शरीर को आहारक क्यो कहते है ?

उत्तर–तत्त्वज्ञान को ग्रहण करता है इसलिये यह शरीर आहारक कहलाता है।

प्रश्न २–आहारक शरीर शुभ क्यो है ?

उत्तर–यह शरीर शुभऋद्धि विशेष से उत्पन्न होता है, मन को प्रीति करने वाला है और आहारक काययोग रूप कार्यों का कारण है इसलिये शुभ है।

प्रश्न ३–आहारक शरीर विशुद्ध क्यो है ?

उत्तर–सदिग्ध अर्थ के निर्णय का कारण होने से तथा सक्लेश रहित होने से यह शरीर विशुद्ध कहलाता है।

प्रश्न ४–आहारक शरीर अव्याघाती क्यो है ?

उत्तर–आहारक शरीर के द्वारा अन्य पदार्थ का व्याघात नही होता और अन्य पदार्थों से आहारक शरीर का व्याघात नही होता इसलिये इसे अव्याघाती कहते है।

प्रश्न ५–आहारक शरीर कब व किसके निकलता है तथा कैसा होता है ?

उत्तर–भरत ऐरावत मे किसी मुनि के केवलज्ञान के अभाव मे जब सशय उत्पन्न होता है तब तत्त्व का निश्चय करने के लिये, पचविदेह मे से किसी भी विदेह मे स्थित केवली के समीप औदारिक शरीर से जाने वाले मुनि के असयम होता है, ऐसा विचार करने वाले मुनि के रोमाग्र के अष्टमभाग प्रमाण सिर स्थित दसवे द्वार से एक हाथ प्रमाण पुतला निकलता है वह आहारक शरीर है।

प्रश्न ६–नारकी व सम्मूर्छन जीवो के कौन सा लिग होता है ?

उत्तर– नारकसम्मूर्छिनो नपुंसकानि ॥ ५० ॥

सूत्रार्थ–नारकी व सम्मूर्छन जन्म वाले जीव नपुसक होते है। अर्थात् नारकी और सम्मूर्छन जीवो के एक नपुसक वेद होता है।

प्रश्न ७–देवो के कौन सा वेद होता है ?

उत्तर– **न देवाः ॥ ५१ ॥**

सूत्रार्थ–देव नपुसक नही होते । अर्थात् देवो के स्त्रीवेद व पुरुषवेद दो वेद होते है ।

प्रश्न १–मनुष्य व तिर्यंचो के कौन सा वेद होता है ?

उत्तर– **शेषास्त्रिवेदाः ॥ ५२॥**

सूत्रार्थ–शेष मनुष्य और तिर्यञ्चो के तीनो (स्त्री-पुरुष-नपुसक) वेद वाले होते है ।

प्रश्न १–भगवान अरहन्त सिद्ध परमेष्ठियो के कौन सा वेद है ?

उत्तर–अरहन्त सिद्ध परमात्मा वेद रहित होते है ।

प्रश्न २–चारो गति के जीव आयु पूर्ण करके नवीन शरीर धारण करते हैं या आयु पूर्ण किये बिना ही नवीन शरीर धारण करते हैं ?

उत्तर– **औपपादिकचरमोत्तमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽन-पवर्त्यायुषः ॥ ५३ ॥**

सूत्रार्थ–उपपाद जन्म वाले, चरमोत्तम देह वाले और असख्यात वर्ष की आयु वाले जीव अनपवर्त्य आयु वाले होते है ।

प्रश्न १–उपपाद जन्म से किनका ग्रहण होता है ?

उत्तर–देव-नारकियो का ।

प्रश्न २–सूत्र मे चरमोत्तम शब्द का भाव क्या लेना चाहिये ?

उत्तर–चरमोत्तम शब्द दो समास रूप है—चरममेव उत्तम चरमोत्तम अर्थात् चरम शरीर ही उत्तम है, दूसरा चरमेषु उत्तम चरमोत्तम अर्थात् चरम मे उत्तम शरीर। चरम शब्द अन्त्यवाची है उत्तम शब्द का अर्थ उत्कृष्ट है । जिनका शरीर चरम और उत्तम है वे चरमोत्तम देह कहलाते है । उसी भव मे मोक्ष प्राप्त करने योग्य तीर्थंकर परमदेव को चरमोत्तम देही जानना चाहिये ।

प्रश्न ३–क्या चरम शरीर की अकाल मृत्यु हो सकती है ?

उत्तर–गुरुदत्त, पाडव, गजकुमार आदि चरम शरीरियो के उपसर्ग से मृत्यु देखी जाती है, इसीलिये चरमशरीरी के अनपवर्त्य आयु का नियम नही है ।

प्रश्न ४–क्या उत्तम शरीरी की अकाल मृत्यु हो सकती है ?

उत्तर–उत्तमदेह वालो के भी अकाल मृत्यु के अभाव का नियम नहीं है क्योंकि उत्तमदेहधारी सुभौम और ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती आदि का अकाल मरण देखा जाता है

तथा कृष्ण की जरत्कुमार के बाण से अपमृत्यु हुई है । अत· सकलचक्रवर्ती और अर्धचक्रवर्ती के भी अनपवर्त्यायु का नियम नही है ।

प्रश्न ५–"चरमो॰म" मे अकाल मृत्यु किनकी नही होती ?

उत्तर–चरम शरीरी की अकाल मृत्यु हो सकती है यथा पाडव आदि की हुई । उत्तम शरीरी की भी अकाल मृत्यु हो सकती है जैसे कृष्ण, सुभौम चक्रवर्ती, ब्रह्मदत्त की हुई । जो चरम शरीरी भी है और उत्तम शरीरी भी है ऐसे चरमोत्तम देहधारी मात्र तीर्थंकर को छोड़कर शेष सभी जीवो की अनपवर्त्यायु का (सकालमरणका) कोई नियम नही है ।

प्रश्न ६–अप्राप्त काल मे मरण अनुपलब्ध होने से अकालमरण की सिद्धि नही होती ?

उत्तर–जैसे कागज, पयाल आदि उपायो के द्वारा आम्र आदि फल निश्चित परिपाक काल के पहले ही पका दिये जाते है उसी प्रकार अवधारित मरणकाल के पूर्व ही उदीरणा के कारण से आयु की उदीरणा होकर अकालमरण हो जाता है ।

प्रश्न ७–मरण को रोकने के लिये आयुर्वेदशास्त्र नही बने हैं ये तो पीड़ा दूर करने के लिये बनाये गये हैं क्योकि औषध सेवन करते-करते भी मृत्यु हो जाती है ? अकालमरण कहना युक्त नही है ?

उत्तर–आयुर्वेद के सामर्थ्य से अकालमरण सिद्ध होता है जैसे अष्टाग आयुर्वेद को जानने वाला निपुण वैद्य यथाकाल वातादि के उदय के पूर्व ही वमन, विरेचन आदि के द्वारा अनुदीर्ण ही कफ आदि दोषो को बलात् निकाल देता है, दूर कर देता है तथा अकालमृत्यु को दूर करने के लिये रसायन आदि का उपदेश देता है । अन्यथा यदि अकालमरण नही है तो रसायन आदि का उपदेश व्यर्थ हो जायेगा । द्वादशाग मे कल्याणवाद पूर्व निष्फल रहेगा ।

केवल दुख के प्रतीकार के लिये ही औषधि दी जाती है यह बात नही है अपितु उत्पन्न रोग को दूर करने के लिये और अनुत्पन्न को हटाने के लिये भी दी जाती है । जैसे औषधि से असाता कर्म दूर किया जाता है वैसे ही विष आदि द्वारा आयु ह्रास और उसके अनुकूल औषधि से आयु का अनपवर्त भी देखा जाता है ।

प्रश्न ८–जिस जीव की भुज्यमान जितनी है उसको भोगना ही पड़ेगा क्योकि कृतकर्म कर्त्ता को अपना फल देकर ही नष्ट होता है अत अकालमरण सिद्ध नही होता है ?

उत्तर–उदीरणा मे कर्म अपना फल देकर झड़ते है । जैसे गीला कपड़ा फैला देने पर जल्दी सूख जाता है और वही कपड़ा इकट्ठा रखा रहे तो सूखने मे बहुत समय लगता है, वैसे ही उदीरणा के निमित्तो से समय के पहले ही आयु झड़ जाती है, यही अकालमृत्यु है ।

प्रश्न९–आयु की उदीरणा के निमित्त कौन से है ?

उत्तर– विसवेयणरत्तक्खय, भयसत्थग्गहण सकिलेसेहि।
उस्सासाहाराण णिरोहदो छिज्जदे आऊ ॥ क का ५७॥

विष खाने से, रक्त के क्षय हो जाने, भय से, शस्त्र घात से, सक्लेश से, श्वास के रुक जाने से, आहार के न मिलने आदि से आयु की उदीरणा आयु का क्षय होता है।

प्रश्न १०–असख्यातवर्ष की आयु मे किनको ग्रहण किया गया है ?

उत्तर–पल्य आदि उपमा प्रमाण के द्वारा जिनकी आयु जानी जाती है वे उत्तरकुरु आदि मे उत्पन्न हुए तिर्यञ्च और मनुष्य असख्यात वर्ष की आयुवाले कहलाते हैं। इनका भी अकालमरण नही होता है।

प्रश्न ११–अपवर्त्य, अनपवर्त्य आयु किसे कहते हैं ?

उत्तर–उपघात के निमित्त विष शस्त्रादिक बाह्य निमित्तो के मिलने पर जो आयु घट जाती है वह अपवर्त्य आयु कहलाती है। इस प्रकार जिनकी आयु घट जाती है वे अपवर्त्य कहलाते हैं और जिनकी आयु नही घटती है वे अनपवर्त्य आयु कहलाते हैं।

प्रश्न १२–भुज्यमान आयु का उत्कर्षण होता है क्या ?

उत्तर–भुज्यमान आयु का उत्कर्षण नही होता केवल उदीरणा होकर आयु घट सकती है।

प्रश्न १३–व्यवहार से अकालमरण मान लीजिये निश्चय से तो जिसकी आयु जब पूर्ण होनी है तब ही मरण होता है।

उत्तर–मरण ही व्यवहारनय से है, निश्चय से तो आत्मा अजर-अमर है। अर्थात् आत्मा का जनम-मरण तो व्यवहारनय से ही कहा जाता है, निश्चय से आत्मा का न जन्म है न मरण है।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीय अध्याय

विवेचना [सूत्र ३९]

सूत्र १-६ मे अधोलोक का वर्णन—सात पृथिवियो (नरक) के नाम, नरक बिलो की सख्या, नारकियो के दु ख व नरको मे उत्कृष्ट आयु के प्रमाण का कथन।

सूत्र ७ मे—मध्यलोक का वर्णन।

सूत्र ७-८—मे कुछ द्वीप समुद्रो के नाम, आकार व विस्तार कथन।

सूत्र ९ मे—जम्बूद्वीप का विस्तार और आकार कथन

सूत्र १० मे—सप्तक्षेत्रों के नाम।

सूत्र ११-१४ मे—कुलाचलो के नाम, वर्ण, आकार और कुलाचलो पर स्थित सरोवरो के नाम।

सूत्र १५-१७ मे—प्रथम सरोवर की लम्बाई, गहराई, कमल का कथन।

सूत्र १८-१९ मे—महापद्म आदि सरोवरो मे कमल, उनमे निवासिनी देवियो का कथन।

सूत्र २०-२३ मे—१४ महानदियो के नाम, बहने का क्रम व सहायक नदियो की सख्या का कथन।

सूत्र २४-२६ मे—भरतादि क्षेत्रो का विस्तार।

सूत्र २७ मे—कालचक्र परिवर्तन।

सूत्र २८ मे—अन्यभूमियो का विस्तार।

सूत्र २९-३१ मे—हैमवत आदि, हैरण्यवत आदि और विदेह क्षेत्रो मे आयु की व्यवस्था।

सूत्र ३२ मे—भरतक्षेत्र का अन्यप्रकार से विस्तार।

सूत्र ३३ मे—धातकीखण्ड वर्णन।

सूत्र ३४ मे—पुष्कर द्वीप का वर्णन।

सूत्र ३५-३६ मे—मनुष्य क्षेत्र, मनुष्यो के भेद, कर्मभूमि का वर्णन व मनुष्यो की उत्कृष्ट जघन्य स्थिति का कथन।

सूत्र ३९ मे—तिर्यंचो की स्थिति।

इस प्रकार कुल ३९ सूत्रो मे नरकादि सप्त पृथ्वी रूप से अधोलोक का व मध्यलोक मे द्वीप समुद्रो का वर्णन पाया जाता है।

●

अथ तृतीयोऽध्याय:

प्रश्न १–प्रथम अध्याय सूत्र न० २१ "भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम्" मे नारक शब्द का प्रयोग हुआ है वे नारकी कहाँ निवास करते हैं ?

उत्तर–नारकी रत्नप्रभाभूमि से महातम भूमि तक नीचे-नीचे सप्तम भूमि पर्यन्त रहते हैं—

रत्नशर्कराबालुकापङ्कधूमतमोमहातमः प्रभाभूमयो घनाम्बु-वाताकाशप्रतिष्ठाः सप्ताधोऽधः ॥ १ ॥

सूत्रार्थ– (रत्नशर्कराबालुकापङ्कधूमतमोमहातम प्रभा) रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पङ्कप्रभा, धूमप्रभा, तम प्रभा और महातम प्रभा ये भूमियाँ (सप्त) सात है और क्रम से (अधोऽध) नीचे-नीचे (घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठा.) घनोदधिवातवलय, घनवातवलय, तनुवातवलय और आकाश के आधार है ।

प्रश्न १–सभी भूमियो के साथ प्रभा शब्द का प्रयोग क्यो हुआ है ? तथा उनकी विशेषता क्या है ?

उत्तर–प्रभा शब्द सब भूमियो की विशेषता को बताता है इसलिये इसे सबके साथ लगाना चाहिये ।

रत्नो के समान प्रभावाली भूमि रत्नप्रभा है । इसमे मन्द अन्धकार है ।

शर्करा समान प्रभावाली भूमि शर्कराप्रभा है यह बहुत कम तेजवाली है ।

बालुका के समान प्रभावाली बालुकाप्रभा है, यह अन्धकारमय है ।

पक (कीचड़) के समान प्रभावाली पकप्रभा है ।

धूम के समान प्रभावाली भूमि को धूमप्रभा कहते है ।

तम. प्रभासहित भूमि तम प्रभा है ।

जिसकी प्रभा गाढ अन्धकार के समान है, वह महातम·प्रभा भूमि है ।

प्रश्न २–ये सात भूमियाँ किसके आधार पर स्थित हैं ।

उत्तर–ये सातभूमियाँ घनवातवलय से वेष्टित हैं । घनवातवलय घनाम्बुवातवलय के आश्रय से स्थित है । घनाम्बुवातवलय तनुवातवलय से वेष्टित है और तनुवातवलय आकाश के आश्रय से स्थित है ।

प्रश्न ३–आकाश किसके आधार है ?

उत्तर–आकाश का कोई आधार नही है । आकाश स्वय ही आधार और स्वय ही आधेय है ।

प्रश्न ४–सूत्र मे "अधोऽध" शब्द का अर्थ स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर–सातो भूमियाँ न तिरछी हैं और न एक दूसरे के ऊपर ऊपर है—अपितु एक दूसरे के नीचे-नीचे है। ये सातो भूमियॉ एक दूसरे से एक रज्जू प्रमाण अन्तराल मे स्थित हैं। प्रत्येक भूमि के किनारो पर और अधस्तलो पर तीन वातवलय स्थित हैं।

प्रश्न ५–घन अम्बु आर वात का अर्थ बताकर घन-वात अम्बुवात आर तनुवात का अर्थ बताइये ?

उत्तर–घन का अर्थ महान [मोटा] अम्बु का अर्थ जल तथा वात का अर्थ वायु है जो अन्त्यदीपक है वात शब्द सबके साथ लगेगा। घनवात=मोटी वायु घनाम्बुवात=घनोदधिवात आर तनुवात=सूक्ष्म वायु। तनुवातवलय मे सिद्धो का निवास है।

प्रश्न ६–तीनो वातवलयो का कार्य क्या है ?

उत्तर–सर्वप्रथम सारे जगत् के प्राणस्वरूप घनोदधि वातवलय का वेष्टन है अर्थात् यह लोक को घेरे हुए है। दूसरा लोक का वेष्टन घनवातवलय है। उसके ऊपर तीन लोक का आधार, शक्तिवाला तनुवातवलय है।

प्रश्न ७–तीनो वातवलयो का वर्ण व मोटाई बताइये ?

उत्तर–घनोदधि (घनाम्बु) वातवलय गोमूत्र रग के समान है। घनवात का वर्ण मूगे के रग का है और तनुवातवलय अनेक वर्ण का है। ये तीनो वातवलय प्रत्येक बीस-बीस हजार योजन मोटे है।

प्रश्न ८–नीचे नारकियो का निवास कहाँ से प्रारम्भ होता है ?

उत्तर–प्रथम रत्नप्रभा भूमि एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी है। इसके तीन भाग है—१ खरभाग २ पकभाग और ३ अब्बहुल भाग।

खरभाग १६ हजार योजन मे सात प्रकार के व्यन्तर और नौ प्रकार के भवनवासी देव रहते हैं।

पकभाग ८४ हजार योजन मे राक्षस और असुरो के भवन हैं।

तीसरे अब्बहुल भाग मे अस्सीहजार योजन की "घम्मा" नामक प्रथम पृथ्वी मे नारकी निवास करते है। अर्थात् रत्नप्रभापृथ्वी के अब्बहुल भाग से नारकियो का निवास प्रारभ होता है।

प्रश्न ९–सातो नरको मे कुल कितने पटल हैं ?

उत्तर–नरको मे कुल पटल ४९ हैं। पहले मे १३। दूसरे मे ११। तीसरे मे ९। चौथे मे ७। पञ्चम मे ५। षष्ठम मे ३, और सप्तम मे १ = १३ + ११ + ९ + ७ + ५ + ३ + १ = ४९।

प्रश्न १०–सात भूमियो के रूढ़ि नाम बताइये ?

उत्तर–घम्मा, वंशा, मेघा, अञ्जना, अरिष्टा, मघवी और माघवी।

प्रश्न ११—क्या आपने कभी इन नरको मे जन्म लिया है ?

उत्तर—जी हाँ। लोक का ऐसा कोई प्रदेश शेष नही रह गया है कि जहाँ इस जीव ने जन्म नही लिया हो।

प्रश्न १२—योजन का मापदड बताइये ?

उत्तर—योजन का मापदड दो प्रकार से किया गया है—१ बडा योजन २ छोटा योजन। इनमे बडा योजन दो हजार कोश का होता है और छोटा योजन ४ कोश का होता है।

प्रश्न १३—नरक लोक का दूसरा नाम क्या है ?

उत्तर—अधालोक।

प्रश्न १४—लोक के भेद व आकार बताइये ?

उत्तर—लोक के तीन भेद है—१ अधालोक २ मध्यलोक ३ उर्ध्वलोक। अधोलोक वेत्रासन के समान है, मध्यलोक झालर के समान तथा उर्ध्वलोक मृदग के आकारवत् है।

प्रश्न १५—नारकिया के निवास स्थान सर्वत्र सातभूमियो मे है या कही-कही ?

उत्तर—नारकिया का निवास अपने-अपने बिलो मे होता है। बिलो की सख्या निम्न प्रकार है —

तासुत्रिंशत्पञ्चविंशतिपञ्चदशदशत्रिपञ्चोनैक नरकशतसहस्राणि पञ्चचैव यथाक्रमम् ।।२।।

सूत्रार्थ—उन रत्नप्रभादि साता भूमिया मे क्रमश तीस लाख, पच्चीस लाख, बीस लाख, पन्द्रह लाख दस लाख तीन लाख, पाँच कम एक लाख और पाँच बिल है।

रत्नप्रभाभूमि मे—तीस लाख बिल। शर्कराप्रभा मे—पच्चीस लाख। बालुका-प्रभा मे—पन्द्रह लाख। पकप्रभा मे—दस लाख। धूमप्रभा मे—तीन लाख। तम प्रभा मे—पाँच कम एक लाख और महातम प्रभा मे—पाँच ही बिल है।

इस प्रकार कुल ३०+२५+१५+१०+३+पाँच कम एक लाख+५=८४ लाख बिल।

प्रश्न १—सात नरको मे रहने वाले नारकियो की विशेषता बताइये ?

उत्तर—**नारकानित्याशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रिया ।।३।।**

सूत्रार्थ—नारकी जीव निरन्तर अशुभतर लेश्या, परिणाम, देह वेदना और विक्रिया वाले है

प्रश्न १अ—नारकी किन्हे कहते है।

उत्तर— ण रमति जदो णिच्च दव्वे खेत्ते य काल भाव य।

अण्णोण्णहि य जह्मा तह्मा ते णारया भणिया ।।१४७।। गा जी का

जो द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव मे स्वय तथा शरीर और इन्द्रिय विषयो मे, उत्पत्ति शयन विहार उठने-बैठने आदि के स्थान मे, भोजन आदि के समय मे और अनेक अवस्थाओ मे परस्पर मे प्रीति को प्राप्त न हो उनको नारत/नारकी कहते है।

प्रश्न १ब—नारकिया के कितने प्रकार मे अशुभतर अवस्था है ?

उत्तर-पाँच प्रकार से उनमे अशुभतरपना है—१ लेश्या २ परिणाम, ३ देह ४ वेदना ५. विक्रिया । ये पाँचो ही उनमे अशुभ होते हैं ।

प्रश्न २-नारकी जीवो मे निरन्तर कौनसी लेश्या होती है ?

उत्तर-प्रथम और दूसरी पृथ्वी मे कापोत लेश्या है । तीसरी पृथ्वी मे ऊपर भाग मे कपोत लेश्या और निचले भाग मे नील लेश्या है । चौथी पृथ्वी मे नील लेश्या है । पाँचवी पृथ्वी के ऊपर के भाग मे नील लेश्या और नीचे के भाग मे कृष्ण लेश्या है । छठी पृथ्वी मे कृष्ण लेश्या है और सातवी पृथ्वी मे परमकृष्णलेश्या होती है ।

प्रश्न ३-नारकियो मे अशुभतर परिणाम क्या है ?

उत्तर-परिणाम का अर्थ—स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण है । महादु खदायी नरकक्षेत्र के कारण वहाँ के पदार्थों का स्पर्श, रस, गन्ध और वर्णादि का परिणमन महादु खरूप हो जाता है । जब शीत की वेदना से व्याकुल हा किसी वस्तु को उष्ण समझकर उसका स्पर्श करते है तो उसके स्पर्श से शरीर के खड-खड हो जाते हैं । किसी वस्तु को खाते है ता जिह्वा कटकर गिर जाती है ।

प्रश्न ४-नारकियो के अशुभतर शरीर का वर्णन कीजिये ?

उत्तर-अशुभनामकर्मोदय से अशुभ अगोपाग, स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण स्वर वाले और वीभत्स पक्षियो की आकृति वाले होते है । उनका हुण्डकसस्थान होता है । उनके शरीर क्रूर, वीभत्स एव भयकर दिखते है । यद्यपि उन नारकियो का शरीर वैक्रियिक है तथापि उसमे इस औदारिक शरीरगत मल-मूत्रादिक से भी अधिक खखार, मूत्र, मल, रुधिर, मज्जा, पाप, वमन, मास, केश, अस्थि, चर्मादि वीभत्स सामग्री रहती है। इसीलिये उनकी देह अशुभतर है । प्रथम नरक मे शरीर की ऊँचाई सात धनुष तीन हाथ छह अगुल प्रमाण होती है आगे दूनी-दूनी होकर सप्तम नरक मे ५०० धनुष नारकियो का उत्सेध है ।

प्रश्न ५-नारकियो की अशुभतर वेदना का कथन कीजिये ?

उत्तर-नारकियो के अभ्यन्तर कारण असातावेदनीय का उदय रहते हुए अनादिकालीन शीत और उष्ण रूप बाह्य निमित्त से उत्पन्न हुई अति तीव्र वेदना होती है । पहली से चौथी पृथ्वी पर्यन्त मात्र उष्ण वेदना वाले नरक है । पाँचवी पृथ्वी मे ऊपर के दो लाख नरक उष्ण वेदना वाले तथा नीचे के एक लाख नरक शीत वेदना वाले हैं तथा छठवी और सातवी पृथ्वी के नरक शीत वेदना वाले ही है ।

नरको मे इतनी उष्णता होती है कि यदि उन उष्ण नरको मे सुदर्शन मेरु बराबर ताँबे का गोला डाल दिया जाय तो शीघ्र ही गल जायेगा । वही एक लाख योजन का पिघला हुआ गोला शीत नरक मे डाल दिया जाय तो वह क्षण मात्र मे घन हो जायेगा। ऐसी अशुभतर वेदना है ।

प्रश्न ६–नारकियो की अशुभतर विक्रिया किस प्रकार की होती है बताइये ?

उत्तर–नारकी ऐसा विचार करते हैं कि "शुभ विक्रिया करेंगे" पर उत्तरोत्तर अशुभ विक्रिया को ही करते हैं । "सुखकर हेतुओ को उत्पन्न करेंगे" ऐसा विचार करते हैं परन्तु वे दु खकर हेतुओ को ही उत्पन्न करते है ।

प्रश्न ७–सूत्र मे नित्य और "अशुभतर" शब्द का प्रयोग किस कारण किया है ?

उत्तर–तिर्यञ्चो मे जो लेश्यादिक है उनसे प्रथमादि नरक के नारकियो के नीचे-नीचे लेश्यादि की प्रकर्षता बताने के लिये अशुभतर शब्द का प्रयोग किया है तथा नित्य शब्द अभीक्ष्ण्य अर्थात् निरन्तरवाची है । दोनो शब्दो का तात्पर्य है नरको मे नारकियो के लेश्या, परिणाम, देह, वेदना, विक्रिया निरन्तर अशुभ होती है ।

प्रश्न ८–नारकियो के मात्र शीत-उष्णता का ही दु ख है या अन्य भी दु ख है ?

उत्तर– **परस्परोदीरितदु:खा: ॥ ४ ॥**

सूत्रार्थ–वे परस्पर उत्पन्न किये गये दु ख वाले होते है ।

प्रश्न १–नारकी परस्पर एक-दूसरे को कैसे दु.ख उत्पन्न करते हैं ?

उत्तर–नारकी कुअवधिज्ञान के बल से दु खो के कारणो को दूर से ही जानकर दु खी हो जाते है । तथा नारकी अपने भवप्रत्यय, विभगावधिज्ञान के बल से पूर्वभव के वैरी को देखते ही क्रोधानल से व्याप्त हो वैर की गाठ को दृढ़तर कर लेते है । जिससे वे कुत्ता और गीदड़ के समान एक दूसरे को मारने को तत्पर रहते हैं, मारते है । वे विक्रिया से तलवार, वसूला, फरसा, तीर, बर्छी, आदि अस्त्र-शस्त्र बनाकर परस्पर अति तीव्र दु ख को उत्पन्न करते हैं ।

प्रश्न २–नारकियो के दु ख के अन्य भी कारण हैं क्या ? यदि हाँ तो बताइये ?

उत्तर– **संक्लिष्टासुरोदीरितदु:खाश्च प्राक् चतुर्थ्याः ॥ ५ ॥**

सूत्रार्थ–चौथी भूमि से पहले तक वे सक्लिष्ट असुरो के द्वारा उत्पन्न किये गये दु ख वाले भी होते है । अर्थात् तीसरे नरक पर्यन्त सक्लेश परिणामी असुर जाति के देव भी परस्पर उनको दु ख देते है ।

प्रश्न १–सक्लेश किसे कहते है ?

उत्तर–आर्त्त - रौद्र ध्यान को सक्लेश कहते हैं ।

प्रश्न २–सक्लिष्ट किसे कहते है ?

उत्तर–पूर्व जन्म मे किये गये अतितीव्र सक्लेशरूप परिणामो से इन्होने जो पाप

कर्म उपार्जित किया उसके उदय से ये निरन्तर क्लिष्ट रहते हैं वे सक्लिष्ट कहलाते हैं ।

प्रश्न ३–असुर किसे कहते हैं ?

उत्तर–देवगति नामक नामकर्म के भेदो मे एक असुर नामकर्म है जिसके उदय से "परान् अस्यन्ति" जो दूसरो को फेंकते हैं उन्हे असुर कहते हैं ।

प्रश्न ४–क्या सभी असुर जाति के देव नरक मे जाकर दूसरो को दु ख देते हैं ?

उत्तर–मात्र अम्बाबरीष नामक असुर देव ही ऐसे हैं जो नारकियो को चतुर्थ नरक के पूर्व दु.ख देते हैं । सब नही ।

प्रश्न ५–ये असुर देव नारकियो को परस्पर कैसे लड़ाते हैं ?

उत्तर–अम्बावरीष आदि ही कोई देव तीनो नरको मे जाकर नारकियो को परस्पर पूर्वबद्ध वैर का स्मरण कराकर लड़ाते हैं । उन नारकियो को परस्पर कलह करते देखकर असुरो को सुख होता है । ये असुर नारकियो को कुतूहलवश उन्हे आपस मे भिड़ा देते हैं और उनका घात-प्रत्याघात देखकर मजा लूटते हैं । साथ ही तप्तायमान लोहमयी पुत्तलिका का आलिंगन, तपाये हुए तैल का सेचन, तेल की कढ़ाई मे पकाना आदि दु ख भी असुर जाति के देव उत्पन्न करते हैं ।

प्रश्न ६–नारकी जीव इस प्रकार असह्य घोर दुखो को सहन करते हुए असमय मे मरण को प्राप्त होते हैं या नही ?

उत्तर–मारण-ताड़न से शरीर के तिल-तिल प्रमाण टुकड़े हो जाने पर भी नारकियो का अकालमरण नही होता । अनपवर्त्य आयु वाले होने से उन नारकियो का शरीर पारत (पारे) के समान टुकड़े-टुकड़े हुआ भी पुन मिलकर एक हो जाता है ।

प्रश्न ७–नारकियो के कौनसी विक्रिया होती है तथा एक समय मे कितनी विक्रिया कर सकते हैं ?

उत्तर–नारकी जीवो के अपृथक् विक्रिया होती है । एक समय मे वे एक ही विक्रिया करते हैं ।

प्रश्न ८–नारकियों की आयु कितनी है ?

उत्तर– **तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्तद्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्वानां परास्थितिः ॥ ६ ॥**

सूत्रार्थ–उन नरको मे नारकियो की उत्कृष्ट आयु क्रम से एक सागर, तीन सागर, सात सागर, दस सागर, सत्रह सागर, बाईस सागर और तैंतीस सागर है ।

प्रश्न १–नरको मे आयु को स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर–रत्नप्रभा में – एक सागर । शर्कराप्रभा मे – तीन सागर । बालुकाप्रभा मे – सात सागर । पंकप्रभा मे – दस सागर । धूमप्रभा मे – सत्रह सागर । तम प्रभा मे – बाईस सागर । महातम प्रभा मे – तैंतीस सागर उत्कृष्ट आयु है ।

प्रश्न २–नारकियो के एक-एक नरक मे कितने पटल हैं तथा उनकी आयु जघन्य से उत्कृष्ट कितनी है स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर–प्रथम नरक मे १३, दूसरे मे ११, तीसरे मे ९, चौथे मे ७, पाँचवे मे ५, छठे मे ३ और सप्तम मे १ पटल है । इस प्रकार कुल १३ + ११ + ९ + ७ + ५ + ३ + १ = ४९ पटल नरको मे हैं ।

प्रथम नरक के प्रथम पटल मे जघन्य आयु — १० हजार वर्ष

उत्कृष्ट आयु — ९० हजार वर्ष

प्रथम पटल की उत्कृष्ट आयु द्वितीय पटल की जघन्य आयु है इसी प्रकार आगे-आगे और समझना है । इस प्रकार वृद्धि होते-होते पहले नरक के १३वे पटल म १ सागर आयु है । प्रथम नरक की उत्कृष्ट आयु दूसरे नरक की जघन्य आयु है ऐसे सप्तम नरक तक जानना ।

प्रश्न ३–इन नरको मे कौन जीव उत्पन्न होते है ?

उत्तर–मद्यपायी, मासभक्षी, यज्ञ मे बलि देने वाले, असत्यवादी, परद्रव्य का हरण करने वाले, परस्त्री लम्पटी, तीव्रलोभी, रात्रि मे भोजन करने वाले, स्त्री, बालक, वृद्ध और ऋषि के साथ विश्वासघात करनेवाले, जिनधर्म के निन्दक, रौद्रध्यान करने वाले तथा इसी प्रकार के अन्य पाप करने वाले जीव नरको मे पैदा होते है । तीव्र मिथ्यात्वी, बहुत आरभ और बहुत परिग्रह के धारक मनुष्य, तिर्यञ्च भी नरको मे पैदा होते है ।

प्रश्न ४–नारकी जीवो की उत्पत्ति कैसे होती है ?

उत्तर–नारकी उत्पत्ति के समय पैर ऊपर की ओर किये तथा मस्तक नीचे की ओर किये हुए उत्पन्न होकर अधोमुख से नीचे गिरते है । तथा दीर्घ काल तक क्षुधा-तृषा-शीत-उष्ण आदि के दु खो का अनुभव करते रहते है ।

प्रश्न ५–क्षुधा-तृषा की तीव्र इच्छा होने पर भी उन्हे खाने-पीने को कुछ मिलता है या नही ?

उत्तर–वे मेरुप्रमाण अन्न खाने की इच्छा करते है परन्तु कणमात्र भी अन्न उन्हे प्राप्त नही होता है इसी प्रकार समुद्र प्रमाण जल पीने की इच्छा करते है परन्तु वहाँ जलबिन्दु भी प्राप्त नही होती है ।

प्रश्न ६–नारकी जीवो मे दु ख की अधिकता होने पर भी किंचित् सुख भी तो होता है या नही ?

उत्तर–नही । नारकियो के नरको मे चक्षु का उन्मेष प्रमाण काल भी सुख प्राप्त नही होता है अर्थात् एक क्षणमात्र भी उनको सुख नहीं मिलता है ।

प्रश्न ७–सातो नरको मे जीवो का निरन्तर गमन कितनी बार हो सकता है?

उत्तर–प्रथम नरक मे ८ बार, द्वितीय मे ७ बार, तृतीय मे ६ बार, चतुर्थ मे ५ बार, पञ्चम मे ४ बार, षष्ठम मे तीन और सप्तम नरक मे दो बार जीव अविच्छिन्न रूप से उत्पन्न हो सकते हैं ।

प्रश्न ८–सातो नरको मे कौन-कौन जीव जा सकते हैं ?

उत्तर–असञ्ज्ञी प्रथम नरक तक ही जाता है । सरीसृप दूसरे नरक तक जाते है । पक्षी तीसरे नरक तक जाते है । भुजग चौथे नरक तक जाते है । सिह पाँचवे नरक तक जाते हैं । स्त्रियाँ छठे नरक तक जाती है तथा मगरमच्छ और मानव सातवे नरक तक जाते हैं ।

प्रश्न ९–सातो नरको से आकर जीव कौन-कौन हो सकते है ?

उत्तर– १ सप्तम नरक से निकला हुआ नारकी तिर्यञ्च गति मे ही जन्म लेता है ।

२ छठे नरक से निकला नारकी मनुष्य हो सकता है । परन्तु देशव्रती नही बन सकता, सम्यग्दृष्टि बन सकता है ।

३ पञ्चम नरक मे निकला जीव मनुष्यभव प्राप्तकर देशव्रती एव महाव्रती बन सकता है परन्तु उस भव से मोक्षपद नही पा सकता ।

४ चतुर्थ नरक से निकलकर कोई प्राणी महाव्रती बनकर मोक्षपद प्राप्त कर सकता है । परन्तु तीर्थंकर नही हो सकता ।

५ प्रथम, द्वितीय और तृतीय नरक से निकले नारकी तीर्थंकर भी हो सकते हैं और उसी भव से मोक्ष भी जा सकते है ।

प्रश्न १०–जो महानात्मा नरक से निकलकर तीर्थंकर होने वाला है उसकी वहाँ क्या स्थिति रहती है ।

उत्तर–जो महानात्मा आगामी काल मे तीर्थंकर होने वाला है तथा जिनके पापकर्मों का उपशम हो गया है । देव लोग भक्तिवश छ माह पहले से उनके उपसर्ग दूर कर देते है ।

प्रश्न ११–अधोलोक से ऊपर मध्यलोक है इसमे द्वीप समुद्र है, इस लोक को तिर्यक् लोक भी कहते है सो क्यो ?

उत्तर–लोक के मध्य मे जम्बूद्वीप से लेकर स्वयभूरमण समुद्र पर्यन्त तिर्यक् प्रचय विशेषण से अवस्थित असख्यातद्वीप समुद्र अवस्थित हैं इसलिये इसको तिर्यक् लोक कहते है ।

प्रश्न १२—तिर्यक् लोक मे अवस्थित असख्यात द्वीप समुद्रो मे से कुछ द्वीप समुद्रो के नाम बताइये ?

उत्तर—जम्बूद्वीपलवणोदादयः शुभनामानो द्वीपसमुद्राः ।।७।।

सूत्रार्थ—तिर्यक लोक मे जम्बूद्वीप, लवणसमुद्र आदि शुभ नाम वाले असख्यात द्वीप समुद्र है।

प्रश्न १—जम्बूद्वीप आदि प्रसिद्ध द्वीपो व समुद्र के नाम बताओ ?

उत्तर—१ जम्बूद्वीप, १ लवणसमुद्र, २ धातकीखड २ कालोदधिसमुद्र ३ पुष्करवर द्वीप पुष्करवर समुद्र ४ वारुणीवर द्वीप, वारुणीवर समुद्र, ५ क्षीरवर द्वीप, क्षीरवर समुद्र, ६ घृतवर द्वीप, घृतवर समुद्र, ७ इक्षुवर द्वीप, इक्षुवर समुद्र, ८ नन्दीश्वर द्वीप, नन्दीश्वर समुद्र, ९ अरुणवर द्वीप, अरुणवर समुद्र, १० अरुणाभास द्वीप और अरुणाभास समुद्र ११ कुण्डलवर द्वीप, कुण्डलवर समुद्र, १२ शखवर द्वीप, शखवर समुद्र और १३ रुचकवर द्वीप, रुचकवर समुद्र। इस प्रकार असख्यात द्वीप समुद्र है और अन्तिम मे स्वयभूरमण द्वीप और स्वयभूरमण समुद्र है।

प्रश्न २—असख्यात भी द्वीप समुद्र कितने है ?

उत्तर—पच्चीस कोटि उद्धारपल्य के जितने रोमखण्ड हो उतनी ही द्वीप समुद्रो की सख्या है।

प्रश्न २(अ)—अष्टम द्वीप कौन सा है इसमे कितने जिनालय, कितनी मूर्तियाँ है ? व सब मूर्तियाँ कितनी ऊँची है ?

उत्तर—अष्टम द्वीप नन्दीश्वर द्वीप है। इसमे पूर्व-दक्षिण-पश्चिम-उत्तर दिशाओ मे १३-१३ कुल बावन जिनालय है। इनमे एक-एक मन्दिर मे १०८-१०८ मूर्तियाँ है अत नन्दीश्वर द्वीप मे कुल मूर्तियाँ ५६१६ है सभी मूर्तियाँ ५०० धनुष ऊँची पद्मासन मे विराजमान है।

प्रश्न ३—उद्धारपल्य किसे कहते है ?

उत्तर—दो हजार कोश गहरे और दो हजार कोश गोल गड्ढे मे (कैंची से जिसका दूसरा भाग न हो सके) मेढे के बालो को भरना। जितने बाल उसमे समावे उनमे से एक-एक बाल को सौ-सौ वर्ष बाद निकालना; जितने वर्षों मे वे सब बाल निकल जावे, उतने वर्षों के जितने समय हो, उतने समयो को व्यवहार पल्य कहते है। व्यवहार पल्य से असख्यातगुणा उद्धार पल्य होता है।

प्रश्न ४—जम्बूद्वीप का जम्बूद्वीप नाम क्यो पडा है ?

उत्तर—जम्बूवृक्ष से उपलक्षित होने से इस द्वीप का नाम जम्बूद्वीप पडा है। यह जम्बूवृक्ष शाश्वत है अकृत्रिम है, पृथ्वीकाय है तथा अनादि-निधन है।

प्रश्न ५—जम्बूवृक्ष कहाँ है ? कितने परिवार सहित है ?

उत्तर—मेरु की उत्तरदिशा मे विदेह क्षेत्रान्तर्गत उत्तरकुरु नामक उत्तम भोगभूमि के मध्य जम्बू नामक वृक्ष है। इस वृक्ष के चारो ओर चारो दिशाओ मे चार परिवार वृक्ष है। सारे परिवार वृक्ष एक लाख चालीस हजार एक सौ पन्द्रह है। मूल वृक्ष के साथ मिलकर सारे वृक्ष एक लाख चालीस हजार एक सौ बीस है।

प्रश्न ६—धातकीद्वीप और पुष्करद्वीप इन द्वीपो के ये नाम क्यो पड़े है ?

उत्तर—धातकीद्वीप धातकीवृक्ष से उपलक्षित है पुष्करद्वीप पुष्कर वृक्ष से उपलक्षित है इसलिये इनके साथ ये नाम पडे है।

प्रश्न ७—द्वीप और समुद्रो का विस्तार और आकार बताइये ?

उत्तर–द्विर्द्विर्विष्कम्भाः पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो वलयाकृतयः ॥ ८ ॥

सूत्रार्थ–प्रत्येक द्वीप समुद्र दूने-दूने विस्तार वाले, पहले-पहले के द्वीप समुद्र को घेरे हुए तथा चूड़ी के समान आकार वाले हैं ।

प्रश्न १–ये द्वीप और समुद्र कैसे हैं ?

उत्तर–प्रथम द्वीप से लवण समुद्र का विस्तार दूना है । उससे आगे द्वीप समुद्रो का विस्तार दूना-दूना है । तथा ये द्वीप समुद्र उत्तरोत्तर एक दूसरे को घेरे हुए है, वलयाकार हैं ।

प्रश्न २–प्रथम जम्बूद्वीप कहाँ है, इसका विष्कभ कितना है ?

उत्तर– तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥ ९ ॥

सूत्रार्थ–उन सब द्वीप समुद्रो के मध्य (बीच) मे गोल एक लाख योजन विष्कम्भ वाला जम्बूद्वीप है । जिसके मध्य मे मेरुपर्वत है ।

प्रश्न १–सब द्वीपो के मध्य कौनसा द्वीप है ? "नाभिवृत्त " का अर्थ क्या है?

उत्तर–जम्बूद्वीप है । यह वलयाकार रूप है । जैसे शरीर के मध्य मे नाभि होती है वैसे ही द्वीप-समुद्रो के मध्य जम्बूद्वीप है ।

प्रश्न २–जम्बूद्वीप के मध्य क्या है ?

उत्तर–जम्बूद्वीप के मध्य नाभिस्थानीय अर्थात् शरीर मे नाभिवत् सुमेरु पर्वत है।

प्रश्न ३–मेरु पर्वत का सक्षिप्त वर्णन कीजिये ?

उत्तर–जम्बूद्वीप के ठीक मध्य मे मेरु पर्वत है । यह एक लाख चालीस योजन ऊँचा है । इसमे से एक हजार योजन जमीन मे है । अर्थात् नीव है । निन्यानवे हजार योजन समतल से चूलिका तक है और अन्त मे चालीस योजन की चोटी है । नीव १ हजार योजन + ५०० यो + ६२ $\frac{१}{२}$ ह यो + ३६ ह यो + ४० योजन = १ लाख ४० योजन ।

प्रश्न ४–सुमेरु पर्वत के कितने काण्ड है तथा उसमे कितने वन है ?

उत्तर–मेरु पर्वत के तीन काण्ड हैं । पहला जमीन से पाँच सौ योजन का, दूसरा साढे बासठ सहस्र योजन का और तीसरा छत्तीस हजार योजन का है । प्रत्येक काण्ड के अन्त मे एक-एक कटनी है । एक जमीन पर और तीन इन तीन कटनियो पर यह चार वनो से सुशोभित है । इनके क्रम से भद्रसाल, नन्दन, सौमनस और पाण्डुक वन नाम हैं । वनो के चारो ओर चार दिशाओ मे चार-चार इस हिसाब से सोलह चैत्यालय हैं । पाण्डुक वन मे चारो दिशाओ मे चार पाण्डुक शिलाएँ है जिन पर उस-उस दिशा के क्षेत्रो मे उत्पन्न हुए तीर्थंकरो का जन्माभिषेक होता है ।

पाण्डुक शिला

[जन्माभिषेक]

प्रश्न५–चार पाण्डुक शिलाओ के नाम व रग बताइये तथा किस-किस शिला पर कौन से क्षेत्र के तीर्थंकर का अभिषेक होता है ?

उत्तर– १ ईशान दिशा मे पाण्डुक शिला है, यह स्वर्णमय हे, यहाँ भरत क्षेत्र क बाल तीर्थंकर का जन्मभिषेक होता है।

२ आग्नेय दिशा मे पाण्डुकबला शिला हे, यह रजतमयी हे, यहॉ पश्चिम विदेह क्षेत्र के तीर्थंकर का जन्माभिषेक होता हे।

३ नैऋत्य दिशा मे रक्तशिला है, यह स्वर्णमयी ह यहाँ ऐरावत क्षेत्र के तीर्थंकर का जन्माभिषेक होता है।

४ वायव्य दिशा मे रक्त कम्बला शिला हे, यह लालमणिमयी हे, यहॉ विदेह क्षेत्र के तीर्थंकर का जन्माभिषेक होता हे।

प्रश्न५अ–पॉचो मेरु मे अलग-अलग व कुल कितनी प्रतिमाएँ विराजमान ह।

उत्तर–एक मेरु सबधी १६ जिनालया म १७२८ ह अत पॉच मेरु सबधी कुल जिनालयो मे १७२८×५=८६४० प्रतिमाएँ विराजमान ह।

प्रश्न६–जम्बूद्वीप म कितने क्षेत्र ह ?

उत्तर–जम्बूद्वीप म छ कुलाचलो से विभाजित होकर सात क्षेत्र ह—

उत्तर– भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाः

क्षेत्राणि ॥१०॥

सूत्रार्थ–भरतवर्ष हमवतवर्ष, हरिवर्ष विदेहवर्ष, रम्यकवर्ष, हेरण्यवतवर्ष और ऐरावतवर्ष ये सात क्षेत्र हे।

प्रश्न१–भरतवर्ष का नाम भरतक्षेत्र क्यो ह ?

उत्तर–भरत क्षत्रिय के योग से इसको भरत क्षेत्र कहत ह। अयोध्या नगरी मे सर्व राजलक्षणा से सम्पन्न "भरत" नामक षट खण्डाधिपति चक्रवर्ती हुआ है। इस अवसर्पिणी के राज्य विभाग काल म उसने ही सर्वप्रथम इस क्षेत्र का उपभोग किया था। इसलिये उसके अनुशासन क कारण इस क्षेत्र का नाम भरतक्षेत्र पडा ह।

अथवा

भरत यह सज्ञा अनादिकालीन है। अथवा यह ससार अनादि होने से अहेतुक ह इसलिये भरत यह नाम स्वाभाविक ह।

प्रश्न२–यह भरत क्षेत्र कहाँ ह ? इस क्षेत्र का विभाग कितने खडो मे कसे हुआ ह ?

उत्तर–हिमवान् पर्वत और पूर्व-दक्षिण व पश्चिम इन तीन समुद्रा के मध्य भरत क्षेत्र ह। अर्थात् जिसक उत्तर म हिमवान पर्वत तथा पूर्व-दक्षिण व पश्चिम म समुद्र ह।

इस क्षेत्र का विभाग छ खण्डा म गगा सिन्धु और विजयार्द्ध पर्वत से होता ह। पाच म्लेच्छखण्ड ह एक आर्यखड ह।

प्रश्न ३–विजयार्द्ध पर्वत यह नाम क्यो है ? इसके अन्य भी नाम बताइये ?

उत्तर–चक्रवर्ती के विजयक्षेत्र की अर्द्धसीमा इस पर्वत से निर्धारित होती है अत इसका नाम विजयार्द्ध सार्थक है । गुण से यह रजताचल है अर्थात् चादी से निर्मित एव शुभ्र वर्ण है ।

प्रश्न ४–चक्रवर्ती अपनी प्रशस्ति कहाँ लिखते है ?

उत्तर–विजयार्द्ध से उत्तर मे और क्षुद्र हिमवान पर्वत से दक्षिण दिशा मे गगा, सिन्धु नदियो तथा म्लेच्छ खण्डो के मध्य मे एक सौ योजन ऊँचा, पचास योजन लम्बा जिनमदिरो से युक्त स्वर्ण व रत्नो से निर्मित एक **वृषभगिरि** नामक पर्वत है । इस पर्वत पर चक्रवर्ती अपनी प्रशस्ति लिखते है ।

प्रश्न ५–विजयार्द्ध व म्लेच्छखडो मे कौन सा काल रहता है ?

उत्तर–भरतक्षेत्र के म्लेच्छखण्ड मे और विजयार्द्ध पर्वत पर चतुर्थकाल के आदि और अन्त के सदृश काल रहता है ।

प्रश्न ६–विजयार्द्ध पर उत्पन्न मानव क्या कहलाते है ? उनकी आजीविका क्या है ?

उत्तर–विजयार्द्ध पर्वत निवासी मानव यद्यपि भरतक्षेत्र के मानवो के समान षट्कर्मो से ही आजीविका करते है, परन्तु प्रज्ञप्ति आदि विद्याओ के धारण करने के कारण विद्याधर कहे जाते है ।

प्रश्न ७–हैमवत और हरि क्षेत्र के ये नाम किस कारण है ?

उत्तर–हिमवान् क्षेत्र के समीप होने से हैमवत क्षेत्र कहलाता है । यह हिमवान् महाहिमवान् के तथा पूर्वा पर समुद्रो के मध्य मे है । यह जघन्यभोगभूमि है ।

हरित् वर्ण मनुष्य के योग से हरि क्षेत्र कहलाता है ।

हरि का अर्थ सिह है । सिह का परिणाम शुक्ल है । सिह के समान शुक्ल परिणाम वाले जीव जहाँ रहते है वह हरि क्षेत्र है । यह मध्यम भोगभूमि है ।

प्रश्न ८–विदेह क्षेत्र नाम किस कारण है ?

उत्तर–विदेह मे रहने वाले मानव मुनिवत् निरन्तर विदेह अर्थात् कर्मबन्ध का उच्छेद करने के लिये वा देह का नाश करने के लिये निरन्तर प्रयत्न करते है और विदेहत्व, अशरीरत्व, सिद्धत्व को प्राप्त कर लेते है । अत विदेह मनुष्यो के सम्बन्ध से क्षेत्र का नाम भी विदेह पड़ गया है ।

और भी वहाँ पर जिनधर्म के विनाश का अभाव होने से और सदा धर्म का प्रवर्तन होने से प्राय करके मनुष्य शरीर रहित होकर सिद्ध होते है इसलिये भी यह क्षेत्र विदेह कहलाता है ।

प्रश्न ९–रम्यक क्षेत्र की रम्यक सज्ञा क्यो है ?

उत्तर–रमणीय देश, नदी, वन और पर्वत आदि से युक्त होने के कारण इसे

रम्यक क्षेत्र कहते है । यह मध्यम भोगभूमि है ।

प्रश्न १०–हैरण्यवत क्षेत्र की हैरण्यवत सज्ञा क्यों है ?

उत्तर–हिरण्य वाले (सुवर्ण वाले) रुक्मी पर्वत के समीप होने से इसका नाम हैरण्यवत क्षेत्र पड़ा है । यह जघन्य भोगभूमि क्षेत्र है ।

प्रश्न ११–ऐरावत क्षेत्र का ऐरावत नाम कैसे पड़ा है ?

उत्तर–ऐरावत क्षत्रिय के योग से यह ऐरावतक्षेत्र कहलाता है । रक्ता तथा रक्तोदा नदियो के बीच अयोध्या नगरी है । उस नगरी का शासक ऐरावत राजा था उसके नाम से क्षेत्र का नाम ऐरावत पड़ा है ।

प्रश्न १२–उत्तम भोगभूमि कहाँ है ?

उत्तर–पूर्व विदेह मे उत्तर दिग्वर्ती गजदन्तो के बीच मे उत्तरकुरु नाम उत्तम भोगभूमि है इस उत्तर कुरु मे ही जम्बूवृक्ष है । पश्चिम विदेह मे दक्षिण दिगवर्ती गजदन्तो के बीच देवकुरु नामक उत्तम भोगभूमि है । देवकुरु के मध्य एक शाल्मलि वृक्ष है ।

प्रश्न १३–कर्मभूमियॉ कितनी है व भोगभूमियाँ भी कितनी हैं ?

उत्तर–पचमेरु सबधी पॉच भरत, पाँच ऐरावत और पाँच विदेह ये १५ कर्मभूमियॉ है । पॉच देवकुरु, पॉच उत्तरकुरु मे दस उत्तम भोगभूमि है, पॉच रम्यक व पॉच हरि क्षेत्र मे मध्यम भोगभूमि है और पॉच हैमवत व हैरण्य मे जघन्य भोगभूमि है । इस प्रकार कुल भोगभूमियॉ तीस है ।

प्रश्न १४–भोगभूमियाँ जीवो का सामान्य स्वरूप ?

उत्तर–	**उत्तम**	**मध्यम**	**जघन्य भोगभूमियाँ**
ऊँचाई	तीन कोश	दो कोश	शरीर ऊचाई एक कोश
आयु	तीन पल्य	दो पल्य	आयु एक पल्य
वर्ण	बालसूर्यसम	चन्द्रमा के समान श्वेत वर्ण	शरीर वर्ण प्रियगुसम श्याम
भोजन	तीन दिन के बाद बेर बराबर	दो दिन के बाद बेहड़ा के बराबर	एक दिन के बाद आवला प्रमाण भोजन
गर्भ	आयु के ९ मास शेष रहने पर	आयु के नवमास शेष रहने पर	आयु के नवमास शेष रहने पर गर्भ ठहरना
मरण	छीक जभाई से	छीक जभाई से	छीक और जभाई से मरण
सम्यक्त्व प्राप्ति की योग्यता	२१ दिन	३५ दिन	४९ दिन

प्रश्न १९–भोगभूमियाँ जीव क्या कहलाते हैं ?

उत्तर–वहाँ से पुरुष-स्त्री को आर्या और स्त्री-पुरुष को आर्य कहकर बुलाती है। अत· वे जीव आर्य कहलाते हैं।

प्रश्न २०–वे जीव किन चीजो का भोग करते हैं ? कल्पवृक्ष कितने व कौन से हैं ?

उत्तर–वे सब युगल दस कोस ऊँचे दस प्रकार के कल्पवृक्षों से उत्पन्न भोगो को भोगते हैं। कल्पवृक्ष १० हैं। १ मद्यांग, २ वादित्रांग, ३ भूषणांग, ४ माल्यांग, ५ ज्योतिरांग, ६ दीपांग, ७ गृहाङ्ग, ८ भोजनाङ्ग ९ भाजनाङ्ग, १० वस्त्राङ्ग।

प्रश्न २१–ढाई द्वीप मे अयोध्यानगरी कितनी हैं। अयोध्या के अन्य नाम कौन से है ?

उत्तर–ढाई द्वीप मे १७० अयोध्या नगरियाँ हैं। अयोध्या के साकेत, विनीता नाम भी है।

प्रश्न २२–सभी तीर्थंकरो के जन्म व मोक्ष स्थान का नियम क्या है ?

उत्तर–तीर्थंकरो का जन्म अयोध्या मे और मोक्ष सम्मेद-शिखर मे होने का नियम है अत. ढाई द्वीप मे कुल १७० अयोध्या और १७० ही सम्मेद-शिखर है।

प्रश्न २३–क्षेत्रो का विभाजन करने वाले षट् कुलाचल पर्वतो के नाम व अवस्थिति बताईये ?

उत्तर– **तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषधनील-रुक्मिशिखरिणो वर्षधरपर्वताः ॥ ११ ॥**

सूत्रार्थ–भरत आदि सात क्षेत्रो का विभाग करने वाले, पूर्व से पश्चिम तक लम्बे हिमवान्, महाहिमवान् निषध, नील, रुक्मि और शिखरी ये अनादि निधन नाम वाले छह पर्वत हैं।

प्रश्न १–छह कुलाचल पर्वतों के वर्ण विशेष कौन से है ?

उत्तर– **हेमार्जुनतपनीयवैडूर्य्यरजतहेममयाः ॥ १२ ॥**

सूत्रार्थ–ये छहो पर्वत क्रम से सोना, चाँदी, तपाया हुआ सोना, वैडूर्यमणि, चाँदी और सोना इनके समान रग वाले हैं।

प्रश्न १–पर्वतो के रग बताइये ?

उत्तर–हिमवान पर्वत का रग हेममय, महाहिमवान् का रग अर्जुनमय, निषध पर्वत का रग तपाये गये सोने समान, नीलपर्वत का रग वैडूर्यमय, रुक्मि पर्वत का रग रजतमय और शिखरी पर्वत का रग चीनी रेशम के समान पीला (हेममय) है।

प्रश्न १–पर्वतो की अन्य विशेषताएँ बताइये ?

उत्तर-**मणिविचित्रपार्श्वा उपरि मूले च तुल्यविस्ताराः ॥ १३ ॥**

सूत्रार्थ-इन पर्वतो के पार्श्वभाग अर्थात् तट मणियो से चित्र-विचित्र हैं तथा वे ऊपर-मध्य व मूल मे समान विस्तार वाले है ।

प्रश्न १-कुलाचलो के मध्य क्या है ?

उत्तर-तालाब हैं ।

प्रश्न २-तालाबो के नाम क्या है ?

उत्तर- **पद्ममहापद्मतिगिञ्छकेसरिमहापुण्डरीकपुण्डरीका-ह्रदास्तेषामुपरि ॥ १४ ॥**

सूत्रार्थ-पर्वतो के ऊपर क्रम से पद्म, महापद्म, तिगिंछ, केसरी, महापुण्डरीक और पुण्डरीक ये छह तालाब है ।

प्रश्न १-प्रथम पद्म तालाब का आकार लम्बाई आदि कितनी है ?

उत्तर- **प्रथमो योजनसहस्रायामस्तदर्द्धविष्कम्भो ह्रदः ॥ १५॥**

सूत्रार्थ-पहला तालाब एक हजार योजन लम्बा और उससे आधा चौड़ा है ।

प्रश्न १-पद्म तालाब की लम्बाई, चौड़ाई, तलभाग, तट भाग का वर्णन करिये?

उत्तर-पद्म तालाब पूर्व-पश्चिम एक हजार योजन लम्बा, पॉच सौ योजन चौड़ा है तल-भाग वज्र से बना हुआ है तथा तट भाग नाना प्रकार के मणि और सोने से चित्रित है ।

प्रश्न २-पद्म तालाब की गहराई कितनी है ?

उत्तर- **दशयोजनावगाहः ॥ १६ ॥**

सूत्रार्थ-पद्म तालाब दस योजन गहरा है ।

प्रश्न १-पद्म तालाब के मध्य मे क्या है ?

उत्तर- **तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ॥ १७ ॥**

सूत्रार्थ-पद्म तालाब के बीच मे एक योजन का कमल है ।

प्रश्न १-कमलपत्र का विस्तार आदि कितना है ?

उत्तर-कमलपत्र एक कोस लम्बा है, कर्णिका का विस्तार दो कोस है इसलिये कमल एक योजन लम्बा और एक योजन विस्तार वाला है ।

प्रश्न २-महापद्म आदि आगे के तालाब और कमलो की लम्बाई आदि कितनी है ?

उत्तर- **तद्द्विगुणद्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च ॥ १८ ॥**

सूत्रार्थ-आगे के तालाब और कमल दोनो पद्म तालाब से दूने-दूने है ।

प्रश्न ३–आगे के तालाब और कमल किस अपेक्षा दूने हैं ?

उत्तर–लम्बाई आदि की अपेक्षा । पद्म से महापद्म की, महापद्म से तिगिंछ की लम्बाई विस्तार और गहराई दूनी-दूनी है । कमल भी लम्बाई आदि की अपेक्षा दूने-दूने हैं ।

प्रश्न ४–कमलो पर रहने वाली देवियो के नाम, आयु और परिवार को बताइये ?

उत्तर– **तन्निवासिन्यो देव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिक परिषत्काः ॥ १९ ॥**

सूत्रार्थ–उन पद्मादि सरोवरो के कमलो पर श्री, ह्री, धृति, कीर्त्ति, बुद्धि, लक्ष्मी ये छह देवियाँ सामानिक और पारिषद जाति के देवो के साथ निवास करती है । इनकी आयु एक पल्य की है ।

प्रश्न १–सामानिक कौन कहलाते है ?

उत्तर–समान स्थान मे होने वाले सामानिक कहलाते है । ये पिता-दादा, उपाध्याय आदि के सदृश होते है ।

प्रश्न २–परिषद कौन हैं ?

उत्तर–परिषद का अर्थ है सभा और परिषद् मे रहने वालो को पारिषद कहते है । पारिषद मित्र आदि के तुल्य होते है । [ये देवियॉ सामानिक और परिषद देवो के साथ रहती है ।]

प्रश्न ३–कौन से सरोवर पर कौन देवी रहती है ?

उत्तर–पद्म सरोवर के कमल पर स्थित प्रासाद मे श्रीदेवी, महापद्म के कमल पर स्थित प्रासाद मे ह्री देवी, आगे तिगिंच्छ पद्म के कमल पर स्थित प्रासाद मे धृति देवी, केसरी तालाब के कमल पर स्थित प्रासाद मे कीर्ति देवो, पुण्डरीक तालाब के कमल पर स्थित प्रासाद मे बुद्धि देवी और महापुण्डरीक तालाब के कमल पर स्थित प्रासाद मे लक्ष्मी देवी का निवास है ।

प्रश्न ४–ये देविया बाल ब्रह्मचारिणी होती है क्या ?

उत्तर–नही । श्री, ह्री, धृति ये तीनो देवियाँ अपने-अपने परिवार सहित सौधर्म इन्द्र के साथ सम्बन्ध रखती है । और उसकी सेवा मे तत्पर रहती है ।

बुद्धि, कीर्ति और लक्ष्मी ये तीनो देवियॉ सपरिवार ईशान इन्द्र के साथ सम्बन्ध रखती है और उसकी सेवा मे तत्पर रहती है ।

प्रश्न ५–जिन नदियो के द्वारा क्षेत्रो के विभाग होते है उन नदियो के नाम कौन से है ? वे कहाँ बहती है ?

उत्तर- **गङ्गासिन्धुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकान्तासीतासीतोदा-नारीनरकान्ता सुवर्णरूप्यकूलारक्तारक्तोदाः सरितस्त-न्मध्यगाः ॥ २० ॥**

सूत्रार्थ–गङ्गा, सिन्धु, रोहित्, रोहितास्या, हरित् , हरिकान्ता, सीता, सीतोदा, नारी, नरकान्ता, सुवर्णकूला, रूप्यकूला, रक्ता और रक्तोदा ये १४ नदियाँ भरतादि सात क्षेत्रो मे बहती है । भारत मे—गगा-सिन्धु, हैमवत मे—रोहित रोहितास्या, हरि मे—हरित-हरिकान्ता, विदेह मे—सीता सीतोदा, रम्यक मे—नारी-नरकान्ता, हैरण्यवत मे—सुवर्णकूला, रूप्यकूला और ऐरावत मे—रक्ता-रक्तोदा नदियाँ बहती है ।

प्रश्न १–वे नदियाँ अन्तराल से है या पास-पास ?

उत्तर–सूत्र मे "तन्मध्यगा" पद सूचित करता है कि वे नदियाँ उन क्षेत्रो मे या उन क्षेत्रो मे से होकर बही है ।

प्रश्न २–नदियो के बहने का क्रम क्या है ?

उत्तर- **द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः ॥ २१ ॥**

शेषास्त्वपरगाः ॥ २२ ॥

सूत्रार्थ–दो-दो नदियो मे से पहली-पहली नदी पूर्व समुद्र को जाती है । बाकी बची हुई सात नदियाँ पश्चिम की ओर जाती है ।

प्रश्न १–पूर्व समुद्र मे कौन-कौन सी नदियाँ जाती है ?

उत्तर–गगा, रोहित, हरित, सीता, नारी, सुवर्णकूला और रक्ता ये ७ नदियाँ पूर्व समुद्र मे जाती है ।

प्रश्न २–पश्चिम समुद्र की ओर कौन-कौन नदियाँ जाती है ?

उत्तर–शेष, सिन्धु, रोहितास्या, हरिकान्ता, सीतोदा, नरकान्ता, रूप्यकूला और रक्तोदा ये सात नदियाँ पश्चिम समुद्र की ओर जाती है ।

प्रश्न ३–महानदियो की सहायक नदियाँ कितनी है ?

उत्तर–**चतुर्दशनदीसहस्रपरिवृता गङ्गासिन्ध्वादयो नद्यः ॥ २३ ॥**

सूत्रार्थ–गगा, सिन्धु आदि नदियो के युगल चौदह हजार सहायक नदियो से घिरे हुए है ।

प्रश्न १–सहायक नदियो का क्रम कैसा है ?

उत्तर–सहायक नदियो का क्रम भी विदेहक्षेत्र तक आगे- आगे के युगलो मे पूर्व के युगलो से दूना-दूना है । भरत, हैमवत, हरि तीन क्षेत्रो मे दक्षिण के तीन क्षेत्रो के समान है ।

अढ़ाई द्वीप का नकशा

उत्तर

पश्चिम

पूर्व
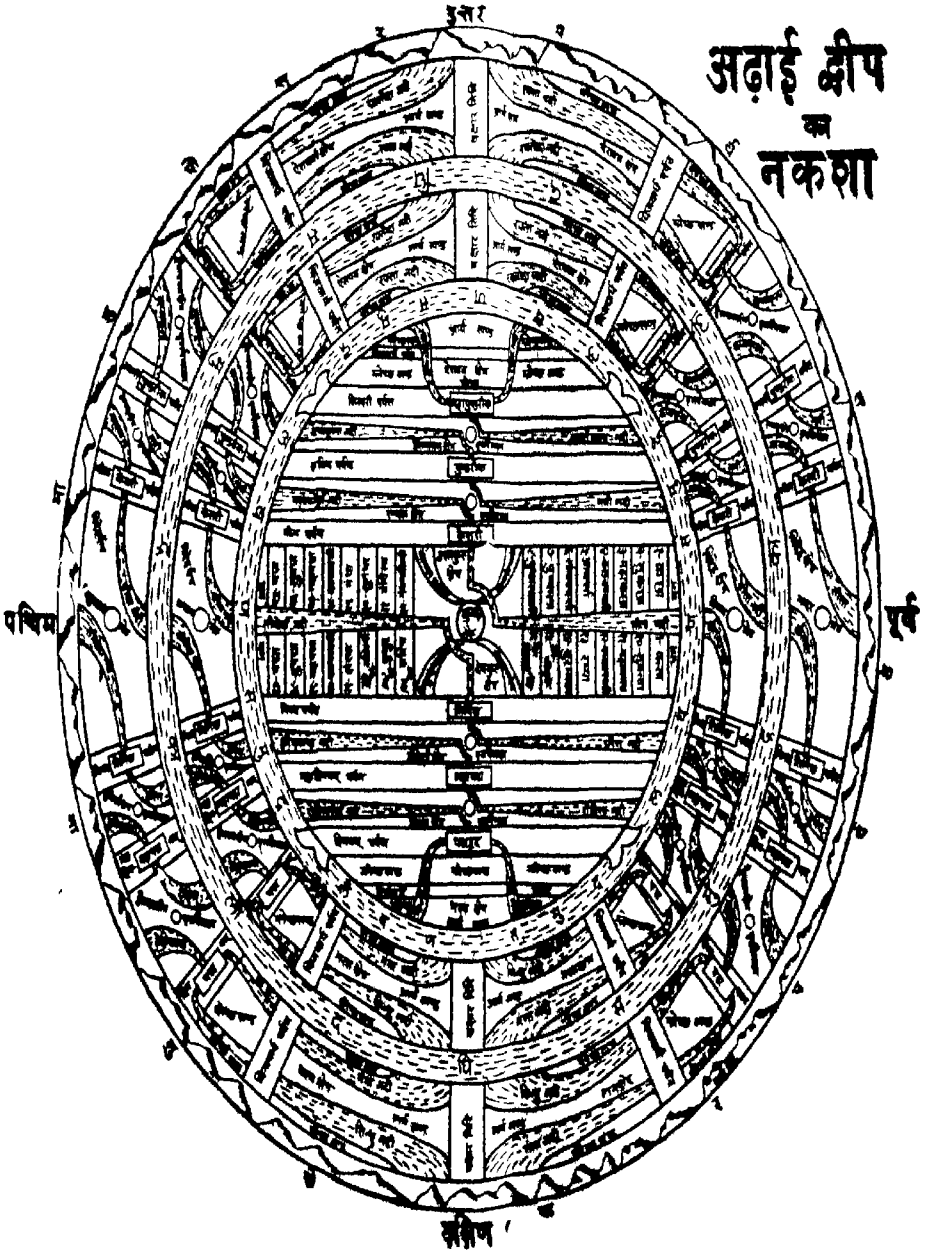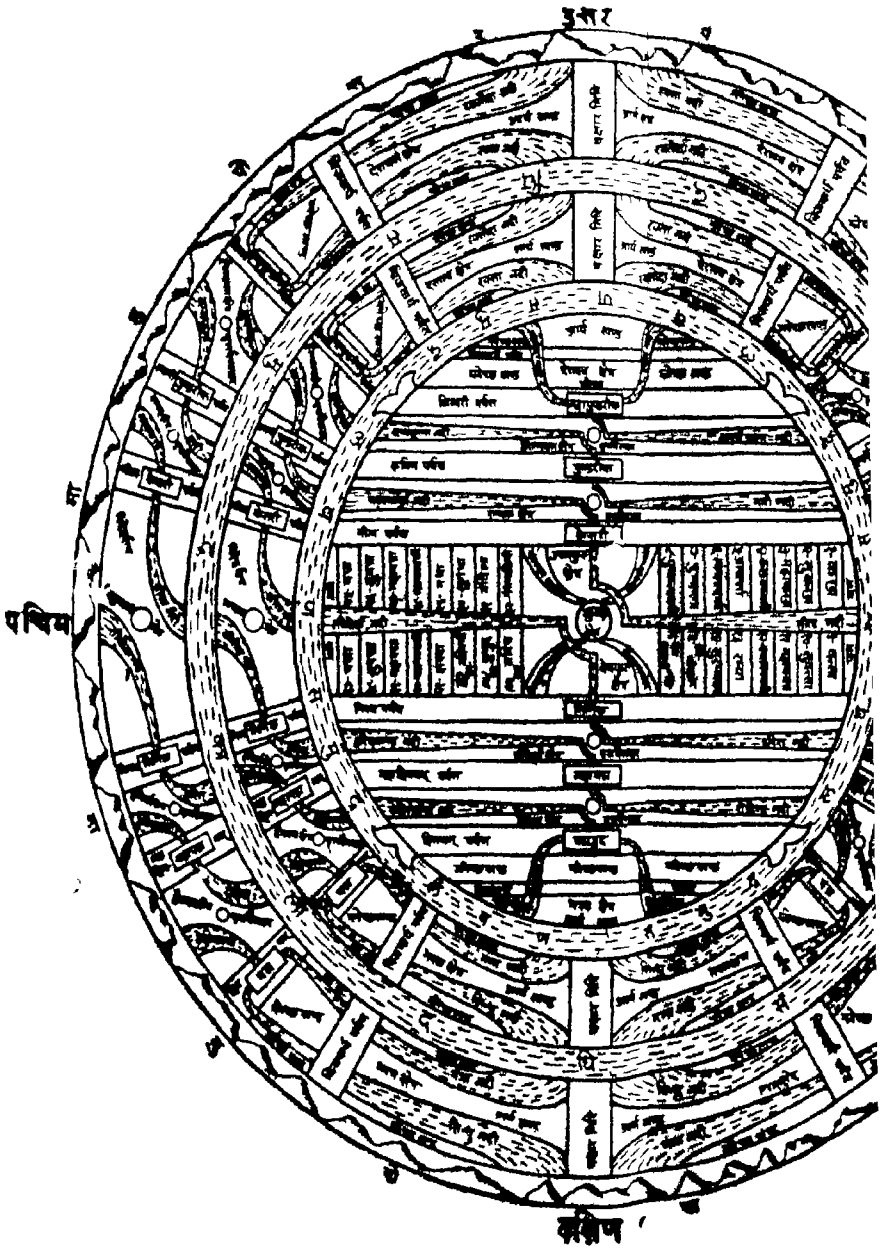
दक्षिण

उत्तर
पश्चिम
दक्षिण

उत्तर–उत्तर मे ऐरावत क्षेत्र से लेकर नील तक पर्वत का विस्तारादि दक्षिण मे भरतादि क्षेत्र व पर्वत के समान है ।

भरत क्षेत्र के विस्तार समान ऐरावत क्षेत्र का विस्तार है ।

हिमवान पर्वत के विस्तार समान शिखरी पर्वत का विस्तार है ।

हैमवत सम हैरण्य क्षेत्र, महाहिमवान सम रुक्मि पर्वत, हरिक्षेत्र सम रम्यक क्षेत्र, निषध पर्वतसम नील पर्वत का विस्तार है । इसी प्रकार ऐरावत आदि क्षेत्र और पर्वतो पर स्थित कमल आदि का भी प्रमाण है ।

प्रश्न २–भरत और ऐरावत क्षेत्रो मे मनुष्यो के अनुभव, आयु आदि सदा समान रहते है या कुछ विशेषता है ?

उत्तर– **भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम् ॥ २७ ॥**

सूत्रार्थ–भरत और ऐरावत क्षेत्रो मे उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के छह समयो की अपेक्षा वृद्धि और ह्रास होता रहता है ।

प्रश्न १–भरत ऐरावत क्षेत्रो मे वृद्धि-ह्रास किनका होता है ?

उत्तर–भरत-ऐरावत सम्बन्धी मनुष्यो मे भोग, उपभोग, अनुभव, सम्पदा, आयु, परिमाण (प्रमाण) शरीर की ऊँचाई आदि के द्वारा वृद्धि और ह्रास होता है ।

प्रश्न २–अनुभव, आयु और प्रमाण का क्या अर्थ है ?

उत्तर–सुख-दुख के उपयोग को अनुभव कहते हैं । जीवित काल के प्रमाण को आयु कहते है और शरीर की ऊँचाई को प्रमाण कहते है ।

प्रश्न ३–वृद्धि ह्रास किस निमित्त से होता है ?

उत्तर–उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी दो कालो के निमित्त से भरत, ऐरावत क्षेत्र मे रहने वाले मनुष्यो के अनुभव आदि का वृद्धि-ह्रास होता है ।

प्रश्न ४–उत्सर्पिणी व अवसर्पिणी कालो की यह सज्ञा क्यो है ?

उत्तर–ये दोनो काल सार्थक नाम वाले है । जिसमे अनुभव, आयु आदि की वृद्धि होती है वह उत्सर्पिणी काल है और जिसमे इनका ह्रास होता है वह अवसर्पिणी काल है ।

प्रश्न ५–अवसर्पिणी काल व उत्सर्पिणी काल के भेद व नाम कौन से है ?

उत्तर–अवसर्पिणी के छह भेद है—सुषमा-सुषमा, सुषमा, सुषमदुष्षमा, दुष्षम-सुषमा, दुषमा और अतिदुषमा । इसीप्रकार उत्सर्पिणी के भी छह भेद है—अति दुष्षमा, दुषमा, दुष्षम सुषमा, सुषम दुष्षमा, सुषमा और सुषमा सुषमा ।

प्रश्न ६–उत्सर्पिणी व अवसर्पिणी काल कितने वर्षों के होते है तथा एक कल्पकाल कितने वर्षों का होता है ?

उत्तर–दस कोड़ा-कोड़ी सागर का एक अवसर्पिणी और दस कोड़ा-कोड़ी सागर का ही एक उत्सर्पिणी काल होता है। तथा बीस कोड़ा-कोड़ी सागर का एक कल्पकाल होता है। उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी मिलकर ही कल्पकाल कहलाता है।

प्रश्न ७–उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी के छह कालो का समय विभाजन क्या है ?

उत्तर–सुषमा-सुषमा काल चार कोड़ा-कोड़ी सागर का है। सुषमा काल तीन कोड़ा-कोड़ी सागर का है। सुषम दुष्षमा दो कोड़ा-कोड़ी सागर का है। दुष्षम सुषमा ब्यालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ा-कोड़ी सागर का है, दुषमा काल इक्कीस हजार वर्ष का तथा अति दुषमा काल भी इक्कीस हजार वर्ष का है। इसी प्रकार उत्सर्पिणी भी इससे विपरीत क्रम से जाननी चाहिये।

प्रश्न ८–भरत ऐरावत क्षेत्रो मे भोगभूमि और कर्मभूमि का काल कब-कब होता है ? उस समय जीवो की आयु आदि कितनी होती है ?

उत्तर–

	काल	ऊँचाई (शरीर की)	आयु	भूमि	काल प्रमाण	मरण
प्रथम	सुषमा सुषमाकाल	३ कोस	३ पल्य	उत्तम भोगभूमि की रचना	चार कोड़ा-कोड़ी सागर	स्त्री का छीक से
द्वितीय	सुषमाकाल	२ कोस	२ पल्य	मध्यम भोगभूमि की रचना	तीन कोड़ा-कोड़ी सागर	पुरुष का जभाई से
तृतीय	सुषमा दुषमाकाल	१ कोस	१ पल्य	जघन्य भोगभूमि की रचना	दो कोड़ा-कोड़ी सागर	
चतुर्थ	दुषमा सुषमाकाल	५०० धनुष	१ कोटि पूर्व	कर्मभूमि	ब्यालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ा-कोड़ी सागर	
पञ्चम	दुषमाकाल	७ हाथ	१२० वर्ष	कर्मभूमि	इक्कीस हजार वर्ष	
षष्ठम	दुषमा-दुषमाकाल	२ हाथ	१६ वर्ष	कर्मभूमि	इक्कीस हजार वर्ष	

प्रश्न ९–तीर्थंकर, कुलकर व त्रेसठ शलाका पुरुषो आदि की उत्पत्ति कौन से काल मे होती है ?

उत्तर–तृतीयकाल मे पल्य का आठवाँ भाग शेष रहने पर कुलकरो की उत्पत्ति होती है। तीर्थंकर, नवनारायण, नव प्रतिनारायण, नव बलभद्र, चक्रवर्ती, रुद्र, नारद, वासुदेव चतुर्थकाल मे उत्पन्न होते है। इस काल मे मुक्ति का द्वार खुला रहता है।

प्रश्न १०–वर्तमान मे भरत-ऐरावत मे कौन सा काल चल रहा है ?

उत्तर–हुण्डावसर्पिणी काल ।

प्रश्न ११–हुण्डावसर्पिणी काल कितने कल्पकाल बीतने पर आता है ? इस काल की क्या विशेषता है ?

उत्तर–असख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल की शलाकाएँ बीत जाने पर प्रसिद्ध एक हुण्डावसर्पिणी काल आता है । इस काल मे अनहोनी बाते होती है यथा—तृतीय काल मे कुलकर व तीर्थंकर की उत्पत्ति, तृतीय काल मे मुक्ति, तीर्थंकरो के उपसर्ग, चक्रवर्ती का मानभग, ब्राह्मण वर्ण की स्थापना आदि ।

प्रश्न १२–प्रलयकाल कब होता है, इस काल मे क्या-क्या विकृतियाँ होती है?

उत्तर–छठे अतिदुषमा काल के अन्त मे प्रलयकाल आता है । प्रलयकाल मे सरस, विरस, तीक्ष्ण, रूक्ष, उष्ण, विष और क्षारमेघ क्रम से सात-सात दिन बरसते है [१] । इस प्रकार ४९ दिन तक होता है । सम्पूर्ण आर्यखड मे प्रलय होने पर[२] मनुष्यो के बहत्तर युगल अथवा अनेक मनुष्य शेष रह जाते है । ये विजयार्द्ध गुफा मे चले जाते है । चित्राभूमि निकल आती है । पृथ्वी समतल हो जाती है । इस प्रकार दस कोटा-कोटी सागर प्रमाण अवसर्पिणी का काल समाप्त हो जाता है ।

प्रश्न १३–पुन सृष्टि का प्रारभ कैसे होता है ?

उत्तर–इसके बाद (प्रलय के बाद) दस कोटा कोटि सागर प्रमाण उत्सर्पिणी काल प्रारम्भ होता है । उसमे सर्वप्रथम अति दुषमा नामक प्रथम काल रहता है । इसके प्रारभ मे उनचास दिन पर्यन्त रात-दिन क्षीरमेघ बरसते है, पुन उतने ही दिन अमृतमेघ बरसते है । पृथ्वी रुक्षता को छोड़ देती है । उन मेघो के माहात्म्य से वर्ण आदि गुण उत्पन्न होता है । औषधि, वृक्ष, गुल्म, तृण आदि सरस हो जाते है । अवसर्पिणी के अन्त समय मे जो युगल या अनेक मनुष्य विजयार्द्ध गुफा मे प्रविष्ट हुए थे, वे गुफा से निकलकर सरस औषधि और धान्य आदि का सेवन कर अपने जीवन को सहर्ष व्यतीत करते है ।

प्रश्न १४–भोगभूमि मे जीवो का आपस मे द्वेष, ईर्ष्या कलह होता है या नही?

उत्तर–भोगभूमि मे मनुष्य स्वभाव से मृदुभाषी होते है । सर्वकला कुशल,

---

१ **सरस विरस तीक्ष्ण रूक्षमुष्णविष विषम् ।**
क्षारमेघा. क्षरिष्यन्ति सप्तसप्तदिनान्यलम् ॥

२ तत्त्वार्थवृत्तिकर्त्ता श्री श्रुतसागर आचार्य के मत से बहत्तर युगल शेष रहकर विजयार्द्ध मे प्रवेश करते है और तिलोयपण्णति ग्रन्थकर्ता श्री यतिवृषभाचार्य के मत से अनेक मनुष्य शेष रह जाते है कथन मिलता हे । हम अल्पज्ञो को दोनो मान्य है ।

समान भोग वाले, ईर्ष्या, मात्सर्य से रहित, अनाचार, कृपणता, कोप, अरुचि, ग्लानि, भय, विषाद, कामज्वर, उन्माद, विरह, लाला (मुख की लार) शरीर के मल-मूत्र, निद्रा, दैन्य, चिन्ता, इष्ट वियोग, अनिष्ट सयोग और रोग बुढ़ापा आदि से रहित होते है। वहाँ नपुसक मनुष्य व विकलत्रय नही होते है।

प्रश्न १५–भोगभूमिया पशु की आयु व भोजन क्या है ?

उत्तर–सभी पशु विशिष्ट तृण खाते हैं। मनुष्यो के समान आयु वाले होते है।

प्रश्न १६–शेष भूमियो की क्या अवस्था है ?

उत्तर– **ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिता: ॥ २८ ॥**

सूत्रार्थ–भरत और ऐरावत के सिवा शेष भूमिया अवस्थित है। इनमे काल परिवर्तन नही होता है।

प्रश्न १–अवस्थित भूमियो मे मनुष्यो की आयुस्थिति किस प्रकार है ?

उत्तर– **एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हैमवतकहारिवर्षक दैवकुरवका: ॥ २९ ॥**

सूत्रार्थ–हैमवत, हरिवर्ष और देवकुरु के प्राणियो की आयु स्थिति क्रम से एक, दो और तीन पल्य प्रमाण है।

प्रश्न १–हैमवत, हरि और देवकुरु के मनुष्यो की विशेषता क्या है ?

उत्तर– १ ढाई द्वीप मे पाच हैमवत क्षेत्रो मे सदा सुषम-दुषमकाल, आयु एक पल्य, ऊँचाई दो हजार धनुष, आहार एक दिन के अन्तराल से और शरीर का रग नील कमल के समान होता है।

२ पॉच हरिक्षेत्रो मे सदा सुषमा काल, आयु २ पल्य, ऊँचाई चार हजार धनुष, आहार दो दिन के अन्तराल से और शरीर का रग शख के समान सफेद है।

३ पॉच देवकुरु क्षेत्रो मे सदा सुषमा-सुषमाकाल, आयु तीन पल्य की, ऊँचाई छह हजार धनुष, भोजन तीन दिनो के अन्तराल से तथा शरीर का रग सोने के समान पीला होता है।

प्रश्न २–उत्तरवर्ती क्षेत्रो की स्थिति कैसी होती है ?

उत्तर– **तथोत्तरा: ॥ ३० ॥**

सूत्रार्थ–दक्षिण के समान उत्तर मे है।

प्रश्न १–दक्षिण के कौन क्षेत्रो की कौनसी अवस्था है ?

उत्तर– १ हैमवत के समान हैरण्यवत मे मनुष्यो की आयु एकपल्य, ऊँचाई दो हजार धनुष, आहार एक दिन के बाद, शरीर रग नील कमल समान।

२ हरिवर्ष के समान रम्यक क्षेत्र में आयु दो पल्य, ऊँचाई चार हजार धनुष, आहार दो दिन बाद व शरीर का रंग शंख समान श्वेत।

३ देवकुरु के समान उत्तरकुरु मे आयु तीन पल्य, ऊँचाई छ हजार धनुष, आहार तीन दिन बाद, शरीर का रंग स्वर्ण सम पीला होता है।

प्रश्न २–विदेहक्षेत्रों मे जीवो की आयु स्थिति क्या है ?

उत्तर– विदेहेषु संख्येयकालाः ॥ ३१ ॥

सूत्रार्थ–सब / पाँच विदेहो मे सख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्य होते हैं।

प्रश्न १–विदेह मे आयु, ऊँचाई, आहार आदि कैसा है ?

उत्तर–सब विदेहो मे आयु सख्यात वर्ष है, सुषमा दु षमा काल के अन्त समान सदाकाल है। मनुष्यो के शरीर ऊँचाई पाँच सौ धनुष, प्रतिदिन भोजन करने वाले होते है। इनकी उत्कृष्ट आयु एक कोटि पूर्व प्रमाण और जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त मात्र है।

प्रश्न २–विदेह मे जीवो की उत्कृष्ट आयु एक पूर्व कोटि प्रमाण है तो उसमे कितने वर्ष होते हैं ?

उत्तर–एक पूर्वकोटि का प्रमाण सत्तर लाख करोड़ और छप्पन हजार करोड़ वर्ष जानना चाहिये।

प्रश्न ३–प्रकारान्तर से भरतक्षेत्र का विस्तार कितना है ?

उत्तर–भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवति शतभागः ॥३२॥

सूत्रार्थ–भरतक्षेत्र का विस्तार जम्बूद्वीप का एक सौ नब्बेवाँ भाग है।

प्रश्न १–भरतक्षेत्र का विस्तार जम्बूद्वीप का एक सौ नब्बेवाँ भाग है यह कैसे जाना ?

उत्तर–जम्बूद्वीप का विस्तार एक लाख योजन है उसमे एक सौ नब्बे का भाग देने पर प्रमाण आता है ५२६ $\frac{६}{१९}$ यह भरतक्षेत्र का विस्तार है।

प्रश्न २–जम्बूद्वीप को घेरे हुए कौन सा समुद्र है उसका विस्तार कितना है?

उत्तर–जम्बूद्वीप के चारो ओर एक वेदिका है। इसके बाद लवण समुद्र है जिसका विस्तार दो लाख योजन है।

प्रश्न ३–लवणादि समुद्रो के जल का स्वाद कैसा है ?

उत्तर–लवण समद्र के जल का स्वाद नमक के समान, वारुणी समुद्र के जल का स्वाद मदिरा के समान, क्षीर समुद्र के जल का स्वाद दूध के समान, घृतोद समुद्र के जल का घृत के समान, कालोदधि, पुष्कर और स्वयभूरमण समुद्र के जल का स्वाद जल के समान और अन्य समुद्रो के जल का स्वाद इक्षुरस के समान है।

प्रश्न ४–जलचर जीव कौन से समुद्रो मे होते है कौन मे नही ?

उत्तर–लवणोदधि, कालोदधि और स्वयम्भूरमण समुद्र मे ही जलचर जीव होते है अन्य समुद्रो मे नही ।

प्रश्न ५–सबसे उन्नत जल कौन से समुद्र का है ।

उत्तर–लवण समुद्र का ही जल उन्नत है, अन्य समुद्रो का जल सम (बराबर) है ।

प्रश्न ६–लवण समुद्र को घेरे कौन सा द्वीप है उसका विस्तार कितना है ?

उत्तर–लवण समुद्र को घेरे धातकीखड द्वीप है, इसका विस्तार चार लाख योजन है ।

प्रश्न ७–धातकीखण्ड द्वीप मे क्षेत्र, मेरु, पर्वत आदि की सख्या कितनी है?

उत्तर– **द्विर्धातकीखण्डे ॥ ३३ ॥**

सूत्रार्थ–धातकीखड मे क्षेत्र तथा पर्वतादि जबूद्वीप से दूने है ।

प्रश्न १–धातकीखड मे दूने-दूने कौन-कौन है ?

उत्तर–धातकीखड मे मेरु दो है—पूर्व मे विजय और पश्चिम मे अचल । दो दो भरतादि ७ क्षेत्र, दो दो हिमवनादि ६ पर्वत है । तथा कमलादि भी दूने-दूने है।

प्रश्न २–धातकीखड को पूर्व पश्चिम विभाजन करने वाला पर्वत कौन सा है?

उत्तर–इष्वाकार पर्वत ।

प्रश्न ३–धातकीखड द्वीप का यह नाम किस कारण है ?

उत्तर–धातकीखड द्वीप मे परिवार वृक्षो के साथ धातकीवृक्ष स्थित है और इसके सम्बन्ध से दीप का नाम धातकीखड प्रसिद्ध है ।

प्रश्न ४–धातकीखड को घेरे कौन सा समुद्र है उसका विस्तार कितना है ?

उत्तर–धातकीखड को घेरे कालोद समुद्र है उसका विस्तार आठ लाख योजन है ।

प्रश्न ५–कालोदधि को घेरे कौन सा द्वीप है इसका विस्तार कितना है ?

उत्तर–कालोद को घेरे पुष्करद्वीप है इसका विस्तार सोलह लाख योजन है ।

प्रश्न ६–अर्द्ध पुष्कर मे कितने क्षेत्र व पर्वत है ?

उत्तर– **पुष्करार्द्धे च ॥ ३४ ॥**

सूत्रार्थ–अर्द्ध पुष्करद्वीप मे उतने ही है ।

प्रश्न १–पुष्करार्द्ध मे पर्वत, मेरु व क्षेत्रो आदि की सख्या बताओ ?

उत्तर–पुष्करार्द्ध द्वीप मे दो इष्वाकार पर्वत, मन्दर व विद्युन्माली दो मेरु, भरतादि क्षेत्र दो दो है, हिमवान आदि पर्वत तथा कमलादि भी दूने-दूने है ।

प्रश्न २–इस द्वीप का नाम पुष्कर किस कारण पड़ा है ?

उत्तर–पुष्कर द्वीप मे वहॉ अपने परिवार वृक्षो के साथ पुष्कर वृक्ष है इसलिये इस द्वीप का नाम पुष्कर द्वीप पड़ा है ।

प्रश्न ३–इस द्वीप को पुष्करार्द्ध यह सज्ञा किस कारण है ?

उत्तर–पुष्कर द्वीप के मानुषोत्तर पर्वत के कारण दो विभाग हो गये है अत आधे द्वीप को पुष्करार्द्ध यह संज्ञा प्राप्त हुई है ।

प्रश्न ४–मनुष्य लोक कितना है ?

उत्तर– **प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः ॥ ३५ ॥**

सूत्रार्थ–मानुषोत्तर पर्वत के पहले तक ही मनुष्य है । अर्थात् मानुषोत्तर पर्वत के पहले अढ़ाई द्वीप ही मनुष्य लोक है, इतने मे ही मनुष्य होते है ।

प्रश्न १–मानुषोत्तर पर्वत कहॉ स्थित है ?

उत्तर–पुष्कर द्वीप के मध्य मे चूड़ी के समान गोल मानुषोत्तर नाम का पर्वत है ।

प्रश्न २–मनुष्य कितने क्षेत्र मे पाये जाते है ?

उत्तर–अढ़ाई द्वीप और इनके मध्य मे आने वाले दो समुद्र यह मनुष्य लोक है । मनुष्य इतने क्षेत्र मे ही पाये जाते है ।

प्रश्न ३–अढ़ाई द्वीप और दो समुद्र कौन से है ?

उत्तर–जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड द्वीप और आधा पुष्कर द्वीप ये अढ़ाई द्वीप है तथा लवणोदधि व कालोदधि दो समुद्र है ।

प्रश्न ४–इस पर्वत का मानुषोत्तर पर्वत यह नाम क्यो प्रसिद्ध हुआ ? इसका विस्तार कितना है, यहॉ कितने चैत्यालय है ?

उत्तर–मानुषोत्तर पर्वत मनुष्यलोक की सीमा पर स्थित होने से इसका मानुषोत्तर नाम सार्थक हुआ है । मानुषोत्तर पर्वत सत्रह सौ इक्कीस योजन ऊँचा और चार सौ तीस योजन भूमि के अन्दर है, मूल मे एक सौ बाईस योजन, मध्य मे सात सौ तैतीस योजन, ऊपर चार सौ चौबीस योजन विस्तार वाला है । मानुषोत्तर के चारो दिशाओ मे चार चैत्यालय है ।

प्रश्न ५–मनुष्यक्षेत्र के बाहर दूसरे विद्याधर या ऋद्धि प्राप्त मुनि जा सकते है या नहीं ?

उत्तर–नही जा सकते ।

प्रश्न ६–मानुषोत्तर के बाहर मनुष्य किस अवस्था मे पाये जाते है ?

उत्तर–तीन अवस्थाओ मे—१ जो मनुष्य मरकर ढाई द्वीप के बाहर उत्पन्न

होने वाले है वे यदि मरण के पहले मारणान्तिक समुद्घात करते ह तो इसके द्वारा उनका मनुष्यक्षेत्र के बाहर गमन देखा जाता है। २ ढाई द्वीप के बाहर निवास करने वाले जो जीव मरकर मनुष्यो मे उत्पन्न होते है उनका मनुष्यगति नामकर्म का उदय होने पर भी ढाई द्वीप मे प्रवेश करने के पूर्व तक इस क्षेत्र के बाहर अस्तित्व देखा जाता है। ३ केवलिसमुद्घात के समय उनका मनुष्यलोक के बाहर अस्तित्व देखा जाता है।

इन तीन अपवादो को छोडकर किसी भी अवस्था म मनुष्या का मनुष्यलोक के बाहर अस्तित्व नही देखा जाता।

प्रश्न७–क्या आप मनुष्य है और आगे बनना चाहते ह ? यदि हाँ तो क्या ?

उत्तर–जी हम मनुष्य है आगे भी मनुष्य बनना चाहते ह क्योकि सयम की आराधना रत्नत्रय की पूर्णता मानव पर्याय मे ही है।

प्रश्न८–मनुष्य कितने प्रकार के है ?

उत्तर– **आर्याम्लेच्छाश्च ।।३६।।**

सूत्रार्थ–मनुष्य के दो भेद है—आर्य और म्लेच्छ।

प्रश्न१–आर्य किन्हे कहते है ?

उत्तर–जो गुणो से सहित हो अथवा गुणवान लोग जिनकी सेवा करे उन्हे आर्य कहते है।

प्रश्न२–म्लेच्छ किन्हे कहते है ?

उत्तर–जो निर्लज्जतापूर्वक चाहे जो कुछ बोलते है वे म्लेच्छ है।

प्रश्न३–आर्य मनुष्यो के कितने भेद है ?

उत्तर–ऋद्धि प्राप्त आर्य और ऋद्धि रहित आर्य के भेद से आर्य के दो भेद है।

प्रश्न४–ऋद्धि प्राप्त आर्य के कितने भेद है ?

उत्तर–ऋद्धिप्राप्त आर्यो के ऋद्धियो के आठ भेद है। आठ ऋद्धियो के नाम है—बुद्धि, क्रिया, विक्रिया, तप, बल, औषध, रस और क्षेत्र।

प्रश्न५–बुद्धिऋद्धि प्राप्त आर्यो के भेद कौन से है ?

उत्तर–बुद्धिऋद्धि प्राप्त आर्यों के १८ भेद है—१ अवधिज्ञानी २ मन पर्ययज्ञानी ३ केवलज्ञानी ४ बीजबुद्धिधारी ५ कोष्ठबुद्धिधारी ६ सभिन्नश्रोत्री ७ पदानुसारी ८ दूरस्पर्शी ९ दूरास्वादी १० दूरघ्राण समर्थ ११ दूरश्रवणसमर्थ १२ दूरावलोकन समर्थ १३ दसपूर्वी १४ चौदहपूर्वी १५ अष्टागमहानिमित्तज्ञ १६ प्रत्येकबुद्ध १७ वादी १८ प्रज्ञाश्रमण।

प्रश्न६–मध्यलोक मे कुल अकृत्रिम चैत्यालय कितने है ?

उत्तर–मध्यलोक मे अकृत्रिम चैत्यालय ४५८ है—

पच मेरु सम्बधी ८० जिनालय, कुलाचल के ३० जिनालय, गजदन्त के २० जिनालय, वक्षारगिर के ८० जिनालय, इष्वाकार पर्वत के ४ जिनालय, मानुषोत्तर पर्वत पर ४ जिनालय, विजयार्द्ध के १७० जिनालय, जम्बू आदि वृक्ष पर ५ जिनालय, शाल्मली वृक्ष के ५ जिनालय, इस प्रकार ये ढाई द्वीप सम्बन्धी कुल ३९८ जिनालय हुए तथा इनमे नन्दीश्वर द्वीप के ५२ जिनालय, कुडलगिरि के ४ जिनालय तथा रुचकवर द्वीप के ४ जिनालय मिलाने पर कुल ४५८ जिनालय मध्यलोक सबधी होते है।

प्रश्न६अ–क्रियाऋद्धि धारक के भेद बताओ ?

उत्तर–क्रियाऋद्धि धारक के दो भेद हैं—१ जघादि चारणत्व २ आकाशगामित्व। जघादिचारणत्व के ९ भेद—१ जघाचरण २ श्रेणिचारण ३. अग्निशिखाचारण ४ जलचारणत्व ५ पत्रचारणत्व ६ फलचारणत्त ७. पुष्पचारणत्व ८. बीजचारणत्व ९ तन्तुचारणत्व ।

प्रश्न ७–विक्रियाऋद्धि के भेद बताओ ?

उत्तर–विक्रियाऋद्धि के अनेक प्रकार हैं—१ अणिमा २. महिमा ३ लघिमा ४ गरिमा ५ प्राप्ति ६ प्राकाम्य ७ ईशित्व ८ वशित्व ९ अप्रतीघात १० कामरूपित्व ११ अन्तर्धान आदि ।

प्रश्न ८–तपऋद्धि के भेद बताओ ?

उत्तर–तपऋद्धि के सात भेद है—१ घोरतप २ महातप ३ उग्रतप ४ दीप्ततप ५ तप्ततप ६ घोरगुणब्रह्मचरिता ७ घोरपराक्रमता ।

प्रश्न ९–बलऋद्धि के कितने भेद हैं ?

उत्तर–बलऋद्धि के तीन भेद हैं—१ मनोबल २. वचनबल ३ कायबल ।

प्रश्न १०–औषधऋद्धि धारक के भेद कितने है ?

उत्तर–औषध ऋद्धि धारक के ८ भेद है—१ विट् (मल) २ मल का एकदेश छूना ३ अपक्व आहार का स्पर्श ४ सम्पूर्ण अगो के मल का स्पर्श ५ निष्ठीवन का स्पर्श ६ दन्त, केश, नख, मूत्र आदि का स्पर्श ७ कृपादृष्टि से अवलोकन और ८ कृपासे दॉतो का दिखाना ।

जिन मुनियो की उक्त आठ बातो के द्वारा प्राणियो के रोग नष्ट हो जाते है, वे मुनि औषधऋद्धि धारी होते है ।

प्रश्न ११–रसऋद्धि के भेद कौन से है ?

उत्तर–रसऋद्धि के ६ भेद है—१ आस्यविष २ दृष्टिविष ३ क्षीरस्रावी ४ मध्वास्रावी ५. सर्पिरास्रावी ६ अमृतास्रावी ।

प्रश्न १२–क्षेत्र ऋद्धि के भेद बताओ ?

उत्तर–१ अक्षीणमहानस ऋद्धि २ अक्षीणालय ऋद्धि ।

इस प्रकार ऋद्धि प्राप्त आर्य अभेददृष्टि से आठ भेद वाले और भेददृष्टि से ६४ भेद वाले हैं ।

प्रस्न १३—ऋद्धिरहित आर्यों के भेद कितने हैं ?

उत्तर–ऋद्धि रहित आर्य पॉच प्रकार के है—१ सम्यक्त्व आर्य २ चारित्र आर्य ३ कर्म आर्य ४ जाति आर्य और ५ क्षेत्र आर्य ।

प्रश्न १४–सम्यक्त्व और चारित्र आर्य का लक्षण क्या है ?

उत्तर–व्रतरहित सम्यग्दृष्टि सम्यक्त्व आर्य है । और चारित्र को पालने वाले यति चारित्र आर्य हैं ।

प्रश्न १५–दर्शन आर्य के कितने भेद हैं ?

उत्तर–आज्ञा, मार्ग, उपदेश, सूत्र, बीज, सक्षेप, विस्तार, अर्थ, अवगाढ़ और परमावगाढ़ के भेद से दर्शनार्य दस भेद वाले है ।

प्रश्न १६–कर्म-आर्य के भेद बताओ ?

उत्तर–कर्म आर्य तीन प्रकार के हैं—१ सावद्य कर्म आर्य २ अल्पसावद्य कर्म आर्य और ३ असावद्यकर्म आर्य ।

सावद्य कर्म आर्य के भी असि, मषी, कृषि, विद्या, शिल्प और वणिक् कर्म के भेद से ६ भेद हैं ।

असिकर्म आर्य–तलवार, धनुष, आदि शस्त्र विद्या मे निपुण असिकर्म आर्य है।

मषिकर्मार्य–द्रव्य के आय-व्यय आदि के लेखन में कुशल मानव ।

कृषिकर्मार्य–हल, कुलिश, दन्ताल आदि कृषि के उपकरण विधान को जानने वाला या कृषिकार्य करने वाला कृषि कर्म आर्य है ।

विद्याकर्मार्य–लेखन, गणित, चित्रादि पुरुष की बहत्तर कलाओ मे निपुण मानव विद्याकर्म आर्य है । चौसठकला निपुण स्त्री भी विद्या कर्म आर्य है ।

शिल्पकर्मार्य–धोबी, नाई, लुहार, कुभकार, सुवर्णकार आदि शिल्प कर्मार्य है।

वणिक् कर्मार्य–चन्दनादि गध, घृतादिरस, चावल आदि धान्य, कार्पास आदि आच्छादन, मोती, माणिक्य, सुवर्ण आदि द्रव्यो का सग्रह करने वाले आदि बहुत प्रकार के वणिक् कर्मार्य है ।

प्रश्न १७–सावद्य, अल्पसावद्य और असावद्य कर्मार्य कौन है ?

उत्तर–असि, मषि, कृषी, विद्या, शिल्प, वणिक् छहो कार्यों के करने वाले मनुष्य व्रत रहित होने से व अविरति मे प्रवण होने से **सावद्य कर्मार्य** हैं । विरति-अविरति युक्त होने से पञ्चम गुणस्थानवर्ती श्रावक-श्राविकाये **अल्प सावद्य कर्मार्य** है । कर्मक्षय करने मे उद्यत विरति मे रत यतिजन **असावद्य कर्मार्य** है ।

प्रश्न १८–जाति आर्य किन्हे कहते है ?

उत्तर—इक्ष्वाकुवश, सूर्यवश, सोमवश, कुरुवश, हरिवश, नाथवश तथा उग्रवशी आदि वशो मे उत्पन्न होने वाले जाति आर्य कहलाते है ।

प्रश्न १९–क्षेत्र आर्य किन्हे कहते है ?

उत्तर–कौशल, काशी, अवन्ती, अग, बग, तिलग, कलिग, लाट, कर्णाट, भोट, गौड़, गुजरात, सौराष्ट्र, मारवाड़, जड़बल, मलय, आभीर, सौरमस, काश्मीर, जालन्धर आदि देशो मे उत्पन्न होने वाले मानव क्षेत्रार्य कहलाते है ।

प्रश्न २०–म्लेच्छ कितने प्रकार के हैं ?

उत्तर–म्लेच्छ दो प्रकार के होते है—अन्तर्द्वीपज और कर्मभूमिज ।

प्रश्न २१–अन्तर्दीपज म्लेच्छ कितने है और कहाँ हैं ?

उत्तर–लवणसमुद्र मे आठो दिशाओ मे आठ द्वीप हैं । इन द्वीपो के अन्तराल मे भी आठ द्वीप हैं । हिमवान् पर्वत के दोनो पार्श्व भागो मे दो द्वीप हैं । शिखरी पर्वत के दोनो पार्श्वों मे दो द्वीप है और दोनो विजयार्द्ध पर्वतों के दोनो पार्श्वों मे चार द्वीप हैं इस प्रकार २४ द्वीप लवणसमुद्र के भीतर है । इसी प्रकार लवणसमुद्र के बाहर भी चौबीस द्वीप है । लवणसमुद्र के समान कालोदधिसमुद्र सबधी भी ४८ अन्तर्द्वीप है । सब मिलाकर ९६ म्लेच्छ द्वीप हैं । ये सब द्वीप जल से एक योजन ऊपर है । इन द्वीपो मे उत्पन्न होने वाले मनुष्य अन्तर्द्वीपज म्लेच्छ कहलाते हैं ।

प्रश्न २२–कर्मभूमिज म्लेच्छ कौन हैं ?

उत्तर–पुलिन्द, शबर, यवन, शक, खस, बर्बर आदि कर्मभूमि के म्लेच्छ हैं।

प्रश्न २३–अन्तर्द्वीपज मनुष्यो से किनका ग्रहण होता है ?

उत्तर–कुभोगभूमि मे जन्म लेने वाले मनुष्य ही यहाँ अन्तर्द्वीपज कहे गये है।

प्रश्न २४–कर्मभूमियाँ कौन–कौन है ?

उत्तर– **भरतैरावतविदेहा: कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तर-कुरुभ्य: ॥ ३७ ॥**

सूत्रार्थ–देवकुरु और उत्तरकुरु के सिवा भरत, ऐरावत और विदेह ये सब कर्मभूमि है ।

प्रश्न १–कर्मभूमियॉ कितनी है ? व कैसे है ?

उत्तर–भरत, ऐरावत और विदेह ये प्रत्येक पाँच-पॉच है अत ये सब १५ कर्मभूमियॉ है । एक मेरु सबधी एक भरत, ऐरावत, विदेह ऐसे ही पॉच मेरु सबधी पॉच भरत-ऐरावत और विदेह से १५ कर्मभूमियॉ है ।

प्रश्न २–भोगभूमियाँ कितनी व कैसे है ?

उत्तर–भोगभूमिया ३० है तथा अन्तर्द्वीप भी भोगभूमि कहलाते है । एक मेरु सबधी देवकुरु, उत्तरकुरु, हैमवत, हरि, रम्यक और हैरण्यवत ६ भोगभूमि, तो पॉच मेरु सबधी ५ देवकुरु आदि की अपेक्षा ६ X ५ = ३० भोगभूमियॉ और अन्तर्द्वीप ये भोगभूमियाँ कही जाती है ।

प्रश्न ३–''कर्म'' यह विशेषण भूमि के साथ क्यो दिया है ? अथवा भरत ऐरावत, विदेह को कर्मभूमि क्यो कहते है ?

उत्तर–प्रकृष्ट शुभाशुभ कर्मोपार्जन और निर्जरा के निमित्त अपेक्षा भूमि मे कर्म यह विशेषण दिया है । यद्यपि अष्टकर्मों का बन्ध और उनके फल का अनुभाग सभी

क्षेत्रो मे समान होता है तथापि भरतादि ३ क्षेत्रो मे कर्मभूमि का व्यवहार विशेष कारणो से है ।

१ सर्वार्थसिद्धि के सुख को प्राप्त कराने वाले और तीर्थंकर प्रकृति के कारणभूत असाधारण प्रकृष्ट शुभ अथवा सातवे अप्रतिष्ठान नामक नरक के दु खो को प्राप्त कराने वाले महान् अशुभ कर्म बन्ध मे द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा होने से इन्हे कर्मभूमि के जीव ही उपार्जन करते है ।

२ सकल ससार से कारण भूत कर्मों की निर्जरा (कर्मों का उच्छेद) कर्मभूमि मे ही होती है ।

३ कर्मों की नाशक परम निर्जरा की कारणभूत तपश्चरणादि क्रियाएँ कर्मभूमि को छोड़कर अन्यत्र नही हो सकती है ।

४ असि, मषि, विद्या, शिल्प, कृषि और वाणिज्य रूप षडावश्यक क्रियाएँ कर्मभूमि मे ही देखी जाती हैं अथवा इन छह कर्मों की प्रवृत्ति यही होती है अत भरत क्षेत्र आदि को ही कर्मभूमि कहा जाता है ।

५ मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति कर्मभूमि मे ही होती है ।

६ देवपूजा, गुरूपास्ति, स्वाध्याय, सयम, तप और दानादि धार्मिक षट्कर्म भी कर्मभूमि मे ही होने से कर्मभूमि सज्ञा है ।

प्रश्न ४–भूमि की भोगभूमि यह सज्ञा किस कारण से है ?

उत्तर–मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति नही होने से हैमवत आदि क्षेत्रो की भोगभूमि सज्ञा है । यद्यपि भोगभूमि मे जीवो के सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान है परन्तु चारित्र नही है । उनके निरन्तर अविरत भोगरूप परिणाम ही रहते है ।

प्रश्न ५–पाँच भरतादि को छोड़कर कर्मभूमि का अन्य भी स्थान है क्या ?

उत्तर–मानुषोत्तर पर्वत के आकार वाले स्वयप्रभ पर्वत से आगे लोक के अन्त तक जो तिर्यञ्च है, उनके पाँच गुणस्थान हो सकते है । उनकी आयु एक पूर्व कोटि की है । वहाँ के मत्स्य सातवे नरक मे ले जाने वाले महापाप का बन्ध करते हैं । कोई-कोई थलचर जीव स्वर्ग आदि के हेतुभूत पुण्य का भी बन्ध करते है । इसलिये आधा स्वयभूरमण द्वीप, पूरा स्वयभूरमण समुद्र और समुद्र के बाहर चार कोने कर्मभूमि कहलाते है ।

प्रश्न ६–कर्म व भोगभूमियो मे मनुष्यो की उत्कृष्ट व जघन्य आयु कितनी है?

उत्तर– **नृस्थिती परावरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते ॥ ३८ ॥**

सूत्रार्थ–मनुष्यो की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्य और जघन्य अन्तर्मुहूर्त है ।

प्रश्न १–मनुष्यो की मध्यम स्थिति कितनी है ?

उत्तर–जघन्य और उत्कृष्ट के मध्य अनेक प्रकार की है ।

प्रश्न २–पल्य के कितने भेद हैं ?

उत्तर–व्यवहारपल्य, उद्धारपल्य और अद्धापल्य के भेद से पल्य तीन भेद रूप है।

प्रश्न ३–व्यवहार पल्य किसे कहते हैं ?

उत्तर–व्यवहार पल्य से संख्या का वर्णन किया जाता है अर्थात् जिन पल्यों के द्वारा पल्यो का कथन किया जाता है, संख्याओ का वर्णन किया जाता है, जिसके द्वारा उद्धार पल्य और अद्धापल्य की संख्या जानी जाती है, जो संख्या मात्र का वर्णन करता है वह व्यवहार पल्य है।

प्रश्न ४–उद्धार पल्य किसे कहते है ?

उत्तर–जिससे द्वीप और समुद्रो की गणना की जाती है वह उद्धार पल्य है।

प्रश्न ५–अद्धापल्य किसे कहते हैं ?

उत्तर–जिससे कर्मों की स्थिति का काल जाना जाता है वह अद्धापल्य है।

प्रश्न ६–व्यवहार पल्य का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–प्रमाणागुल से निष्पन्न एक प्रमाण योजन लम्बा, चौड़ा और गहरा एक गोल गड्ढा हो। उसमे सात दिन तक के मेष के बच्चे के रोमाग्रो को ऐसे टुकड़े करके भरो जिसका कैंची से दूसरा टुकड़ा न किया जा सके, इस गड्ढे को व्यवहार-पल्य कहते है।

पुन सौ सौ वर्षों के बाद उस गड्ढे मे से एक-एक टुकड़ा निकाला जावे। इस क्रम से परिपूर्ण रोमखण्डो के निकलने मे जितना समय लगे उसे व्यवहारपल्योपम कहते हैं।

प्रश्न ७–उद्धार पल्य व उद्धार पल्योपम का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–असख्यात करोड़ वर्षों के जितने समय हैं उतने समयो से प्रत्येक रोमखड का गुणा करे और इस प्रकार के रोमखडो से फिर उस गड्ढे को भर दिया जाये। इस गड्ढे का नाम उद्धार पल्य है। पुन एक-एक समय के बाद एक-एक रोमखंड को निकालना चाहिये। इस क्रम से सम्पूर्ण रोमखण्डो के निकलने मे जितना समय लगे वह उद्धार पल्योपम है।

प्रश्न ८–उद्धार सागर किसे कहते हैं ?

उत्तर–दस कोड़ा कोड़ी उद्धार पल्यो का एक उद्धार सागर होता है।

प्रश्न ९–दीप समुद्र कितने हैं ?

उत्तर–अढ़ाई उद्धार सागर अथवा पच्चीस कोड़ा-कोड़ी उद्धार पल्यो के जितने रोमखण्ड होते है उतने ही द्वीप समुद्र हैं।

प्रश्न १०–अद्धापल्य, अद्धापल्योपम किसे कहते है ?

उत्तर–एक सौ वर्ष के जितने समय होते हैं उनसे उद्धार पल्य के प्रत्येक रोम का गुणा करे और ऐसे रोमखण्डो से फिर गड्‌ढा भर दिया जाय उस गड्‌ढे का नाम अद्धापल्य है ।

पुन एक-एक समय के बाद एक-एक रोमखण्ड को निकालने पर समस्त रोमखण्डो के निकलने मे जितना समय लगे, उतने काल को अद्धापल्योपम कहते हैं।

प्रश्न ११–अद्धासागर किसे कहते है ?

उत्तर–दस कोड़ा-कोड़ी अद्धापल्यो का एक अद्धासागर होता है ।

प्रश्न १२–उत्सर्पिणी व अवसर्पिणी का प्रमाण कितना है ?

उत्तर–दस कोड़ा-कोड़ी अद्धासागरो की एक उत्सर्पिणी और दस कोड़ा-कोड़ी अद्धासागरो की ही एक अवसर्पिणी होती है । बीस कोड़ा-कोड़ी अद्धासागरो का एक कल्पकाल होता है ।

प्रश्न १३–कोड़ा-कोड़ी किसे कहते है ?

उत्तर–एक करोड़ को एक करोड़ से गुणा करने पर प्राप्त गुणनफल को कोड़ा-कोड़ी कहते है ।

प्रश्न १४–सागर किसे कहते है ?

उत्तर–दस कोड़ा-कोड़ी अद्धापल्यो का एक सागर होता है ।

प्रश्न १५–चारो गति के जीवो की स्थिति किससे गिनी जाती है ?

उत्तर–नरक, तिर्यञ्च, देव और मनुष्यो के कर्मो की स्थिति, आयु की स्थिति, काय की स्थिति और भव की स्थिति की गणना अद्धापल्य से की जाती है ।

प्रश्न १६–पल्यो के सम्बन्ध मे गाथा बताओ ?

ववहारुद्धारद्धा पल्ला तिण्णेव होंति बोद्धव्वा ।

सखा दीव समुद्दा कम्मट्ठिदि वण्णिदा तदिए ॥

प्रश्न १७–तिर्यञ्चो की उत्कृष्ट और जघन्य स्थिति कितनी है ?

उत्तर– **तिर्यग्योनिजानाञ्च ॥ ३९ ॥**

सूत्रार्थ–तिर्यञ्चो की भी स्थिति उतनी ही है । अर्थात् तिर्यञ्चो की उत्कृष्ट स्थिति मनुष्यो के समान ही तीन पल्य और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है । मध्य स्थिति के अनेक विकल्प है ।

प्रश्न १–"तिर्यग्योनिज" किन्हे कहते है ?

उत्तर–तिर्यञ्चो की योनि को तिर्यग्योनि कहते है । जो तिर्यञ्चयोनि मे पैदा होते है वे "तिर्यग्योनिज" कहलाते है ।

प्रश्न २–स्थिति कितने प्रकार की होती है ?

उत्तर–स्थिति दो प्रकार की होती है—१ भव स्थिति २ काय स्थिति ।

प्रश्न ३–भवस्थिति किसे कहते हैं ?

उत्तर–एक पर्याय मे रहने मे जितना काल लगे वह भवस्थिति है ।

प्रश्न ४–कायस्थिति किसे कहते हैं ?

उत्तर–विवक्षित पर्याय के सिवा अन्य पर्याय मे उत्पन्न न होकर पुन -पुन उसी पर्याय मे निरन्तर उत्पन्न होने से जो स्थिति प्राप्त होती है वह कायस्थिति है ।

प्रश्न ५–मनुष्य व तिर्यञ्चो की जघन्य कायस्थिति कितनी है ?

उत्तर–इनकी जघन्य कायस्थिति जघन्य भवस्थिति प्रमाण हैं, क्योंकि एक बार जघन्य आयु के साथ भव पाकर उसका अन्य पर्याय मे जाना सम्भव है ।

प्रश्न ६–मनुष्य की उत्कृष्ट कायस्थिति कितनी है ?

उत्तर–मनुष्य की उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य है ।

प्रश्न ७–तिर्यञ्चो की उत्कृष्ट कायस्थिति कितनी है ?

उत्तर–तिर्यञ्चो की उत्कृष्ट कायस्थिति अनन्तकाल है जो असख्यात पुद्गल परिवर्तनो के बराबर है ।

प्रश्न ८–तृतीय अध्याय मे वर्णित विषय क्या-क्या है ?

उत्तर–तृतीय अध्याय मे सात नरक, द्वीप, समुद्र, कुलाचल पर्वत, पद्म आदि सरोवर गगा आदि नदी, मनुष्यो के भेद, मनुष्यो और तिर्यञ्चो की आयु का वर्णन किया गया है ।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे तृतीयोऽध्याय ॥ ३ ॥

●

चतुर्थ अध्याय

जीव तत्त्व (देवगति) विवेचना [सूत्र ४२]

सूत्र १-६ मे—देवो के भेद, भवनत्रिक देवो मे लेश्या, चार निकायो के प्रभेद, चार प्रकार के देवो के सामान्य भेद व देवो मे इन्द्र व्यवस्था का कथन ।

सूत्र ७-९ मे—देवो मे स्त्री सुख का वर्णन ।

सूत्र १०-१२ मे—भवनत्रिक देवो के १०-८-५ भेदो का कथन ।

सूक्ष १३-१५ मे—ज्योतिष्क देवो का विशेष कथन ।

सूत्र १६-२३ मे—वैमानिक देव, उनके भेद, कल्पो मे स्थितिक्रम, वैमानिको के निवास स्थान, उनमे उत्तरोत्तर हीनता व अधिकता, लेश्या तथा कल्प सज्ञा का कथन।

सूत्र २४-२५ मे—लौकान्ति॰॰ देव व उनके नाम का कथन ।

सूत्र २६ मे—विजयादि विमान के देवो के ससार मे रहने के काल का कथन।

सूत्र २७ मे—तिर्यंच कौन ?

सूत्र २८-३२ मे—भवनवासी व वैमानिक देवो की उत्कृष्ट आयु का कथन ।

सूत्र ३३-३८ मे—स्वर्गों मे व नरको मे तथा प्रथम नरक, भवनवासी व व्यन्तर देवो की जघन्य आयु का कथन ।

सूत्र ३९-४० मे—व्यन्तर और ज्योतिषी देवो की उत्कृष्ट आयु का कथन ।

सूत्र ४१ मे—ज्योतिष्क देवो की जघन्य आयु का कथन । और

सूत्र ४२ मे—लौकान्तिक देवो की आयु का कथन है ।

इस प्रकार चतुर्थ अध्याय मे ४२ सूत्रो द्वारा चतुर्निकाय देवो का पूर्ण विवेचन किया गया है ।

•

प्रश्न १—सूत्र "भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम्" [सूत्र २१/२] में देवों के अवधिज्ञान का प्रकरण आता है व देव कितने हैं बताइये ?

उत्तर— **देवाश्चतुर्णिकायाः ।।१।।**

सूत्रार्थ—देव चार निकाय वाले हैं।

प्रश्न १—देव कौन कहलाते हैं ?

उत्तर—१ अभ्यन्तर कारण देवगति नामकर्म के उदय होने पर जो नाना प्रकार की बाह्य विभूति सहित द्वीप-समुद्रादि स्थानों में इच्छानुसार क्रीडा करते हैं वे देव हैं।

२ देवगतिनाम कर्मोदय से कान्ति आदि अर्थ के कारण देव कहलाते हैं।

प्रश्न २—देवों का स्वरूप कैसा है ?

दीव्वंति जदो णिच्चं गुणेहिं अट्ठहिं दिव्वभावेहिं।
भासंतदिव्वकाया तह्मा ते वण्णिया देवा ।।१५१।। जी का ।।

उत्तर—देवगति में होनेवाले परिणामों से देव सदा सुखी रहते हैं। अणिमा महिमा लघिमा गरिमा प्राप्ति प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व आठ गुणों (ऋद्धियों) से सदा विहार करते हैं तथा रूप लावण्य यौवनादि से सदा प्रकाशमान रहते हैं।

प्रश्न २अ—अणिमा आदि ८ ऋद्धियों का स्वरूप बताइये ?

उत्तर— १ अणिमा—इतना छोटा शरीर बनाना कि मृणाल के एक छिद्र में चक्रवर्ती की विभूति रच डाले इसे अणिमा ऋद्धि कहते हैं।

२ महिमा—सुमेरु से भी बड़ा शरीर बना लेना महिमा ऋद्धि है।

३ लघिमा—वायु से भी हल्का शरीर बना लेना लघिमा ऋद्धि है।

४ गरिमा—पहाड़ से भी भारी शरीर बना लेना गरिमा ऋद्धि है।

५ प्राप्ति—भूमि पर बैठकर अँगुली से सूर्य चन्द्रमा आदि को छू लेना प्राप्ति ऋद्धि है। ६ प्राकाम्य—जल में भूमि की तरह गमन करना और भूमि में जल की तरह डुबकी लगाना प्राकाम्य ऋद्धि है।

७ ईशित्व—तीनों लोकों का स्वामीपना ईशित्व ऋद्धि है। और

८ वशित्व या कामरूपित्व—आकाश की तरह बिना रुके पहाड़ में से गमनागमन करना अदृश्य हो जाना अथवा अनेक प्रकार का रूप बनाना कामरूपित्व ऋद्धि है।

प्रश्न ३—देव शब्द की व्युत्पत्ति बताइये ?

उत्तर—देव शब्द दिव् धातु से बनता है जिसके कि क्रीडा विजिगीषा व्यवहार द्युति स्तुति, मोद मद आदि अनेक अर्थ होते हैं। 'दिव्यन्ति क्रीडन्तीति देवाः'।

प्रश्न ४—देवों का शरीर कैसा होता है ?

उत्तर—देवों का शरीर वैक्रियिक, धातुमल दोषों रहित और अविच्छिन्न रूप लावण्य से युक्त, सदा यौवन अवस्था में रहा करता है।

प्रश्न ५—निकाय किसे कहते हैं ? निकाय शब्द का अर्थ क्या है ?

उत्तर—अपने अवान्तर कर्मों से भेद को प्राप्त होने वाले देवगति नामकर्म के उदय की सामर्थ्य से जो संग्रह किये जाते हैं वे निकाय कहलाते हैं 'निकाय शब्द का अर्थ संघात है।

प्रश्न ६—देवों के चार निकायों के नाम कौन से हैं ?

उत्तर—भवनवासी व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक।

प्रश्न ७—भवनवासी व्यन्तर ज्योतिष्क देवों के कौन सी लेश्याएँ होती हैं ?

उत्तर— **आदितस्त्रिषु पीतान्तलेश्याः ।।२।।**

सूत्रार्थ–आदि के तीन निकायो (भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क) मे पीत पर्यन्त चार लेश्याएँ हैं ।

प्रश्न १–देवगति के जीवो मे तीन शुभ लेश्याएँ हैं ऐसा नियम है फिर सूत्र मे "पीतान्त" शब्द क्यो दिया गया है । उनके तीन अशुभ (कृष्णादि) लेश्या कैसे हैं ?

उत्तर–भवनत्रिको मे अपर्याप्त अवस्था मे कृष्णादि पीत पर्यन्त चार लेश्याएँ और पर्याप्त अवस्था मे एक पीत लेश्या ही होती हैं । "पीतान्त" शब्द अपर्याप्त अवस्था की अपेक्षा है ।

प्रश्न २–स्पष्ट कीजिये (उपर्युक्त) कथन किन जीवो की अपेक्षा रखता है ?

उत्तर–यह नियम है कि कृष्ण, नील और कापोत लेश्या के मध्यम अश से मरे हुए कर्मभूमियाँ मिथ्यादृष्टि मनुष्य व तिर्यञ्च और पीत लेश्या के मध्यम अश से मरे भोगभूमिया मिथ्यादृष्टि मनुष्य व तिर्यञ्च भवनत्रिक में उत्पन्न होते है । अत ऐसे कर्मभूमियाँ मनुष्य और तिर्यंचो के मरते समय प्रारंभ की तीन अशुभ लेश्याए होती है । अत इनके मरकर भवनत्रिक मे उत्पन्न होने पर अपर्याप्त अवस्था मे ये अशुभ लेश्याएँ पाई जाती है । इसीलिये इनके पीत तक चार लेश्याएँ कही है ।

प्रश्न ३–चार निकायो के कितने भेद हैं ?

उत्तर– **दशाष्टपञ्चद्वादशविकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यन्ताः ॥ ३ ॥**

सूत्रार्थ–वे कल्पोपन्न देव तक के चार निकाय के देव क्रम से दस, आठ, पाँच और बारह भेद वाले हैं ।

प्रश्न १–किन देवो के भेद कितने है ?

उत्तर–भवनवासी दस प्रकार के है, व्यन्तर आठ प्रकार के है, ज्योतिषी पॉच प्रकार के और वैमानिक बारह प्रकार के हैं ।

प्रश्न २–सूत्र मे "कल्पोपपन्न पर्यन्त" शब्द का अर्थ क्या है ?

उत्तर–कल्पोपपन्न पर्यन्त का अर्थ है सोलहवे स्वर्ग पर्यन्त, क्योंकि सोलहवे स्वर्ग पर्यन्त ही इन्द्र आदि की कल्पना होती है । वैमानिको को ही कल्पोपपन्न कहते है ।

प्रश्न ३–ग्रैवेयक, अनुदिश, अनुत्तरवासियो का यहाँ ग्रहण क्यो नही किया ?

उत्तर–नही, क्योंकि ग्रैवेयक आदि मे अहमिन्द्रत्व के सिवाय दूसरा कोई विकल्प/भेद नही होता है ।

प्रश्न ४–प्रत्येक निकाय के देवो मे विशेष भेद कितने होते है ?

उत्तर–इन्द्रसामानिकत्रायस्त्रिंशपारिषदात्मरक्षलोकपालानीक-प्रकीर्णकाभियोग्यकिल्विषिकाश्चैकशः ॥ ४ ॥

सूत्रार्थ–प्रत्येक निकाय के देवो मे इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिश, पारिषद, आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषिक ये दस भेद होते है।

प्रश्न १–इन्द्र कौन होते हैं ?

उत्तर–जो अन्य देवो मे नही होने वाले असाधारण अणिमादि गुणो के सम्बन्ध से शोभते है वे इन्द्र कहलाते हैं।

प्रश्न २–सामानिक देव कौन है ?

उत्तर–आज्ञा और ऐश्वर्य के सिवा जो आयु, वीर्य, परिवार, भोग और उपभोग है वे समान कहलाते है। उस समान मे जो होते है वे सामानिक कहलाते है।

प्रश्न ३–त्रायस्त्रिश देव कौन होते है ?

उत्तर–जो पिता, गुरु और उपाध्याय के समान सबसे बड़े है, जो मत्री व पुरोहित है वे त्रायस्त्रिश कहलाते है। ये तैतीस ही होते है।

प्रश्न ४–पारिषद देवो का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–जो सभा मे मित्र व प्रेमीजनो के समान होते हैं वे पारिषद कहलाते है।

प्रश्न ५–आत्मरक्ष देवो का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–जो अगरक्षक के समान हैं वे आत्मरक्ष कहलाते हैं।

प्रश्न ६–लोकपाल कौन होते है ?

उत्तर–जो रक्षक के समान अर्थचर हैं वे लोकपाल कहलाते है।

प्रश्न ७–अनीक कौन देव है ?

उत्तर–जैसे यहाँ सेना है वैसे ही सात प्रकार के पदाति आदि अनीक कहलाते है।

प्रश्न ८–प्रकीर्णक का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–जो गॉव और शहरो मे रहने वालो के समान हैं वे प्रकीर्णक कहलाते है।

प्रश्न ९–आभियोग्य देव कैसे होते है ?

उत्तर–जो दास के समान वाहन आदि कर्म मे प्रवृत्त होते हैं वे आभियोग्य कहलाते है।

प्रश्न १०–किल्विषिक देव कौन है ?

उत्तर–जो सीमा के पास रहने वालो के समान हैं वे किल्विषिक कहलाते है।

किल्विष पाप को कहते है इसकी जिनके बहुलता होती है वे किल्विषिक कहलाते है।

प्रश्न ११–तीर्थंकर भगवान के जन्म कल्याणक के समय ऐरावत हाथी कौन जाति के देव बनते हैं ?

उत्तर–आभियोग्य जाति का देव ऐरावत हाथी बनता है ।

प्रश्न १२–क्या चारो निकायो मे ये दसो ही भेद होते हैं अथवा कोई अपवाद भी है ?

उत्तर– त्रायस्त्रिंशलोकपालवर्ज्या व्यन्तरज्योतिष्काः ॥ ५ ॥

सूत्रार्थ–व्यन्तर और ज्योतिष्क देव त्रायस्त्रिंश और लोकपाल इन दो भेदो से रहित है ।

प्रश्न १–व्यन्तर, ज्योतिषी देवो मे दस भेदो मे से कितने व कौन से होते है?

उत्तर–इन्द्र, सामानिक, पारिषद, आत्मरक्ष, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य ौर किल्विषिक ये आठ भेद ही व्यन्तर व ज्योतिष्क देवो मे होते है । त्रायस्त्रिंश व लोकपाल दो भेद नही होते है ।

प्रश्न २–चारो निकायो मे इन्द्र एक-एक ही होता है या कोई विशेषता है ?

उत्तर– पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ॥ ६ ॥

सूत्रार्थ–प्रथम दो निकायो मे दो-दो इन्द्र है ।

प्रश्न १–पूर्व के दो निकाय कौन से ग्राह्य हैं ?

उत्तर–भवनवासी और व्यन्तरवासी ग्राह्य हैं ?

प्रश्न २–भवनवासियो के दो इन्द्र कौन से है ?

उत्तर–भवनवासी देवो के जो असुरकुमार आदि दस भेद है उन प्रत्येक के दो-दो इन्द्र होते है यथा असुरकुमारो के चमर और वैरोचन । नागकुमारो के-धरण और भूतानन्द । विद्युत्कुमारो के-हरिसिह व हरिकान्त । सुपर्णकुमारो के-वेणुदेव और वेणुधारी । अग्निकुमारो के-अग्निशिख और अग्निमाणव । वातकुमारो के-वैलम्ब और प्रभञ्जन । स्तनितकुमारो के सुघोष और महाघोष । उदधिकुमारो के-जलकान्त और जलप्रभ । द्वीपकुमारो के पूर्ण और विशिष्ट । दिक्कुमारो के-अमित और अमितवाहन ये दो इन्द्र है ।

प्रश्न ३–व्यन्तर देवो के इन्द्रो के नाम बताओ ?

उत्तर–व्यन्तरो के भी आठ भेदो मे किन्नर के-किन्नर और किम्पुरुष दो । किम्पुरुष के सत्पुरुष और महापुरुष ये दो । महारगो के अतिकाय और महाकाय दो । गन्धर्वों के गीतरति व गीतयश दो । यक्षो के पूर्णभद्र और मणिभद्र दो । राक्षसो के भीम व महाभीम दो । भूतो के प्रतिरूप व अप्रतिरूप दो तथा पिशाचो के काल और महाकाल दो इन्द्र हैं ।

प्रश्न ४–भवनवासी व व्यन्तरो के कुल इन्द्र कितने है ?

उत्तर–भवनवासियो के २० इन्द्र हैं व व्यन्तरो के १६ इन्द्र हैं ।

प्रश्न ५–देवो के सुख कैसा है ?

उत्तर– **कायप्रवीचारा आ ऐशानात् ।।७।।**

सूत्रार्थ–ऐशान स्वर्ग तक के देव काय से प्रवीचार करते है ।

प्रश्न १–काय से प्रवीचार कौन-कौन देव करते है ?

उत्तर–भवनत्रिक देव तथा सौधर्म ऐशान स्वर्ग के देव काय से प्रवीचार करते है ।

प्रश्न २–काय प्रवीचार का अर्थ क्या है ? काय प्रवीचार से यहाँ तात्पर्य क्या है ?

उत्तर–मैथुन के उपसेवन को कार्यप्रवीचार कहते है । यहाँ "आ ऐशानात्" शब्द से तात्पर्य है कि ऐशान स्वर्ग पर्यन्त ये भवनवासी आदि देव संक्लिष्ट कर्मवाले होने के कारण मनुष्यो के समान स्त्री विषयक सुखो का अनुभव करते है ।

प्रश्न ३–सानत्कुमार स्वर्ग से अच्युत पर्यन्त देवो का सुख कैसा है ?

उत्तर– **शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचाराः ॥ ८ ॥**

सूत्रार्थ–शेष देव देवियो के स्पर्श से, रूप देखने से, शब्द सुनने से और मन मे स्मरण मात्र से काम सुख का अनुभव करते है ।

प्रश्न १–शेष देवो मे किन-किन का ग्रहण होता है ?

उत्तर–शेष देवो मे सनत्कुमार से लेकर अच्युत स्वर्ग तक के देवो का ग्रहण होता है ।

प्रश्न २–किन देवो के कौन सा प्रवीचार होता है ? स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर– १ सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्ग के देव देवागनाओ के स्पर्श मात्र से परम प्रीति को प्राप्त होते हैं ।

२ ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर,लान्तव, कापिष्ठ स्वर्ग के देव देवाङ्गनाओ के शृगार, आकृति, विलास, चतुर और मनोज्ञ वेष तथा मनोज्ञ रूप के देखने मात्र से ही परम सुख को प्राप्त होते हैं ।

३ शुक्र, महाशुक्र, शतार और सहस्रार स्वर्ग के देव देवागनाओ के मधुर सगीत, कोमल हास्य, ललित कथा और भूषणो के कोमल शब्दो के सुनने मात्र से ही परम प्रीति को प्राप्त होते है ।

४ आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्पो के देव अपनी देवागना का मन मे सकल्प करने मात्र से परम सुख को प्राप्त होते हैं ।

प्रश्न ३–अच्युत स्वर्ग के आगे देवों का सुख कैसा है ?

उत्तर– परेऽप्रवीचाराः ॥ ९ ॥

सूत्रार्थ–अच्युत स्वर्ग से आगे के देव प्रवीचार से रहित होते हैं ।

प्रश्न १–अच्युत स्वर्ग के आगे कौन-कौन देव प्रवीचार रहित हैं ?

उत्तर–नव ग्रैवेयक, नव अनुदिश और पाँच अनुत्तरवासी देव प्रवीचार रहित होते हैं ।

प्रश्न २–शेष देव मन से भी प्रवीचार करते हैं या नहीं ?

उत्तर–नही । वे अच्युत स्वर्ग से आगे के देव मन से भी मैथुन भाव से रहित होते है ।

प्रश्न ३–प्रवीचार के अभाव मे नवग्रैवेयकादि के देवो के दुख ही दुख होता होगा ?

उत्तर–ऐसा नही है । अच्युत स्वर्ग से आगे सभी देव अहमिन्द्र कहलाते है । इन अहमिन्द्रो के कल्पवासी देवो से भी परम हर्ष लक्षण उत्कृष्ट सुख होता है । क्योकि प्रवीचार केवल कामजन्य वेदना का प्रतीकार है परन्तु कल्पातीत देवो के कामजन्य वेदना कभी नही होती है अत उनके अवच्छिन्न रूप से सुख होता है ।

प्रश्न ४–प्रथम निकाय के देवो का नाम क्या है ?

उत्तर–भवनवासी ।

प्रश्न ५–भवनवासी देवो के कितने भेद है ?

उत्तर–भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधि-द्वीपदिक्कुमाराः ॥ १० ॥

सूत्रार्थ–भवनवासी देव दस प्रकार के है—असुरकुमार, नागकुमार, विद्युत्कुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार, वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार और दिक्कुमार ॥ १० ॥

प्रश्न १–भवनवासी देवो की भवनवासी यह सज्ञा क्यो है ?

उत्तर–भवनो मे रहने के कारण इनको भवनवासी कहते है ।

प्रश्न २–असुरकुमार यह सज्ञा क्यो है ?

उत्तर–जो परस्पर मे लड़ा-भिड़ाकर उनके प्राणो को लेते है और जो तृतीय नरक तक जाकर नारकियो को दु ख पहुँचाते है, वे अति सक्लेश परिणामो सहित होने मे सुर नही असुर है ।

प्रश्न ३–नागकुमार देवो की विशेषता क्या है ?

उत्तर–पर्वत और चन्दनादि वृक्षो पर रहने वाले देव नागकुमार कहलाते है।

प्रश्न४–विद्युत्कुमार देवो की विशेषता बताओ ?

उत्तर–जो विद्युत के सदृश चमकते है वे विद्युत्कुमार है।

प्रश्न५–सुपर्णकुमार देव कौन होते है ?

उत्तर–जिनके पंख शोभित होते है वे सुपर्णकुमार है। (देवो के पंख नहीं होते यह व्युत्पत्ति अर्थ है वा देव अपनी विक्रिया से सुन्दर पंख बनाते है)

प्रश्न६–अग्निकुमार देव कौन होते है ?

उत्तर–जो पाताल लोक को छोडकर क्रीडा करने के लिये ऊपर आते है वे अग्निकुमार देव कहलाते है।

प्रश्न७–वातकुमार का कार्य क्या है ?

उत्तर–जो तीर्थंकर के विहारमार्ग को शुद्ध करते है वे वातकुमार है।

प्रश्न८–स्तनितकुमार कौन कहलाते है ?

उत्तर–जो शब्द को करते है अथवा जिनके शब्द उत्पन्न होता है वे स्तनित कहलाते है।

प्रश्न९–उदधिकुमार देव क्या कार्य करते है ?

उत्तर–जो उदधि (समुद्र) को धारण करते है वा समुद्रो मे क्रीडा करते है, वे उदधिकुमार कहलाते है।

प्रश्न१०–द्वीप व दिक्कुमार देवो की विशेषता क्या है ?

उत्तर–द्वीपो मे क्रीडा करने से द्वीपकुमार और दिशाओ मे क्रीडा करने वाले होने से दिक्कुमार कहलाते है।

प्रश्न११–भवनवासी देवो के साथ कुमार शब्दो का प्रयोग क्यो होता है ?

उत्तर–इन सब देवो का वय और स्वभाव अवस्थित है तो भी इनका वेष, भूषा, शस्त्र, यान, वाहन और क्रीडा आदि कुमारो के समान होती है इसलिये सब भवनवासियो मे कुमार शब्द रूढ है।

प्रश्न१२–असुरकुमारादि देवो के भवन कहाँ है ?

उत्तर–रत्नप्रभाभूमि के पंकबहुल भाग मे असुर कुमारो के भवन है और खरभाग मे नौ प्रकार के कुमारो (नागकुमार, सुपर्णकुमारादि) के भवन है।

प्रश्न१२अ–अधोलोक मे कुल जिनालय कितने है तथा भवनवासी देवो के चैत्यालयो की संख्या बताइये। साथ ही व्यन्तर देवो के जिनालयो की संख्या भी बताइये।

उत्तर–अधोलोक मे कुल ७ करोड़ ७२ लाख जिनालय है, इनमे भवनवासी देवो के चैत्यालयो की संख्या इस प्रकार है—(१) असुर कुमारो के ६४ लाख (२) नागकुमारो के ८४ लाख (३) सुपर्णकुमारो के ७२ लाख, (४) द्वीप कुमारो के ७६ लाख (५) उदधिकुमारो के ७६ लाख (६) स्तनित कुमारो के ७६ लाख (७) विद्युतकुमारो के ७६ लाख (८) दिक-कुमारो के ७६ लाख (९) अग्निकुमारो के ७६ लाख और (१०) वायु कुमारो के ९६ लाख जिनालय है। व्यन्तर देवो के संख्यातीत जिनालय है।

प्रश्न१३–दूसरे निकाय का नाम क्या है ?

उत्तर–दूसरे निकाय का नाम व्यन्तर देव है।

प्रश्न१४–व्यन्तर देवो के कितने भेद है ?

उत्तर– **व्यन्तरा: किन्नरकिम्पुरुषमहोरगगंधर्वयक्षराक्षस-भूतपिशाचा: ।।११।।**

सूत्रार्थ–व्यन्तर देवो के आठ भेद है—१ किन्नर २ किंपुरुष ३ महोरग ४. गंधर्व ५ यक्ष ६ राक्षस ७ भूत और ८ पिशाच ।

प्रश्न १–व्यन्तर किसे कहते हैं ?

उत्तर–जिनका नाना प्रकार के देशो मे निवास है वे व्यन्तर देव कहलाते हैं।

प्रश्न २–व्यन्तर देवो का निवास कहाँ-कहाँ है ?

उत्तर–ये देव जम्बूद्वीप के असख्यात द्वीपो और समुद्रो के लाघकर ऊपर के खर पृथ्वीभाग मे सात प्रकार (किन्नर, किम्पुरुष महोरग, गन्धर्व, यक्ष, भूत और पिशाच) के व्यन्तर रहते है । राक्षसो का निवास पकबहुल भाग मे है ।

प्रश्न ३–ज्योतिषो देवो के भेद कितने हैं ?

उत्तर– ज्योतिष्का सूर्य्याचन्द्रमसौग्रहनक्षत्रप्रकीर्णक–

तारकाश्च ।।१२।।

सूत्रार्थ–ज्योतिषी देव पाँच प्रकार के हैं—सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और प्रकीर्णक तारे ।

प्रश्न १–ज्योतिषी देवो की ज्योतिषी यह सज्ञा किस कारण है ?

उत्तर–सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र व तारे पाँचो प्रकार के ज्योतिषी देव ज्योतिर्मय है इसलिये इनकी ज्योतिषी यह सार्थक सज्ञा है ।

प्रश्न २–चन्द्रमा, सूर्य मे इन्द्र व प्रतीन्द्र कौन है ?

उत्तर–चन्द्रमा इन्द्र है तथा सूर्य प्रतीन्द्र है ।

प्रश्न ३–सूर्य चन्द्र आदि देवो की सूर्यादि सज्ञा किस कर्मोदय से है ?

उत्तर–ज्योतिषी देवो की सूर्य चन्द्र आदि सज्ञा नामकर्म के उदय से प्राप्त होती है ।

प्रश्न ४–सूर्य और चन्द्रबिम्ब मे लगी मणियो के किस कर्म का उदय है ?

उत्तर–सूर्य विमान मे लगी मणि मे आतप नामकर्म का उदय है और चन्द्र विमान मे लगी मणि के उद्योत नामकर्म का उदय है ।

प्रश्न ५–आतप और उद्योत नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर–जिनका मूल शीत और आभा उष्ण है उसे आतप नामकर्म कहते है तथा जिनका मूल भी शीत हो,आभा भी शीत हो, उसे उद्योत कहते है ।

प्रश्न ६–ज्योतिषी देवो का निवास कहाँ है ?

उत्तर–समान भूमिभाग से सात सौ नब्बे योजन (७९०) जाकर ११० योजन पर्यन्त (९०० योजन तक) ज्योतिषि देवो का निवास है । यह आकाशप्रदेश एक सौ दस योजन मोटा और घनोदधि पर्यन्त असख्यात द्वीप समुद्र प्रमाण लम्बा है ।

प्रश्न ७–समस्त ज्योतिषी देवो का अलग-अलग निवास किस प्रकार है ?

उत्तर– ७९० योजन ऊपर – ताराएँ
१० योजन ऊपर – सूर्य
८० योजन ऊपर – चन्द्र
४ योजन ऊपर – नक्षत्र
४ योजन ऊपर – बुध
३ योजन ऊपर – शुक्र
३ योजन ऊपर – गुरु
३ योजन ऊपर – मंगल
३ योजन ऊपर – शनि
= ९०० योजन
= ९००-७९० = ११० योजन मे ज्योतिषी देवों का निवास है।

कहा भी है— **णउदुत्तरसत्तसया, दससीदो चदुगं तियचउक्कं।**
तारारविससिरिक्खा, बुहभग्गवगुरुअंगिरारसणी ॥

प्रश्न ८–ज्योतिषी देवो के व्रिमान का आकार कैसा है ?

उत्तर–सर्व ही ज्योतिषी देवो के विमान उत्तान स्थित (ऊपर मुख करके रखे हुए) अर्ध गोलक के आकार वाले हैं।

प्रश्न ९–क्या सभी ज्योतिषी देवो का गमन होता है ?

उत्तर–नही। मात्र मनुष्यलोक मे ज्योतिषी देव गमन करते हैं आगे नही।

मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥ १३ ॥

सूत्रार्थ–मनुष्य लोक मे ज्योतिषी देव मेरु की प्रदक्षिणा देते हुए सदा गमन करते रहते हैं।

प्रश्न १–सूत्र मे "नित्यगतय." शब्द क्यो दिया है ? इसका अर्थ क्या है।

उत्तर–नित्यगति का अर्थ है कि नृलोक मे ज्योतिषी देवो के गमन को कोई एक क्षण भी रोकने मे समर्थ नही है। अथवा नृलोक मे सभी ज्योतिषी देव मेरु का प्रदक्षिणा देते हुए भ्रमण करते है। विपरीत गति से भ्रमण नही करते है।

प्रश्न २–नृलोक कितना बड़ा है ?

उत्तर–मनुष्यलोक को नृलोक कहते हैं, यह ४५ लाख योजन विस्तार वाला है। अथवा ढाई द्वीप और दो समुद्र को भी मनुष्यलोक कहते हैं।

प्रश्न ३–ज्योतिषी देवो के विमानो के गमन का कारण क्या है ?

उत्तर–गमन मे रत जो आभियोग्य जाति के देव हैं उनसे प्रेरित होकर ज्योतिषी देवो के विमानो का गमन होता रहता है।

प्रश्न ४–आभियोग्य जाति के देव निरन्तर गमन करने मे ही रत क्यो रहते है ?

उत्तर–यह कर्म के परिपाक की विचित्रता है । उनका कर्म गतिरूप से ही फलता है ।

प्रश्न ५–ज्योतिषी देव मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा कितना दूर रह कर करते है?

उत्तर–ज्योतिषी देव मेरुपर्वत से ग्यारह सौ इक्कीस योजन दूर रहकर ही मेरु की प्रदक्षिणा करते हैं ।

प्रश्न ६–मनुष्य लोक मे सूर्य चन्द्रमा व ग्रहो की सख्या कितनी है ?

	सूर्य	चन्द्रमा	ग्रह	नक्षत्र
जम्बूद्वीप	२	२	१७६	५६
लवण समुद्र	४	४	३५२	११२
धातकीखड	१२	१२	१०५६	३३६
कालोदधि	४२	४२	३६९६	११७६
पुष्करार्द्ध अर्द्ध पुष्करद्वीप	७२	७२	६३३६	२०१६
	१३२	१३२	११६१६	३६९६

अत ढाई द्वीप मे १३२ सूर्य, १३२ चन्द्रमा, ११६१६ ग्रह और ३६९६ नक्षत्र है।

प्रश्न ७–एक चन्द्रमा का परिवार कितना है ?

उत्तर–एक चन्द्रमा के परिवार मे एक सूर्य, अट्ठाईस नक्षत्र, अठासी ग्रह और छ्यासठ हजार नौ सौ कोड़ा-कोड़ी तारे है ।

प्रश्न ८–निरन्तर गमन करने पर ज्योतिषी देवो के विमान को कौन ढोया करत है ?

उत्तर–ज्योतिष्क देवो का गमन स्वभाव है तो भी आभियोग्य देव सूर्य आदि के विमानो को निरन्तर ढोया करते हैं ।

प्रश्न ९–नृलोक किसे कहते है ?

उत्तर–मनुष्य मानुषोत्तर पर्वत के भीतर पाये जाते है । मानुषोत्तर पर्वत के एक ओर से लेकर दूसरी ओर तक कुल विस्तार पैंतालीस लाख योजन है । मनुष्य इसी क्षेत्र मे पाये जाते हैं । इसलिये इसे ही नृलोक अथवा मनुष्य लोक कहते है ।

प्रश्न १०–एक सूर्य जम्बूद्वीप की पूरी परिक्रमा कितने दिनो मे पूरी करता है।

उत्तर–एक सूर्य जम्बूद्वीप की प्रदक्षिणा दो दिन-रात मे पूरी करता है ।

प्रश्न ११–सूर्य के घूमने की गलियाँ कितनी है ?

उत्तर–१८४ गलिया है ।

प्रश्न १२–चन्द्रमा को पूरी प्रदक्षिणा मे कितने दिन-रात लगते हैं ? तथा चन्द्रोदय मे हीनाधिकता क्यो आती है ?

उत्तर–चन्द्रमा को पूरी प्रदक्षिणा मे दो दिन-रात से कुछ अधिक समय लगता है । चन्द्रोदय मे हीनाधिकता इसी से आती है ।

प्रश्न १३–ज्योतिषी देवो के गमन से हमे क्या उपलब्धि है ?

उत्तर–ज्योतिषी देवो के गमन से व्यवहार काल का ज्ञान होता है—

तत्कृतः कालविभागः ॥ १४ ॥

सूत्रार्थ–उन गमन करने वाले ज्योतिषियो के द्वारा किया हुआ कालविभाग है।

प्रश्न १–काल विभाग से यहॉ कौन से काल से है ?

उत्तर–समय, आवलि आदि व्यवहार काल का विभाग यहॉ काल विभाग है।

प्रश्न २—काल के भेद कितने है ? कौन से है ?

उत्तर–काल के दो भेद है—१ मुख्य, २ व्यवहार ।

प्रश्न ३–मुख्यकाल कौन है ?

उत्तर–प्रत्येक आकाश प्रदेश पर एक-एक कालाणु रूप मुख्य काल अवस्थित है ।

प्रश्न ४–व्यवहार काल किसे कहते है ?

उत्तर–मुख्य काल से समुत्पन्न समय, आवलि, नाड़ी, घटिका आदि लक्षण वाला व्यवहार काल है ।

प्रश्न ५–ज्योतिषी देवो के द्वारा कौन से काल का विभाग होता है ?

उत्तर–समय, आवलि, नाड़ी, घटिका रूप व्यवहार काल का विभाग गति वाले ज्योतिषी देवो के द्वारा किया हुआ है ।

प्रश्न ६–ढाई द्वीप के बाहर ज्योतिषी देवो की स्थिति क्या रहती है ?

उत्तर– **बहिरवस्थिताः ॥ १५ ॥**

सूत्रार्थ–मनुष्यलोक के बाहर ज्योतिषी देव स्थिर रहते है ।

प्रश्न १–चौथे निकाय का नाम क्या है ?

उत्तर–वैमानिक ।

वैमानिकाः ॥ १६ ॥

सूत्रार्थ–चौथे निकाय के देव वैमानिक है ।

प्रश्न १–वैमानिक देव कौन होते हैं ?

उत्तर–जिनमे रहने वाले जीव अपने को पुण्यात्मा मानते हैं, वे विमान है और जो उन विमानो मे होते हैं वे वैमानिक हैं।

प्रश्न २–विमान कितने प्रकार के हैं ?

उत्तर–विमान तीन प्रकार के हैं—१ इन्द्रक २ श्रेणीबद्ध ३ प्रकीर्णक।

प्रश्न ३–इन्द्रक, श्रेणिबद्ध और प्रकीर्णक का स्वरूप क्या है ?

उत्तर– १ जो इन्द्र के समान मध्य मे स्थित हैं वे इन्द्रक विमान हैं।

२ इन्द्रक विमानो के चारो ओर आकाश के प्रदेशो की पक्ति के समान स्थित हैं वे श्रेणिबद्ध विमान हैं।

३ बिखरे हुए फूलो के समान विदिशाओ मे जो विमान अवस्थित हैं वे प्रकीर्णक है।

प्रश्न ४–देवो के विमानो मे जो जिनमदिर हैं वे कितने है ? कृत्रिम है या अकृत्रिम ?

उत्तर–देवो के विमानो मे सब ही जिनमन्दिर अकृत्रिम हैं तथा उनकी सख्या ८४ लाख ९७ हजार तेईस है। (८४९७०२३)

प्रश्न ५–वैमानिक देवो के भेद कितने व कौन से हैं ?

उत्तर– **कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ।।१७।।**

सूत्रार्थ–वैमानिक देवो के दो भेद है—१ कल्पोपपन्न २ कल्पातीत।

प्रश्न १–कल्पोपपन्न व कल्पातीत कौन देव कहलाते है ?

उत्तर–जिन देवो मे इन्द्र, सामानिक आदि दस भेदो की कल्पना है वे सोलहवे स्वर्ग तक उत्पन्न होने वाले देव कल्पोपपन्न कहलाते हैं और जो दस कल्पनाओ से अतीत हैं वे कल्पातीत देव कहलाते हैं।

प्रश्न–कल्पातीत देव कौन-कौन है ?

उत्तर–सोलह स्वर्ग से ऊपर क्षेत्रवर्ती नव ग्रैवयेक, नव अनुदिश और पाँच अनुत्तरवासी अहमिन्द्र देव कल्पातीत कहलाते है।

प्रश्न ३–भवनत्रिक देवो मे भी इन्द्र आदि की कल्पना है फिर उन्हे भी कल्पोपपन्न क्यो नही कहते है ?

उत्तर–रूढ़िवशात् वैमानिक देवो को ही कल्पोपपन्न कहा जाता है।

प्रश्न ४–वैमानिक देवो का अवस्थान कहाँ है ?

उत्तर– **उपर्युपरि ॥ १८ ॥**

सूत्रार्थ–वे ऊपर-ऊपर रहते हैं। अर्थात् वैमानिक देव ऊपर-ऊपर स्थित हैं।

प्रश्न १–ऊपर-ऊपर ऐसा क्यो कहा ?

उत्तर–वैमानिक देव ज्योतिषी देवो के समान तिरछे व व्यन्तरो के समान

विषमरूप से नही रहते हैं यह स्पष्ट करने के लिये ऊपर-ऊपर शब्द दिया है।

प्रश्न २–ऊपर-ऊपर शब्द का अर्थ और क्या हो सकता है ?

उत्तर–अथवा "उपरि" शब्द समीपवाची भी हो सकता है। अत यह अर्थ भी हो सकता है कि प्रत्येक पटल मे दो-दो स्वर्ग समीपवर्ती हैं। जिस पटल मे दक्षिण दिशा मे मे सौधर्म स्वर्ग है, उसी पटल की उत्तर दिशा मे उसके समीपवर्ती ऐशान स्वर्ग भी है। इस प्रकार प्रतिपटल मे दो-दो स्वर्ग हैं।

प्रश्न ३–कितने कल्प विमानो मे वे देव निवास करते हैं ?

उत्तर– **सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्म ब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसुग्रैवेयकेषु विजयवैजयन्तजयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥ १९ ॥**

सूत्रार्थ–सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लान्तव, कापिष्ठ, शुक्र, महाशुक्र, शतार और सहस्रार तथा आनत-प्राणत, आरण-अच्युत, नौ ग्रैवेयक और विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित तथा सर्वार्थसिद्धि विमान मे देव निवास करते है।

प्रश्न १–इन्द्रो के व स्वर्गों के सौधर्म आदि नाम किस कारण से है ?

उत्तर–जिस स्वर्ग मे सुधर्म नाम की देवसभा है, वह स्वर्ग सौधर्म है। तथा वह इन्द्र भी सौधर्म इन्द्र है। इसी प्रकार ईशान नाम की देवसभा है, वह ऐशान स्वर्ग है तथा वह इन्द्र भी ऐशान इन्द्र है। इसी प्रकार सनत्कुमार से सानत्कुमार, महेन्द्र से माहेन्द्र, ब्रह्म से ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर से ब्रह्मोत्तर। इसी प्रकार अन्य भी स्वर्गों के व देवो के नाम है।

प्रश्न २–सौधर्मादि स्वर्ग ऊपर-ऊपर किस प्रकार है ?

उत्तर–	सर्वप्रथम	सौधर्म,	ईशान कल्प
	इनके ऊपर	सानत्कुमार,	माहेन्द्र कल्प
	इनके ऊपर	ब्रह्म ब्रह्मोत्तर	कल्प
	इनके ऊपर	लान्तव	कापिष्ठ कल्प
	इनके ऊपर	शुक्र	महाशुक्र कल्प
	इनके ऊपर	शतार	सहस्रार कल्प
	इनके ऊपर	आनत	प्राणत कल्प
	इनके ऊपर	आरण	अच्युत कल्प इस प्रकार १६ स्वर्ग है।

प्रश्न ३–कल्पवासी देवो के १२ इन्द्र कौन से हैं ?

उत्तर–सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार और माहेन्द्र इन चार कल्पो के चार इन्द्र हैं । इन्द्रो के नाम सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार और माहेन्द्र ।

ब्रह्म ब्रह्मोत्तर दो कल्पो का एक ब्रह्म नाम का इन्द्र है ।

लान्तव और कापिष्ठ दो कल्पो मे एक लान्तव नामक इन्द्र है ।

शुक्र, महाशुक्र मे एक शुक्र नाम का इन्द्र है ।

शतार और सहस्रार दो कल्पो मे शतार इन्द्र है ।

तथा आनत, प्राणत, आरण और अच्युत इन चार कल्पो के चार इन्द्र है ।

अत सौधर्म आदि ४ + ब्रह्म, लान्तव, शुक्र, शतार ४ + आनत, प्राणत, आरण, अच्युत ४ = १२ इन्द्र ।

प्रश्न ४–मध्यलोक से स्वर्ग का अन्तर कितना है ?

उत्तर–सुमेरु पर्वत की चूलिका से ऊपर एक बाल के अन्तर से ऋजु विमान है जो सौधर्म कल्प का इन्द्रक विमान है ।

प्रश्न ५–सौधर्मादि सोलह स्वर्गों मे कुल पटलो की सख्या कितनी है ? नव-ग्रैवेयक, अनुदिश, अनुत्तरो मे भी पटलो की सख्या व कुल पटलो की सख्या कितनी है ।

उत्तर–	सौधर्म ऐशान स्वर्ग के	३१ पटल है
	सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्ग के	७ पटल है
	ब्रह्म ब्रह्मोत्तर स्वर्ग के	४ पटल है
	लान्तव कापिष्ठ स्वर्ग के	२ पटल है
	शुक्र और महाशुक्र स्वर्ग का	१ पटल है
	शतार और सहस्रार स्वर्ग का	१ पटल
	और आनत, प्राणत, आरण, अच्युत का	६
	१६ स्वर्गों मे पटल	५२ + ३ अधो ग्रै० + ३

मध्यम ग्रैवेयक + ३ उर्ध्व ग्रैवेयक + १ अनुदिश + १ अनुत्तर = ५२ + ३ + ३ + ३ + १ + १ = ६३ पटल उर्ध्वलोक वैमानिको मे है ।

प्रश्न ६–नव ग्रैवेयक कहाँ हैं उनके नाम बताओ ? इन्हे ग्रैवेयक क्यो कहते है ?

उत्तर–लोकाकाश पुरुषाकार माना है । उस लोक पुरुष की ग्रीवा के स्थानीय होने से ग्रीवा और ग्रीवा मे होनेवाले ग्रैवेयक विमान है और उनका साहचर्य होने से

वहाँ के इन्द्र भी ग्रैवेयक कहलाते है । ये नव ग्रैवेयक एक के ऊपर एक है, व्यवस्थित है । सुदर्शन, अमोघ, सुबुद्ध, पयोधर, सुभद्र, सुविशाल, सुमन, सौमनस और प्रियकर ये इनके नाम है ।

प्रश्न ७–नव अनुदिश के नाम कौन से हैं ?

उत्तर–आदित्य, अर्चि, अर्चिमाली, वैरोचन, प्रभास, अर्चिप्रभ, अर्चिमाध्य, अर्चिरावर्त और अर्चिविशिष्ट ये नव अनुदिश हैं ।

प्रश्न ८–नव अनुदिश को अनुदिश सज्ञा किस कारण से है ?

उत्तर–प्रत्येक दिशा मे विद्यमान होने से इनको अनुदिश कहते है ? अर्थात् प्रत्येक दिशा मे इनका विमान होने से ये अनुदिश हैं ।

प्रश्न ९–पाँच अनुत्तर कौन से है । इनकी विजयादि सज्ञा किस कारण है ?

उत्तर–विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि ये पाँच अनुत्तर है । विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित वाले दो तीन भव से अधिक ससार मे परिभ्रमण नही करेंगे, ये सम्यग्दृष्टि हैं अत ससार पर विजय प्राप्त कर लेने से वा कर्मों के द्वारा जीते नही जाने से इनका नाम सार्थक है ।

प्रश्न १०–सर्वार्थसिद्धि के देवो का सर्वार्थसिद्धि यह नाम क्यो है ?

उत्तर–इनके सर्व अर्थों की सिद्धि हो गई, इसमे रहने वाले एक भवावतारी है, इसीलिये इसका नाम सर्वार्थसिद्धि है ।

प्रश्न ११–सूत्र मे सर्वार्थसिद्धि का पृथक् ग्रहण क्यो किया ?

उत्तर–विजयादि चार विमानो मे जघन्य स्थिति बत्तीस सागर से कुछ अधिक है और उत्कृष्ट तैंतीस सागरोपम है, परन्तु सर्वार्थसिद्धि मे जघन्य और उत्कृष्ट आयु स्थिति तैंतीस सागरोपम ही है अत अलग से ग्रहण किया है ।

प्रश्न १२–वैमानिक देवो मे परस्पर क्या विशेषता है ?

उत्तर– **स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धीन्द्रियावधि-विषयतोऽधिकाः ॥ २० ॥**

सूत्रार्थ–स्थिति, प्रभाव, सुख, द्युति, लेश्याविशुद्धि, इन्द्रियविषय और अवधिविषय की अपेक्षा ऊपर-ऊपर के देव अधिकता लिये हुए है ।

प्रश्न १–स्थिति किसे कहते है ?

उत्तर–अपने द्वारा प्राप्त हुई आयु के उदय से उस भव मे शरीर के साथ रहना स्थिति कहलाती है ।

प्रश्न २–प्रभाव किसे कहते हैं ?

उत्तर–शाप और अनुग्रह रूप शक्ति को प्रभाव कहते हैं ।

प्रश्न ३–सुख किसे कहते हैं ?

उत्तर–इन्द्रियो के विषयो के अनुभवन करने को सुख कहते हैं

प्रश्न ४–द्युति किसे कहते है ?

उत्तर–शरीर, वस्त्र और आभूषण आदि की कान्ति को द्युति कहते है ।

प्रश्न ५–लेश्या विशुद्धि किसे कहते हैं ?

उत्तर–लेश्या की विशुद्धि लेश्या विशुद्धि है ।

प्रश्न ६–नीचे नीचे के देवो से ऊपर के देवो मे परस्पर क्या विशेषता है ?

उत्तर–नीचे-नीचे वैमानिक देवो से ऊपर के देवो मे आयु, प्रभाव, सुख, कान्ति, लेश्या की विशुद्धि, इन्द्रिय विषय और अवधिज्ञान का विषय अधिक-अधिक है ।

प्रश्न ७–वैमानिक देवो मे आगे-आगे हीनता किस अपेक्षा से है ?

उत्तर– **गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीनाः ॥ २१ ॥**

सूत्रार्थ–वैमानिक देवो मे गति, शरीर, परिग्रह और अभिमान की अपेक्षा क्रमश ऊपर-ऊपर हीनता है ।

प्रश्न १–गति, शरीर, परिग्रह और अभिमान से यहाँ क्या तात्पर्य है ?

उत्तर–एक देश से दूसरे देश के प्राप्त करन का जो साधन है उसे गति कहते है ।

यहॉ शरीर से वैक्रियिक शरीर से तात्पर्य है ।

लोभ कषाय के उदय से विषयो के सग को परिग्रह कहते है ।

मान कषाय के उदय से उत्पन्न हुए अहकार को अभिमान कहते है ।

प्रश्न २–गति आदि की हीनता को स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर–आगे देवो मे गति की हीनता का कारण है कि भिन्न देशो मे स्थित विषयो मे क्रीड़ा विषयक रति का प्रकर्ष नही पाया जाता है । आगे-आगे देवो के शरीर की ऊँचाई कम-कम हो गई है यथा सौधर्म, ऐशान मे देवो का शरीर सात अरत्नि प्रमाण है तो घटते-घटते सर्वार्थसिद्धि मे शरीर मात्र एक अरत्निप्रमाण रह जाता है । आगे विमानो की लम्बाई, चौड़ाई आदि कम होने से परिग्रह भी कम है और अल्प कषाय होने से अभिमान भी कम-कम है ।

प्रश्न ३–ऊपर-ऊपर के देवो मे गति आदि की हीनता है तो क्या उनकी पुण्य की हीनता है ?

उत्तर–ऊपर के देवो मे परिग्रह कम-कम होता है इससे उनके पुण्य की हानि नही है । ऊपर-ऊपर देवो मे परिग्रह कम-कम होता है और पुण्यातिशय अधिक-

अधिक है। वास्तव मे बाह्य परिग्रह का सचय पुण्य का फल न होकर मूर्च्छा का फल है। ऊपर-ऊपर देवो मे मूर्च्छा कम-कम है।

प्रश्न ४–देवो के शरीर की ऊँचाई कितनी है ?

उत्तर–सौधर्म ऐशान मे—सात अरत्नि प्रमाण। (अरत्नि का अर्थ हाथ)

सानत्कुमार, माहेन्द्र मे—छह अरत्नि प्रमाण।

ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लान्तव, कापिष्ठ मे—पाँच अरत्नि प्रमाण।

शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रार मे—चार अरत्नि प्रमाण।

आनत-प्राणत-आरण-अच्युत मे—तीन अरत्नि प्रमाण।

अधोग्रैवेयक मे—ढाई अरत्नि प्रमाण। मध्य ग्रैवेयक मे—दो अरत्नि प्रमाण। उर्ध्व ग्रैवेयक और नव अनुदिश मे—डेढ़ अरत्नि तथा पाँच अनुत्तर मे एक अरत्नि प्रमाण शरीर की ऊँचाई है।

प्रश्न ५–वैमानिक-देवो मे लेश्या कौन सी होती है ?

उत्तर– **पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु ॥ २२ ॥**

सूत्रार्थ–दो, तीन कल्प युगलो मे और शेष मे क्रम से पीत, पद्म और शुक्ल लेश्यावाले देव है।

प्रश्न १–भिन्न-भिन्न युगलो मे लेश्याओ का स्पष्टीकरण कीजिये ?

उत्तर– सौधर्म ऐशान कल्प मे पीत लेश्या है।

सानत्कुमार माहेन्द्र कल्प मे पीत, पद्म दोनो लेश्याएँ है।

ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लान्तव, कापिष्ठ कल्पो मे पद्मलेश्या है।

शुक्र, महाशुक्र, शतार और सहस्रार कल्प मे पद्म और शुक्ल लेश्याएँ है।

आनत-प्राणत-आरण-अच्युत मे शुक्ल लेश्या है।

अनुदिश और अनुत्तर विमानो मे परमशुक्ल लेश्या है।

प्रश्न २–कल्पसज्ञा किनकी है ?

उत्तर– **प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः ॥ २३ ॥**

सूत्रार्थ–ग्रैवेयको से पहले तक कल्प है।

प्रश्न १–कल्प कितने है स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर–सौधर्म स्वर्ग से लेकर अच्युत स्वर्ग पर्यन्त १६ स्वर्गों की अथवा १२ स्वर्गों की कल्प सज्ञा है अर्थात् १६ स्वर्गों को कल्प कहते है।

प्रश्न २–कल्पातीत कौन है ?

उत्तर—नवग्रैवेयक, नव अनुदिश और पाँच अनुत्तर विमान कल्पातीत कहलाते है।

प्रश्न ३—कल्प और कल्पातीत मे क्या भेद है ?

उत्तर—जहाँ इन्द्र-प्रतीन्द्र की कल्पना है वे स्वर्ग कल्प कहलाते है। जहाँ इन्द्र प्रतीन्द्र की कल्पना नही है तथा जहाँ सभी अहमिन्द्र है वे सब कल्पातीत विमान कहलाते है।

प्रश्न ४—लौकान्तिक देवो का निवास कहाँ है ?

उत्तर— **ब्रह्मलोकालया लौकान्तिकाः ।।२४।।**

सूत्रार्थ—लौकान्तिक देवो का निवास स्थान ब्रह्मलोक है।

प्रश्न १—क्या ब्रह्मलोक मे रहने वाले सभी देव लौकान्तिक है ?

उत्तर—सूत्र मे ब्रह्मलोक से पूरा ब्रह्मलोक लोकान्तिक देवो का स्थान नही है। ब्रह्मलोक के अन्त मे जिनके विमान है वे देव लौकान्तिक है। अर्थात् ब्रह्मलोक के प्रान्तभाग मे रहने वाले देव लौकान्तिक हैं।

प्रश्न २—लौकान्तिक देवो की लौकान्तिक यह सज्ञा किस कारण से ह ?

उत्तर—लौकान्तिक देव ब्रह्मलोक के अन्त मे निवास करते है इसलिये इन्हे लौकान्तिक कहते है। अथवा जन्म-जरा-मरण से व्याप्त ससार लोक कहलाता है इस लोक का अन्त लाकान्त कहलाता है। इस प्रकार ससार के अन्त मे जो होते है वे लौकान्तिक है। अर्थात् ये ब्रह्मलोक से च्युत होकर और एक बार गर्भ मे रहकर निर्वाण प्राप्त होगे।

प्रश्न ३—लोकान्तिक देवो के भेद कौन से है ?

उत्तर— **सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाधा-रिष्टाश्च ।।२५।।**

सूत्रार्थ—सारस्वत, आदित्य, वह्नि, अरुण, गर्दतोय, तुषित अव्याबाध और अरिष्ट ये लोकान्तिक देव है।

प्रश्न १—लौकान्तिक देवो के ८ प्रकार कोन से हे ?

उत्तर—सारस्वत, आदित्य, वह्नि, अरुण, गर्दतोय, तुषित अव्याबाध आर अरिष्ट ये ८ प्रकार लौकान्तिक देवो के है।

प्रश्न २—सारस्वत आदि देवो के लक्षण क्या ह ?

उत्तर—जो चौदह पूर्व के ज्ञाता होते है वे **सारस्वत** कहलाते है।

सूर्य समान आभा होने से आदित्य जो वह्नि के समान देदीप्यमान हो वे **वह्नि** है।

उदीयमान सूर्य के समान जिनकी कान्ति हो वे **अरुण** कहलाते है। शब्द को गर्द और जल को तोय कहते है। जिनके मुख से शब्द, जल के प्रवाह की तरह निकले वे **गर्दतोय** है।

जो सन्तुष्ट और विषयसुख से पराङ्मुख रहते है वे **तुषित** है।

जिनके कामादिजनित बाधा नही है वे **अव्याबाध** है।

जो अकल्याण करने वाला कार्य नही करते है, उनको **अरिष्ट** कहते है।

प्रश्न ३—लौकान्तिक देवो का दूसरा नाम क्या हे और क्यो हे ?

उत्तर—लौकान्तिक देवो का दूसरा नाम देव-ऋषि हे। क्योकि ये विषय रति से

रहित होते है। देवाड्नाओ से रहित होते है तथा अन्य देव भी इनकी अर्चा करते हे।

प्रश्न ४—लौकान्तिक देवो का कितना ज्ञान होता है ? मध्यलोक मे इनका आगमन कब-कब होता है ?

उत्तर—लौकान्तिक देव चौदह पूर्व के ज्ञाता होते है ? तीर्थकर भगवान् के तपकल्याणक के समय तीर्थकर को सबोधनार्थ इनका मध्यलोक मे आगमन होता है।

प्रश्न ५—सब मिलकर लौकान्तिक देवो की सख्या कितनी है ?

उत्तर—लौकान्तिक देव चार लाख सात हजार आठ सौ बीस होते हैं।

प्रश्न ६—लौकान्तिक देवो के समान अन्य देवो के भी निर्वाण प्राप्त की योग्यता हे वे कौन देव है ?

उत्तर— विजयादिषु द्विचरमा: ।।२६।।

सूत्रार्थ—विजयादिक मे दो चरमवाले देव होते है।

प्रश्न १—द्विचरम वाले देव कोन-कौन है ?

उत्तर—विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानवासी तथा नव अनुदिशा मे रहने वाले जो अहमिन्द्र देव है वे द्विचरमा होते है अर्थात् ये मनुष्य के दो भव धारण कर मोक्ष चले जाते है।

प्रश्न २—सर्वार्थसिद्धि के अहमिन्द्र देव कितने भव लेकर मोक्ष जाते है ?

उत्तर—सर्वार्थसिद्धि के अहमिन्द्र देव परमोत्कृष्ट देव होने से एक भवावतारी हे।

प्रश्न २ अ—देवो का वर्णन क्यो किया गया ?

उत्तर—प्रथम तो जीव तत्त्व का वर्णन चल रहा हे तथा देव भी जीव द्रव्य है अत दवो का वर्णन आवश्यक रूप से किया हे।

दूसरी विशेषता हे कि वहाँ देव-विमानो मे अकृत्रिम जिन चैत्यालय हे इसलिये भी यह वर्णन आवश्यक ही था।

प्रश्न २ ब—देवो के विमानो मे (ऊर्ध्वलोक मे) कितने अकृत्रिम चैत्यालय कहाँ-कहाँ है ?

उत्तर—ऊर्ध्वलोक मे देव विमानो मे ८४९७०२३ जिनालय है—

उनमे सौधर्म स्वर्ग मे ३२ लाख, ईशान स्वर्ग मे २८ लाख, सनतकुमार स्वर्ग मे १२ लाख, माहेन्द्र स्वर्ग मे ८ ला, ब्र ब्रह्मोत्तर मे ४ लाख, लान्तव कापिष्ठ मे ५० हजार, शुक्र महाशुक्र स्वर्ग मे ४० हजार, शतार सहस्रार मे ६ हजार, आनत-प्राणत, आरण-अच्युत स्वर्ग मे ७०० अधोग्रैवेयक मे १११, मध्यम ग्रैवेयक मे १०७, ऊर्ध्वग्रैवेयक मे ९१ नव अनुदिश मे ९ और पच अनुत्तर मे ५ अकृत्रिम चेत्यालय है। इस प्रकार ऊर्ध्वलोक मे कुल ८४९७०२३ अकृत्रिम चैत्यालय है।

प्रश्न ३—तत्त्वार्थसूत्र तीसरे अध्याय मे तिर्यञ्चो की उत्कृष्ट आयु तीन पल्य की हे ऐसा कथन आया है। वे तिर्यञ्च कौन है ?

उत्तर— औपपादिक मनुष्येभ्य: शेषास्तिर्यग्योनय: ।।२७।।

सूत्रार्थ—उपपाद जन्म वाले-नारकी और मनुष्यो के सिवाय सब ससारी जीव तिर्यञ्च योनि वाले हैं।

प्रश्न १–मनुष्य किन्हे कहते है ?

उत्तर–कुलकरो से मनुओ से उत्पन्न होने वाले मनुष्य कहलाते है ।

प्रश्न २–तिर्यञ्च कौन हैं ?

उत्तर–जो मन-वचन काय की कुटिलता को प्राप्त है, जिनके आहारादि की सज्ञा सुव्यक्त है, जो निकृष्ट अज्ञानी हैं और जिनके अत्यधिक पाप की बहुलता पाई जाती है, वे तिर्यञ्च कहे गये हैं ।

प्रश्न ३–तिर्यञ्च जीवो के रहने का क्षेत्र कौन सा है ?

उत्तर–तिर्यञ्च सर्व लोक मे रहते है ।

प्रश्न ४–भवनवासी देवो की आयु कितनी है ?

उत्तर– **स्थितिरसुरनागसुपर्णद्वीपशेषाणां सागरोपमत्रिपल्यो-पमार्द्धहीनमिताः ॥ २८ ॥**

सूत्रार्थ–असुरकुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार, द्वीपकुमार और शेष भवनवासियो की उत्कृष्ट स्थिति क्रम से एक सागर, तीन पल्य, ढाई पल्य, दो पल्य और डेढ़ पल्य प्रमाण है ।

असुर कुमारो की उत्कृष्ट स्थिति एक सागर की है ।

नागकुमारो की ३ पल्य की स्थिति है ।

सुपर्णकुमारो की ढाई पल्य की स्थिति है ।

द्वीप कुमारो की दो पल्य की स्थिति है तथा शेष छह कुमार—

विद्युत्कुमार, अग्निकुमार, वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार और दिक्कुमारो की उत्कृष्ट स्थिति डेढ पल्य की है ।

प्रश्न ५–सौधर्म-ऐशान देवो की उत्कृष्ट आयु कितनी है ?

उत्तर– **सौधर्मैशानयोः सागरोपमे अधिके ॥ २९ ॥**

सूत्रार्थ–सौधर्म और ऐशान कल्प मे दो सागर से कुछ अधिक उत्कृष्ट स्थिति है ।

प्रश्न १–सूत्र मे "अधिक" स्थिति किस अपेक्षा है ? तथा यह अधिकता कितनी है ?

उत्तर–यह अधिकता घातायुष्क जीवो की अपेक्षा है । घातायुष्क देवो की आयु अन्य देवो की अपेक्षा आधा सागर अधिक होती है ।

प्रश्न २–घातायुष्क किन्हे कहते है ?

उत्तर–जिन्होने पहले ऊपर के स्वर्गों की आयु बाधी थी, बाद मे सक्लेश परिणामो के कारण आयु मे ह्रास होकर नीचे के स्वर्ग मे उत्पन्न होते है वे घातायुष्क कहलाते है ।

प्रश्न ३–"अधिके" शब्द का अधिकार कौन से स्वर्ग तक होगा ?

उत्तर–"सहस्रार कल्प तक" ।

प्रश्न ४–सानत्कुमार और माहेन्द्र कल्प में देवो की आयु कितनी है ?

उत्तर– **सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः सप्त ॥ ३० ॥**

सूत्रार्थ–सानत्कुमार और माहेन्द्र कल्प मे सात सागर से कुछ अधिक उत्कृष्ट स्थिति है ।

प्रश्न १–ब्रह्मब्रह्मोत्तर से अच्युत कल्प पर्यन्त देवो की आयु कितनी है ?

उत्तर– **त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदशपञ्चदशभिरधिकानि तु ॥ ३१॥**

सूत्रार्थ–ब्रह्म कल्प से अच्युत पर्यन्त क्रम से साधिक तीन से अधिक सात, साधिक सात से अधिक सात, साधिक नौ से अधिक सात, साधिक ग्यारह से अधिक सात, तेरह से अधिक सात और पन्द्रह से अधिक सात सागरोपम उत्कृष्ट स्थिति है।

प्रश्न १–प्रत्येक युगल मे देवो की अलग-अलग स्थिति कितनी है ? (ब्रह्म से अच्युत पर्यन्त)

उत्तर–ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर मे साधिक दस सागर । लान्तव-कापिष्ठ युगल मे चौदह सागर उत्कृष्ट स्थिति है । शुक्र-महाशुक्र मे साधिक सोलह सागर । शतार, सहस्रार मे साधिक अठारह सागर । आनत-प्राणत मे बीस सागर और आरण-अच्युत कल्प मे बाईस सागर उत्कृष्ट स्थिति है ।

प्रश्न २–सूत्र मे आया "तु" शब्द का अर्थ क्या है ?

उत्तर–सूत्र मे "तु" शब्द होने के कारण अधिक शब्द का सबध बारहवे स्वर्ग तक ही होता है, क्योंकि घातायुष्क जीवो की उत्पत्ति बारहवे स्वर्ग तक ही होती है।

प्रश्न ३–अच्युत स्वर्ग से ऊपर ग्रैवेयक, अनुदिश व अनुत्तरो मे देवो की आयु कितनी है ?

उत्तर– **आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥ ३२ ॥**

सूत्रार्थ–(आरणच्युतात्) आरण और अच्युत स्वर्ग से (ऊर्ध्वम्) ऊपर (नवसु ग्रैवेयकेषु) नव ग्रैवेयको मे (विजयादिषु) विजय आदि चार विमान तथा नव अनुदिशो मे (च) और (सर्वार्थसिद्धौ) सर्वार्थसिद्धि विमान मे (एकैकेन) एक-एक सागर बढ़ती हुई आयु है ।

अर्थात्—नवग्रैवयक मे—प्रथम मे २३ सागर, द्वितीय—२४ सागर, आगे २५, २६, २७, २८, २९ ३० और नवे ग्रैवेयक मे ३१ सागर ।

नव अनुदिशो मे—३२ सागर और अनुत्तरो मे ३३ सागर की उत्कृष्ट स्थिति है। सर्वार्थसिद्धि मे मात्र उत्कृष्ट स्थिति ही होती है ।

प्रश्न १–एक पल्य मे कितने वर्ष होते हैं ?

उत्तर–असख्यात वर्षों का एक पल्य होता है ।

प्रश्न २–एक सागर मे कितने वर्ष होते हैं ?

उत्तर–दस कोड़ाकोड़ी पल्यो का एक सागर होता है ।

प्रश्न ३–स्वर्गों मे देवो की जघन्य आयु कितनी है ?

उत्तर– **अपरापल्योपममधिकम् ॥ ३३ ॥**

सूत्रार्थ–सौधर्म और ऐशान कल्प मे जघन्य स्थिति साधिक एक पल्य है ।

परतः परतः पूर्वापूर्वाऽनन्तरा ।।३४।।

सूत्रार्थ–आगे-आगे पूर्व की उत्कृष्ट स्थिति अनन्तर-अनन्तर की जघन्य स्थिति है ।

प्रश्न १–सौधर्मादि से लेकर सब देवो की जघन्य स्थिति स्पष्ट करो ?

उत्तर–ज्योतिषी देवो की उत्कृष्ट आयु एक पल्य कुछ अधिक है वह सौधर्म, ईशान देवो की जघन्य आयु है । सौधर्म, ऐशान की जो दो सागर कुछ अधिक उत्कृष्ट आयु है वह सानत्कुमार, माहेन्द्र स्वर्ग मे जघन्य आयु है । यही क्रम आगे-आगे लेना चाहिये । सर्वार्थसिद्धि मे जघन्य आयु नहीं होती है ।

प्रश्न २–नारकी जीवो की जघन्य आयु कितनी है ?

उत्तर– **नारकाणां च द्वितीयादिषु ॥ ३५ ॥**

सूत्रार्थ–दूसरी आदि भूमियो मे नारको की पूर्व-पूर्व की उत्कृष्ट स्थिति ही अनन्तर-अनन्तर की जघन्य स्थिति है ।

रत्नप्रभा भूमि मे उत्कृष्ट स्थिति एक सागर है वह शर्कराप्रभा मे जघन्य स्थिति है । शर्कराप्रभा मे जो उत्कृष्ट स्थिति तीन सागर है वह बालुकाप्रभा मे जघन्य स्थिति है इसी प्रकार सप्तम पृथ्वी तक है ।

प्रश्न १–प्रथम नरक मे जघन्य स्थिति कितनी है ?

उत्तर– **दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम् ॥ ३६ ॥**

सूत्रार्थ–नरक की प्रथम भूमि मे दस हजार वर्ष जघन्य स्थिति है ।

प्रश्न १–भवनवासियो मे देवो की जघन्य स्थिति कितनी है ?

उत्तर– **भवनेषु च ॥ ३७ ॥**

सूत्रार्थ–भवनवासी देवो मे भी दस हजार वर्ष जघन्य स्थिति होती है ।

प्रश्न १–व्यन्तरो की जघन्य स्थिति कितनी है ?

उत्तर– **व्यन्तराणाम् च ॥ ३८ ॥**

सूत्रार्थ–व्यन्तरो की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है ।

प्रश्न १–व्यन्तर देवो की उत्कृष्ट स्थिति कितनी है ?

उत्तर– **परापल्योपममधिकम् ॥ ३९ ॥**

सूत्रार्थ–उत्कृष्ट स्थिति साधिक एक पल्य है ।

व्यन्तरो की उत्कृष्ट स्थिति साधिक एक पल्य है ।

प्रश्न १–ज्योतिषी देवो की उत्कृष्ट स्थिति कितनी है ?

उत्तर– **ज्योतिष्काणां च ॥ ४० ॥**

सूत्रार्थ–ज्योतिषियो की उत्कृष्ट स्थिति साधिक एक पल्य है ।

प्रश्न १–ज्योतिषी देवो की जघन्य स्थिति कितनी है ?

उत्तर– **तदष्टभागोऽपरा ॥ ४१ ॥**

सूत्रार्थ–ज्योतिषी देवो की जघन्य स्थिति उत्कृष्ट स्थिति का आठवा भाग है ।

प्रश्न १–सब लौकान्तिक देवो की स्थिति कितनी है ?

उत्तर– **लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ॥ ४२ ॥**

सूत्रार्थ–सब लौकान्तिक देवो की स्थिति आठ सागर है ।

प्रश्न १–लौकान्तिक देवो की लेश्या कौन सी होती है ?

उत्तर–सब लौकान्तिक देवो की शुक्ल लेश्या होती है ।

प्रश्न २–लौकान्तिक देवो के शरीर की ऊँचाई कितनी है ?

उत्तर–सब लौकान्तिक देवो के शरीर की ऊँचाई पाँच हाथ होती है ।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे चतुर्थोऽध्याय:

●

पञ्चम अध्याय

अजीव तत्त्व-विवेचना [सूत्र ४२]

सूत्र १-३ मे—अजीव द्रव्य, द्रव्यो की गणना का कथन ।

सूत्र ४-७ मे—द्रव्यो की विशेषता, द्रव्यो के स्वभेद की गणना व निष्क्रिय द्रव्यो का कथन ।

सूत्र ८-११ मे—द्रव्यो के प्रदेशो का कथन ।

सूत्र १२-१६ मे—द्रव्यो के रहने का स्थान ।

सूत्र १७-२२ मे—धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्‌गल, जीव व काल द्रव्य का उपकार कथन ।

सूत्र २३-२५ मे—पुद्‌गल द्रव्य का लक्षण, पर्याय, भेद कथन ।

सूत्र २६-२८ मे—स्कध व अणु की उत्पत्ति के कारण का कथन ।

सूत्र २९-३२ मे—द्रव्य, सत् व नित्य के लक्षण कथन ।

सूत्र ३३-३५ मे—परमाणुओ के बन्ध मे हेतु का कथन ।

सूत्र ३६-३७ मे—"बन्ध किनका" ?

सूत्र ३८-३९ मे—द्रव्य का लक्षण व काल को भी द्रव्य मानना ।

सूत्र ४० मे—काल द्रव्य की विशेषता ।

सूत्र ४१-४२ मे—गुण व पर्याय का लक्षण ।

इसप्रकार पञ्चम अध्याय मे अजीव तत्त्व का ४२ सूत्रो मे विस्तृत विवेचन है ।

स्वर्गों की उत्कृष्टायु श्वासोच्छ्वास और आहार का क्रम

		नाम	उत्कृष्टायु	श्वासोच्छ्वास	आहारेच्छा
१६ स्वर्ग	१	सौधर्मैशान	२ सागर	२ पक्षवाद	२००० वर्ष बाद
	२	सानत्कुमार-माहेन्द्र	७ सागर	७ पक्षवाद	७०० वर्ष बाद
	३	ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर	१० सागर	१० पक्षवाद	१००००० वर्ष बाद
	४	लान्तव-कापिष्ट	१४ सागर	१४ पक्षवाद	१४००० वर्ष बाद
	५	शुक्र-महाशुक्र	१६ सागर	१६ पक्षवाद	१६००० वर्ष बाद
	६	सतार-सहस्रार	१८ सागर	१८ पक्षवाद	१८००० वर्ष बाद
	७	आनत-प्राणत	२० सागर	२० पक्षवाद	२०००० वर्ष बाद
	८	आरण-अच्युत	२२ सागर	२२ पक्षवाद	२२००० वर्ष बाद
नवग्रैवेयक — अ० ग्रै०	९	सुदर्शन	२३ सागर	२३ पक्षवाद	२३००० वर्ष बाद
	१०	अमोघ	२४ सागर	२४ पक्षवाद	२४००० वर्ष बाद
	११	सुप्रबुद्ध	२५ सागर	२५ पक्षवाद	२५००० वर्ष बाद
म० ग्रै०	१२	यशोधर	२६ सागर	२६ पक्षवाद	२६००० वर्ष बाद
	१३	सुभद्र	२७ सागर	२७ पक्षवाद	२७००० वर्ष बाद
	१४	सुविशाल	२८ सागर	२८ पक्षवाद	२८००० वर्ष बाद
उर्ध्व ग्रै०	१५	सुमनस	२९ सागर	२९ पक्षवाद	२९००० वर्ष बाद
	१६	सौमनस	३० सागर	३० पक्षवाद	३०००० वर्ष बाद
	१७	प्रीतिकर	३१ सागर	३१ पक्षवाद	३१००० वर्ष बाद
नव अनुदिश	१८	आदित्य	३२ सागर	३२ पक्षवाद	३२००० वर्ष बाद
	१९	अर्चि	३२ सागर	३२ पक्षवाद	३२००० वर्ष बाद
	२०	अर्चिमाली	३२ सागर	३२ पक्षवाद	३२००० वर्ष बाद
	२१	वैरोचन	३२ सागर	३२ पक्षवाद	३२००० वर्ष बाद
	२२	प्रभास	३२ सागर	३२ पक्षवाद	३२००० वर्ष बाद
	२३	अर्चिप्रभ	३२ सागर	३२ पक्षवाद	३२००० वर्ष बाद
	२४	अर्चिमध्य	३२ सागर	३२ पक्षवाद	३२००० वर्ष बाद
	२५	अर्चिरावर्त	३२ सागर	३२ पक्षवाद	३२००० वर्ष बाद
	२६	अर्चिविशिष्ट	३२ सागर	३२ पक्षवाद	३२००० वर्ष बाद
अनुत्तर	२७	विजय	३३ सागर	३३ पक्षवाद	३३००० वर्ष बाद
	२८	वैजयन्त	३३ सागर	३३ पक्षवाद	३३००० वर्ष बाद
	२९	जयन्त	३३ सागर	३३ पक्षवाद	३३००० वर्ष बाद
	३०	अपराजित	३३ सागर	३३ पक्षवाद	३३००० वर्ष बाद
	३१	सर्वार्थसिद्धि	३३ सागर	३३ पक्षवाद	३३००० वर्ष बाद

भवनवासियों के असुरकुमार आदि देवों के उच्छ्वास व आहार का क्रम

		आहार	श्वासोच्छ्वास
१	असुरकुमार	१००० वर्ष	१ पक्षमे
२	नागकुमार	१२½ दिन मे	१२½ मुहूर्त मे
३	सुपर्णकुमार	१२½ दिन मे	१२½ मुहूर्त मे
४	द्वीपकुमार	१२½ दिन मे	१२½ मुहूर्त मे
५	उदधिकुमार	१२ दिन मे	१२ दिनो मे
६	स्तनितकुमार	१२ दिन मे	१२ दिनो मे
७	विद्युत्कुमार	१२ दिन मे	१२ दिनो मे
८	दिक्कुमार	७½ दिनो मे	७½ मुहूर्त मे
९	अग्निकुमार	७½ दिनो मे	७½ मुहूर्त मे
१०	वायुकुमार	७½ दिनो मे	७½ मुहूर्त मे

व्यन्तर देवों के आहार व श्वासोच्छ्वास का क्रम

१ जिन व्यन्तर देवो की आयु पल्य प्रमाण है वे ५ दिन के अन्तर मे आहार व ५ मुहूर्त बाद श्वासोच्छ्वास लेते है।

२ जिन व्यन्तर देवो की आयु मात्र दस हजार वर्ष है उनका आहार दो दिन बाद और श्वासोच्छ्वास सात पाणापाण श्वासोच्छ्वास बाद होता है।

ज्योतिषी देवों की उत्कृष्ट आयु उच्छ्वास व आहार का क्रम

	उत्कृष्ट आयु	श्वासोच्छ्वास	आहार
चन्द्रमा	१ लाख वर्ष अधिक १ पल्य	भवनलोक सदृश	भवनलोक सदृश
सूर्य	१ हजार वर्ष अधिक १ पल्य	भवनलोक सदृश	भवनलोक सदृश
शुक्र	१०० वर्ष अधिक १ पल्य	भवनलोक सदृश	भवनलोक सदृश
गुरु	१ पल्य प्रमाण	भवनलोक सदृश	भवनलोक सदृश
शेष ग्रहोकी	(½) आधा पल्य	भवनलोक सदृश	भवनलोक सदृश
तागओ	(¼) पल्य के चतुर्थ भाग	भवनलोक सदृश	भवनलोक सदृश

अथ पञ्चमोऽध्याय:

प्रश्न १–सम्यग्दर्शन के विषयभूत जीवादि पदार्थों मे से जीव का कथन २-३-४ अध्यायो मे पूर्ण हुआ आगे अजीव तत्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर– **अजीवकाया धर्म्माधर्म्माकाशपुद्गला ॥ १ ॥**

सूत्रार्थ–धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल ये अजीवकाय है ।

प्रश्न १–अजीव काय किसे कहते हैं ?

उत्तर–जिनके जीव आत्मा नही है वे **अजीव** कहलाते हैं । शरीर पुद्गल द्रव्य का प्रचय (समूह, पिण्ड) होने से **काय** कहलाता है । जो अजीव भी है और काय रूप भी है वह **अजीवकाय** है ।

प्रश्न २–अजीव और काय का सबध क्या है ?

उत्तर–अजीव विशेषण है और काय विशेष्य है अत अजीव और काय मे विशेषण-विशेष्य सबध है ।

प्रश्न ३–सूत्र मे अजीव के साथ "काय" देने की आवश्यकता क्या है ?

उत्तर–सूत्र मे काय शब्द यह सूचित करता है कि धर्म-अधर्म-आकाश और पुद्गल ये चार द्रव्य बहुप्रदेशी है । दूसरी विशेषता यह है कि सूत्र मे काय शब्द देने से प्रदेशो के सबध मे यह निश्चय हो जाता है कि इन धर्मादिक द्रव्यो के प्रदेश असख्यात है, न सख्यात है और न अनन्त ।

प्रश्न ४–सूत्र मे अजीव होने से "काल" द्रव्य भी ग्राह्य था परन्तु उसे ग्रहण क्यो नही किया गया ?

उत्तर–सूत्रकार का अभिप्राय यहाँ "बहुप्रदेशी अजीव" द्रव्य से है अत यहाँ सूत्र मे काल को ग्रहण नही किया है ।

प्रश्न ५–अस्तिकाय किसे कहते है ?

उत्तर–जो द्रव्य सत्तारूप होकर बहुप्रदेशी हो उन्हे अस्तिकाय कहते हैं वे पाँच है—१ जीव २ पुद्गल ३ धर्म ४ अधर्म और ५ आकाश ।

प्रश्न ६–शुद्ध पुद्गल (परमाणु) भी एकप्रदेशी है, वह भी कायवान् नही है फिर पुद्गल को कायवान् क्यो कहते हैं ? यदि उपचार से कहते हैं तो काल द्रव्य को भी उपचार से कायवान् क्यो नही कहते हैं ?

उत्तर–जिस प्रकार अणु एक प्रदेशी होने के कारण उसके द्वितीय आदि प्रदेश नही होते हैं, उसी प्रकार कालाणु के भी द्वितीयादिक प्रदेश नही होते हैं, इसलिये

कालाणु अप्रदेशी है । यद्यपि पुद्गल परमाणु को निश्चयनय से अबहुप्रदेशी (एक प्रदेशी) कहा है तथापि उपचार से पुद्गल परमाणु के बहुप्रदेशत्व है क्योंकि पुद्गल परमाणु अन्य पुद्गल परमाणु के साथ मिलकर शरीर के समान पिण्ड (समूहात्मक) हो जाता है । इसीलिये उपचार से पुद्गल द्रव्य को काय कहते है । परन्तु काल परमाणु तो उपचार से भी काल परमाणु के साथ मिलता नही है । अत कालद्रव्य को उपचार से काय नही कहा जा सकता । वह रत्नो की राशि के समान पृथक् ही रहता है ।

प्रश्न ७–अजीव द्रव्य की धर्मादि सज्ञा किस अपेक्षा से है ?

उत्तर–धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल इन द्रव्यो की सामान्य सज्ञा 'अजीव'' है और धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल यह इनकी विशेष सज्ञा अस्तिकाय है ।

प्रश्न ८–प्रथम अध्याय मे ''सर्वद्रव्यपर्यायेषु'' सूत्र आया है, इस सूत्र मे कथित द्रव्य कौन है ?

उत्तर– **द्रव्याणि ॥ २ ॥**

सूत्रार्थ–ये धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल द्रव्य है ।

प्रश्न १–द्रव्य किसे कहते है ?

उत्तर–जो यथायोग्य अपनी-अपनी पर्यायो के द्वारा प्राप्त किये जाते है वा पर्यायो को प्राप्त होते हैं वे द्रव्य कहलाते हैं ।

प्रश्न २–द्रव्य शब्द कौन सी धातु से बना है उसका अर्थ क्या है ?

उत्तर–द्रव्य शब्द ''द्रु'' धातु से निष्पन्न है, जिसका अर्थ है प्राप्त होना या प्राप्त करना ।

प्रश्न ३–द्रव्य की दूसरी परिभाषा दीजिये ?

उत्तर–जो गुणो को प्राप्त होता है वा गुणो के द्वारा प्राप्त किया जाता है वह द्रव्य है ।

प्रश्न ४–द्रव्य और गुण भिन्न है या अभिन्न ?

उत्तर–द्रव्य और गुण मे कथंचित् भेद है और कथचित् अभेद है । गुण और द्रव्य ये एक दूसरे को छोड़कर नही पाये जाते इसलिये तो इनमे अभेद है तथा सज्ञा लक्षण और प्रयोजन आदि की अपेक्षा भेद होने से इनमे परस्पर भेद है ।

प्रश्न ५–धर्मादि चार पदार्थ ही द्रव्य है या और भी कोई पदार्थ द्रव्य है ?

उत्तर– **जीवाश्च ॥ ३ ॥**

सूत्रार्थ–जीव भी द्रव्य है ।

प्रश्न १–''जीवा '' सूत्र मे यह बहुवचन क्यो दिया है ?

उत्तर–जीव द्रव्य के अनेक भेदो को बताने के लिये सूत्र मे "जीवा" ऐसा बहुवचन दिया है।

प्रश्न २–कुल द्रव्य कितने हैं ?

उत्तर–सूत्र न० १ मे कहे अनुसार पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश तथा सूत्र न० २ के अनुसार "जीव" तथा आगे कहे जाने वाले सूत्र ३९ के अनुसार "काल", इस प्रकार जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश और काल छह द्रव्य हैं।

प्रश्न ३–ससार मे जितने पदार्थ है वे सब क्या कहलाते है ?

उत्तर–जाति की अपेक्षा ये जीव पुद्गलादि जितने पदार्थ है वे सब द्रव्य कहलाते है। द्रव्य इस शब्द मे दो अर्थ छिपे है—द्रवणशीलता और ध्रुवता। जगत् का प्रत्येक पदार्थ परिणमनशील होकर भी ध्रुव है, इसलिये उसे द्रव्य कहते है। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक पदार्थ अपने गुणो और पर्यायो का कभी भी उल्लघन नही करता।

प्रश्न ४–जब ससार के प्रत्येक पदार्थ द्रव्य है तो फिर द्रव्यो की सख्या छह ही कैसे है ?

उत्तर–द्रव्यो की गणना छह इसलिये निर्धारित की गई है कि वास्तविक मे द्रव्य छह ही है। अन्य वादियो (नैयायिक) ने द्रव्यो की सख्या ९ मानी है उसका इससे निराकरण हो जाता है। अन्य मतावलबियो के यहाँ नौ द्रव्य—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन माने है। इनमे पुद्गल द्रव्य मे—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और मन का अन्तर्भाव हो जाता है अत पुद्गल, आकाश, काल, जीव तथा धर्म, अधर्म ये छह ही द्रव्य सिद्ध है न्यूनाधिक नही।

विशेष—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु का अन्तर्भाव पुद्गल मे = पुद्गल—क्योकि उन सबमे स्पर्शादिक पाये जाते है।

मन के दो भेद है द्रव्य मन, भाव मन। उनमे द्रव्यमन का अन्तर्भाव भी पुद्गल मे दिशा आकाश से पृथक् नही है अत आकाश मे दिशा का अन्तर्भाव। इस प्रकार ६ द्रव्य ही सिद्ध होते है।

प्रश्न ५–द्रव्यो की विशेषता क्या है ?

उत्तर– **नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥ ४ ॥**

सूत्रार्थ–द्रव्य नित्य है, अवस्थित है और अरूपी है।

प्रश्न १–द्रव्य नित्य किस कारण से है ?

उत्तर–गति, स्थिति, अवगाहन, वर्तना आदि विशेष गुणो के ग्रहण करने वाले, अस्तित्व, वस्तुत्व आदि सामान्य गुणो को ग्रहण करने वाले द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा ये छहो द्रव्य कभी भी विनाश को प्राप्त नही होते है इसलिये नित्य है।

प्रश्न २–छहो द्रव्य अवस्थित क्यो हैं ?.

उत्तर–१ चेतन-अचेतन द्रव्य अपने-अपने स्वरूप को कभी नही छोड़ते हैं, २ धर्मादिक छह द्रव्य कभी भी छह इस सख्या का उल्लघन नही करते हैं तथा ३ छहो द्रव्य अपने-अपने प्रदेशो की संख्या का भी त्याग नही करते है। इस प्रकार तीन कारणो से द्रव्य अवस्थित हैं।

प्रश्न ३–द्रव्यो को नित्य अवस्थित किस नय की अपेक्षा कहा है ?

उत्तर–द्रव्यार्थिक नय अपेक्षा।

प्रश्न ४–द्रव्य अरूपी क्यो है ?

उत्तर–रूप-रस-गध-वर्ण से रहित होने से द्रव्य अरूपी है।

प्रश्न ५–क्या सभी द्रव्य अरूपी हैं या कोई अपवाद भी है ?

उत्तर– **रूपिण: पुद्गला ॥ ५ ॥**

सूत्रार्थ–पुद्गल रूपी है।

प्रश्न १–पुद्गल को पुद्गल क्यो कहते है ?

उत्तर–पूरण गलन स्वभाव होने से पुद्गल को पुद्गल सज्ञा प्राप्त हुई है।

प्रश्न २–पुद्गल मूर्तिक रूपी है इसकी प्रमाणता क्या है ?

उत्तर–पुद्गल के विश्वरूप कार्यादि दृष्टिगोचर होते है अत पुद्गल रूपी है।

प्रश्न ३–पुद्गल को रूपी कहने पर रसादिक का ग्रहण नही होता है ?

उत्तर–ऐसा नही है क्योकि रसादिक रूप के अविनाभावी है। जहॉ रूप है वहॉ रस-गध-वर्ण तीनो है तथा जहाँ वर्ण है वहाँ भी रूप-रस-गध तीनो है। अर्थात् जहाँ एक है वहाँ तीनो भी हैं।

प्रश्न ४–एक आम मे २०० ग्राम रस, २०० ग्राम रूप, २०० ग्राम गध और २०० ग्राम वर्ण है तो आम का वजन कितना होगा ? क्यो ?

उत्तर–आम का वजन २०० ग्राम ही होगा। क्योकि रूप-रसादिक गुणो मे प्रदेश भेद नही है जिस प्रदेश मे रूप है उसी प्रदेश मे रसादिक भी है अत आम का वजन २०० ग्राम ही होगा।

प्रश्न ५–धर्मादिक द्रव्यो मे अन्य द्रव्यो की तरह भिन्नता है या अभिन्न है ?

उत्तर– **आ आकाशादेकद्रव्याणि ॥ ६ ॥**

सूत्रार्थ–आकाश पर्यन्त एक-एक द्रव्य हैं।

प्रश्न १–धर्मादि द्रव्य-द्रव्य क्षेत्र, काल, भाव अपेक्षा कितने हैं ?

उत्तर–जीव पुद्गल की तरह धर्मादि द्रव्य भिन्न-भिन्न नही है। अभिन्न है। द्रव्य की अपेक्षा धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाश द्रव्य एक-एक ही हैं। धर्म-अधर्म द्रव्य क्षेत्र

की अपेक्षा असख्यात हैं और भाव की अपेक्षा अनन्त है । आकाश द्रव्य, क्षेत्र व भाव दोनो की अपेक्षा अनन्त है ।

प्रश्न २–धर्म अधर्म और आकाश द्रव्य की विशेषता क्या है ?

उत्तर– **निष्क्रियाणि च ॥ ७ ॥**

सूत्रार्थ–धर्म, अधर्म और आकाश ये द्रव्य निष्क्रिय है ।

प्रश्न १–क्रिया किसे कहते हैं ?

उत्तर–बाह्य और अभ्यन्तर कारणो से उत्पन्न होने वाली द्रव्य की जो पर्याय द्रव्य को एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र मे प्राप्त कराने का कारण है वह क्रिया कहलाती है ।

प्रश्न २–निष्क्रिय किसे कहते हैं ?

उत्तर–द्रव्य की जो पर्याय द्रव्य को एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र मे प्राप्त कराने मे कारण नही है उसे निष्क्रिय कहते है ।

प्रश्न ३–यदि धर्मादिक द्रव्य निष्क्रिय है तो उनमे उत्पाद–व्यय कैसे बनता है ?

उत्तर–द्रव्य, उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य तीन रूप होते ही है। यद्यपि इन धर्मादिक द्रव्यो मे क्रियानिमित्तक उत्पाद नही है तो भी इनमे अन्य प्रकार से उत्पाद माना गया है, क्योकि इनमे स्वनिमित्तक उत्पाद, व्यय होते है ।

प्रश्न ४–उत्पाद कितने प्रकार का होता है ?

उत्तर–उत्पाद दो प्रकार का होता है—१ स्वनिमित्तक उत्पाद, २ परप्रत्यय उत्पाद ।

प्रश्न ५–स्वनिमित्तक उत्पाद किसे कहते है ?

उत्तर–प्रत्येक द्रव्य मे आगम प्रमाण से अनन्त अगुरुलघुगुण पाये जाते हैं । जिनका छह स्थान पतित वृद्धि और हानि के द्वारा वर्तन होता रहता है अत इन द्रव्यो का उत्पाद–व्यय स्वभाव से होता है, वह स्वनिमित्तक उत्पाद है ।

प्रश्न ६–धर्मादि द्रव्यो मे परप्रत्यय उत्पाद–व्यय किस अपेक्षा होता है ?

उत्तर–ये धर्मादि द्रव्य मानव, ऊँट आदि की गति स्थिति और अवकाशदान मे कारण होते हैं और इन गति आदि मे क्षण–क्षण मे अन्तर पड़ता है, इसलिये इनके कारण भी भिन्न–भिन्न होते हैं । इसप्रकार इन धर्मादि द्रव्यो मे परप्रत्यय (निमित्त) की अपेक्षा भी उत्पाद और व्यय का व्यवहार उपचार से किया जाता है ।

प्रश्न ७–धर्म–अधर्म और आकाश द्रव्य क्रियारहित है तो ये निष्क्रिय द्रव्य जीव, पुद्गल को गति और स्थिति व अवगाहन देने मे कारण कैसे होते हैं ?

उत्तर–जिस प्रकार चक्षु इन्द्रिय रूप ग्रहण करने मे निमित्त है, जो नही देखना चाहता उसको देखने की प्रेरणा नही करती, उसी प्रकार धर्मादिक द्रव्य भी जीवो के बलाधान मे निमित्त मात्र हैं प्रेरक नही ।

प्रश्न ८–सक्रिय-निष्क्रिय द्रव्यो के नाम बताओ ?

उत्तर–जीव, पुद्गल दो द्रव्य सक्रिय है शेष धर्म, अधर्म, आकाश, काल द्रव्य निष्क्रिय है ।

प्रश्न ९–धर्म-अधर्म और एक जीव द्रव्य के कितने प्रदेश है ?

उत्तर– असङ्ख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्म्मैकजीवानाम् ॥ ८ ॥

सूत्रार्थ–धर्म, अधर्म तथा एक जीव के असख्यात प्रदेश होते है ।

प्रश्न १–असख्यात का प्रमाण कितना है ?

उत्तर–"जो सख्या से परे है वह असख्यात है" यह असख्यात अवधि, मन पर्यय-ज्ञान का विषय है ।

प्रश्न २– असख्यात कितने प्रकार का है ?

उत्तर–असख्यात तीन प्रकार का है—जघन्य, उत्कृष्ट और अजघन्योत्कृष्ट ।

प्रश्न ३–यहॉ द्रव्यो मे प्रदेशो की सख्या कौन से असख्यात प्रमाण है ?

उत्तर–"अजघन्योत्कृष्ट प्रदेश प्रमाण" ।

प्रश्न ४–प्रदेश की शब्द व्युत्पत्ति क्या है ?

उत्तर–"प्रदिश्यन्ते इति प्रदेशा " जिससे विवक्षित परिमाण का सकेत मिलता है, उसे प्रदेश कहते है ।

प्रश्न ५–धर्म, अधर्म और एक जीव द्रव्य के असख्यात प्रदेश है तो जीव द्रव्य धर्म, अधर्म द्रव्य के समान समस्त लोक मे व्याप्त होकर क्यो नही रहता है ?

उत्तर–यद्यपि जीव के प्रदेश धर्म, अधर्म द्रव्य के बराबर ही है तो भी सकोच विस्तार स्वभाव वाला होने से लोकपूरण अवस्था को छोड़कर अपने स्वकीय कर्मों से निर्मित छोटे-बड़े शरीर मे रहता हुआ उतने शरीर को व्याप्त करके रहता है ।

प्रश्न ६–लोकपूरण समुद्घात के समय जीव के मध्य के आठ प्रदेश कहॉ स्थित रहते है ?

उत्तर–जब यह जीव केवली समुद्घात मे लोकपूरण समुद्घात करता है, तब जीव के मध्य के आठ प्रदेश मेरु पर्वत के नीचे चित्रा पृथ्वी के वज्रमय पटल के मध्य मे स्थित हो जाते है । आठ मध्य प्रदेशो को छोड़कर सर्वप्रदेश ऊपर-नीचे और तिरछे सारे लोक मे फैल जाते है ।

प्रश्न ७–आकाश के कितने प्रदेश है ?

उत्तर– आकाशस्यानन्ताः ॥ ९ ॥

सूत्रार्थ–आकाश द्रव्य अनन्तप्रदेशी है ।

प्रश्न १–आकाश कौन है ?

उत्तर–जो चारो तरफ लोक और अलोक मे व्याप्त होकर रहता है वह आकाश है। ऊपर दिखाई देने वाला पिंड आकाश नही यह पुद्गल महास्कध है।

प्रश्न २–अनन्त किसे कहते है ? अनन्त प्रदेश किसके है ?

उत्तर–जिनका अन्त नही वह अनन्त है तथा जो केवलज्ञान का विषय है वह अनन्त है। अथवा जिसके प्रदेशो का अवसान-अन्त वा समाप्ति नही है वह अनन्त है। इस आकाश के अनन्त प्रदेश होते है।

प्रश्न ३–प्रदेश किसे कहते है ?

उत्तर–जितने क्षेत्र मे एक परमाणु रहता है उसे प्रदेश कहते है।

प्रश्न ४–मूर्तिक पुद्गल द्रव्य के कितने प्रदेश होते है ?

उत्तर– **संख्येयाऽसंख्येयाश्च पुद्गलानाम् ॥ १० ॥**

सूत्रार्थ–पुद्गलो के सख्यात, असख्यात और अनन्त प्रदेश होते हैं।

प्रश्न १–एक पुद्गल द्रव्य सख्यात-असख्यात व अनन्त प्रदेशी कैसे है ?

उत्तर–किसी द्व्यणुक आदि पुद्गल द्रव्य के सख्यात प्रदेश होते हैं, किसी के असख्यात व किसी के अनन्त प्रदेश होते हैं इसीलिये एक भी पुद्गल द्रव्य सख्यात, असख्यात, अनन्त प्रदेशी है।

प्रश्न २–अनन्त सख्या किस ज्ञान का विषय है ?

उत्तर–केवलज्ञान का विषय है।

प्रश्न ३–अनन्त प्रमाण कितने प्रकार का है ?

उत्तर–अनन्त तीन प्रकार का है—१ परीतानन्त २ युक्तानन्त और अनन्तानत।

प्रश्न ४–असख्यात प्रदेशी लोक अनन्त प्रदेशवाले और अनन्तानन्त प्रदेशवाले स्कन्ध का आधार कैसे हो सकता है ?

उत्तर–सूक्ष्म परिणमन होने से अवगाहनशक्ति के निमित्त से अनन्त या अनन्तानन्त प्रदेशवाले पुद्गल स्कन्धो का आधार आकाश हो जाता है। सूक्ष्मरूप से परिणत हुए परमाणु आकाश के एक-एक प्रदेश मे अनन्तानन्त ठहर जाते है। इनकी यह अवगाहना शक्ति व्याघात रहित है, इसलिये आकाश के एक प्रदेश मे भी अनन्तानन्त परमाणुओ का अवस्थान विरोध को प्राप्त नही होता।

प्रश्न ५–परमाणु कितने प्रदेशी है ?

उत्तर– **नाणोः ॥ ११ ॥**

सूत्रार्थ–परमाणु के प्रदेश नही होते है। अर्थात् परमाणु अप्रदेशी है।

प्रश्न १–परमाणु के प्रदेश क्यो नही है ?

उत्तर-क्योंकि परमाणु एक प्रदेश मात्र ही होता है । जिस प्रकार एक आकाश प्रदेश के प्रदेशत्व का अभाव है उसी प्रकार अणु भी पुद्गल का अविभागी होने से उसका दूसरा प्रदेश नही है । एक परमाणु का भेदन करने मे कोई समर्थ नही है।

प्रश्न २-ससार मे सबसे बड़ा और सबसे छोटा क्या है ?

उत्तर-परमाणु से कोई छोटा (अल्प) नही है और आकाश से कोई बड़ा नही है ।

" परमाणोः परं नाल्पं नभसो न परं महत् "

प्रश्न ३-सूत्र मे नाणो का अर्थ तो न अणु अर्थात् अणु नही है यह वास्तविक अर्थ होता है फिर अणु बहुप्रदेशी नहीं यह अर्थ कैसे ग्रहण किया गया ?

उत्तर-सूत्र उपस्कार सहित होते हैं अर्थात् सूत्र पूर्वापर प्रसग से जुड़े होते हैं । यहाँ बहुप्रदेशी द्रव्यो का कथन चल रहा है अत "नाणो" सूत्र का अणु बहुप्रदेशी नही है यह अर्थ ही ग्राह्य है ।

प्रश्न ४-धर्मादि द्रव्यो का अवगाहन कहाँ है ?

उत्तर- **लोकाकाशेऽवगाहः ॥ १२ ॥**

सूत्रार्थ-धर्मादि द्रव्यो का अवगाह लोकाकाश में है ।

प्रश्न १-धर्मादि द्रव्यो का आधार आकाश है तो आकाशद्रव्य का आधार क्या है ?

उत्तर-आकाश द्रव्य का कोई आधार नही है क्योंकि वह स्वप्रतिष्ठ है ।

प्रश्न २-धर्मादिक द्रव्यो के समान आकाश का आधार माना जाना चाहिये ?

उत्तर-यह सत्य है, तथापि आकाश से अधिक परिमाणवाला अन्य कोई द्रव्य है ही नही जो आकाश का आधार बन जाय । आकाश अनन्त है व सर्वत है ।

प्रश्न ३-धर्मादिक द्रव्यो का आकाश आधार किसे नय से है ?

उत्तर-व्यवहारनय से ।

प्रश्न ४-निश्चय से सभी द्रव्यो का आधार क्या है ?

उत्तर-निश्चय से सभी द्रव्य स्वप्रतिष्ठ है इनका आधार कोई नही है यथा-आप कहाँ रहते हो—अपने मे ।

प्रश्न ५-लोक किसे कहते है ?

उत्तर-लोक धातु विकरण अर्थ मे घञ् प्रत्यय करके लोक शब्द बना है । जहाँ धर्मादिक द्रव्य विलोके जाते है उसे लोक कहते है ।

प्रश्न ६-लोक-अलोक का विभाग करने वाले द्रव्य कौन से है ?

उत्तर-धर्म और अधर्म द्रव्य । यदि धर्मास्तिकाय का सद्भाव नही माना जावे तो जीव और पुद्गलो की गति के नियम का हेतु न रहने से लोकालोक का विभाग

नही बनता। उसी प्रकार यदि अधर्म अस्तिकाय का सद्भाव न माना जावे तो स्थिति का निमित्त न रहने से जीवो व पुद्गलो की स्थिति का अभाव होता है जिससे लोकालोक का विभाग नही बनता। क्योंकि जीव और पुद्गल की गति स्थिति के सद्भाव मे ही लोक और अलोक का विभाग सिद्ध होता है।

प्रश्न ७–धर्म-अधर्म द्रव्यो का अवस्थान लोककाश मे कहाँ है ?

उत्तर– **धर्माधर्मयो: कृत्स्ने ॥ १३ ॥**

सूत्रार्थ–धर्म और अधर्म द्रव्य का अवगाह समग्र लोकाकाश मे है।

प्रश्न १–सूत्र मे "कृत्स्ने" शब्द क्यो दिया है ?

उत्तर–एक घर मे जिस प्रकार घट अवस्थित रहता है उसी प्रकार लोकाकाश मे धर्म और अधर्म का अवगाह नही है अपितु तिल मे तैल जिस प्रकार रहता है उस प्रकार सब लोकाकाश मे धर्म-अधर्म द्रव्य का अवगाह बताने के लिये "कृत्स्ने" शब्द रखा गया है।

प्रश्न २–छहो द्रव्य एक जगह रहते हुए व्याघात को प्राप्त होते है या नही ?

उत्तर–यद्यपि सभी द्रव्य एक जगह रहते हैं तो भी अवगाहन शक्ति के निमित्त से इनके प्रदेश परस्पर प्रविष्ट होकर भी व्याघात को प्राप्त नही होते है।

प्रश्न ३–मूर्तिक, अप्रदेशी, सख्यात, असख्यात व अनतप्रदेशी पुद्गलो का अवस्थान लोकाकाश मे कहाँ है ?

उत्तर– **एकप्रदेशादिषु भाज्या पुद्गलानाम् ॥ १४ ॥**

सूत्रार्थ–पुद्गलो का अवगाह लोकाकाश के एक प्रदेश आदि मे विकल्प से होता है।

प्रश्न १–परमाणु का अवगाह कितने आकाश प्रदेश मे होता है ?

उत्तर–आकाश के एक प्रदेश मे एक परमाणु का अवगाह होता है।

प्रश्न २–बन्ध को प्राप्त या खुले हुए दो या तीन परमाणुओ का अवगाह कितने प्रदेशो मे होता है ?

उत्तर–बन्ध को प्राप्त हुए या खुले हुए दो तीन परमाणुओ का आकाश के एक, दो या तीन प्रदेशो मे अवगाह होता है।

प्रश्न ३–सख्यात, असख्यात और अनन्त परमाणुओ का अवगाह कितने प्रदेशो मे होता है ?

उत्तर–सख्यात, असख्यात और अनन्त प्रदेशो वाले स्कन्धो का लोक के एक, सख्यात और असख्यात प्रदेशो मे अवगाह होता है।

प्रश्न ४–धर्म-अधर्म-अमूर्त द्रव्यो का एक जगह व्याघात रहित अवस्थान तो हो सकता है परन्तु मूर्तिक पुद्गल का विरोध रहित एक जगह अवस्थान कैसे बन सकता है ?

उत्तर–इनका अवगाहन स्वभाव है और सूक्ष्म रूप से परिणमन हो जाता है अत जिस प्रकार एक झक्कन मे अनेक दीपको का प्रकाश रह जाता है उसी प्रकार मूर्त पुद्गलो का एक जगह अवगाह होने में कोई विरोध नही आता ।

प्रश्न ५–लोकाकाश का ऐसा प्रदेश बताओ जहाँ पुद्गल नही है ?

उत्तर–लोक सूक्ष्म और स्थूल अनन्तानन्त नाना प्रकार के पुद्गलकायो से चारो ओर खचाखच भरा है ।

प्रश्न ६–जीवो का अवगाह कितने क्षेत्र मे है ?

उत्तर– **असंख्येयभागादिषुजीवानाम् ॥ १५ ॥**

सूत्रार्थ–जीवो का अवगाह लोकाकाश के असख्यातवे भाग आदि मे है ।

प्रश्न १–एक जीव कितने प्रदेश मे अवगाह करता है स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर–लोकाकाश के असख्यात भाग करना चाहिये । उस लोक के एक असख्यातवे भाग मे एक जीव रहता है । इस प्रकार आदि शब्द से दो भागो मे भी एक जीव रहता है, तीन भागो मे, चार भागो मे, पाँच आदि भागो मे एक जीव रहता है तथा असख्यात भागो को आदि लेकर लोकपूरण की अपेक्षा सारे लोकपर्यन्त एक जीव व्याप्त हो जाता है अर्थात् सारे लोकाकाश मे एक जीव फैल जाता है ।

प्रश्न २–यदि एक जीव लोक के एक असख्यातवे भाग मे रहता है तो अनन्तानन्त सशरीर जीवराशि लोकाकाश मे कैसे रह सकती है ?

उत्तर–सशरीर जीव सूक्ष्म व बादर के भेद से दो प्रकार के होते है सूक्ष्म और बादर । सूक्ष्म जीव अनन्तानन्त हैं और वे परस्पर मे और बादर जीवो से भी व्याघात को प्राप्त नही होते अत लोकाकाश मे अनन्तानन्त जीवो के अवस्थान मे कोई विरोध नही है ।

प्रश्न ३–बादर जीवो का शरीर कैसा होता है ?

उत्तर–बादर जीवो का शरीर प्रतिघात सहित होता है ।

प्रश्न ४–सूक्ष्म जीवो के शरीर की विशेषता क्या है ?

उत्तर–जो सूक्ष्म जीव है वे यद्यपि सशरीर है तो भी एक निगोद जीव जितने आकाशप्रदेश मे रहता है उतने आकाशप्रदेश मे अनन्तानन्त जीव रह जाते है । सूक्ष्म प्राणी न तो परस्पर व्याघात को प्राप्त होते है और न बादरो के साथ व्याघात को प्राप्त होते है ।

प्रश्न ५–एक जीव और लोकाकाश के प्रदेश तुल्य है । एक जीव लोक के असख्यातवे भाग मे कैसे रहता है उसे पूर्ण लोक को व्याप्त होकर ही रहना चाहिये?

उत्तर- **प्रदेशसंहारविसर्प्पाभ्यां प्रदीपवत् ॥ १६ ॥**

सूत्रार्थ–प्रदीप के प्रकाश की तरह जीव के प्रदेशो का सकोच और विस्तार होता है ।

प्रश्न १–सहार और विसर्प्प का अर्थ बताओ ?

उत्तर–सहरण, सकोच और सहार एकार्थवाची है । सहार का अर्थ = सकुचित होना है ।

विसर्पण, प्रसारण और विसर्प ये एकार्थवाची है । विसर्प्प का अर्थ—फैलना होता है ।

प्रश्न २–सकोच विस्तार किनमे होता है ?

उत्तर–सकोच विस्तार प्रदेशो मे होता है ।

प्रश्न ३–प्रदेश किसे कहते है ?

उत्तर–जो सकुचित है और फैलता है उसे प्रदेश कहते है ।

प्रश्न ४–लोक के असख्यात भाग मे जीव का अवगाहन किस गुण से होता है ?

उत्तर–प्रदेशो के सकोच और विस्तार गुण के कारण जीव का लोक के असख्यातवे भाग मे अवगाहन होता है ।

प्रश्न ५–यदि प्रदेशो का सकोच हो तो जीव सबसे अल्प कितने क्षेत्र मे रह सकता है और प्रदेशो का विस्तार हो तो जीव अधिक से अधिक कितने प्रदेश मे रहता है ?

उत्तर–प्रदेशो का सकोच होने पर जीव कम-से-कम क्षेत्र भी घेरे तो लोक के असख्यातवे भाग मे रह सकता है और प्रदेशो के फैल जाने से सारे लोकाकाश मे व्याप्त होकर रहता है ।

प्रश्न ६–प्रदेशो का सकोच विस्तार कैसे होता है उदाहरण देकर समझाइये ?

उत्तर–प्रदेशो का सकोच विस्तार दीपकवत् होता है । जैसे दीपक को खुले आकाश प्रदेश मे रखने पर उसके प्रकाश का परिमाण का निश्चय नही किया जा सकता तथापि वही दीपक बड़े सकोरे, घड़े, मकान आदि मे रखने पर उस दीपक के प्रकाश की सकोरा, घड़ा, मकान आदि मे प्रवृत्ति होती है । उसी प्रकार स्वभाव से अमूर्तिक आत्मा कार्मणशरीर के कारण छोटे-बड़े शरीर मे रहता है । उस शरीर के कारण ही पदेशो का सकोच-विस्तार करता है और इसीलिये शरीर अनुसार प्रमाणता होने पर आकाश प्रदेशो के असख्येय भागदि मे जीव के प्रदेशो की प्रवृत्ति होती है ।

प्रश्न७—धर्मादि छहो द्रव्य परस्पर एकक्षेत्रावगाही होकर रहने से इनमें एकरूपता होने से अभेद प्राप्त होता है ?

उत्तर—छहो द्रव्यो में परस्पर अत्यन्त सम्बन्ध हो जाने पर भी वे अपने-अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते है। अत इनमें अभेद नहीं प्राप्त होता। तात्पर्य यह कि सब द्रव्य परस्पर प्रविष्ट है एक दूसरे को अवकाश देते है और सदा मिलकर रह रहे है तो भी अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते है।

प्रश्न८—संकोच-विस्तार जीव का स्वभाव है या कर्मकृत गुण है ?

उत्तर—सकोच विस्तार जीव का स्वभाव नहीं है यह नामकर्मकृत कार्य है।

प्रश्न९—सिद्ध परमेष्ठी में संकोच विस्तार है या नहीं ? यदि नहीं तो क्यों ?

उत्तर—सिद्ध भगवन्तो में संकोच-विस्तार नहीं है क्योंकि यह शरीर नामकर्म का कार्य है और शरीर नामकर्म का सिद्ध भगवान् के अभाव है।

प्रश्न१०—धर्म और अधर्म द्रव्यो का उपकार क्या है ?

उत्तर— **गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः ।।१७।।**

सूत्रार्थ—गति और स्थिति में निमित्त होना यह क्रम से धर्म और अधर्म द्रव्य का उपकार है।

प्रश्न१—सूत्र में उपग्रह और उपकार अलग-अलग क्यो दिया जबकि उपकार इतना कहने मात्र से काम चल सकता है "यथा-गतिस्थिति धर्माधर्मयोरुपकार ?

उत्तर—यह कोई दोष नहीं क्योंकि यथाक्रम के निराकरण करने के लिये उपग्रह पद रखा है। जिस प्रकार धर्म और अधर्म के साथ गति और स्थिति का क्रम करने के लिये "उपग्रह' पद रखा है।

प्रश्न१अ—धर्म और अधर्म द्रव्य तुल्य बल वाले है इसीलिये धर्मद्रव्य स्थिति का प्रतिबन्धक और अधर्मद्रव्य गति का प्रतिबन्धक होगा ?

उत्तर—धर्म-अधर्म दोनो एक दूसरे के प्रतिबन्धक नहीं है क्योंकि ये द्रव्य अप्रेरक कहे गये है धर्मद्रव्य गति में प्रेरक नहीं है और अधर्मद्रव्य स्थिति में प्रेरक नहीं है।

प्रश्न२—धर्म-अधर्म द्रव्यो का अस्तित्व नहीं है क्योंकि इनकी उपलब्धि नहीं होती, जैसे गधे के सींग ?

उत्तर—हम जैनो के लिये अनुपलब्धि हेतु असिद्ध है। तात्पर्य अनुपलब्ध नाम की कोई चीज ही नहीं है। साक्षात् सातिशय प्रत्यक्ष केवलज्ञानरूपी नेत्र वाले सर्वज्ञ वीतराग देव धर्मादि सारे पदार्थो को प्रत्यक्ष जानते ही है।

प्रश्न३—उपग्रह का अर्थ क्या है ?

उत्तर—उपग्रह का अर्थ उपकार है।

प्रश्न४—आकाश द्रव्य का उपकार क्या है ?

उत्तर— **आकाशस्यावगाहः ।।१८।।**

सूत्रार्थ—समस्त द्रव्यो को अवकाश देना आकाश का उपकार है।

प्रश्न५—आकाश किसे कहते है ?

उत्तर–आ–समन्तात् चारो ओर से दैदीप्यमान है, व्याप्त है वह आकाश कहलाता है ।

प्रश्न ६–अवगाहन किसे कहते हैं ?

उत्तर–अवगाहन करने वाले जीव और पुद्गलो को अवकाश देने को अवगाह कहते हैं ।

प्रश्न ७–आकाश जीव पुद्गलो जो सक्रिय द्रव्य हैं उन्हे अवगाहन दे यह तो उचित है पर निष्क्रिय द्रव्यो धर्म-अधर्म को यह अवरगाहन किस प्रकार देता है ?

उत्तर–यद्यपि धर्म और अधर्म द्रव्य मे अवगाह रूप क्रिया नही पाई जाती है तथापि वे द्रव्य लोकाकाश मे सर्वत्र व्याप्त देखे जाते हैं । अत निष्क्रिय धर्म और अधर्म द्रव्य को उपचार से अवगाह घटित होता है ।

प्रश्न ८–अलोकाकाश मे अवकाश दान रूप स्वभाव नही पाया जाता, इससे ज्ञात होता है कि यह आकाश का स्वभाव नही है ?

उत्तर–आकाश एक अखड द्रव्य है अत लोकाकाश का जो स्वरूप है वही अलोकाकाश का भी है । अन्य द्रव्यो के अभाव मे द्रव्य का लक्षण या स्वरूप बदल नही सकता । क्योकि कोई भी द्रव्य अपने स्वभाव का त्याग नही करता ।

प्रश्न ९–पुद्गलो का उपकार क्या है ?

उत्तर– शरीरवाङ्मन. प्राणापाना. पुद्गलानाम् ।।१९।।

सूत्रार्थ–शरीर, वचन, मन और प्राणापान यह पुद्गलो का उपकार है ।

प्रश्न १–शरीर किसे कहते है ?

उत्तर–जो जीर्ण-शीर्ण होते है वे शरीर है ।

प्रश्न २–वचन व मन बताइये ?

उत्तर–जो बोला जाता है वह वचन है, जो मनन करता है वह मन कहलाता है ।

प्रश्न ३–प्राण किसे कहते है ?

उत्तर–जिससे जीव प्राण वाला होता है, जीता है वह प्राण कहलाता है ।

प्रश्न ४–अपान किसे कहते हैं ?

उत्तर–जिससे जीव हर्ष और विषाद वा विकृति से जीता है, वह अपान है । अथवा जो बाह्य की वायु भीतर की जाती है वह अपान वा निश्वास है ।

प्रश्न ५–प्राणापान किसे कहते हैं ?

उत्तर–प्राण और अपान को प्राणापान कहते हैं ।

प्रश्न ६–पुद्गल क्या है ?

उत्तर–पूर्व मे पूरते है, पश्चात् गलते है वे पुद्गल कहलाते है ।

प्रश्न ७–वचन और मन के भेद कितने है ?

उत्तर–वचन के दो भेद है द्रव्य वचन और भाव वचन । मन के भी दो भेद है—द्रव्य मन और भाव मन ।

प्रश्न ८–द्रव्यवचन-भाववचन का स्वरूप बताओ ?

उत्तर–वीर्यान्तराय मतिज्ञानावरण और श्रुतज्ञानावरण कर्मों का क्षयोपशम होने पर तथा आगोपाग नामकर्म का लाभ होने पर भाव वचन की उत्पत्ति होती है । भाव वचन के सामर्थ्य से युक्त क्रियावाले आत्मा के द्वारा प्रेरित होकर पुद्गल वचनरूप से विविध प्रकार परिणमन करते है वह द्रव्यवचन है ।

प्रश्न ९–क्या भाववचन पौद्गलिक है यदि हॉ तो क्यो ?

उत्तर–जी हॉ, भाववचन पौद्गलिक ही हैं क्योकि मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण और वीर्यान्तराय कर्मरूप, पौद्गलिक, कर्म का क्षयोपशम नही होता तथा अङ्गोपाग नामकर्म का लाभ नही होता तो वचन उच्चारण का उत्साह उत्पन्न नही होता इसलिये भाववचन पौद्गलिक होता है ।

भाववचन के सामर्थ्य से युक्त क्रियावाले आत्मा के द्वारा प्रेरित होकर पुद्गल वचनरूप से विविध प्रकार परिणमन करते है वह द्रव्य वचन है ।

प्रश्न १०–वचन अमूर्तिक है क्योकि दिखाई नही देते है ?

उत्तर–नही, वचन मूर्त्तिक हैं क्योकि—१ मूर्त इन्द्रियो के द्वारा इनका ग्रहण होता है । २ मूर्त भीत, द्वार आदि के द्वारा ये रुक जाते है । ३ प्रतिकूल वायु आदि के द्वारा उनका व्याघात देखा जाता है । ४ माईक , क्रैमेट आदि के द्वारा शब्दो को पकड़ा भी जाता है ।

प्रश्न ११–द्रव्य और भाव मन के लक्षण बताओ ?

उत्तर–ज्ञानावरण और वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से तथा आगोपाग नामकर्म के निमित्त से जो पुद्गल गुण-दोष के विचार और स्मरण आदि उपयोग के सम्मुख हुए आत्मा के उपकारक है, वे ही पुद्गल द्रव्यमन रूप से परिणत होते है । द्रव्य मन पौद्गलिक है ।

लब्धि और उपयोग लक्षण वाला भाव मन है । यह भी पौद्गलिक है ।

प्रश्न १२–मन, प्राण और अपान मूर्त है या अमूर्त ?

उत्तर–मन, प्राण और अपान मूर्त है क्योकि दूसरे मूर्त पदार्थों के द्वारा इनका प्रतिघात देखा जाता है ।

प्रश्न १३–मन, प्राण और अपान का मूर्तपना उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर–भयात्पादक बिजली पात आदि के द्वारा मन का प्रतिघात होता है ?

हस्तबल और वस्त्र आदि के द्वारा मुख के ढँक लेने से प्राण और अपान का प्रतिघात होता है। अत सिद्ध है कि मन आदि मूर्त हैं।

प्रश्न १४–आत्मा के अस्तित्व की सिद्धि किससे होती है ?

उत्तर–प्राण-अपान से आत्मा के अस्तित्व की सिद्धि होती है। जैसे यन्त्र, प्रतिमा की चेष्टाए अपने प्रयोक्ता के अस्तित्व का ज्ञान कराती है उसी प्रकार प्राण और अपान आदि रूप कार्य भी क्रिया वाले आत्मा के अस्तित्व के साधक हैं।

प्रश्न १५–पुद्गलो के अन्य भी उपकार बताइये ?

उत्तर– सुखदु:खजीवितमरणोपग्रहाश्च ॥ २० ॥

सूत्रार्थ–सुख, दु ख, जीवन और मरण ये भी पुद्गलो के उपकार है।

प्रश्न १–सुख किसे कहते है ?

उत्तर–सातावेदनीय के उदयरूप अन्तरंग हेतु के होने पर और बाह्य द्रव्यादि के परिपाक के निमित्त से जो प्रीति रूप परिणाम होते है वे सुख कहलाते हैं।

प्रश्न २–दु ख किसे कहते है ?

उत्तर–असातावेदनीय के उदयरूप अन्तरग हेतु के होने पर बाह्य द्रव्यादि के परिपाक के निमित्त से जो परिताप रूप परिमाण उत्पन्न होते है वे दु ख कहे जाते है।

प्रश्न ३–जीवन किसे कहते है।

उत्तर–पर्याय के धारण करने मे कारणभूत आयुकर्म के उदय से भवस्थिति को धारण करने वाले जीव के प्राण-अपान क्रिया विशेष का विच्छेद नही होना जीवन है।

प्रश्न ४–मरण किसे कहते है ?

उत्तर–प्राण-अपानक्रिया विशेष का विच्छेद होना मरण है।

प्रश्न ५–जीव के पुद्गलकृत उपकार कितने है ?

उत्तर–शरीर, वचन, मन, श्वासोच्छ्वास, सुख, दु ख, जीवन और मरण ये जीव के प्रति पुद्गलो के उपकार है।

प्रश्न ६–सूत्र मे आये "उपग्रह" शब्द का अर्थ यहाँ क्या है ?

उत्तर–इस सूत्र मे प्राप्त उपग्रह शब्द का ग्रहण पुद्गलो के पुद्गलकृत उपकार के लिये है।

प्रश्न ७–पुद्गलो का पुद्गलकृत उपकार क्या है ?

उत्तर–कासे आदि का राख आदि के द्वारा, जल आदि का कतक आदि के द्वारा और लोहे आदि का जल आदि के द्वारा उपकार किया जाता है। सूत्र मे च शब्द से पुद्गल के और भी अनेक उपकार है।

प्रश्न ८–जीव का उपकार क्या है ?

उत्तर– **परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥ २१ ॥**

सूत्रार्थ–परस्पर उपकार करना जीवो का उपकार है ।

प्रश्न १–जीव परस्पर मे उपकार कैसे करते है ?

उत्तर–स्वामी और सेवक तथा आचार्य और शिष्य इत्यादि रूप से वर्तन करना परस्परोपग्रह है । स्वामी धनादि देकर सेवक का उपकार करता है और सेवक हित का कथन, अहित का निषेध करके स्वामी का उपकार करता है ।

आचार्य दोनो लोक मे सुखदायी उपदेश द्वारा तथा उस उपदेश के अनुसार क्रिया मे लगाकर शिष्यो का उपकार करता है । और शिष्य भी आचार्य के अनुकूल प्रवृत्ति करके आचार्य का उपकार करते हैं ।

प्रश्न २–उपकार का प्रकरण होते हुए भी यहाँ उपग्रह शब्द पुन क्यो दिया गया ?

उत्तर–यहाँ उपग्रह पूर्व सूत्र मे सबध बनाने के लिये है । तात्पर्य यह है कि सूत्र २० मे कहे गये सुख-दु ख जीवन और मरण भी जीवो के जीवकृत उपकार है ।

प्रश्न ३–क्या अन्य द्रव्य अपने से भिन्न दूसरे द्रव्य का भला–बुरा कुछ कर सकता है ? यदि हाँ, तो ईश्वरवाद का प्रसग प्राप्त होगा ।

उत्तर–लोक मे जो छह द्रव्य है वे सब अपने-अपने गुण और पर्यायो को लिये हुए है । द्रव्यदृष्टि से वे अनन्त काल पूर्व जैसे थे वैसे आज है और आगे भी वैसे ही बने रहेगे । किन्तु पर्यायदृष्टि से वे सदा परिवर्तनशील है । प्रत्येक द्रव्य मे परिणमन अपनी योग्यतानुसार होता है तथापि प्रत्येक द्रव्य के इस योग्यतानुसार कार्य होने मे बाह्य पदार्थ निमित्त माना जाता है । निमित्तमात्र मानने से ईश्वरवाद का प्रसग नही आता है ।

प्रश्न ४–अन्य द्रव्य अन्य द्रव्य का कर्ता कैसे बनता है उदाहरण से बताओ ?

उत्तर–जैसे बालक मे पढ़ने की योग्यता है इसलिये उसे अध्यापक, पुस्तक आदि का निमित्त मिलने पर वह पढ़कर विद्वान् बनता है । अध्यापक पुस्तक ये निमित्तमात्र है । पर तत्त्वत. विचार करने पर ज्ञात होता है कि अध्यापक या पुस्तक ने बालक की आत्मा मे बुद्धि उत्पन्न नही की है । कारण यदि बाह्य पदार्थों मे बुद्धि उत्पन्न करने की योग्यता होती तो जितने बालक अध्यापक के पास पढ़ते हैं उन सब मे अध्यापक बुद्धि उत्पन्न कर सकता था पर देखा यह जाता है कि कोई अल्पज्ञानी है कोई महाज्ञानी और कोई मूर्ख । अत सिद्ध है कि कार्य की उत्पत्ति मे अध्यापक निमित्त तो है पर वह प्रेरक नही है । अत एक द्रव्य दूसरे द्रव्य की पर्याय का निमित्त तो बन सकता है पर उपादान रूप से किसी का कर्ता नही है ।

प्रश्न ५–कालद्रव्य के उपकार क्या है ?

उत्तर– वर्तनापरिणामक्रियापरत्वापरत्वे च कालस्य ॥ २२ ॥

सूत्रार्थ–वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व ये काल द्रव्य के उपकार है ।

प्रश्न १–वर्तना किसे कहते है ? वर्तना का अर्थ क्या है ?

उत्तर–वर्तना का अर्थ है परिवर्तन । यद्यपि द्रव्य स्वयमेव अपनी-अपनी पर्यायो के द्वारा वर्तना / परिवर्तन करते है तथापि बाह्य उपग्रह (निमित्त) बिना पदार्थ परिवर्तन नही कर सकते । अत स्वयमेव बाह्य उपग्रह के बिना वर्तना (परिवर्तन) करता हुआ पदार्थ दूसरे पदार्थों को परिवर्तन कराता है, वह वर्तना है ।

प्रश्न २–वर्तना को उदाहरण द्वारा स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर–जैसे तन्दुलो का पचन पाक कहलाता है । वे तन्दुल कभी भी एक साथ नही पकते है । तन्दुल धीरे-धीरे पकते हुए ओदन रूप से परिणमन करते है । तन्दुलो का स्थूल पाक देखकर यह निश्चय किया जाता है इनका समय-समय सूक्ष्म पाक हुआ है । यदि तन्दुलो का प्रतिक्षण मे सूक्ष्म पाक नही होता तो अक्षतोचित स्थूलपाक का भी अभाव हो जाता । अत द्रव्यो का सूक्ष्म परिणमन कराने वाली वर्तना है । इस प्रकार सर्व द्रव्यो की स्थूल पर्याय को देखने मे स्वयमेव प्रत्येक द्रव्य मे वर्तना स्वभाव वाले होते हुए भी बाह्य निश्चयकाल रूप कालाणु की अपेक्षा करके प्रतिक्षण उत्तरोत्तर सूक्ष्म पर्यायो मे जो वर्तना परिणमन होता है, वह वर्तना कही जाती है ।

प्रश्न ३–परिणाम किसे कहते है ?

उत्तर–एक धर्म या पर्याय की निवृत्ति करके दूसरे धर्म या पर्याय की उत्पत्ति करने रूप और परिस्पन्द से रहित द्रव्य की जो पर्याय है उसे परिणाम कहते है ।

प्रश्न ४–छहो द्रव्यो का परिणाम क्या है ?

उत्तर–जीव के क्रोध-मान-माया-लोभादिक परिणाम है । पुद्गल के स्पर्श, रस, गन्ध वर्ण परिणाम है । धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्य का परिणाम अगुरुलघु गुणवृद्धि हानि रूप होता है । पर्याय रूप परिणाम काल द्रव्य का उपकार है ।

प्रश्न ५–क्रिया लक्षण काल क्या है ?

उत्तर–द्रव्य मे जो परिस्पन्द रूप परिणमन होता है उसे क्रिया कहते है । उनमे गाड़ी आदि की प्रायोगिकी क्रिया है और मेघादिकी वैस्रसिक क्रिया है ।

प्रश्न ६–परत्व-अपरत्व किसे कहते हैं ?

उत्तर–छोटे-बड़े के व्यवहार को परत्व-अपरत्व कहते है ।

प्रश्न ७–काल के भेद कितने है ?

उत्तर–काल दो प्रकार का है—१ परमार्थकाल और २ व्यहारकाल ।

प्रश्न ८–परमार्थ और व्यवहार काल के लक्षण क्या हैं ?

उत्तर–वर्तना लक्षणवाला परमार्थकाल है और परिणाम, क्रिया, परत्व, अपरत्व आदि लक्षण वाला व्यवहार काल है ।

प्रश्न ९–व्यवहार काल के भेद कितने हैं ?

उत्तर–व्यवहार काल तीन भेद रूप है—१ भूत २ वर्तमान और ३ भविष्यत्।

प्रश्न १०–व्यवहार काल और परमार्थ काल मे अन्तर क्या है ?

उत्तर–परमार्थ काल मे काल यह सज्ञा मुख्य है और भूत, वर्तमान, भविष्य व्यपदेश गौण है तथा व्यवहार काल मे भूतादिक रूप सज्ञा मुख्य है और काल सज्ञा गौण है । क्योंकि इस प्रकार का व्यवहार क्रियावाले द्रव्य सूर्यादिक की अपेक्षा से होता है तथा काल का कार्य है ।

प्रश्न ११–पुद्गल का लक्षण क्या है ?

उत्तर– **स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः ॥ २३ ॥**

सूत्रार्थ–पुद्गल स्पर्श, रस गन्ध और वर्ण वाले होते है ।

प्रश्न १–स्पर्श का लक्षण व भेद कौन से है ?

उत्तर–जो स्पर्श किया जाता है उसे या स्पर्शन मात्र को स्पर्श कहते है । कोमल, कठोर, भारी, हलका, ठण्डा, गरम, स्निग्ध और रुक्ष के भेद से स्पर्श ८ भेद रूप है ।

प्रश्न २–रस क्या है उसके कितने भेद है ?

उत्तर–जो स्वादरूप होता है या स्वादमात्र को रस कहते है । इसके पॉच भेद है—तीता, खट्टा, कडुआ, मीठा और कसैला ।

प्रश्न ३–गंध क्या है उसके भेद कौन से है ?

उत्तर–जो सूघा जाता है या सूघनेमात्र को गन्ध कहते हैं । सुगन्ध और दुर्गन्ध इसके दो भेद है ।

प्रश्न ४–वर्ण क्या है, उसके भेद कौन से है ?

उत्तर–जिसका कोई वर्ण है या वर्ण मात्र को वर्ण कहते है ।

प्रश्न ५–"रूपिण पुद्गला " सूत्र मे पुद्गल को मात्र रूपी कहा है अत पुद्गल को रस-गन्ध-वर्ण वाला नही कहना चाहिये ।

उत्तर–पुद्गल मे जहॉ रूप रहता है रसादिक भी वही रहते है । क्योंकि रूप-रस-गध-वर्ण इनका परस्पर मे सहचर नाम का अविनाभाव सम्बन्ध है अत रूप के ग्रहण से रसादि का ग्रहण हो ही जाता है ।

प्रश्न ६–पुद्गल की पर्याये कितनी हैं ?

उत्तर– **शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायातपो-द्योतवन्तश्च ॥ २४ ॥**

सूत्रार्थ–शब्द, बन्ध, सूक्ष्मत्व, स्थूलत्व, सस्थान, भेद, अन्धकार, छाया, आतप और उद्योत ये पुद्गल की दस पर्याये है ।

प्रश्न १–शब्द किसे कहते है ?

उत्तर–भाषा वर्गणा रूप जो पद्गल शब्द रूप परिणमन करते है उन्हे शब्द कहते है ।

प्रश्न २–शब्द के भेद कितने है ?

उत्तर–शब्द दो प्रकार के है—१ भाषा रूप २ अभाषारूप । भाषात्मक शब्द दो प्रकार के है—१ साक्षर २ अनक्षर ।

प्रश्न ३–साक्षर-अनक्षर शब्द किन्हे कहते है ?

उत्तर–जिम भाषा मे शास्त्र रचे जाते है और जिससे आर्य और म्लेच्छों का व्यवहार चलता हे ऐसे सम्कृत शब्द और इससे विपरीत शब्द ये सब साक्षर शब्द हे ।

दो इन्द्रिय आदि जीवो के शब्द अनक्षरात्मक शब्द है ।

प्रश्न ४–अभाषात्मक शब्द कितने भेद रूप है ?

उत्तर–अभाषात्मक शब्द दो भेद रूप है—१ प्रायोगिक २ वैस्रसिक । मेघ आदि के निमित्त मे जो शब्द उत्पन्न होते है, वे वैस्रसिक शब्द हैं ।

तत, वितत, घन और सौषिर के भेद से प्रायोगिक शब्द चार प्रकार के है ।

प्रश्न ५–तत, वितत, घन और सौषिर के लक्षण क्या-क्या हैं ।

उत्तर–चमड़े मे मढे हुए पुष्कर भेरी और दर्दुर से जो शब्द उत्पन्न होता है वह तत शब्द है । तातवाले वीणा और सुघोष आदि मे उत्पन्न शब्द वितत है । ताल, घण्टा और लालन आदि के ताड़न से उत्पन्न शब्द घन है और बासुरी, शख आदि के फूंकने से उत्पन्न हुआ शब्द सौषिर है ।

प्रश्न ६–बन्ध कितने प्रकार का है ?

उत्तर–वैस्रसिक और प्रायोगिक के भेद से बन्ध दो भेद वाला है ।

प्रश्न ७–वैस्रसिक बन्ध किसे कहते है ?

उत्तर–जिसमे पुरुष का प्रयोग अपेक्षित नही है वह वैस्रसिक बन्ध है । जैसे स्निग्धरूक्षगुण के निमित्त मे होने वाला बिजली, उल्का, मेघ आदि के विषयभूत बन्ध।

प्रश्न ८–प्रायोगिक बन्ध का लक्षण क्या है ?

उत्तर–जो बन्ध पुरुष के प्रयोग के निमित्त से होता है । वह प्रायोगिक बन्ध है । जैसे लाख और लकड़ी आदि का अजीव सम्बन्धी और कर्म-नोकर्म का जीव के साथ जीवाजीव सम्बन्धी प्रायोगिक बन्ध है ।

प्रश्न ९–सूक्ष्मता के कितने भेद हैं ?

उत्तर–सूक्ष्मता दो प्रकार की है (१) अन्त्य (२) आपेक्षिक ।

प्रश्न १०–अन्त्य और आपेक्षिक सूक्ष्मता को उदाहरण देकर बताओ ?

उत्तर–परमाणु मे अन्त्य सूक्ष्मत्व है तथा बेल, आँवला और बेर आदि मे आपेक्षिक सूक्ष्मत्व है ।

प्रश्न ११–स्थौल्य के भेद व उदाहरण बताओ ?

उत्तर–स्थौल्य भी दो भेद रूप है—अन्त्य और आपेक्षिक । जगव्यापी महास्कन्ध मे अन्त्य स्थौल्य है तथा बेर, ऑवला और बेल आदि मे आपेक्षिक स्थौल्य है ।

प्रश्न १२–सस्थान के भेद व लक्षण उदाहरण दीजिये ?

उत्तर–इत्थं लक्षण और अनित्थ लक्षण के भेद से सस्थान दो भेद वाला है । जिसके विषय मे "यह सस्थान इसप्रकार का है" यह निर्देश किया जा सके वह इत्थलक्षण सस्थान है, जैसे—वृत्त, त्रिकोण, चतुष्कोण, षट्कोण आदि ।

जिसके विषय मे यह इस प्रकार का है यह नही कहा जा सकता वह अनित्थ लक्षण कहा जाता है— जैसे मेघ आदि ।

प्रश्न १३–भेद के भेद बताइये ?

उत्तर–उत्कर, चूर्ण, खण्ड, चूर्णिका, प्रतर और अणुचटन के भेद से भेद के ६ प्रकार है ।

प्रश्न १४–उत्कर आदि भेदो के लक्षण क्या है ?

उत्तर–करोत आदि से जो लकड़ी को चीरा जाता है वह **उत्कर** नाम का भेद है ।

जौ और गेहूँ आदि का जो सत्तू और कनक आदि बनता है वह **चूर्ण** नाम का भेद है ।

घट आदि के जो कपाल और शर्करा आदि टुकड़े होते है वह **खण्ड** नाम का भेद है ।

उड़द और मूग आदि का खण्ड **चूर्णिका** नाम का भेद है ।

मेघ के जो अलग-अलग पटल होते है वह **प्रतर** नाम का भेद है ।

तपाये हुए लोहे के गोले आदि को घन आदि से पीटने पर जो फुलगे निकलते है वह **अणुचटन** नाम का भेद है ।

प्रश्न १५–"तम" किसे कहते हैं ?

उत्तर–जो प्रकाश का विरोधी है तथा जिससे दृष्टि मे प्रतिबन्ध होता है वह तम कहलाता है।

प्रश्न १६–छाया किसे कहते हैं ?

उत्तर–प्रकाश को रोकनेवाले पदार्थों के निमित्त से जो पैदा होती है वह छाया कहलाती है।

प्रश्न १७–आतप और उद्योत के लक्षण बताइये ?

उत्तर–जो सूर्य के निमित्त से उष्ण प्रकाश होता है उसे आतप कहते हैं। चन्द्रमणि और जुगनू आदि के निमित्त से जो प्रकाश पैदा होता है वह उद्योत है।

प्रश्न १८–पुद्गलो के भेद कितने है ?

उत्तर– **अणवः स्कन्धाश्च ॥ २५ ॥**

सूत्रार्थ–पुद्गल के दो भेद है—अणु और स्कन्ध।

प्रश्न १–अणु किसे कहते है ?

उत्तर–जो एक प्रदेशी होने से सबसे छोटा होता है वह अणु है।

प्रश्न २–अणु का आदि-मध्य व अन्त क्या है ?

उत्तर–अणु इतना सूक्ष्म होता है जिससे उसका स्व ही आदि है, स्व ही मध्य है और स्व ही अन्त है।

अत्तादि अत्तमज्झं अत्तंत्तं णेव इंदिये गेज्झं।
जं दव्वं अविभागी तं परमाणु विआणाहि ॥ नि० सा०

जिसका आदि, मध्य और अन्त एक है और जिसे इन्द्रियाँ ग्रहण नही कर सकती ऐसा विभाग रहित द्रव्य है उसे परमाणु जानो।

प्रश्न ३–स्कन्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर–जिनमे स्थूल रूप से पकड़ना, रखना आदि व्यापार स्कन्धन अर्थात् सघटना होती है वे स्कन्ध कहे जाते हैं।

प्रश्न ४–अणु शब्द की व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ क्या है ?

उत्तर–अणु धातु से उ प्रत्यय होकर अणु शब्द की निष्पत्ति होती है

= अणु धातु का अण्

अण् उ = अणु सर्वधातुभ्य उ. से उ प्रत्यय होता है।

प्रश्न ५–अणु की पहचान क्या है ?

उत्तर–परमाणु दो (अविरोधी) स्पर्श, एक रस, एक वर्ण, एक गन्ध, गोलाकार और कार्य के द्वारा जाना जाता है।

प्रश्न६—अणु नित्य है या अनित्य ?

उत्तर—द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा अणु नित्य है पर्यायार्थिक नयापेक्षा परमाणु अनित्य है।

प्रश्न७—अणु और स्कन्ध में अन्तर क्या है ?

उत्तर—अणु स्पर्श रस गन्ध और वर्णवाले होते हैं परन्तु स्कन्ध शब्द बन्ध सौक्ष्म्य, स्थौल्य, संस्थान, भेद तम, छाया आतप और उद्योत वाले हैं और स्पर्श रस, गन्ध और वर्ण वाले भी हैं। अणु और स्कन्ध दोनों भी पुद्गल होते हैं। निश्चय नय से अणु ही पुद्गल है और व्यवहार नय से स्कन्ध भी पुद्गल होते हैं।

प्रश्न८—स्कन्ध की उत्पत्ति का निमित्त क्या है ?

उत्तर— **भेदसङ्घातेभ्य उत्पद्यन्ते ।।२६।।**

सूत्रार्थ—भेद से, संघात से तथा भेद संघात दोनों से स्कन्ध उत्पन्न होते है।

प्रश्न१—भेद किसे कहते हैं ?

उत्तर—अन्तरंग और बहिरंग इन दोनों प्रकार के निमित्तों से संघातों के विदारण करने को भेद कहते हैं।

प्रश्न२—संघात किसे कहते हैं ?

उत्तर—पृथग्भूत हुए पदार्थों के एकरूप हो जाने को संघात कहते हैं।

प्रश्न३—कितने परमाणुओं के संघात से स्कन्ध की उत्पत्ति होती है ?

उत्तर— दो प्रदेशवाले दो स्कन्धों के संघात से तीन प्रदेशवाले तीन प्रदेशवाले स्कन्ध और अणु के संघात से चार अणुओं के संघात से चार प्रदेशवाले स्कन्ध। इसी प्रकार संख्यात, असंख्यात अनन्त और अनन्तानन्त अणुओं के स्कन्ध से उतने-उतने प्रदेशों वाले स्कन्ध उत्पन्न होते हैं।

प्रश्न४—एक साथ भेद और संघात इन दोनों से स्कन्ध की उत्पत्ति कैसे होती है ?

उत्तर—जब अन्य स्कन्ध में भेद होता है और अन्य का संघात तब एक साथ भेद संघात इन दोनों से भी स्कन्ध की उत्पत्ति होती है। अर्थात् स्कन्ध में से कुछ परमाणुओं का भेद और कुछ परमाणुओं के संघात से—भेदसंघात से स्कन्ध उत्पन्न होते हैं।

प्रश्न४अ—स्कंध की उत्पत्ति कैसे होती है ?

उत्तर—स्कंध की उत्पत्ति भेद से संघात से तथा भेद संघात से होती है यथा १०० परमाणु के पिंड में से ५० परमाणु अलग करने से ५० परमाणु का स्कंध भेद से उत्पन्न हुआ और ५० परमाणु के स्कंध में ५० परमाणु और मिलाने पर १०० परमाणु का स्कंध संघात से हो जाता है तथा १०० परमाणु के स्कंध में से २५ परमाणु निकाल कर ५० परमाणु मिला देने पर १२५ परमाणु का स्कंध भेद-संघात से उत्पन्न होता है।

प्रश्न५—अणु की उत्पत्ति का हेतु क्या है ?

उत्तर— **भेदादणुः ।।२७।।**

सूत्रार्थ—भेद से अणु उत्पन्न होता है।

प्रश्न १–भेद, सघात और भेदसघात से भी अणु की उत्पत्ति हो सकती है क्या ?

उत्तर–नही, अणु की उत्पत्ति भेद से ही होती है । न भेद से, न सघात से और न भेदसघात से ।

प्रश्न २–चाक्षुष स्कन्ध की उत्पत्ति कैसे होती है ?

उत्तर– **भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः ॥ २८ ॥**

सूत्रार्थ–भेद और सघात से चाक्षुष स्कन्ध बनता है ।

प्रश्न १–अनन्तानन्त परमाणुओ के समुदाय से निष्पन्न होकर भी कोई स्कन्ध चाक्षुष और कोई अचाक्षुष । तो उनमे जो अचाक्षुष स्कन्ध है वे चाक्षुषता को कैसे प्राप्त होते है ?

उत्तर–"भेद और सघात से" । अचाक्षुष से चाक्षुष रूप मे परिणमन मे दो कारण है—१ सूक्ष्म परिणाम वाले स्कन्ध का भेद होने पर वह अपनी सूक्ष्मता को नही छोड़ता इसलिये उसमे अचाक्षुषत्व रहता है । २ एक दूसरा सूक्ष्मपरिणामवाला स्कन्ध है जिसका यद्यपि भेद हुआ तथापि उसका दूसरे सघात से सयोग हो गया अत सूक्ष्मपना निकलकर स्थूलपने की उत्पत्ति हो जाती है इसीलिये वह चाक्षुष हो जाता है ।

प्रश्न २–द्रव्य का सामान्य लक्षण क्या है ?

उत्तर– **सद् द्रव्यलक्षणम् ॥ २९ ॥**

सूत्रार्थ–द्रव्य का लक्षण सत् है ।

प्रश्न १–सत् किसे कहते है ?

उत्तर– **उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ॥ ३० ॥**

सूत्रार्थ–जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य तीनो से युक्त है वह सत् है ।

प्रश्न १–उत्पाद किसे कहते है उदाहरण द्वारा बताइये ?

उत्तर–चेतन व अचेतन द्रव्यो मे अन्तरग व बहिरग निमित्त के वश से प्रतिसमय जो नवीन अवस्था की प्राप्ति होती है उसे उत्पाद कहते है । जैसे मिट्टी के पिण्ड की घट पर्याय ।

प्रश्न २–"व्यय" का लक्षण उदाहरण देकर बताओ ?

उत्तर–पूर्व अवस्था/पर्याय के व्ययन, विघटन या विनाश को व्यय कहते है । जैसे घटकी उत्पत्ति होने पर मिट्टी के पिण्डरूप आकार का त्याग ।

प्रश्न ३–ध्रौव्य का लक्षण व उदाहरण दीजिये ?

उत्तर–जो अनादिकालीन पारिणामिक स्वभाव है उसका व्यय और उदय नही

होता किन्तु वह "ध्रुवति" अर्थात् स्थिर रहता है इसलिये उसे ध्रुव कहते हैं। जैसे-मिट्टी के पिण्ड और घटादि अवस्थाओ मे मिट्टी का अन्वय बना रहता है।

प्रश्न ४–चेतन द्रव्य अचेतनरूप होता है या नही ?

उत्तर–एक द्रव्य दूसरे द्रव्य रूप नही होता। चेतन द्रव्य कभी अचेतन नही होता और अचेतनद्रव्य कभी चेतन नही होता है।

प्रश्न५–उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य मे अवस्था भेद है या काल भेद भी ?

उत्तर–प्रत्येक पदार्थ परिवर्तनशील है और उसमे यह परिवर्तन प्रतिसमय होता रहता है। जैसे दूध कुछ समय बाद दही रूप से परिणमन जाता है और फिर दही का मट्ठा बना लिया जाता है, यहाँ यद्यपि दूध से दही और दही से मट्ठा ये तीन भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ हुई है तथापि ये तीनो है एक गोरस की ही। तीनो अवस्थाओ मे अवस्था भेद है कालभेद नहीं।

प्रश्न–६ तीनो अवस्थाओ (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य) का त्रैकालिक अन्वय रूप उदाहरण बताइये ?

उत्तर–जिस समय द्रव्य की पूर्व अवस्था नाश को प्राप्त होती है उसी समय उसकी नयी अवस्था उत्पन्न होती है फिर भी उसका त्रैकालिक अन्वय स्वभाव बना रहता है। आचार्यश्री समन्तभद्र के शब्दो मे उदाहरण है—घटका इच्छुक उसका नाश होने पर दु खी होता है, मुकुट का इच्छुक उसका उत्पाद होने पर हर्षित होता है और स्वर्ण का इच्छुक न दु खी होता है न हर्षित, वह मध्यस्थ रहता है। एक ही समय मे यह शोक, प्रमोद और मध्यस्थभाव बिना कारण के हो नही सकता इससे प्रत्येक द्रव्य-उत्पाद-व्यय और ध्रौव्ययुत है यह सिद्ध होता है।

प्रश्न ७–उत्पाद आदि तीनो भिन्न है या अभिन्न ?

उत्तर–उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य आदि द्रव्य के लक्षण है और द्रव्य लक्ष्य है। पर्यायार्थिक नय की दृष्टि से विचार करने पर ये आपस मे और द्रव्य से पृथक्-पृथक् हैं और द्रव्यार्थिक नय की दृष्टि से विचार करने पर ये पृथक्-पृथक् उपलब्ध नही होने से अभिन्न हैं।

प्रश्न ८–नित्य का लक्षण क्या है ?

उत्तर– **तद्भावाव्ययं नित्यम् ॥ ३१ ॥**

सूत्रार्थ–उसके भाव से (अपनी जाति से) च्युत न होना नित्य है।

प्रश्न १–सूत्रप्राप्त "तद्भावाव्यय" शब्द का अर्थ स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर–पहले जिस रूप वस्तु को देखा है उसी रूप उसके पुन होने से "वही यह है" ऐसा प्रत्यभिज्ञान होता है। वस्तु का सर्वथा नाश या सर्वथा उत्पाद मानने पर स्मृति की स्थिति नही रह सकती और स्मृति के अभाव मे लोक व्यवहार विरोध

को प्राप्त होता है अत जिस वस्तु का जो भाव है उस रूप से च्युत न होना तद्भावाव्यय का अर्थ है । यही नित्यपना है ।

प्रश्न २–पदार्थ को सर्वथा नित्य मानने पर क्या दोषापत्ति है ?

उत्तर–यदि पदार्थ को सर्वथा नित्य मान लिया जावे तो परिणमन का सर्वथा अभाव प्राप्त होता है । ऐसा होने पर ससार और इससे मुक्ति के कारण रूप प्रक्रिया का विरोध प्राप्त होता है ।

प्रश्न ३–द्रव्य या पदार्थ नित्य हैं या अनित्य ?

उत्तर–पदार्थ सामान्य अपेक्षा नित्य है और विशेष अर्थात् पर्याय अपेक्षा अनित्य है अत ससार के सब पदार्थ नित्यानित्य रूप है ।

प्रश्न ४–एक ही द्रव्य मे नित्यता और अनित्यता ये दो विरुद्ध धर्म किस प्रकार रहते है ?

उत्तर– **अर्पितानर्पितसिद्धेः ॥ ३२ ॥**

सूत्रार्थ–मुख्यता और गौणता की अपेक्षा एक वस्तु मे विरोधी मालूम पड़ने वाले दो धर्मों की सिद्धि होती है ।

प्रश्न ५–अर्पित किसे कहते है ?

उत्तर–विवक्षित, मुख्य, अर्पित ये तीनो शब्द पर्यायवाची है । वक्ता जिस धर्म को कहने की इच्छा करता है उसे अर्पित, मुख्य या विवक्षित कहते हैं ।

प्रश्न ६–अनर्पित किसे कहते है ?

उत्तर–वक्ता कथन करते समय जिस धर्म को नही कहना चाहता है वह अनर्पित है ।

प्रश्न ७–एक ही समय मे वक्ता के कथन मे अर्पित अनर्पितपना कैसे घटित होता है ?

उत्तर–जैसे वक्ता यदि द्रव्यार्थिक नय से वस्तु का प्रतिपादन करेगा तो उस समय नित्यता विवक्षित या मुख्य या अर्पित कहलायेगी और यदि पर्यायार्थिक नयसे प्रतिपादन करेगा तो अनित्यता विवक्षित होगी । जिस समय किसी पदार्थ को द्रव्य की अपेक्षा नित्य कहा जा रहा है उसी समय वह पदार्थ पर्याय अपेक्षा अनित्य भी है ।

प्रश्न ८–वस्तु कितने धर्म युक्त है ?

उत्तर–वस्तु अनेक धर्मात्मक है । एक ही मानव मे पिता, पुत्र, मामा, भानजा आदि की तरह अनेक धर्म रहने पर भी विरोध नही आता है ।

प्रश्न ९–परमाणुओ के बन्ध होने मे कौन कारण हैं ?

उत्तर– **स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धः ॥ ३३ ॥**

सूत्रार्थ–स्निग्धत्व और रूक्षत्व से बन्ध होता है ।

प्रश्न १–स्निग्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर–बाह्य और आभ्यन्तर कारण से जो स्नेह पर्याय उत्पन्न होती है उससे पुद्‌गल स्निग्ध कहलाता है ।

प्रश्न २–स्निग्धत्व किसे कहते है ?

उत्तर–स्निग्ध पुद्‌गल का धर्म स्निग्धत्व कहलाता है । अथवा पुद्‌गल की चिकने रूपगुण जो पर्याय है वह स्निग्धत्व है ।

प्रश्न ३–रुक्ष किसे कहते है ?

उत्तर–रूखापन के कारण पुद्‌गल रूक्ष कहलाता है ।

प्रश्न ४–रूक्षत्व का लक्षण क्या है ?

उत्तर–रूक्ष पुद्‌गल का धर्म रूक्षत्व है । **अथवा** पुद्‌गल की रूक्ष गुणरूप जो पर्याय है वह रूक्षत्व है ।

प्रश्न ५–बन्ध किसे कहते है ?

उत्तर–अनेक पदार्थों मे एकपने का ज्ञान कराने वाले सम्बन्ध विशेष को बन्ध कहते है । अथवा-स्निग्ध और रूक्षगुणवाले दो परमाणुओ का परस्पर सश्लेष लक्षण बन्ध कहलाता है ।

प्रश्न ६–स्निग्ध और रूक्ष गुण के कितने भेद है ?

उत्तर–स्निग्ध गुण के एक दो तीन चार, सख्यात, असख्यात और अनन्त भेद है इसी प्रकार रूक्ष गुण के भी एक दो, तीन, चार, सख्यात, असख्यात और अनन्त भेद है ।

प्रश्न ७–परमाणुओ मे स्निग्ध-रूक्षत्व सम रहता है या न्यूनाधिक ?

उत्तर–जिसप्रकार जल तथा बकरी, गाय, भैस और ऊँट के घी मे उत्तरोत्तर अधिक रूप से स्नेह (चिकनाई) गुण रहता है तथा पाशु, कणिका, शर्करा, पत्थर आदि मे उत्तरोत्तर रूक्षत्व अधिक रूप से रहता है उसी प्रकार परमाणुओ मे भी न्यूनाधिकरूप से स्निग्ध और रूक्ष गुण का अनुमान होता है ।

प्रश्न ८–किन परमाणुओ का बन्ध नही होता है ?

उत्तर– **न जघन्यगुणानाम् ॥ ३४ ॥**

सूत्रार्थ–जघन्य गुण वाले पुद्‌गलो का बन्ध नही होता ।

प्रश्न १–गुण किसे कहते है ?

उत्तर–स्निग्धता और रूक्षता के अविभागी प्रतिच्छेदो (जिसका टुकड़ा न हो सके ऐसे अशो) को गुण कहते है ।

प्रश्न २–जघन्य गुणसहित परमाणु कौन सा है ?

उत्तर–जिस परमाणु मे स्निग्धता और रूक्षता का एक अविभागी अश हो उसे जघन्य गुणसहित परमाणु कहते है ।

प्रश्न ३–सूत्र मे आये 'गुण' शब्द का अर्थ यहाँ क्या है ?

उत्तर–गुण शब्द के अनेक अर्थ है यथा-गुण अर्थ मे रूपादिगुण, भाव अर्थ मे—दो गुना, तीन गुना, क्वचित् उपकार अर्थ मे—गुणज्ञ साधु उपकार को माननेवाला साधु है । यहाँ गुणशब्द उपकार अर्थ मे है, कही द्रव्य अर्थ मे, अवयव अर्थ मे, गुण अर्थ, गौण अर्थ मे प्रयोग होता है । यहॉ प्रकरणवश गुणशब्द का अर्थ भाग (अश) ग्राह्य है ।

प्रश्न ४–कौन से जघन्य परमाणु का कौन-कौन पुद्‌गल परमाणुओ के साथ बन्ध नही होता है ?

उत्तर–एक गुण वाले स्निग्ध परमाणु का अन्य एक गुण वाले तथा अन्य दो, तीन, चार, सख्यात, असख्यात, अनन्त स्निग्ध गुणवाले परमाणुओ के साथ बन्ध नही होता है । तथा एक गुण स्निग्ध परमाणु का एक गुण रूक्ष तथा दो, तीन, चार सख्यात, असख्यात और अनन्त गुण रूक्ष वाले के साथ भी बन्ध नही होता है । इसी प्रकार एक गुणरूक्ष का अन्य एक रूक्ष या स्निग्ध या दो, तीन, चार सख्यात असख्यात व अनन्त गुणवाले स्निग्ध या रूक्ष परमाणुओ के साथ बन्ध नही होता है ।

प्रश्न ५–गुणो की समानता होने पर सदृश गुण वालो का बन्ध होता है या नही ?

उत्तर– **गुणसाम्ये सदृशानाम् ॥ ३५ ॥**

सूत्रार्थ–गुणो की समानता होने पर सदृश गुणवालो का भी बन्ध नही होता है ।

प्रश्न १–सूत्रप्राप्त गुणसाम्य और सदृश शब्दो का अर्थ यहॉ क्या है ?

उत्तर–गुणसाम्य शब्द तुल्य शक्त्यश अर्थ मे यहाँ है तथा तुल्य जाति अर्थ मे सदृश शब्द है । अर्थात्-तुल्य शक्त्यशो का ज्ञान कराने के लिये गुणसाम्य पद का व तुल्य जातिवालो का ज्ञान कराने के लिये सूत्र मे सदृश शब्द को ग्रहण किया है।

प्रश्न २–गुणसाम्य और सदृश के बन्ध नही होता इसे स्पष्ट करो ?

उत्तर–दो स्निग्ध शक्त्यशवालो का दो रूक्ष शक्त्यश वालो के साथ, तीन स्निग्ध शक्त्यशो वाले का तीन रूक्ष शक्त्यश वालो के साथ, दो स्निग्धशक्त्यशो वाले का दो स्निग्ध शक्त्यशो वालो के साथ, दो रूक्षशक्त्यशो का दो रूक्ष शक्त्यशवालो के साथ बन्ध नही होता ।

प्रश्न ३–किन-किन शक्त्यश वाले पुद्गलो का बन्ध होता है ?

उत्तर **द्व्यधिकादिगुणानां तु ॥ ३६ ॥**

सूत्रार्थ–दो अधिक आदि शक्त्यशवालो का तो बन्ध होता है ।

प्रश्न १–द्व्यधिक किसे कहते हैं ?

उत्तर–जिसमे दो शक्त्यश अधिक हो उसे द्व्यधिक कहते हैं ।

प्रश्न २–दो अधिकपना (द्व्यधिकादि) शब्द का अर्थ स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर–समानजातीय या असमानजातीय दो अधिक आदि शक्त्यशवालो का बन्ध होता है, दूसरो का नही । जैसे दो स्निग्ध शक्त्यशवाले परमाणु का एक शक्त्यशवाले परमाणु के साथ तथा दो, तीन, पाच, सख्यात, असख्यात, अनन्त परमाणुओ के शक्त्यश परमाणु के साथ बन्ध नही होता है । हॉ दो स्निग्ध शक्त्यश वाले परमाणु का "चार" स्निग्ध वाले परमाणु के साथ बन्ध होता है । इसी प्रकार रूक्ष परमाणु मे बन्ध का नियम है ।

प्रश्न ३–स्निग्ध-रूक्ष, स्निग्ध स्निग्ध, रूक्ष स्निगध, रूक्ष-रूक्ष के बन्ध का नियम क्या है ?

उत्तर–स्निग्ध का दो अधिक शक्त्यशवाले स्निग्ध के साथ बन्ध होता है । रूक्ष का दो अधिक शक्त्यशवाले रूक्ष के साथ बन्ध होता है तथा स्निग्ध का रूक्ष के साथ, रूक्ष का स्निग्ध के साथ सम या विषम गुणो के होने "द्व्यधिकादिगुणाना तु" इसी नियम से बन्ध होता है । किन्तु जघन्य शक्त्यशवाले का बन्ध सर्वथा वर्जनीय है ।

प्रश्न ४–बन्ध-अबन्ध पुद्गल शक्त्यश ?

उत्तर–दो स्निग्ध का चार स्निग्ध से **बन्ध**

चार रूक्ष का आठ स्निग्ध से **अबन्ध**

दो रूक्ष का पॉच, छ , सात, आठ रुक्ष से **अबन्ध**

एक स्निग्ध का सख्यात, असख्यात, अनन्त स्निग्ध परमाणु से **अबन्ध**

एक रुक्ष का तीन पॉंच सात स्निग्ध से **अबन्ध**

तीन स्निग्ध गुण वालो का पॉंच रूक्ष गुणो से **बन्ध**

जघन्य एक शक्त्यश का एक के साथ **अबन्ध**

प्रश्न ५–समान गुण वालो के साथ बन्ध होता है ऐसा क्यो नही कहा है ?

उत्तर– **बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च ॥ ३७ ॥**

सूत्रार्थ–बन्ध मे अधिक गुण वाले परमाणु, कम गुण वाले परमाणुओ का अपने मे परिणत कर लेते है ।

प्रश्न १–परिणामिक किसे कहते है ?

उत्तर–गीले गुड़ के समान एक अवस्था से दूसरी अवस्था को उत्पन्न कर देना परिणामिक कहलाता है ।

प्रश्न २–पारिणामिक से बन्ध कैसे होता है उदाहरण देकर बताइये ?

उत्तर–जैसे अधिक रसवाला गीला गुड़ पारिणामिक है क्योकि उस पर जो धूलि आदि गिरती है, वह गुड़ रूप से परिणमित हो जाती है । गीला गुड़ उसको अपने रूप परिणमन कर लेता है। अन्य रेणु आदि को स्वगुण रूप से उत्पादन करता है, परिणामन कराता है, अत. पारिणामिक है ।

प्रश्न ३–पारिणामिक परमाणु कौन से है ?

उत्तर–दो गुण वाले स्निग्ध परमाणु के लिये चार गुण शक्त्यश वाले स्निग्ध परमाणु पारिणामिक होते है और दो शक्त्यश वाले स्निग्ध परमाणु के लिये चार शक्त्यश वाले रूक्ष व स्निग्ध परमाणु पारिणामिक होते है । तथा दो गुण शक्त्यश वाले रूक्ष परमाणुओ के लिये चार शक्त्यश वाले स्निग्ध व रूक्ष परमाणु पारिणामिक है ।

प्रस्न ४–यदि अधिक गुण वाला पारिणामिक नही हो तो क्या स्थिति होगी ?

उत्तर–यदि अधिक गुण वाला पारिणामिक नही होता है, तो सफेद और काले तन्तु के समान सयोग होने पर भी पारिणामिक न होने से पृथक्-पृथक् रूप से ही स्थित रहेगे । जैसे जुलाहे के द्वारा बुने हुए तन्तु शुक्ल (सफेद) तन्तु के समीप मे मिले हुए लाल आदि वर्ण के तन्तु समान गुण वाले होने से परस्पर नही मिलते है, अलग-अलग रहते है, तथा अधिक गुण पारिणामिक के बिना अल्प गुण वाले परमाणु और अल्पगुण बिना पारिणामिकत्व परस्पर नही मिलते है ।

प्रश्न ५–प्रकारान्तर से द्रव्य का लक्षण बताओ ?

उत्तर– **गुणपर्ययवद् द्रव्यम् ॥ ३८ ॥**

सूत्रार्थ–गुण और पर्याय वाला द्रव्य है ।

प्रश्न १–गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर–१ गुण अन्वयी होते है । (अन्वयिनो गुणा)

२ द्रव्य मे भेद करने वाले धर्म को गुण कहते है ।

३ जिससे एक द्रव्य दूसरे द्रव्य से जुदा होता है वह गुण है ।

४ जिनसे धारा मे एकरूपता बनी रहती है वे गुण कहलाते है । जैसे—जीव मे ज्ञानादिक की धारा, पुद्गल मे रसादिक की धारा ।

५ विशेष को भी गुण कहते है ।

प्रश्न २–पर्याय का लक्षण क्या है ?

उत्तर–१ व्यतिरेकी पर्याय होती है (व्यतिरेकिण पर्याया·)

२ द्रव्य के विकार को पर्याय कहते है ।

३ जिससे धारा मे भेद प्रतीत होता है वे पर्याय कही जाती हैं ।

४ स्वभाव, विभाव रूप से जो प्राप्ति होती है, उसे पर्याय कहते है ।

(स्वभावविभावरूपतया परि–समन्तात् परिगच्छति परिप्राप्नुवन्ति ये ते पर्याया)

प्रश्न ३–द्रव्य को गुणो से रहित माना जाय तो क्या दोष आयेगा ?

उत्तर–यदि द्रव्यो मे गुण नही रहते ऐसा माने तो द्रव्यो मे सकर–व्यतिकर हो जाता है ।

प्रश्न ४–सकर–व्यतिकर का अर्थ क्या है ?

उत्तर–परस्पर मिल जाने को सङ्कर कहते है और एकमेक हो जाने को व्यतिकर कहते हैं ।

प्रश्न ५–द्रव्य को गुण–पर्यायवान् क्यो कहा गया है ?

उत्तर–गुण तथा पर्याये जिसके है वह द्रव्य गुणपर्यायवान् कहलाता है । गुण पर्यायो को प्राप्त हो रहा है भविष्यत्काल मे होगा और भूतकाल मे गुण और पर्यायो को प्राप्त था वह द्रव्य है ।

प्रश्न ६–प्रत्येक द्रव्य मे कितने गुण और पर्याये रहती है ?

उत्तर–प्रत्येक द्रव्य अनन्तगुणो का और क्रम से होने वाली उनकी पर्यायो का पिण्डमात्र है ।

प्रश्न ७–जीवादि द्रव्यो मे कौन–कौन सी धारा अजस्र बहती हे ?

उत्तर–जीवद्रव्य मे ज्ञानादिक की धारा का, पुद्‌गल मे रूप रसादिकी धारा, धर्म द्रव्य मे गतिहेतुत्व की धारा का, अधर्मद्रव्य मे स्थिति हेतुत्त्व की धारा का, आकाश मे अवगाहन हेतुत्व की धारा का और काल द्रव्यमे वर्तना का कभी विच्छेद नही होता ।

प्रश्न ८–जीव का मतिश्रुत–आदि ज्ञान, पुद्‌गल के घट–पट, स्पर्श रसादि की भिन्नता ये गुण है या पर्याय ?

उत्तर–जीव का मति–श्रुतादि ज्ञान जीव के ज्ञान गुण की पर्याये है तथा घट, पट, रूप–रस मे रूप से रूपान्तर, रस से रसान्तर आदि पुद्‌गल द्रव्य की पर्याये है ।

प्रश्न ९–द्रव्य गुण व पर्यायो मे सर्वथा भिन्न है या अभिन्न ?

उत्तर–द्रव्य गुण और पर्यायो मे कथंचित् भिन्न है और कथंचित् अभिन्न । द्रव्य गुण और पर्याय मे सर्वथा भिन्न नही हे क्योकि द्रव्य सदा गुण पर्याय वाला कहा गया

है। फिर भी नाम, लक्षण, प्रयोजन आदि की अपेक्षा द्रव्य से गुण व पर्याय कथंचित् भिन्न भी है। गुण और पर्याय दोनो मिलकर द्रव्य की आत्मा हैं। तात्पर्य यह है कि गुण और पर्याय को छोड़कर द्रव्य कोई स्वतन्त्र वस्तु नही है।

प्रश्न १०–क्या काल द्रव्य है ?

उत्तर–जी हॉ काल भी एक द्रव्य है।

कालश्च ॥ ३९ ॥

सूत्रार्थ–काल भी द्रव्य है।

प्रश्न १–काल किसे कहते है ?

उत्तर–"कलयति इति काल" जो व्यतीत होता है वा जाना जाता है वह काल है।

प्रश्न २–काल द्रव्य है इस बात की सिद्धि कैसे हो ?

उत्तर–जो उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य से युक्त है, वह सत् है तथा जो गुणपर्याय वाला है वह द्रव्य है। इस प्रकार द्रव्य के दोनो लक्षण काल द्रव्य मे पाये जाने से काल भी द्रव्य है। काल मे ध्रुवता स्वनिमित्तक है, क्योंकि काल अपने स्वभाव मे सदा अवस्थित रहता है। काल का उत्पाद और व्यय पर-निमित्तक (घटिका, मास आदि के निमित्त से) होता है। काल मे उत्पाद, व्यय, अगुरुलघुगुण की हानि-वृद्धि अपेक्षा स्वनिमित्तक भी होता है।

काल द्रव्य मे साधारण गुण अचेतनत्व, अमूर्तत्व, सूक्ष्मत्व और अगुरुलघुत्व आदि है और असाधारण गुण वर्तना हेतुत्व है। अत सिद्ध है कि काल भी एक द्रव्य है।

प्रश्न ३–जब काल भी द्रव्य है फिर उसका कथन अलग क्यो किया ?

उत्तर–यदि प्रथम सूत्र मे ही काल द्रव्य का भी कथन कर दिया जाता तो काल को भी कायपना प्राप्त होता परन्तु काल द्रव्य उपचार से भी कायवान (अस्तिकाय) नही है।

प्रश्न ४–काल एक द्रव्य हे या अनेक ? निष्क्रिय ह या सक्रिय ?

उत्तर–लोकाकाश के असख्यात प्रदेश है, उतने ही आकाश प्रदश प्रमाण (असख्यात) कालाणु है। कालाणु निष्क्रिय है और लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर पृथक्-पृथक् एक-एक कालाणु अवस्थित है रत्नराशि के समान।

लोयायास पदेसे इक्केक्के जे ट्ठिया हु इक्केक्का।
रयणाण रासीमिव ते कालाणु असखदव्वाणि ॥

प्रश्न ५–प्रत्येक कालाणु अखड एक प्रदेशी है सिद्ध करो ?

उत्तर–एक पुद्गल परमाणु मन्दगति से एक आकाश प्रदेश से दूसरे आकाश प्रदेश पर जाता है और उसमे कुछ समय लगता है । यह समय ही काल द्रव्य की पर्याय है जो कि अतिसूक्ष्म होनेसे निरश है । समय पर्याय मे भेद सिद्धि के लिये काल द्रव्य को अणुरूप मे स्वीकार किया गया है ।

प्रश्न ६–व्यवहार काल का प्रमाण क्या है ?

उत्तर– **सोऽनन्तसमयः ॥ ४० ॥**

सूत्रार्थ–वह काल अनन्त समय वाला है ।

प्रश्न १–व्यवहार काल अनन्त ममय वाला किस प्रकार है ?

उत्तर–१ यद्यपि वर्तमान व्यवहारकाल की अपेक्षा काल का एक ही समय होता है तथापि अतीत (भूत) और भविष्यत् काल की अपेक्षा काल के अनन्त समय हैं । अथवा अनन्त पर्याये वर्तना गुण के निमित से होती हैं अत एक कालाणु को भी उपचार से अनन्त कहा है ।

प्रश्न २–समय शब्द द्रव्य है या पर्याय ?

उत्तर–समय शब्द द्रव्य और पर्याय दोनो अर्थो मे व्यवहृत होता है ।

प्रश्न ३–समय शब्द से व्यवहार और निश्चय दोनो कालो की सिद्धि किस प्रकार होती है ?

उत्तर–एक-एक ममय का समुच्चय होकर जो आवलि, पल आदि का व्यवहार होता है वह व्यवहारकाल है और यह समय-पर्याय-पर्यायी के बिना नहीं हो सकती, अत इससे निश्चयकाल का भी ज्ञान होता है ।

प्रश्न ४–समय किसे कहते है ?

उत्तर–परमनिरुद्ध कालाश को समय कहते है ।

प्रश्न ५–परमनिरुद्ध का अर्थ क्या है ?

उत्तर–बुद्धि के द्वारा अविभागी भेद से भेद कर देने पर भी परमाणु के समान जिसका भेद करना शक्य नही है, जो अत्यन्त सूक्ष्म कालाश है उसे परमनिरुद्ध समय कहते है ।

प्रश्न ६–केवलज्ञान मे समय के भी अविभागी प्रतिच्छेद दृष्टिगत है क्या ?

उत्तर–जी हाँ । समय के अविभाग प्रतिच्छेद असख्यात बनते है जो छद्मस्थ के बुद्धिगम्य नही है, केवलज्ञान के द्वारा ही जाने जाते है । जिसकी सिद्धि इस प्रकार है—जब एक परमाणु तीव्रगति से गमन करता है तो चौदह राजू गमन कर सकता है तब स्पष्ट है कि वह चौदह राजू के आकाश के एक-एक प्रदेश को स्पर्श करता है । जब एक-एक प्रदेश को स्पर्श करता ही है तो जितने प्रदेश चौदह राजू के है उतने ही एक समय के अविभाग प्रतिच्छेद बनते है ।

प्रश्न ७–समय समूह से उत्पन्न व्यवहार काल बताइये ?

उत्तर– असख्यात समयो की एक आवली होती है ।
सख्यात आवलियो का एक उच्छ्वास होता है ।
सात उच्छ्वासो का एक स्तोक होता है ।
सात स्तोको का एक लव होता है ।
साढे अड़तीस लवो की एक नाली होती है ।
दो नालियो का एक मुहूर्त होता है ।

एक मुहूर्त मे एक समय कम करने पर भिन्न अन्तर्मुहूर्त होता है । दो समय कम एक मुहूर्त भिन्न मुहूर्त । इस प्रकार रात, दिन, पक्ष, माह, ऋतु, अयन, सवत्सर, युग, पल्योपम, सागरोपम आदि काल समय जाना जाता है ।

प्रश्न ८–जिस गुण पर्याय वाला द्रव्य है वह गुण क्या है ?

उत्तर– **द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ॥ ४१ ॥**

सूत्रार्थ–जो निरन्तर द्रव्य मे रहते है और गुणरहित है वे गुण है ।

प्रश्न १–द्रव्य और गुण मे क्या भेद है ?

उत्तर–गुण द्रव्य के आश्रय मे रहते हैं अर्थात् द्रव्य आधार है और गुण आधेय है ।

प्रश्न २–द्रव्य और गुण भिन्न है या अभिन्न ?

उत्तर–द्रव्य और गुण आधार-आधेय की अपेक्षा भिन्न होते हुए भी इनमे आधार-आधेय दही और कुण्ड के समान सर्वथा भेद नही है क्योकि गुण द्रव्य के साथ रहते हुए भी उसमे कथचित् अभिन्न है जैसे-तैल तिल के सब अवयवो मे व्याप्त होकर रहता है वैसे ही प्रत्येक गुण द्रव्य के सभी अवयवो मे समान रूप से व्याप्त होकर रहता है ।

प्रश्न ३–"निर्गुणा गुणा " शब्दो को स्पष्ट कीजिये ।

उत्तर–निर्गुणा का अर्थ है जो स्वय गुण है पर विशेष रहित है वे गुण है । यह सिद्धान्त है कि जैसे जीव द्रव्य मे जो ज्ञानादि गुण पाये जाते है वैसे गुण मे अन्य गुण नही रहते । जीव के असख्यात प्रदेशो मे प्रत्येक आत्मप्रदेशो पर अनन्त गुण रहते हुए भी एक गुण मे दूसरा गुण नही रहता । इस प्रकार गुण विशेष रहित रहते है अत "निर्गुणा गुणा " कहा गया है । तात्पर्य जो द्रव्य के आश्रय से रहते है और स्वय विशेष रहित हैं वे गुण कहलाते है ।

प्रश्न ४–गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर–जिनके निमित्त से एक द्रव्य अन्य द्रव्य से भेद को प्राप्त हो वे विशेष अर्थात् गुण कहलाते है ।

प्रश्न ५–द्रव्यो मे गुण कितने होते है ?

उत्तर–प्रत्येक द्रव्य मे गुण अनन्त होते है ।

प्रश्न ६–गुणो के कितने भेद होते है ?

उत्तर–गुणो के दो भेद है—१ सामान्य गुण २ विशेष गुण ।

प्रश्न ७–सामान्य गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर–जो सामान्य से सभी द्रव्यो मे पाये जाते है वे सामान्य गुण है । जैसे अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, प्रदेशत्व व अगुरुलघुत्व आदि ।

प्रश्न ८–विशेष गुण किसे कहते है ?

उत्तर–जो प्रत्येक द्रव्य की विशेषता को व्यक्त करते है वे विशेष गुण कहलाते है । जैसे—चेतनत्व, मूर्तत्व, गतिहेतुत्व आदि ।

प्रश्न ९–परिणाम किसे कहते है ?

उत्तर– **तद्भावः परिणामः ॥ ४२ ॥**

सूत्रार्थ–द्रव्यो का स्वभाव तद्भाव है—उसे ही परिणाम कहते है ।

प्रश्न १–तद्भाव किसे कहते है ?

उत्तर–धर्मादिक द्रव्यो का अपने-अपने स्वभाव से होना तद्भाव है ।

प्रश्न २–परिणाम किसे कहते है ?

उत्तर–धर्मादिक द्रव्य जिस रूप से होते है वह तद्भाव या तत्त्व है और इसे ही परिणाम कहते है ।

प्रश्न ३–परिणाम के भेद कितने है ?

उत्तर–सादि और अनादि के भेद से परिणाम दो भेद रूप है । परिणाम सामान्य अपेक्षा अनादि है और विशेष अपेक्षा सादि है । तात्पर्य गुण और पर्याय दोनो ही द्रव्यो के परिणाम है ।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

●

षष्ठम अध्याय

आस्रवतत्त्व विवेचना [सूत्र २७]

विशेषता–यह अध्याय परिणामो का दर्पण है । जीवन शुद्धि का अमोल रत्न है ।

सूत्र १ मे—योग के भेद व स्वरूप कथन ।

सूत्र २-६ मे—आस्रव स्वरूप, योग निमित्तक आस्रव के भेद, स्वामी अपेक्षा भेद, आस्रव की विशेषता मे कारण रूप भाव का कथन ।

सूत्र ७-९ मे—अधिकरण के भेद ।

सूत्र १० मे—ज्ञानावरण-दर्शनावरण के आस्रव रूप परिणाम का कथन ।

सूत्र ११-१२ मे—आसाता व सातावेदनीय के आस्रव रूप परिणामो का कथन।

सूत्र १३-१४ मे—दर्शनमोहनीय व चारित्र मोहनीय के आस्रव रूप परिणामो का कथन ।

सूत्र १५-२१ मे—चारो आयु के आस्रव रूप परिणामो का कथन ।

सूत्र २२-२४ मे—अशुभ व शुभ नामकर्म के आस्रव रूप परिणामो का कथन।

सूत्र २५-२६ मे—नीच गोत्र व उच्च गोत्र कर्म के आस्रव ।

सूत्र २७ मे—अन्तरायकर्म के आस्रव रूप परिणामो का कथन ।

इस प्रकार षष्ठम अध्याय मे अष्ट कर्मों के आस्रव रूप परिणामो का विस्तृत विवेचन है ।

●

षष्ठोऽध्यायः

प्रश्न १–योग किसे कहते है ?

उत्तर– **कायवाङ्मनः कर्मयोगः ॥ १ ॥**

सूत्रार्थ–काय, वचन और मन की क्रिया को योग कहते है ।

प्रश्न १–योग की प्रकारान्तर से परिभाषा क्या है ?

उत्तर–आत्मा के प्रदेशो का परिस्पन्द–हलन–चलन योग है । अथवा पुद्‌गल विपाकी शरीर नामकर्म के उदय से मन, वचन, काय से युक्त जीव की जो कर्म के ग्रहण करने मे कारणभूत शक्ति है उसको योग कहते है ।

प्रश्न २–आत्मप्रदेशो मे परिस्पन्द किस निमित्त से होता है ?

उत्तर–आत्मप्रदेशो मे परिस्पन्द निमित्तो के भेद से तीन प्रकार का है—काययोग, वचनयोग और मनोयोग ।

प्रश्न ३–काययोग का लक्षण क्या है ?

उत्तर–वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम होने पर औदारिक आदि सात प्रकार की कायवर्गणाओ मे से किसी एक प्रकार की वर्गणाओ के आलम्बन से होने वाला आत्मप्रदेश परिस्पन्द काययोग कहलाता है ।

प्रश्न ४–वचनयोग का लक्षण बताइये ?

उत्तर–शरीर नामकर्म के उदय से प्राप्त हुई वचन–वर्गणाओ का आलम्बन होने पर तथा वीर्यान्तराय और मत्यक्षरादि आवरण के क्षयोपशम मे प्राप्त हुई भीतरी वचनलब्धि के मिलने, वचनरूप पर्याय के सन्मुख हुए आत्मा के होनेवाला प्रदेश–परिस्पन्द वचनयोग कहलाता है ।

प्रश्न ५–मनोयोग का लक्षण बताइये ?

उत्तर–वीर्यान्तराय और नोइन्द्रियावरण के क्षयोपशमरूप आन्तरिक मनोलब्धि के होने पर तथा बाहरी निमित्तभूत मनोवर्गणाओ का आलम्बन मिलने पर मनरूप पर्याय के सन्मुख हुए आत्मा के होनेवाला प्रदेश–परिस्पन्द मनोयोग कहलाता है ।

प्रश्न ६–तीनो योगो का लक्षण सक्षेप मे बताइये ?

उत्तर–काय के निमित्त से होनेवाले आत्मप्रदेशो का हलन–चलन काययोग है। वचन के निमित्त से होनेवाले आत्मप्रदेशो का हलन–चलन वचनयोग है और मन के निमित्त से होनेवाले आत्मप्रदेशो का हलन–चलन मनोयोग है ।

प्रश्न ७–मन–वचन–काय योगो के भेद बताओ ?

उत्तर–मनोयोग चार भेद वाला है—सत्यमनोयोग, असत्यमनोयोग, उभयमनोयोग और अनुभयमनोयोग।

वचन योग के भी चार भेद है—सत्यवचनयोग, असत्यवचनयोग, उभयवचनयोग और अनुभयवचनयोग।

काययोग के ७ (सात) भेद हैं—औदारिक काययोग, औदारिकमिश्रकाययोग, वैक्रियिक काययोग, वैक्रियिकमिश्रकाययोग, आहारक काययोग, आहारकमिश्रकाययोग और कार्माण काययोग।

प्रश्न ८–सत्य मन व सत्यमनोयोग, सत्यवचन व सत्यवचनयोग के लक्षण बताओ ?

उत्तर–समीचीन पदार्थ को विषय करनेवाले मन को सत्यमन कहते हैं और उसके द्वारा जो योग होता है उसको सत्यमनोयोग कहते है।

सत्य पदार्थ को कहने के लिये वचन की प्रवृत्ति हुई तो उसके वचन को सत्य-वचन और उसके द्वारा होने वाले योग को सत्यवचनयोग कहते है।

प्रश्न ९–असत्य मनोयोग, वचनयोग किसे कहते हैं ?

उत्तर–असमीचीन पदार्थ को विषय करने वाले मन को असत्यमन तथा उसके कथन को असत्यवचन कहते है। असत्य मन-वचन के द्वारा जो योग होता है उसको असत्य मन-वचनयोग कहते है।

प्रश्न १०–अनुभय मनोयोग किसे कहते है ?

उत्तर–जो न तो सत्य हो और न मृषा हो उसको असत्यमृषा (अनुभय) मन कहते है और उसके द्वारा जो योग होता है उसको असत्यमृषामनोयोग कहते है।

प्रश्न ११–उभय मनोयोग किसे कहते हैं ?

उत्तर–सत्य और मिथ्या दोनो ही प्रकार के मन को उभय मन कहते है और उनके द्वारा जो योग होता है उसको उभय मनोयोग कहते हैं।

प्रश्न १२–उभयवचनयोग किसे कहते है ?

उत्तर–जो कुछ सत्य और कुछ मृषा वाचक है उसको उभयवचन कहते है उससे होनेवाला योग उभयवचन योग कहते है।

प्रश्न १३–अनुभय वचन किसे कहते है ?

उत्तर–जो न सत्यरूप हो और न मृषारूप ही हो उसको अनुभय वचन कहते है। उनके लिये जो प्रयत्न होता है उसको अनुभय वचन योग कहते हैं।

प्रश्न १४–अनुभय भाषा कौन से जीव की होती है ?

उत्तर–द्वीन्द्रिय से लेकर असज्ञी पञ्चेन्द्रिय तक सभी अमनस्क जीवो की

अनक्षरात्मक भाषा और सज्ञी पञ्चेन्द्रियो की आमन्त्रणी आदि भाषाएँ अनुभय भाषा है इनके स्वामी दो इन्द्रिय से सज्ञी पञ्चेन्द्रिय तक के जीव है ।

प्रश्न १५–सत्य-असत्य-उभय-अनुभय को उदाहरण द्वारा बताइये ?

उत्तर–सम्यग्ज्ञान के विषयभूत पदार्थ को सत्य कहते है, जैसे यह जल है। मिथ्याज्ञान के विषयभूत पदार्थ को मिथ्या कहते है, जैसे मरीचिका को यह जल है। दोनो के विषयभुत पदार्थ को उभय कहते हैं, जैसे कमण्डलु को यह घट है, (क्योकि कमण्डलु घट का काम देता है इसलिये कथंचित् सत्य है और घटाकार नही है) इसलिये कथचित् असत्य भी है । जो दोनो प्रकार के ज्ञान का विषय न हो उसको अनुभय कहते हैं जैसे सामान्यरूप से यह प्रतिभास होना कि यह कुछ है । यहाँ सत्य-असत्य का कुछ भी निर्णय नही हो सकता, इसलिये अनुभय है ।

प्रश्न १६–आमत्रणी आदि अनुभय भाषाएँ कौन सी है ?

उत्तर–आमत्रणी, आज्ञापणी, याचनी, आपृच्छनी, प्रज्ञापनी, प्रत्याख्यानी, सशयवचनी, इच्छानुलोमी और अनक्षरगता ये नव प्रकार की अनुभयात्मक भाषाएँ है ।

प्रश्न १७–सत्य कितने प्रकार का है ?

उत्तर–सत्य दस प्रकार का है—जनपदसत्य, सम्मतिसत्य, स्थापनासत्य, नामसत्य, रूपसत्य, प्रतीत्यसत्य, व्यवहारसत्य, सभावनासत्य, भावसत्य और उपमासत्य ।

प्रश्न १८–औदारिक काययोग किसे कहते हैं ?

उत्तर–पुरु, महत्, उदार, उराल ये सब शब्द स्थूल अर्थ के वाचक है । उदार मे जो होता है ऐसे मनुष्य और तिर्यञ्च के शरीर को औदारिक कहते है । औदारिक शरीर के अवलम्बन से होनेवाले आत्मप्रदेशो के परिस्पन्दन को औदारिक काययोग कहते है ।

प्रश्न १९–औदारिकमिश्रकाययोग किसे कहते है ?

उत्तर–औदारिक शरीर की पर्याप्ति पूर्ण होने के पूर्व कार्मण शरीर की सहायता मे होने वाले औदारिक काययोग को औदारिकमिश्रकाययोग कहते हैं ।

प्रश्न २०–वैक्रियिक काययोग किसे कहते है ?

उत्तर–नाना प्रकार के गुण और ऋद्धियो से युक्त देव तथा नारकियो के शरीर को वैक्रियिक और इसके द्वारा होने वाले योग को वैक्रियिक काययोग कहते है ।

प्रश्न २१–वैक्रियिकमिश्र काययोग किसे कहते है ?

उत्तर–जब तक वह वैक्रियिक शरीर पूर्ण नही होता तब तक उसको वैक्रियिकमिश्र कहते है और उसके द्वारा होने वाले आत्मप्रदेशपरिस्पन्दन को वैक्रियिकमिश्र काययोग कहते है ।

प्रश्न २२–देव-नारकी जीवो को छोड़कर अन्य जीवो का शरीर वैक्रियिक होता है क्या यदि नही तो चक्रवर्ती, बलदेव, नारायण आदि विक्रिया कैसे करते हैं?

उत्तर–बादर तेजस्कायिक और वायुकायिक तथा सज्ञी पर्याप्त पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च व मनुष्य तथा भोगभूमिज तिर्यञ्च मनुष्य भी औदारिक शरीर के द्वारा जिनके कि योग्यता पाई जाती है विक्रिया करते है । यद्यपि इन जीवो का शरीर देव-नारकी के समान वैक्रियिक वर्गणाओ से निष्पन्न नही है तथापि इन जीवो के शरीर मे नाना आकाररूप बनने की योग्यता पाई जाती है । परन्तु इनके अपृथक् विक्रिया हुआ करती है और भोगभूमिज तिर्यञ्च, मनुष्य तथा चक्रवर्ती पृथक् विक्रिया करते है ।

प्रश्न २३–आहारक और आहारकमिश्र काययोग का लक्षण बताइये ।

उत्तर–असयम का परिहार करने के लिये तथा सन्देह को दूर करने के लिये आहारक ऋद्धि के धारक छठे गुणस्थानवर्ती मुनि के आहारक शरीर नामकर्म के उदय से आहारक शरीर होता है । इस शरीर के द्वारा होनेवाले योग को आहारक काययोग कहते है ।

प्रश्न २४–आहारक शरीर को "आहारक" यह सज्ञा किस कारण से है ?

उत्तर–छठे गुणस्थानवर्ती मुनि अपने को सन्देह होने पर इस शरीर के द्वारा केवली के पास जाकर सूक्ष्म पदार्थो का आहरण (ग्रहण) करते है इसलिये इसे आहारक सज्ञा प्राप्त है ।

प्रश्न २५–कार्मणकाय व कार्मणकाययोग का लक्षण क्या है ?

उत्तर–ज्ञानावरणादि अष्टकर्मों के समूह को अथवा कार्मणशरीर नामकर्म के उदय से होनेवाली काय को कार्मणकाय कहते है ।

कार्मणकाययोग के द्वारा होने वाले योगकर्माकर्षण शक्तियुक्त आत्मप्रदेशो के परिस्पन्दन को कार्मणकाययोग कहते है ।

प्रश्न २६–कार्मणकाय योग का काल कितना है ?

उत्तर–कार्मणकाययोग एक, दो अथवा तीन समय तक होता है ।

प्रश्न २७–कार्मण काययोग किस समय होता है ?

उत्तर–विग्रहगति मे और केवलि समुद्घात मे तीन समय पर्यन्त कार्मण काययोग होता है ।

प्रश्न २८–एक काल मे कितने योग होते है ?

उत्तर–एक समय मे एक ही योग होता है । अर्थात् कोई भी दो या अनेक योग एक साथ नही हो सकते ।

प्रश्न २९–छठे गुणस्थान मे वैक्रियिक और आहारक की क्रिया युगपत् होने से दो योग एक साथ बन सकते है ?

उत्तर—छठे गुणस्थान मे वैक्रियिक और आहारक शरीर की क्रिया युगपत् नही होती और योग भी नियम से एक काल एक ही होता है ।

प्रश्न ३०—योग रहित जीव कौन से है ?

उत्तर—जिनके पुण्य-पाप के कारणभूत शुभाशुभ योग नही है वे अयोगिजिन कहलाते है । चौदहवे गुणस्थानवर्ती परमात्मा व सिद्ध भगवन्त योग रहित जीव है ।

प्रश्न ३१—काययोग किसे कहते है ?

उत्तर—काय-शरीर के निमित्त से होने वाले आत्मप्रदेशो के परिस्पन्दन को काय योग कहते है ।

प्रश्न ३२—पाँच काय की स्थिति कितनी है ?

उत्तर— औदारिक शरीर की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्य ।
वैक्रियिक शरीर की उत्कृष्ट स्थिति तैतीस सागर ।
आहारक शरीर की उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त ।
तैजस शरीर की उत्कृष्ट स्थिति छ्यासठ सागर । और
कार्मण शरीर की उत्कृष्ट स्थिति सामान्यतया सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर विशेषरूपेण कर्मों की स्थिति के अनुसार है ।

प्रश्न ३३—सयोगकेवली भगवन्तो के सयोग अवस्था मे कौन सा योग है ?

उत्तर—सयोगकेवली के मन-वचन-काय तीन प्रकार की वर्गणाओ की अपेक्षा से आत्मप्रदेशो का परिस्पन्दन होता है वह योग है, केवली भगवन्तो का यह योग अचिन्तनीय है, मन, वचन के अगोचर है ।

प्रश्न ३४—आस्रव के लक्षण बताइये ?

उत्तर— **स आस्रवः ॥ २ ॥**

सूत्रार्थ—वह तीन प्रकार का योग ही आस्रव है ।

प्रश्न १—आस्रव शब्द की व्युत्पत्ति कीजिये ?

उत्तर—आ उपसर्ग पूर्वक स्रु गतौ धातु से आसमन्तात् स्रवति आगच्छति इति आस्रव शब्द की सिद्धि हुई है ।

प्रश्न २—योग को आस्रव क्यो कहते है ?

उत्तर—जैसे तालाब मे जल लाने का दरवाजा जल के आने का कारण होने से आस्रव कहलाता है वैसे ही आत्मा के साथ बँधने के लिये कर्मयोगरूपी नालो के द्वारा आते है इसलिये योग को आस्रव कहा जाता है ।

प्रश्न ३—ससारी आत्मा कर्मवर्गणाओ को किस प्रकार ग्रहण करती हैं ?

उत्तर—जैसे पानी मे फेका हुआ तप्तायमान लोहे का गोला (पिण्ड) चारो तरफ

से पानी को खीचता/ग्रहण करता है वैसे ही कषायो से सन्तप्त हुआ आत्मा त्रिविधयोगो के द्वारा कर्मवर्गणाओ को ग्रहण करता है ।

प्रश्न ४–जैनाचार्यों ने मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग को बन्ध का कारण कहा है फिर यहाँ मात्र योग को ही आस्रव क्यो कहा है ?

उत्तर–तीन योग मे सभी आस्रव गर्भित हो जाते हैं अत यहाँ आचार्यश्री ने योग को ही आस्रव कहा है ।

प्रश्न ५–कर्म कितने प्रकार का है ?

उत्तर–कर्म दो प्रकार का है—पुण्य कर्म और पाप कर्म ।

प्रश्न ६–योग कौन से कर्म के आस्रव का कारण है ।

उत्तर– **शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य ॥ ३ ॥**

सूत्रार्थ–शुभयोग पुण्य का और अशुभयोग पाप का आस्रव है ।

प्रश्न १–शुभयोग और अशुभयोग किसे कहते हैं ?

उत्तर–जो योग शुभ परिणामो के निमित्त से होता है वह शुभयोग है तथा जो योग अशुभ परिणामो के निमित्त से होता है वह अशुभयोग है । शुभयोग सातावेदनीय, शुभ आयु, शुभ नाम और उच्चगोत्र लक्षण पुण्य का कारण है और अशुभयोग, अशुभ आयु, अशुभनाम, अशुभगोत्र और असातावेदनीय का कारण है ।

प्रश्न २–शुभ-अशुभ योग के भेद कितने है ?

उत्तर–शुभ योग के तीन भेद है—शुभ मन, वचन और काय योग और अशुभयोग के भी तीन भेद है—अशुभ मन, वचन और काययोग ।

प्रश्न ३–शुभ मन-वचन-काय योग के योग्य परिणाम कौन से है ?

उत्तर–प्राणियो की रक्षा करना (अहिसा) झूठ चोरी नही करना, ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना आदि शुभ काययोग है । सत्य, हित मित, प्रिय वचन बोलना शुभ वचनयोग है और अर्हत सिद्धादि की भक्ति तप मे रुचि श्रुत का विनय आदि शुभ मनोयोग है ।

प्रश्न–अशुभ मन-वचन-काययोग के परिणाम कौन से है ?

उत्तर–जीवो का घात करना (हिसा) झूठ, चोरी, मैथुन आदि अशुभ काय योग है । असत्य, अहितकारी, अप्रिय, कर्कश, कर्णशूल, असभ्य वचन बोलना अशुभ वचनयोग है । किसी के मारने का विचार ईर्ष्या, असूया, डाह आदि अशुभ मनोयोग है ।

प्रश्न५–हिसा, झूठ, चोरी, निदा, बुरे परिणाम आदि को अशुभयोग क्यो कहा ?

उत्तर–अशुभ मन-वचन-काययोग मे परिणाम अशुभ रहते है क्योकि सक्लेशपरिणामजनित हैं । तथा पापकर्म के उपार्जन मे हेतुभूत आर्तरौद्रध्यानमय परिणाम के द्वारा उत्पन्न होते है ।

प्रश्न ६–अहिसा, ब्रह्मचर्य, सत्यवचन, ईर्ष्यादि रहित परिणाम आदि को शुभयोग क्यो कहते हैं ?

उत्तर–शुभ मन-वचन-काययोग विशुद्ध परिणाम जनित होने से शुभयोग कहलाते हैं ।

प्रश्न ७–पुण्य किसे कहते है ?

उत्तर–"पुनात्यात्मान पूय्यतेऽनेनेति वा पुण्यम्" जो आत्मा को पवित्र करता है या जिससे आत्मा पवित्र होता है, उसे पुण्य कहते है । जैसे सातावेदनीय आदि ।

प्रश्न ८–पाप किसे कहते है ?

उत्तर–"पाति रक्षति आत्मान शुभादिति पापम्" जो आत्मा को शुभ से बचाता है वह पाप है । जैसे असातावेदनीय आदि ।

प्रश्न ९–शुभ और अशुभ कर्म का कारण होने मात्र से योग शुभ या अशुभ होता है क्या ?

उत्तर–ऐसा नही है । क्योकि ऐसा मानने पर सयोगकेवली के भी शुभाशुभ कर्म आस्रव का प्रसग आयेगा, परन्तु केवली के शुभाशुभ कर्म का आस्रव नही है ।

प्रश्न १०–शुभ योग भी ज्ञानावरणादि कर्मबन्ध का हेतु होता है यथा कोई कहता है—हे विद्वान् ! आप उपवास किये हुए हो इसलिये इस समय पठन-पाठन मत करो । ऐसा निषेध करने पर उसे ज्ञानावरणादि कर्मों का बन्ध होता है । हितप्रद बात करने पर भी यदि कर्मबन्ध होता है तो यह एक अशुभयोग ही कहना चाहिये?

उत्तर–जो कोई हितरूप परिणामो से पढ़ते हुए ज्ञानी तपस्वी आदि को रोकता है तब चित्त मे यह अभिप्राय है कि यदि इस समय विश्रान्ति कर लेगे तो आगे तप-श्रुत मे बाधा नही आयेगी । इस हितप्रद अभिप्राय से पठनादि का निषेध करने पर भी वह किंचित् मात्र भी अशुभ-आस्रव का भागी नही होता है क्योकि निषेधक के परिणाम विशुद्ध है कहा भी है—

विशुद्धि और सक्लेशपरिणाम ही स्वपरस्थ सुख और दु ख रूप पुण्य और पाप के कारण है । अर्थात् स्वपरस्थ विशुद्धि परिणामो से शुभकर्म का आस्रव होता है और सक्लेश परिणामो से अशुभकर्म का आस्रव होता है । यदि ऐसा नही है तो अर्हंत का उपदेश व्यर्थ होता है ।

प्रश्न ११–ससार के सभी जीवो के समान आस्रव होता है या कोई विशेषता है ?

उत्तर– **सकषायाकषाययो: साम्परायिकेर्यापथयो: ॥ ४ ॥**

सूत्रार्थ–कषाय सहित और कषाय रहित आत्मा के क्रम से साम्परायिक और ईर्यापथ आस्रव होता है ।

प्रश्न १–आस्रव के कितने भेद है तथा ये भेद किस अपेक्षा से है ?

उत्तर–आस्रव के दो भेद है—साम्परायिक आस्रव और ईर्यापथ आस्रव । ये भेद स्वामी की अपेक्षा है । कषाय सहित जीव के साम्परायिक आस्रव होता है और कषाय रहित जीव के ईर्यापथ आस्रव होता है ।

प्रश्न २–सकषाय किसे कहते है ?

उत्तर–कष् धातु हिसा अर्थ मे होती है । अत जो आत्मा को कषती है, आत्मा की हिसा करती है, आत्मा को दुर्गति मे ले जाती है वह **कषाय** है । कषाय सहित जो मिथ्यादृष्टि आदि आत्मा है वह सकषाय कहलाती है ।

प्रश्न ३–अकषाय किसे कहते है ?

उत्तर–उपशान्त कषायादि गुणस्थानवर्ती आत्मा अकषाय है ।

प्रश्न ४–कषाय का कार्य क्या है ?

उत्तर–कषायो का कार्य आत्मा का कर्मों के साथ सबध मे कारण होना है। जैसे पीपल की छाल, हरड़, बहेड़ा काषाय होकर वस्त्र मे मजिष्ठारूप श्लेष का कारण होते है अर्थात् जिनके कारण वस्त्र मे रग विशिष्ट रूप से आता है वैसे ही क्रोध-मान-माया और लोभ रूप कषाय आत्मा के कर्मश्लेष (सम्बन्ध) मे कारण होती है।

प्रश्न ५–साम्परायिक किसे कहते है ?

उत्तर–स सम्यक् पर उत्कृष्ट, "अय" गति । पर्यटन प्राणियो का जहाँ होता है, वह साम्पराय ससार है । साम्पराय, ससार एकार्थवाची है । अर्थात् जो कर्म ससार का प्रयोजक है, ससार के पर्यटन का कारण है, वह साम्परायिक है ।

प्रश्न ६–ईर्यापथ किसे कहते है ?

उत्तर–ईर गतौ धातु से "ईरण" ईर्या शब्द की व्युत्पत्ति होती है । ईर्या का अर्थ है—योग गति, योगो की प्रवृत्ति, काय-वचन और मन का व्यापार वा काय, वचन और मनोवर्गणाओ का अवलम्बन लेकर आत्मप्रदेशो मे जो परिस्पन्द—जीवप्रदेशो का कम्पन होता है, वह ईर्या कहलाती है । ईर्या (योग) ही कर्म के आस्रव का पथ (मार्ग) है, वह ईर्यापथ कहलाता है ।

प्रश्न ७–साम्परायिक आस्रव किसे कहते है ? इसका स्वामी कौन है ?

उत्तर–कषाय के द्वारा आस्रव जिन कर्मों का होता है, वह साम्परायिक आस्रव है । मिथ्यादृष्टि आदि कषाय सहित जीवो के ससार मे परिभ्रमण का कारणभूत साम्परायिक आस्रव होता है ।

प्रश्न ८–ईर्यापथ आस्रव व उसके स्वामी बताइये ?

उत्तर–ईर्या (योग) के द्वारा आस्रव जिन कर्मों का होता है वह ईर्यापथ आस्रव

है । उपशान्तकषाय आदि कषायरहित गुणस्थानवर्ती जीवो के ससार के अपरिभ्रमण मे कारणभूत ईर्यापथ आस्रव होता है ।

प्रश्न ९–ईर्यापथ आस्रव को ससार परिभ्रमण का कारण नही माना और साम्परायिक आस्रव को ससार परिभ्रमण का कारण माना, ऐसा क्यो ?

उत्तर–उपशान्त कषायादि गुणस्थानवर्ती जीवो के योगद्वार से आये हुए कर्म कषाय रहित होने से बन्ध को प्राप्त नही होते अर्थात् उनमे स्थिति, अनुभाग नही होता। वे अनन्तर समय मे ही निर्जीण हो जाते हैं । यहाँ मात्र प्रकृति व प्रदेश बन्ध ही होता है ।

कषाय सहित जीवो के योग के द्वारा आगत कर्म स्थिति व अनुभाग बन्ध कारक होने से साम्परायिक आस्रव को ससार परिभ्रमण का कारण कहा है ।

प्रश्न १०–योग व कषाय का कार्य क्या है ?

उत्तर–योग का कार्य आस्रव को निमन्त्रण देना मात्र है और कषाय का कार्य आये हुए आस्रव को ठहराना, उसका अच्छी तरह रोकना है । यथा मेहमान को निमन्त्रण देकर आपने अपने घर बुलाया और अच्छी तरह उनका स्वागत किया तो वह ठहर जायेगा । सम्मान नही दिया तो मेहमान उसी समय चला जायेगा । वैसे ही योग कर्म को निमन्त्रण देता है, कषाय उनका सम्मान करती है तो कर्म लम्बे समय की स्थिति–अनुभाग लेकर जीव से चिपक जाते है ।

प्रश्न ११–साम्परायिक आस्रव के भेद कितने हैं ?

उत्तर–इन्द्रियकषायाव्रतक्रियाःपञ्चचतुःपञ्चपञ्चविंशतिसंख्याः पूर्वस्य भेदाः ॥ ५ ॥

सूत्रार्थ–पूर्व के अर्थात् साम्परायिक आस्रव के इन्द्रिय, कषाय, अव्रत और क्रियारूप भेद है । जो क्रम से पाँच, चार, पाँच और पच्चीस है ।

प्रश्न १–इन्द्रिय किसे कहते हैं वे कितनी है ?

उत्तर–अपने-अपने विषयो मे होने वाली इन्द्रियाँ हैं वे स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण पाँच है ।

प्रश्न २–कषाय किसे कहते हैं वे कितनी है ?

उत्तर–कर्मास्रव मे स्थिति, अनुभाग की मुख्य हेतु कषाय है । क्रोध-मान-माया और लोभ के भेद से कषाय चार भेदवाली है ।

प्रश्न ३–अव्रत का लक्षण व भेद बताओ ?

उत्तर–हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह से विरक्त नही होना, उनका त्याग नही करना रूप लक्षण से उपलक्षित पाँच अव्रत है ।

प्रश्न ४–पच्चीस क्रियाओ के नाम व लक्षण क्या है ?

उत्तर–१ सम्यक्त्व क्रिया—चैत्य, गुरु और शास्त्र की पूजा आदि रूप सम्यक्त्व को बढ़ानेवाली सम्यक्त्व क्रिया है ।

२ **मिथ्यात्व क्रिया**—मिथ्यात्व के उदय म जो कुदेव (अन्यदेवता) के स्तवन आदि रूप क्रिया होती है वह मिथ्यात्व क्रिया है ।

३ **प्रयोग क्रिया**—शरीर आदि द्वारा गमनागमन आदि रूप प्रवृत्ति प्रयोग क्रिया है ।

४ **समादान क्रिया**—सयत का अविरति के सन्मुख होना समादान क्रिया है ।

५ **ईर्यापथ क्रिया**—ईर्यापथ की कारणभूत क्रिया ईर्यापथ क्रिया है । (पॉच क्रिया है)

६ **प्रादोषिकी क्रिया**—क्रोध के आवेश से प्रादोषिकी क्रिया होती है ।

७ **कायिकी क्रिया**—दुष्टभाव युक्त होकर उद्यम करना कायिकी क्रिया है ।

८ **आधिकरणिकी क्रिया**—हिसा के साधनो को ग्रहण करना आधिकरणिकी क्रिया है ।

९ **पारितापिकी क्रिया**—जो दु ख की उत्पत्ति का कारण है वह पारितापिकी क्रिया है ।

१० **प्राणातिपातिकी क्रिया**—आयु, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, बलरूप प्राणो का वियोग करने वाली प्राणातिपातिकी क्रिया है । (ये पॉच क्रिया है)

११ **दर्शन क्रिया**—रागवश प्रमादी का रमणीय रूप के देखने का अभिप्राय दर्शन क्रिया है ।

१२ **स्पर्शन क्रिया**- प्रमा [illegible] स्पर्श करने लायक सचेतन पदार्थ का अनुबन्ध स्पर्शन क्रिया ह ।

१३ **प्रात्ययिकी क्रिया**—नये अधिकरणो को उत्पन्न करना प्रात्ययिकी क्रिया है।

१४ **समन्तानुपात क्रिया**—स्त्री-पुरुष और पशुओ के जाने, आने, उठने और बैठने के स्थान मे भीतरी मल का त्याग करना समन्तानुपात क्रिया है ।

१५ **अनाभोग क्रिया**—प्रमार्जन और अवलोकन नही की गई भूमि पर शरीर आदि का रखना अनाभोग क्रिया है । (ये पॉच क्रिया है)

१६ **स्वहस्त क्रिया**—जो क्रिया दूसरो के द्वारा करने की हो उसे स्वय कर लेना स्वहस्त क्रिया है ।

१७ **निसर्ग क्रिया**—पापादन आदिरूप प्रवृत्ति विशेष के लिये सम्मति देना निसर्ग क्रिया है ।

१८ **विदारण क्रिया**—दूसरे ने जो सावद्यकार्य किया है उसे प्रकाशित करना विदारण क्रिया है ।

१९ **आज्ञाव्यापादिकी क्रिया**—चारित्रमोहनीय के उदय से आवश्यक आदि के विषय मे शास्त्रोक्त आज्ञा को न पाल सकने के कारण अन्यथा निरूपण करना।

२० **अनाकांक्ष क्रिया**-धूर्तता और आलस्य के कारण शास्त्र मे उपदेशी गयी विधि का न करना अनादर अनाकाक्ष क्रिया है । (ये पॉच क्रिया हैं)

२१ **प्रारंभ क्रिया**—छेदना, भेदना और रचना आदि क्रिया मे स्वय तत्पर रहना और दूसरे के करने पर हर्षित होना प्रारम्भ क्रिया है ।

२२ **पारिग्राहिकी क्रिया**-परिग्रह का नाश न हो इसलिये जो क्रिया की जाती हे वह पारिग्राहिकी क्रिया है ।

२३ **माया क्रिया**—ज्ञान-दर्शन आदि के विषय मे छल करना माया क्रिया है।

२४ **मिथ्यादर्शन क्रिया**—मिथ्यादर्शन के साधनो से युक्त पुरुष को प्रशसा आदि के द्वारा दृढ़ करना कि तू ठीक करता है मिथ्यादर्शन क्रिया है ।

२५ **अप्रत्याख्यान क्रिया**—सयम का घात करने वाले कर्म के उदय से त्यागरूप परिणामो का न होना अप्रत्याख्यान क्रिया है ।

प्रश्न ५-पच्चीस क्रियाओ का कारण क्या है ?

उत्तर-इन्द्रियॉ, कषाय और अव्रत ये तीनो कारणभूत है और पच्चीस क्रियाएँ कार्यरूप है ।

प्रश्न ६-तीन योग सर्व साधारण है । जीव के परिणाम अनत विकल्प रूप है अत आस्रव मे विशेषता है या सब जीवो मे सामान्य रूप होता है ?

उत्तर- **तीव्रमन्दज्ञाताज्ञातभावाधिकरणवीर्यविशेषेभ्यस्त-द्विशेषः ॥ ६ ॥**

सूत्रार्थ-तीव्रभाव, मन्दभाव, ज्ञातभाव, अज्ञातभाव, अधिकरण और वीर्य की विशेषता के भेद से आस्रव मे विशेषता होती है ।

प्रश्न १-तीव्रभाव किसे कहते है ?

उत्तर-बाह्य और आभ्यन्तर हेतु को उदीरणावश प्राप्त होने के कारण जो उत्कट परिणाम होता है वह तीव्रभाव है ।

प्रश्न २-मन्दभाव किसे कहते है ?

उत्तर-मन्द, अल्प, अनुत्कट जो परिणाम होते हैं उन्हे मन्द भाव कहते है ।

प्रश्न ३-ज्ञातभाव किसे कहते हैं ?

उत्तर-इस प्राणी का मुझे हनन करना चाहिये, इस प्रकार जानकर प्रवृत्ति करना ज्ञातभाव है ।

प्रश्न ४–अज्ञातभाव बताइये ?

उत्तर–मद या प्रमाद के कारण बिना जाने प्रवृत्ति करना अज्ञातभाव है ।

प्रश्न ५–अधिकरण का लक्षण क्या है ?

उत्तर–जिसमे पदार्थ अधिकृत किये जाते है वह अधिकरण है ।

प्रश्न ६–वीर्य किसे कहते है ?

उत्तर–द्रव्य की अपनी शक्ति विशेष को वीर्य कहते है ।

प्रश्न ७–तीव्र-भाव, मन्दभाव आदि से आस्रव मे विशेषता क्यो होती है ?

उत्तर–तीव्र-मन्दादि भावो के निमित्त से ही आस्रव मे विषमता आती है क्योंकि कारण के भेद से कार्य मे भेद होता है ।

प्रश्न ८–वे तीव्र व मन्द भाव कौन से है जिनसे आस्रव मे मन्द या तीव्रता रूप विशेषता होती है ?

उत्तर–क्रोध, राग, द्वेष, सभ्य, असभ्य प्राणियो का सयोग देश-काल आदि बाह्य कारणवश इन्द्रियविषय कषाय, अव्रत और क्रियाओ मे किसी आत्मा मे तीव्र भाव होते हैं अत तीव्र आस्रव होता है और किसी आत्मा मे इन्द्रिय, कषाय, अव्रत और क्रियाओ मे मन्द भाव होता है अत निर्मल परिणाम होने पर मन्द आस्रव होता है।

प्रश्न ९–वे ज्ञात व अज्ञात भाव बताइये जिनसे आस्रव मे मन्दता या तीव्रता आती है ?

उत्तर–किसी जीव की इन्द्रियादि विषयो मे जानकर प्रवृत्ति होती है तो तीव्र (महान्) आस्रव होता है । अज्ञात भाव से इन्द्रियादि मे प्रवृत्ति होने पर अल्प आस्रव होता है । अधिकरण विशेष होने पर भी आस्रव विशेष होता है ।

प्रश्न १०–वीर्य विशेष की अपेक्षा आस्रव मे विशेषता को समझाइये ?

उत्तर–वीर्य विशेष होने पर आस्रव विशेष होता है—जैसे वज्रवृषभनाराच - सहनन वाले पुरुष के इन्द्रिय आदि मे प्रवृत्ति करने पर महान् आस्रव होता है और शेष पॉच सहनन से युक्त पुरुष के पाप करने पर अल्प आस्रव होता है ।

प्रश्न ११–देश-कालादि के भेद से भी आस्रव मे विशेषता आती है क्या ? यदि हॉ तो कैसे ?

उत्तर–१ जैसे घर मे ब्रह्मचर्य व्रत को भग करने पर अल्प आस्रव होता है और देवालय मे ब्रह्मचर्य व्रत को भंग करने पर अधिक आस्रव होता है ।

२ देवालय से भी अधिक आस्रव तीर्थयात्रा को जाते समय मार्ग मे ब्रह्मचर्य भग करने पर होता है ।

३ तीर्थमार्ग से भी तीर्थक्षेत्र मे ब्रह्मचर्य व्रत भग करने पर महान् आस्रव होता है ।

४ इसी प्रकार काल की अपेक्षा देववन्दना आदि के काल मे दुष्प्रवृत्ति करने पर अन्य काल की अपेक्षा महान् आस्रव होता है ।

तात्पर्य यही है कि अन्य क्षेत्र, काल मे किये पापो से धर्म क्षेत्र और धर्मानुष्ठान काल मे किया गया पापास्रव महान् होता है ।

प्रश्न १२–अधिकरण का स्वरूप व भेद बताइये ?

उत्तर– **अधिकरणं जीवाजीवाः ॥ ७ ॥**

सूत्रार्थ–अधिकरण जीव और अजीवरूप है ।

प्रश्न १–अधिकरण किसे कहते है ?

उत्तर–जिसमे पदार्थ अधिकृत किये जाते है, वह द्रव्य अधिकरण है । अथवा जिस द्रव्य का आश्रय लेकर आस्रव उत्पन्न होते है—वह द्रव्य अधिकरण कहलाता है ।

प्रश्न २–जीव अधिकरण किसे कहते है ?

उत्तर–जो आस्रव मुख्यभूत जीव के द्वारा उत्पन्न होता है—अर्थात् जिसमे जीव की मुख्यता रहती है उस आस्रव को जीव अधिकरण कहते है ।

प्रश्न ३–अजीव अधिकरण किसे कहते है ?

उत्तर–अजीव द्रव्य जिसका निमित्त है, आश्रय है उसे अजीव अधिकरण कहते है ।

प्रश्न ४–जीव-अजीव दोनो आस्रव के अधिकरण कैसे हो सकते है ? मात्र जीव को ही अधिकरण कहना चाहिये था ?

उत्तर–जीव और अजीव ये दोनो आस्रव के अधिकरण है, आधार है । यद्यपि सम्पूर्ण शुभ और अशुभ आस्रव जीव के ही होते है तथापि आस्रव के निमित्त जीव और अजीव दोनो होते है, अत दोनो को आस्रव का अधिकरण कहा गया है ।

प्रश्न ५–जीव-अजीव अधिकरण के भेद कितने है ?

उत्तर–ये जीव-अजीव दोनो अधिकरण दस प्रकार के है—विष, लवण, क्षार, कटुक, अम्ल, स्नेह, अग्नि और खोटे रूप से प्रयुक्त मन, वचन और काय ।

प्रश्न ६–जीवाधिकरण के कितने भेद है ?

उत्तर– **आद्यं संरम्भसमारम्भारम्भयोगकृतकारितानुमतकषाय-विशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः ॥ ८ ॥**

सूत्रार्थ–सरम्भ, समारम्भ, आरम्भ, मन, वचन, काययोग, कृत, कारित, अनुमोदना, क्रोध, मान, माया और लोभ विशेष ये तीन-तीन, तीन और चार हैं। इनको परस्पर गुणा करने से जीवाधिकरण से होनेवाले आस्रव के १०८ भेद है। इनका आधार जीव है।

प्रश्न १–सरम्भ, समारम्भ और आरम्भ के लक्षण बताइये ?

उत्तर–प्रयत्न विशेष को सरम्भ कहते हैं। प्रमादी जीवो का प्राणो की हिसादि कार्यों मे प्रयत्नशील होना सरम्भ है।

हिसादि के साधनो को एकत्र करना समारम्भ है। साध्य क्रिया के साधनो को इकट्ठा करना समारम्भ है।

कार्य करने लगना आरम्भ है।

प्रश्न २–कृत-कारित-अनुमोदना (अनुमत) के लक्षण बताइये ?

उत्तर–कृत-स्वय करना कृत है, दूसरो से कराना कारित है, दूसरो के द्वारा किये हुए कार्यों को भला समझना अनुमोदना है। (अनुमत है)

प्रश्न ३–योग और कषाय कितने है ? लक्षण सहित बताइये ?

उत्तर–आत्मा के प्रदेशो का परिस्पन्द-हलन-चलन योग है। वह निमित्तो के भेद से तीन प्रकार का है—मनोयोग, वचनयोग और काययोग। जो कषती है, आत्मा को दुख देती है और आत्मा के सम्यग्दर्शनादि गुणो का घात करती है वह कषाय है। कषाय के चार भेद है—क्रोध, मान, माया और लोभ।

प्रश्न ४–विशेष किसे कहते है ?

उत्तर–जिससे एक अर्थ दूसरे अर्थ से विशेषता को प्राप्त हो वह विशेष है। यहाँ सूत्र मे आया विशेष शब्द सबके साथ लगाना चाहिये यथा-सरम्भ विशेष, समारम्भ विशेष, आरभ विशेष आदि।

प्रश्न ५–जीवाधिकरण के १०८ भेदो को समझाइये ?

उत्तर–यह जीव किसी भी कार्य को क्रोध या मान या माया या लोभ से करता है। स्वय करता है, कराता है वा अनुमोदना करता है, मन से या वचन अथवा काय से करता है, उस कार्य के लिये सरम्भ करता, समारम्भ करता है पश्चात् आरम्भ करता है। इस प्रकार जीवाधिकरण के ४×३×३×३=१०८ भेद हो जाते है।

प्रश्न ६–जीवाधिकरण के १०८ भेदो को भिन्न-भिन्न रूप से बताइये ?

उत्तर–१ क्रोध कृत काय सरम्भ, २ मान कृत काय सरम्भ ३ माया कृत काय सरम्भ ४ लोभकृत काय सरम्भ। ५ क्रोध कारित काय सरम्भ ६ मान कारित काय सरम्भ ७ माया कारित काय सरम्भ ८ लोभ कारित काय सरम्भ।

९ क्रोधानुमत कायसरम्भ १० मानानुमत काय सरम्भ ११ मायानुमत काय सरम्भ और लोभानुमत काय सरम्भ = कायसबधी १२ ।

१ क्रोध कृत वचन सरभ २ मानकृत वचन सरम्भ ३ माया कृत वचन सरम्भ ४ लोभकृत वचन सरम्भ ५ क्रोध कारित वचन सरम्भ ६ मानकारित वचन सरम्भ ७ माया कारित वचन सरम्भ ८ लोभ कारित वचन सरम्भ । ९ क्रोधानुमत वचन सरभ १० मानानुमत वचन सरंभ ११ मायानुमत वचन सरम्भ १२ लोभानुमत वचन सरम्भ । वचनसबधी १२ ।

१ क्रोध कृत मन सरम्भ २ मानकृत मन सरम्भ ३ मायाकृत मन सरभ ४ लोभकृत मनसरम्भ । ५ क्रोध कारित मन सरम्भ ६ मान कारित मन सरम्भ ७ माया कारित मन सरम्भ और ८ लोभ कारित मन सरम्भ । ९ क्रोधानुमत मन सरम्भ १० मानानुमत मन सरम्भ ११ मायानुमत मन सरम्भ और १२ लोभानुमत मन सरम्भ मन सबधी १२ ।

इस प्रकार सरम्भ के ३६ भेद तथा समारभ के ३६ और आरभ के ३६ भेद होते है और ये सब मिलकर जीवाधिकरण के १०८ भेद होते हैं ।

प्रश्न ७–माला मे १०८ दाने क्यो होते है ?

उत्तर–यह ससारी जीव प्रतिदिन पॉच पापो को करता है । एक पाप को करने मे १०८ भग से पाप होता है—यह जीव किसी **भी पाप** को करने का विचार (सरम्भ) करता है, पाप सामग्री जुटाकर समारभ करता है, फिर पाप मे प्रवृत्ति रूप आरभ करता है, यह पाप स्वय करता है, कराता है, करने वाले की अनुमोदना करता है, मन से करता है, वचन व काय से करता है, क्रोध, मान, माया व लोभ के वश होकर करता है । इसप्रकार एक पाप को दूर करने के लिये (३x३x३x४) १०८ दाने माला में होते है । उस माला द्वारा जप करने से पाप का प्रक्षालन होता है ।

प्रश्न ८–ससारी जीव प्रतिदिन पॉच पाप करते है उनके पापो का प्रक्षालन कैसे हो सकता है ?

उत्तर–आचार्य देव गुरुवर विमलसागर जी महाराज कहा करते थे—इस जीव को पॉच पापो का प्रक्षालन करने के लिये प्रतिदिन ५ माला णमोकार मन्त्र की जपना चाहिये । इससे अधिक जपता है तो इसका पुण्य बढ़ता है और कम जपता है तो पाप बढ़ता है ।

प्रश्न ९–अजीवाधिकरण के भेद कितने है ?

उत्तर– **निर्वर्तनानिक्षेपसंयोगनिसर्गा**

द्विचतुर्द्वित्रिभेदाः परम् ॥ ९ ॥

सूत्रार्थ–दो निर्वर्तना, चार निक्षेप, दो सयोग और तीन निसर्ग के भेद से अजीवाधिकरण के ११ भेद होते है ।

प्रश्न १–निर्वर्तना का अर्थ व भेद बताओ ?

उत्तर–निर्वर्तना का अर्थ रचना (निष्पादना) है । इसके दो भेद है— १ मूलगुण-निर्वर्तना २ उत्तरगुण निर्वर्तना ।

प्रश्न २–मूलगुण निर्वर्तना किसे कहते है ?

उत्तर–मूलगुण निर्वर्तना के पॉच भेद है—शरीर, वचन, मन, प्राण और अपान इनकी रचना करना मूलगुण निर्वर्तना है ।

प्रश्न ३–उत्तरगुण निर्वर्तना का लक्षण क्या है ?

उत्तर–काष्ठकर्म, पुस्तकर्म, चित्रकर्म आदि उत्तरगुण निर्वर्तना है ।

प्रश्न ४–जीव के खिलौने बनाना, साड़ी, शर्ट आदि वस्त्रो पर जीव के चित्र बनाना, लिखना उन्हे पहनना इसमे क्या हानि है ?

उत्तर–जीव के खिलौने बनाना, वस्त्रो पर जीवो के चित्र बनाकर पहनने से अशुभास्त्रव होता है । बच्चो को शक्कर से बने जीवो के खिलौने खिलाना भाव हिसा है कारण कि ऐसी वस्तुओ के खाने से भावहिसा होती है, बच्चा बूढ़ा एक ही बात कहेगा—मैंने हाथी, मुर्गा, कुत्ता खाया । तथा जीवो के चित्र बने वस्त्रो का उपयोग भी अहिसक मानव को कभी नही करना चाहिये । इनके पहनने या उपयोग करने मे भावहिसा होती है अशुभास्त्रव होता है ।

प्रश्न ५–निक्षेप किसे कहते है ? इसके भेद कितने है ?

उत्तर–स्थापना करना या रखना निक्षेप कहलाता है । इसके ४ भेद है— अप्रत्यवेक्षितनिक्षेपाधिकरण, दुष्प्रमृष्टनिक्षेपाधिकरण, सहसानिक्षेपाधिकरण और अनाभोगनिक्षेपाधिकरण ।

प्रश्न ६–अप्रत्यवेक्षित आदि चार निक्षेपो के लक्षण बताइये ?

उत्तर–१ बिना देखे किसी वस्तु को रख देना अप्रत्यवेक्षितनिक्षेपाधिकरण है । २ ठीक तरह से नही शोधी गई भूमि मे किसी वस्तुको रखना दु प्रमष्टनिक्षेपाधिकरण है । ३ शीघ्रतापूर्वक किसी वस्तु को रखना सहसानिक्षेपाधिकरण है । ४ किसी वस्तु को बिना देखे अयोग्य स्थान मे रखना अनाभोगनिक्षेपाधिकरण है ।

प्रश्न ७–अनाभोग किसे कहते है ?

उत्तर–बार-बार न देखकर उपकरण आदि को भूमि आदि पर रखना अनाभोग कहलाता है ।

प्रश्न ८–सयोग किसे कहते है, इसके कितने भेद है ?

उत्तर–सयोग का अर्थ मिश्रित करना अर्थात मिलाना है । इसके दो भेद है—

१ भक्तपानसयोगाधिकरण २ उपकरणसंयोगाधिकरण ।

प्रश्न ९–भक्तपान संयोग और उपकरण सयोग के लक्षण बताओ ?

उत्तर–किसी अन्नपान को दूसरे अन्नपान मे मिलाना अन्नपानसयोगाधिकरण है । कमण्डलु आदि उपकरणो को दूसरे उपकरणो के साथ मिलाना उपकरणसयोगाधिकरण है ।

प्रश्न १०–निसर्ग का अर्थ क्या है ?

उत्तर–प्रवृत्ति करने को या प्रवर्तन को निसर्ग कहते है । इसके तीन भेद है— कायनिसर्गाधिकरण, वाक्‌निसर्गाधिकरण और मनोनिसर्गाधिकरण ।

प्रश्न ११–काय आदि तीनो निसर्गाधिकरण के लक्षण बताइये ?

उत्तर–काय से होने वाली प्रवृत्ति कायनिसर्गाधिकरण है, वचन से होने वाली प्रवृत्ति वचननिसर्गाधिकरण है तथा मन से होने वाली प्रवृत्ति मनोनिसर्गाधिकरण है ।

प्रश्न १२–निर्वर्तना आदि को अजीवाधिकरण क्यो कहते है ?

उत्तर–निर्वर्तना, निक्षेप, सयोग और निसर्ग ये चार आस्रव अजीव द्रव्य को आश्रय करके उत्पन्न होते हैं अत इन्हे अजीवाधिकरण कहते है ।

प्रश्न १३–ज्ञानावरण और दर्शनावरण के आस्रव के हेतु कौन-कौन है ?

उत्तर– **तत्प्रदोषनिह्नवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयोः ॥ १० ॥**

सूत्रार्थ–ज्ञान और दर्शन के विषय मे प्रदोष, निह्नव, मात्सर्य, अन्तराय, आसादन और उपघात ये ज्ञानावरण और दर्शनावरण के आस्रव है ।

प्रश्न १–प्रदोष किसे कहते है ?

उत्तर–तत्त्वज्ञान मोक्ष का साधन है उसका गुणगान करते समय उस समय बोलने वाले के भीतर जो पैशून्य रूप परिणाम होते है वह प्रदोष है ।

प्रश्न २–निह्नव का लक्षण क्या है ?

उत्तर–किसी कारण से "ऐसा नही है, मै नही जानता" ऐसा कहकर ज्ञान का अपलाप करना निह्नव है ।

प्रश्न ३–मात्सर्य किसे कहते हैं ?

उत्तर–विज्ञान का अभ्यास किया है वह देने योग्य भी है तो भी जिस कारण से वह नही दिया जाता है वह मात्सर्य है ।

प्रश्न ४–अन्तराय किसे कहते है ?

उत्तर–ज्ञान का विच्छेद करना अन्तराय है ।

प्रश्न ५–आसादन किसे कहते है ?

उत्तर–दूसरा कोई ज्ञान का प्रकाश कर रहा हो तब शरीर या वचन से उसका निषेध करना आसादन है ।

प्रश्न ६–उपघात किसे कहते हैं ?

उत्तर–प्रशसनीय ज्ञान मे दूषण लगाना उपघात है ।

प्रश्न ७–उपघात और आसादन मे क्या अन्तर है ?

उत्तर–प्रशस्त ज्ञान की विनय न करना, उसकी अच्छाई की प्रशसा न करना आदि आसादन है परन्तु ज्ञान को अज्ञान समझकर ज्ञान के नाश का इरादा रखना उपघात है । इस प्रकार आसादन और उपघात मे अन्तर है ।

प्रश्न ८–सूत्र मे तत् शब्द किस हेतु से दिया है ?

उत्तर–सूत्र मे तत् शब्द ज्ञान-दर्शन का निर्देश करने के लिये दिया है । इसकी विशेषता यह भी है कि किसी ने पूछा "ज्ञानावरण" दर्शनावरण का आस्रव किन कारणो से होता है ? उसी के समाधान मे आचार्य श्री ने सूत्र मे "तत्" शब्द दिया है ।

प्रश्न ९–एक ही प्रदोषादिक ज्ञानावरण और दर्शनावरण दोनो के आस्रव के कारण कैसे हो सकते है ?

उत्तर–एक कारण से अनेक कार्य होते देखे जाते है अत· प्रदोषादिक के एक समान रहते हुए भी इनसे ज्ञानावरण और दर्शनावरण दोनो का आस्रव होता है । ज्ञानसम्बन्धी प्रदोषादिक ज्ञानावरण के आस्रव है और दशर्न सम्बन्धी प्रदोषादिक दर्शनावरण के आस्रव हैं । एक कारण से अनेक कार्य व अनेक कारणो से एक कार्य होता देखा जाता है ।

प्रश्न १०–कोई बालक पढ रहा था उसकी रोशनी बुझा दी, एक ज्ञानी को द्वेष से मरवा डाला, वे कौन थे, प्रवचन हॉल मे बात-चीत करना आदि क्रियाओ से कौन-कौन दोष लगते हैं ?

उत्तर–बालक को पढने मे बाधा होने से "अन्तराय" दोष, ज्ञानी को मरवा देने से उपघात दोष है "ज्ञानी टोडरमलजी" को मरवाया गया था तथा प्रवचन मे बाते करने से अन्तराय दोष होता है इन सब कारणो से ज्ञानावरण-दर्शनावरण कर्मो का आस्रव होता है ।

प्रश्न ११–क्या सूत्र मे आये शब्दो के अलावा अन्य और कारण भी हैं जो ज्ञानावरण, दर्शनावरण के आस्रव के कारण हैं ।

उत्तर–जी हॉ और भी है—१ आचार्य उपाध्याय के साथ शत्रुता रखना २ अकाल मे अध्ययन करना, ३ अरुचिपूर्वक पढ़ना ४ पढने मे आलस्य करना ५ व्याख्यान को अनादरपूर्वक सुनना ६ जहाँ प्रथमानुयोग बाँचना चाहिये वहा अन्य

अनुयोग बाँचना ७ तीर्थोपरोध ८ बहुश्रुत के सामने गर्व करना ९ मिथ्योपदेश १० बहुश्रुत का अपमान ११ स्वपक्ष का त्याग १२, परपक्ष का ग्रहण १३ ख्याति-पूजा आदि की इच्छा से असम्बद्ध प्रलाप १४ सूत्रविरुद्धव्याख्यान १५ कपट से ज्ञान का ग्रहण करना १६ आजीविका के लिये शास्त्र बेचना प्राणातिपात आदि ज्ञानावरणकर्म के आस्रव है ।

१ देव-गुरु के दर्शन मे मात्सर्य करना २ दर्शन मे अन्तराय करना ३ किसी की चक्षु को उखाड़ देना, इन्द्रियो का अभिमान करना ४ अपने नेत्रो का अहकार करना ५ दीर्घनिद्रा ६ अतिनिद्रा ७ आलस्य ८ नास्तिकता ९ सम्यग्दृष्टियो को दोष देना, १० कुशास्त्रो की प्रशसा करना, मुनियो से जुगुप्सा आदि करना और प्राणातिपात आदि दर्शनावरण कर्म के आस्रव है ।

प्रश्न १२–असातावेदनीय कर्म का आस्रव किन कारणो से होता है ?

उत्तर– **दु:खशोक तापाक्रन्दनवधपरिदेवनान्यात्मपरोभय-स्थानान्यसद्वेद्यस्य ॥ ११ ॥**

सूत्रार्थ–स्व, पर तथा दोनो मे किये जाने वाले दु ख, शोक, ताप, आक्रन्दन, वध और परिदेवन असातावेदनीय कर्म के आस्रव है ।

प्रश्न १–दु ख, शोक, ताप, आक्रन्दन, वध और परिदेवन के लक्षण बताइये?

उत्तर–पीड़ा रूप आत्मा का परिणाम **दु:ख** है । उपकार करने वाले से सम्बन्ध के टूट जाने पर जो विकलता होती है वह **शोक** है । अपवाद आदि के निमित्त से मन के खिन्न होने पर जो तीव्र सताप होता है वह **ताप** है । परिताप के कारण आसू गिराते हुए विलाप करते हुए खुलकर रोना **आक्रन्दन** है । आयु, इन्द्रिय, बल और श्वासोच्छ्वास का जुदा कर देना **वध** है । सक्लेशरूप परिणामो के होने पर गुणो का स्मरण और प्रशसा करते हुए स्व-परोपकार की इच्छा से करुणाजनक रोना **परिदेवन** है ।

प्रश्न २–क्या असातावेदनीय कर्म के आस्रव के अन्य भी कारण है ?

उत्तर–जी हाँ । अशुभप्रयोग, परनिन्दा, पिशुनता, अदया, आगोपाग का छेदन-भेदन, ताड़न, त्रासन, तर्जन, भर्त्सना, मारण, रोधन, रस्सी से बाधना, मर्दन करना, दमन करना, आत्मप्रशसा, स्व-पर मे क्लेश उत्पन्न करना, अति आरभ, अतिपरिग्रह, मन-वचन-काय की कुटिलता, पाप क्रियाओ से आजीविका करना अनर्थदण्ड, विष का मिश्रण, बाण, जाल, पिञ्जरे आदि का बनाना, मारण यत्र का निर्माण आदि पापभूतक्रियाएँ जो स्व-पर के निमित्त क्रोधादिक के वशीभूत की जाती है असाता-वेदनीय कर्म के आस्रव की कारण है ।

प्रश्न ३–यदि स्व-पर और उभयस्थ दु खशोक आदि असातावेदनीय के कारण

हैं तो जैन साधुओ की केशलोच करना, आतापन योगादि करना तथा दूसरो को भी वैसा उपदेश देना आदि उचित क्यो बताया है ?

उत्तर–यह कोई दोष नही है क्योकि अन्तरग मे क्रोधादिक के आवेश से जो दु खादिक पैदा होते है वे असातावेदनीय के आस्रव के कारण है, दिगम्बर जैन साधुओ की केशलोच, उपवास आदि क्रियाएँ क्रोधादिक के आवेश से रहित है अत असातावेदनीय के आस्रव की कारण नही है ।

प्रश्न ४–जैन साधु के उपवास, केशलोच, नग्नता आदि क्रियाओ से दु ख तो होता ही है फिर वे असातावेदनीय के कारण कैसे नही है ? उदाहरण द्वारा स्पष्ट कीजिये ।

उत्तर–जैसे अत्यत दयालु वैद्य के द्वारा फोड़े की चीर-फाड़ आदि करते समय नि शल्य सयत को दु ख देने मे निमित्त होने पर भी केवल बाह्य निमित्त मात्र से पापबध नही होता वैसे ही जो भिक्षु ससार शरीर भोगो से विरक्त हो ससार के दु खो मे छूटने के उपायो मे लगा हुआ है उसे आगम कथित कर्म मे प्रवृत्ति "उपवास आदि" करते समय सक्लेश परिणामो के नही होने से पापबध नही होता है ।

प्रश्न ५–भौतिक विज्ञान की उन्नति मे "बम", एटमबम आदि जो आविष्कार हुए है, जिनसे एक समय हजारो व्यक्ति मारे जा सकते है तथा दीवाली पर फटाके छोड़े जाते है इन सबसे कौन से कर्म का आस्रव होता है ।

उत्तर–तीव्र असातावेदनीय कर्म का ।

प्रश्न ६–सातावेदनीय कर्म के आस्रव के कारणो को बताइये ?

उत्तर– **भूतव्रत्यनुकम्पादानसरागसंयमादियोगः क्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य ॥ १२ ॥**

सूत्रार्थ–भूत-अनुकम्पा, व्रती अनुकम्पा, दान और सरागसयम आदि का योग तथा क्षान्ति और शौच ये सातावेदनीय कर्म के आस्रव है ॥ १२ ॥

प्रश्न १–भूत किसे कहते है ?

उत्तर–जो कर्मोदय के वश नरकादि विविध गतियो मे होते है (उत्पन्न होते है, भ्रमण करते है) वे प्राणी वर्ग भूत कहलाते है ।

प्रश्न २–व्रती का लक्षण क्या है ?

उत्तर–हिसा, झूठ, चोरी, कुशील व परिग्रह इन पाँच पापो से एकदेश-सर्वदेश विरत होने वाले श्रावक और मुनि व्रती कहलाते हैं ।

प्रश्न ३–अनुकम्पा का लक्षण क्या है ?

उत्तर–अनुग्रह से दयार्द्र चित्तवाले के दूसरे की पीड़ा को अपनी ही मानने का जो भाव होता है वह अनुकम्पा है ।

प्रश्न ४–भूत अनुकम्पा और व्रती अनुकम्पा मे क्या भेद है ? भूत मे सभी का ग्रहण हो जाता है फिर व्रती शब्द अलग क्यो दिया ?

उत्तर–सामान्य विशेष का भेद है । भूत अनुकम्पा का अर्थ सब प्राणियो पर अनुकम्पा रखना है तथा व्रतियो पर होने वाली अनुकपा व्रती अनुकम्पा है । यद्यपि भूत अुकम्पा मे व्रती का ग्रहण हो जाता है, तथापि व्रती विषयक अनुकम्पा की प्रधानता दिखाने को व्रती पद अलग से ग्रहण किया है ।

प्रश्न ५–दान किसे कहते हैं ?

उत्तर–दूसरे का उपकार हो इस बुद्धि से अपनी वस्तु का अर्पण करना दान है ।

प्रश्न ६–सराग किसे कहते है ?

उत्तर–जो ससार के कारणो के त्याग के प्रति उत्सुक है परन्तु जिसके मन से राग के सस्कार नष्ट नही हुए हैं वह सराग कहलाता है ।

प्रश्न ७–सयम का लक्षण क्या है ?

उत्तर–प्राणी और इन्द्रियो के विषय मे अशुभ प्रवृत्ति के त्याग को सयम कहते है ।

प्रश्न ८–सरागसयम का स्वरूप बताइये ?

उत्तर–रागी जीव का सयम या रागसहित सयम सरागसयम कहलाता है ।

प्रश्न ९–सूत्र मे सराग के साथ "आदि" शब्द क्यो दिया है ?

उत्तर–सूत्र मे आये सरागसयम के आगे "आदि" शब्द से सयमासयम, अकामनिर्जरा और बालतप का ग्रहण होता है ।

प्रश्न १०–क्षान्ति और शौच का लक्षण क्या है ?

उत्तर–क्रोधादि दोषो का निराकरण करना क्षान्ति है । लोभ के प्रकारो का त्याग करना शौच है ।

प्रश्न ११–सूत्र मे "शौचम्-इति" इति शब्द किसका प्ररूपक है ?

उत्तर–सूत्र मे इति शब्द प्रकारवाची है । वे प्रकार ये है—अरहत की पूजा करने मे तत्परता तथा बाल और वृद्ध तपस्वियो की वैय्यावृत्य आदि करना है ।

प्रश्न १२–अनुकम्पा और दया मे क्या अन्तर है ?

उत्तर–अनुकम्पा दूसरो पर की जाती है, दया स्वय पर की जाती है ।

प्रश्न १३–अनन्त ससार का कारणभूत दर्शनमोहनीय कर्म का आस्रव किन परिणामो से होता है ?

उत्तर– **केवलिश्रुतसंघधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य ॥ १३ ॥**

सूत्रार्थ–केवली, श्रुत, सघ, धर्म और देव इनका अवर्णवाद दर्शनमोहनीय कर्म का आस्रव है ।

प्रश्न १–अवर्णवाद किसे कहते हैं ?

उत्तर–गुणवान पुरुष मे जो दोष नही हैं उनका उनमे उद्‌भावन करना अवर्णवाद है ।

प्रश्न २–केवली किन्हें कहते हैं तथा उनका अवर्णवाद किस प्रकार होता है? उदाहरण दीजिये ?

उत्तर–जिनका ज्ञान आवरण रहित है वे केवली कहलाते हैं । केवली भगवान को कवलाहार नही होता है । केवली तो कवलाहार से जीते हैं ऐसा कहना केवली भगवन्तो का अवर्णवाद है ।

प्रश्न ३–श्रुत क्या है व श्रुत का अवर्णवाद कैसे होता है ?

उत्तर–केवली भगवन्तो के उपदेशो को स्मरण कर गणधर देव जो ग्रन्थो की रचना करते है वह श्रुत कहलाता है । श्रुत मे मास खाना सर्वथा निषेध ही कहा है। परन्तु शास्त्र मे मास भक्षण आदि को निर्दोष कहा है इत्यादि रूप से कथन करना श्रुत का अवर्णवाद है ।

प्रश्न ४–सघ व सघ का अवर्णवाद क्या है ?

उत्तर–रत्नत्रय से युक्त श्रमणों का समुदाय सघ कहलाता है । ये साधु सघ अपने आचरण से निर्मल व पवित्र होता है, इस साधु सघ को ये शूद्र है, अपवित्र है, अशुचि है आदि कहकर इनका अपवाद करना सघ का अवर्णवाद है ।

प्रश्न ५–धर्म व धर्म का अवर्णवाद क्या है ?

उत्तर–सर्वज्ञ द्वारा प्रतिपादित आगम मे उपदिष्ट अहिंसा ही धर्म है । जिनदेव द्वारा कथित धर्म मे कोई सार नही है, जो इसका सेवन करते है व असुर होंगे ऐसा कहना धर्म का अवर्णवाद है ।

प्रश्न ६–देव और देव का अवर्णवाद क्या है ?

उत्तर–देवगति के चार निकाय के देव देव कहलाते है । इन देवो का मानसिक आहार होता है समय पर कण्ठ मे अमृत झर जाता है । ऐसे देवो को ये "सुरा और मास का सेवन करते हैं" कहना देवो का अवर्णवाद है ।

प्रश्न ७–अपवाद निन्दा और अवर्णवाद मे क्या भेद है ?

उत्तर–अपवाद, निन्दा, अवर्णवाद पर्यायवाची शब्द है ।

प्रश्न ८–किसी भी व्यक्ति पर झूठा दोषारोपण करना, किसी का भी अपवाद, निन्दा या अवर्णवाद से क्या होता है ?

उत्तर–दर्शनमोहनीय कर्म का आस्रव होता है ।

प्रश्न ९–निन्दक और निन्दा सुनने वाले मे अधिक दोषी कौन है ?

उत्तर–निन्दक से निन्दा सुनने वाला अधिक दोषी है । निन्दक का आश्रय निन्दा सुनने वाला है यदि वह आश्रय नही दे तो निन्दक को चुप रहना पड़ेगा । इसीलिये निन्दक के समान निन्दा सुनने वाले को भी दर्शनमोहनीय कर्म का आस्रव होता है ।

प्रश्न १०–चारित्र मोहनीय कर्म के आस्रव के हेतु क्या है ?

उत्तर– **कषायोदयात्तीव्रपरिणामश्चारित्रमोहस्य ॥ १४ ॥**

सूत्रार्थ–कषाय के उदय से होने वाला तीव्र आत्मपरिणाम चारित्रमोहनीय का आस्रव है ।

प्रश्न १–कषाय किसे कहते है ?

उत्तर–जो कषती है, आत्मा के सम्यग्दर्शनादि गुणो का घात करती हैं वह कषाय है ।

प्रश्न २–चारित्रमोहनीय के बन्ध के कारण कौन से है ?

उत्तर–कषाय के उदय से जो आत्मा के अति तीव्र परिणाम होते है, मानसिक विचार होते है, वे चारित्रमोहनीय के **आस्रव** के कारण है ।

प्रश्न ३–चारित्रमोहनीय के भेद कितने है ?

उत्तर–चारित्र मोहनीय के दो भेद है—१ कषाय वेदनीय २ अकषाय वेदनीय।

प्रश्न ४–कषायवेदनीय के आस्रव के कारण कौन से है ?

उत्तर–स्वय कषाय करना, दूसरो मे कषाय उत्पन्न करना, तपस्वीजनो के चारित्र मे दूषण लगाना, सक्लेश को पैदा करनेवाले लिग और व्रत को धारण करना आदि कषायवेदनीय के आस्रव है ।

प्रश्न ५–हास्यवेदनीय के आस्रव के कारण कौन से है ?

उत्तर–सत्य धर्म का उपहास करना, दीन मनुष्य की दिल्लगी उड़ाना, कुत्सित राग को बढ़ानेवाला हॅसी मजाक करना, बहुत बकने और हॅसने की आदत रखना आदि हास्य वेदनीय के आस्रव के कारण है ।

प्रश्न ६–रति वेदनीय का आस्रव किन परिणामो से होता है ?

उत्तर–नाना प्रकार की क्रीड़ाओ मे लगे रहना, व्रत और शील के पालन करने मे रुचि न रखना आदि परिणामो से रति वेदनीय कर्म का आस्रव होता है ।

प्रश्न ७–अरति वेदनीय का आस्रव किन परिणामो से होता है ?

उत्तर–दूसरो मे अरति उत्पन्न हो, रति का विनाश हो ऐसी प्रवृत्ति करना और पापी लोगो की सगति करना आदि परिणामो से अरति वेदनीय का आस्रव होता है।

प्रश्न ८–शोक कर्म का आस्रव किन परिणामो से होता है ?

उत्तर–स्वय शोकातुर होना, दूसरो के शोक को बढ़ाना तथा ऐसे मनुष्यो का अभिनन्दन करना आदि परिणामो से शोक कर्म का आस्रव होता है।

प्रश्न ९–भय वेदनीय के आस्रव के कारण कौन से है ?

उत्तर–भयरूप अपना परिणाम और दूसरे को भय पैदा करना आदि परिणाम भय वेदनीय के आस्रव के कारण है।

प्रश्न १०–जुगुप्सा कर्म के आस्रव के कारण कौन से हैं ?

उत्तर–सुखकर क्रिया और सुखकर आचार से घृणा करना और अपवाद करने मे रुचि रखना आदि जुगुप्सा कर्म के आस्रव के कारण है।

प्रश्न ११–स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुसकवेद के आस्रव के हेतुभूत परिणाम कौन से है ?

उत्तर–१ असत्य बोलने की आदत, अतिसन्धानपरता, दूसरे के छिद्र ढूँढना और बढ़ा हुआ राग आदि परिणाम स्त्रीवेद के आस्रव है।

२ क्रोध का अल्प होना, ईर्ष्या नही करना, अपनी स्त्री मे सन्तोष करना आदि पुरुषवेद के आस्रव के परिणाम है।

३ प्रचुर मात्रा मे कषाय करना, गुप्तेन्द्रियो का विनाश करना और परस्त्री से बलात्कार करना, व्रतशीलधारी पुरुषो का तिरस्कार करना आदि नपुसक वेद के आस्रव के परिणाम है।

प्रश्न १२–मोहनीय कर्म के इन आस्रवो से बचने का उपाय क्या है ?

उत्तर–जिन अशुभ परिणामो से कर्म का आस्रव होता है उन परिणामो से हमेशा दूर रहना चाहिये।

प्रश्न १३–नरक आयु के आस्रव के कारण कौन से है ?

उत्तर– **बह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः ॥ १५ ॥**

सूत्रार्थ–बहुत आरभ और बहुत परिग्रह वाले का भाव नरकायु के बन्ध का कारण है।

प्रश्न १–आरभ व परिग्रह के लक्षण क्या है ?

उत्तर–प्राणियो को दुख पहुँचाने वाली प्रवृत्ति करना **आरम्भ** है।

यह वस्तु मेरी है इस प्रकार का सकल्प रखना **परिग्रह** है।

प्रश्न २–बहुत आरभ और बहुत परिग्रह के अलावा अन्य भी परिणाम नरकायु के आस्रव के कारण है क्या ?

उत्तर–हिसा आदि क्रूर कार्यों मे निरन्तर प्रवृत्ति, दूसरे के धन का अपहरण,

इन्द्रियो के विषयो मे अत्यन्त आसक्ति तथा मरने के समय कृष्ण लेश्या और रौद्र-ध्यान आदि परिणाम भी नरक आयु के आस्रव के कारण हैं।

प्रश्न ३–क्या आप नरक मे जाना चाहते है ? यदि नही तो क्या करोगे ?

उत्तर–हम नरक मे नही जाना चाहते है अत कम से कम आरभ करेगे और परिग्रह भी प्रयोजनभूत अल्प रखेंगे। हिंसादि पापो मे आनन्द नही मनायेगे। क्रूर कर्मों से बचेगे।

प्रश्न ४–तिर्यञ्चायु के आस्रव के परिणाम कौन से है ?

उत्तर– **माया तैर्यग्योनस्य ॥ १६ ॥**

सूत्रार्थ–माया तिर्यञ्च आयु का आस्रव है।

प्रश्न १–माया का लक्षण क्या है ?

उत्तर–माया नामक चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से आत्मा मे होने वाले कुटिल परिणामो को माया कहते है।

प्रश्न २–तिर्यञ्च आयु के आस्रव के अन्य भी कारण हैं सो बताइये ?

उत्तर–धर्मोपदेश मे मिथ्या बातो को मिलाकर उनका प्रचार करना, शीलरहित जीवन बिताना, अतिसधानप्रियता तथा मरण के समय नील व कापोत लेश्या और आर्त्तध्यान का होना आदि अशुभ परिणाम से तिर्यञ्चायु का आस्रव होता है।

प्रश्न ३–यदि आर्त्तध्यान तिर्यञ्चायु के आस्रव का हेतु है तो छठे गुणस्थान मे भी आर्त्तध्यान पाया जाता है अतः उन षष्ठम गुणस्थानवर्ती को भी तिर्यञ्च आयु का आस्रव होगा क्या ?

उत्तर–नही। षष्ठम गुणस्थान मे आर्त्तध्यान सदा नही रहता है। क्वचित् कदाचित् इष्ट गुरु के वियोग-सयोग या अनिष्ट शिष्य के सयोग, इष्ट के वियोग निमित्त मात्र मे प्रेम या धर्मानुराग वशात् आर्तध्यान होता है। गृहस्थो या ससारियो के समान उस आर्त्तध्यान मे तीव्रता नही रहती है अत ऐसे मुनिराजो को तिर्यञ्चायु का आस्रव नही होता है। उन्हे देव-आयु का ही आस्रव होता है।

प्रश्न ४–मनुष्य-आयु के आस्रव के योग्य परिणाम कौन से हैं ?

उत्तर– **अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्य ॥ १७ ॥**

सूत्रार्थ–अल्प आरम्भ और अल्प परिग्रह वाले का भाव मनुष्यायु का आस्रव है।

प्रश्न १–मनुष्य आयु के आस्रव के योग्य अन्य परिणाम भी कौन से है ?

उत्तर–स्वभाव का विनम्र होना, भद्र प्रकृति का होना, सरल व्यवहार करना, अल्प कषाय का होना तथा मरण के समय सक्लेशरूप परिणति का नही होना आदि भावो से भी मनुष्यायु का आस्रव होता है।

प्रश्न २–मनुष्यायु का आस्रव अन्य कारणो(भावो) से भी होता है क्या ?

उत्तर–जी हाँ ।

स्वभावमार्दवं च ॥ १८ ॥

सूत्रार्थ–स्वभाव की मृदुता भी मनुष्यायु का आस्रव है ।

प्रश्न १–स्वभाव की मृदुता का तात्पर्य क्या है ?

उत्तर–मृदु का भाव मार्दव है । स्वभाव से ही मार्दव होना "स्वभाव मार्दव" है । तात्पर्य यह कि बिना किसी के समझाये-बुझाये, बिना किसी उपदेश की अपेक्षा जीवन मे जो मृदुता उतरी हुई हो वह "स्वभावमार्दव" है ।

प्रश्न २–जब अल्पारभ अल्पपरिग्रह और स्वभाव मार्दव दोनो ही मनुष्य आयु के आस्रव के कारण है फिर दोनो का एक सूत्र न बनाकर दो सूत्र किस कारण दिये है ?

उत्तर–स्वभाव की मृदुता देव-आयु के आस्रव का भी हेतु है इसे बतलाने के लिये "स्वभाव मार्दव" सूत्र अलग दिया है ।

प्रश्न ३–सूत्र मे "च" क्यो दिया है ?

उत्तर–सूत्र मे चकार समुच्चय अर्थ के लिये है—मनुष्य आयु का आस्रव अल्पारभ अल्प परिग्रह से ही नही स्वभाव की मृदुता से भी होता है ।

प्रश्न ४–मनुष्य आयु के आस्रव योग्य दो ही परिणाम हैं अथवा अन्य भी परिणामो से मनुष्य आयु का आस्रव होता है ?

उत्तर– **निःशीलव्रतत्वञ्च सर्वेषाम् ॥ १९ ॥**

सूत्रार्थ–शील रहित और व्रतरहित होना सब आयुओ का आस्रव है ।

प्रश्न १–निःशीलव्रत किसे कहते है ?

उत्तर–तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत को शील कहते है । अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये व्रत है । शील और व्रत से जो रहित है उन्हे नि शीलव्रत कहते हैं ।

प्रश्न २–सूत्र मे चकार शब्द का अर्थ क्या है ?

उत्तर–सूत्रस्थ चकार शब्द से अल्प आरभ और अल्पपरिग्रहत्व का ग्रहण होता है जिससे यह अर्थ निकलता है कि अल्प आरभ, अल्प परिग्रह रूप भाव तथा व्रत और शील रहित होना ये सब आयु (नरक तिर्यंच, मनुष्य, देव) के आस्रव हैं ।

प्रश्न ३–वे कौन जीव है जो व्रत और शील रहित होकर भी देवायु का आस्रव करते है ?

उत्तर–भोगभूमिया जीव व्रत और शील रहित होकर भी देवायु का ही आस्रव करते है ।

प्रश्न ४–भोगभूमिया मानव और तिर्यञ्च कौन से स्वर्ग तक जा सकते है ?

उत्तर–ईशानस्वर्ग तक ।

प्रश्न ५–सूत्र न० १५ मे बहुत आरभ और बहुत परिग्रह को नरक आयु का आस्रव कहा है फिर यहाँ सू० १९ मे "चकार" से अल्प आरभ मे भी सर्वेषाम् कहकर नरक आदि आयु का आस्रव किस कारण कहा है ?

उत्तर–कोई जीव अल्प आरभ और अल्पपरिग्रह वाले होते हुए भी अन्य दुराचार महित होने से नरकादि आयु को प्राप्त होते है उम अपेक्षा सूत्र मे "सर्वेषाम्" पद कहा गया है ।

प्रश्न ६–सक्षेप मे चारो आयु के आस्रव रूप परिणाम कौन मे है ?

उत्तर–व्रत रहित, शीलरहित, अल्प आरभ, अल्पपरिग्रह रूप भाव ये चारो आयु के आस्रव के कारण है ।

प्रश्न ७–देवायु के आस्रव के कारण कौन से है ?

उत्तर– **सरागसंयमसंयमासंयमाकामनिर्जराबालतपांसि देवस्य ॥ २० ॥**

सूत्रार्थ–सरागसयम, सयमासयम, अकामनिर्जरा और बालतप ये देव आयु के आस्रव है ।

प्रश्न १–सरागसयम किसे कहते है ?

उत्तर–रागी जीव का सयम सरागसयम है । अथवा जिसके राग युक्त सयम है, वह सरागसयम अर्थात् महाव्रत है ।

प्रश्न २–सराग और सयम का लक्षण क्या है ?

उत्तर–जो ससार के कारणो के त्याग के प्रति उत्सुक है, परन्तु जिसके मन से राग के सस्कार नष्ट नही हुए हैं वह **सराग** है ।

प्राणियो और इन्द्रियो मे अशुभ प्रवृत्ति के त्याग को **सयम** कहते है ।

प्रश्न ३–सयमासयम का स्वरूप क्या है ।

उत्तर–सयम और असयम को सयमासयम कहते है । जिस व्रत मे स्थावर की हिसा से अविरत और त्रस की हिसा से विरत है वह सयमासयम है यही देशव्रत या श्रावक व्रत कहलाता है ।

प्रश्न ४–अकाम निर्जरा का लक्षण क्या है ?

उत्तर–बिना इच्छा से जो निर्जरा होती है वह अकाम निर्जरा हे । जैसे—परवश

हो कारागृह मे रस्सी आदि से बांध रखने पर जो भूख, प्यास की वेदना सहनी पड़ती है, ब्रह्मचर्य पालना पड़ता है, मलमूत्र को रोकना पड़ता है, संताप आदि होता है ये सब अकाम हैं और इससे होने वाली निर्जरा अकाम निर्जरा है ।

प्रश्न ५–बालतप किसे कहते है ?

उत्तर–मिथ्यात्व के कारण मोक्षमार्ग मे उपयोगी न पड़नेवाले कायक्लेश बहुल माया से व्रतो को धारण करना बालतप है । अथवा जीव-अजीव के स्वरूप को जिन्होंने नही जाना है ऐसे तत्त्वज्ञान शून्य जीवो का तप बालतप कहलाता है । जैसे—मिथ्यादृष्टि तापस, सन्यासी, पाशुपत, परिव्राजक, एकदण्डी, त्रिदण्डी, परमहस आदि का तप बाल तप है ।

प्रश्न ६–बाल और तप का अर्थ क्या है ?

उत्तर–बाल का अर्थ मिथ्यात्व है और तप कहते है पतन से जो बचाये । मिथ्यात्व सहित तप बालतप है । यह तप ससार का कारण है ।

प्रश्न ७–तप तो कर्म के सवर, निर्जरा का कारण होता है फिर बाल तप ससार का कारण क्यो है ?

उत्तर–सम्यग्दृष्टि का तप कर्म के सवर और निर्जरा का कारण है । मिथ्यादृष्टि का बालतप ससार का ही कारण है ।

प्रश्न ८–क्या देव आयु के आस्रव के अन्य कारण भी है ?

उत्तर–जी हॉ ।

सम्यक्त्वञ्च ॥ २१ ॥

सूत्रार्थ–सम्यक्त्व भी देव आयु के आस्रव का कारण है ।

प्रश्न १–सम्यक्त्व च यह सूत्र अलग क्यो दिया गया है ? सरागसयमसयमासयम भी देवायु के आस्रव के कारण है उसी के साथ यह सूत्र देना उचित था ?

उत्तर–सम्यक्त्व अवस्था मे वैमानिक देवो की ही आयु का आस्रव होता है यह बताना ही इस सूत्र को पृथक् लिखने का प्रयोजन है ।

प्रश्न २–यदि सम्यक्त्व वैमानिक देवो की आयु का कारण है तो क्या सरागसयम और सयमासंयम सहित जीव भवनत्रिक मे भी जा सकता है ?

उत्तर–सरागसयम और सयमासंयम सम्यक्त्व के बिना नही होते हैं अत दोनो का सम्यक्त्व मे अन्तर्भाव होता है अर्थात् सरागसयम और सयमासयम भी सौधर्मादि देवायु के आस्रव है, क्योंकि ये सम्यक्त्व के होने पर ही होते है ।

प्रश्न ३–सम्यक्त्व, सरागसयम, सयमासयम ये कर्म निर्जरा के कारण है इन्हे कर्मबध के कारण क्यो माना है ?

उत्तर—यद्यपि सम्यग्दर्शन, सरागसयम, संयमासयम किसी भी कर्म के बन्ध मे कारण नहीं हैं तथापि "जहण्हभावेण परिणत रत्नत्रय" की अवस्था मे जो रागाश पाया जाता है उसी से बन्ध होता है । इसी को पुरुषार्थसिद्ध्युपाय ग्रन्थ मे अमृतचन्द्राचार्य स्पष्ट करते हुए लिखते है—

येनांशेन सुदृष्टिस्तेनांशेनास्य बन्धनं नास्ति ।
येनांशेन तु रागस्तेनांशेनास्य बन्धनं भवति ॥

प्रश्न ४—आयु कर्म का आस्रव सब कर्मों की तरह सदा होता है या कोई विशेषता है ?

उत्तर—आयु कर्म का आस्रव सामान्यरूप से जीवन के त्रिभाग मे अर्थात् आयु के दो भाग निकल जाने पर तृतीय भाग के प्रारम्भ मे होता है ।

प्रश्न ५—अशुभनामकर्म के आस्रव कौन से हैं ?

उत्तर— **योगवक्रता विसंवादनञ्चाशुभस्य नाम्नः ॥ २२ ॥**

सूत्रार्थ—योगो की कुटिलता और विसवाद ये अशुभनामकर्म के आस्रव है ।

प्रश्न १—योगवक्रता किसे कहते है ?

उत्तर—मन, वचन और काय की कुटिलता को योगवक्रता कहते है । अर्थात् काय से अन्य करना, वचन से अन्य बोलना और मन से अन्य ही चिन्तन करना योगवक्रता है ।

प्रश्न २—विसवादन किसे कहते है ?

उत्तर—जो स्वर्ग-मोक्ष के योग्य समीचीन क्रियाओ का आचरण कर रहा है उसे उसके विपरीत मन, वचन और काय की प्रवृत्ति द्वारा रोकना कि ऐसा मत करो, ऐसा करो विसवादन है ।

प्रश्न ३—योगवक्रता और विसवादन मे शब्द भेद भले हो पर अर्थ भेद नजर नही आता है ?

उत्तर—योगवक्रता और विसवादन मे महान् भेद है—**योगवक्रता स्वगत है** और **विसंवादन परगत है** । योगवक्रता मे स्वय के योगो मे कुटिलता है जबकि विसवादन मे कुटिल योग सहित हो सभ्यपुरुष को भी मिथ्यामार्ग मे प्रेरित करता है । जैसे कोई देवदत्त नामक पुरुष मोक्षमार्ग के अनुकूल आचरण कर रहा है उसे कोई अन्य पुरुष योगो की कुटिलता द्वारा प्रेरित करता है—इन सबसे मोक्ष नही मिलेगा, हिंसा मे धर्म है आदि । इस प्रकार जो अन्यथा प्रेरित करता है, मिथ्यामार्ग मे प्रेरित करता है या दूसरो के द्वारा अन्यथा प्रेरणा है वह सब विसंवाद है । अत ये दोनो शब्दभेद और अर्थभेद सहित हैं तथा दोनो ही अशुभ नामकर्म के आस्रव के कारण है ।

प्रश्न ४–सूत्र मे च शब्द क्यो दिया गया है ?

उत्तर–योगवक्रता, विसवादन के अलावा और भी अशुभनामकर्म के योग्य परिणाम हैं उसे बताने के लिये सूत्र मे चकार का ग्रहण किया है। सूत्रस्थ चकारशब्द से—मिथ्यादर्शन, चुगलखोरी, चित्त का स्थिर न रहना, मापने और तौलने के बाट घट-बढ़ रखना, दूसरो की निन्दा करना, अपनी प्रशसा करना, असत्य वचन बोलना, सदा उज्ज्वल वेष रखना, सुरूपता का मद होना, कठोर वचन बोलना, आक्रोश, चित्त की अस्थिरता, दूसरो की विडम्बना करना उपहास करना, ईंट पकाना, प्रतिमा तोड़ना, जिनालय का ध्वस करना, तीव्र क्रोध, मान, माया, लोभ और पापकर्मों से आजीविका करना आदि अशुभ नामकर्म के आस्रव के कारण है।

प्रश्न ५–शुभनामकर्म के आस्रव कौन से है ?

उत्तर– **तद्विपरीतं शुभस्य ॥ २३ ॥**

सूत्रार्थ–उससे विपरीत अर्थात् योग की सरलता और अविसवाद ये शुभनाम कर्म के आस्रव है।

प्रश्न १–पूर्वसूत्र के चकार से यहाँ कौन सा अर्थ ग्रहण होता है ?

उत्तर–सूत्र उपस्कार सहित होते है अत २२ मे चकार शब्द से यहाँ उनसे विपरीत आस्रवो का ग्रहण करना चाहिये। जैसे—धार्मिक पुरुषो व स्थानो का दर्शन करना, आदर सत्कार करना, सद्भाव रखना, उपनयन, ससारभीरुता, प्रमाद का त्याग करना, व्रत लेना, जिनमदिर, जिनचैत्य का निर्माण करना, मृदुभाषण, पापकर्मरहित आजीविका करना आदि शुभ नामकर्म के आस्रव के कारण है।

प्रश्न २–निरुपम प्रभावक, अचिन्त्य ऐश्वर्य विशेषकारक, त्रिभुवनविजयी तीर्थंकर नामकर्म के आस्रव के कारण कौन से है ?

उत्तर– **दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नता शीलव्रतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी साधुसमाधिर्वैयावृत्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचन-भक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रभावना प्रवचन-वत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य ॥ २४ ॥**

सूत्रार्थ–दर्शनविशुद्धि, विनयसम्पन्नता, शील और व्रतो का अतिचार रहित पालन करना, ज्ञान मे सतत उपयोग, निरन्तर सवेग, शक्ति के अनुसार त्याग, शक्ति के अनुसार तप, साधुसमाधि, वैयावृत्य करना, अरिहन्त भक्ति, आचार्य भक्ति, बहुश्रुत-भक्ति, प्रवचन भक्ति, आवश्यक क्रियाओ को नही छोड़ना, मोक्षमार्ग की प्रभावना और प्रवचनवात्सल्य मे ये तीर्थंकर नामकर्म के आस्रव के कारण है।

प्रश्न १–तीर्थंकर किन्हे कहते हैं ?

उत्तर–तीर्थं करोति इति तीर्थंकर जो तीर्थ की प्रवर्तना करते है, तीर्थ चलाते हैं वे तीर्थंकर कहलाते है ।

प्रश्न २–तीर्थंकर के कितने कल्याणक होते हैं ?

उत्तर–तीर्थंकर पाँच कल्याणक, तीन कल्याणक और दो कल्याणक धारी होते हैं । भरतक्षेत्र व एरावतक्षेत्र मे पाँच कल्याणक धारी ही तीर्थंकर होते है, विदेह क्षेत्र मे पाँच कल्याणक, तीन कल्याणक (तप, ज्ञान, मोक्ष) दो कल्याणक (ज्ञान व मोक्ष) धारी तीर्थंकर होते हैं ।

प्रश्न ३–तीर्थंकर प्रकृति का बध कौन जीव किसके पादमूल मे करता है ।

उत्तर–तीर्थंकर प्रकृति का बध कर्मभूमिया मनुष्य उपशम, क्षयोपशम व क्षायिक तीनो सम्यक्त्वधारी जीव केवली, श्रुतकेवली के पादमूल मे करता है ।

प्रश्न ४–क्या तीर्थंकर प्रकृति का बध करने वाला नरकायु मे जा सकता है यदि हाँ तो कौन से नरक तक जाता है ।

उत्तर–तीर्थंकर प्रकृति का बधक जीव क्षायिक सम्यग्दृष्टि है तो प्रथम नरक से नीचे नही जाता । हॉ यदि वह क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि है तो तीसरे नरक तक जा सकता है । तीर्थंकर प्रकृति का बधक भी वह जिसने पहले नरकायु का बध कर लिया है पश्चात् सम्यक्त्व प्राप्त किया है, नरक जाता है अन्य नही ।

प्रश्न ५–दर्शनविशुद्धि किसे कहते है ?

उत्तर–१ जिन भगवान अरिहन्त परमेष्ठी द्वारा कहे हुए निर्ग्रंथ स्वरूप मोक्षमार्ग पर रुचि रखना दर्शनविशुद्धि है । (स० सि०)

२ सप्तभय रहित, सम्यक्त्व के आठ अंग सहित, तीनमूढता, छह अनायतन और आठ मद रहित होना, चर्मपात्र मे रखे जलादि का सेवन नही करना, कन्दमूल पद्मिनीकन्द, प्याज, लहसुन, तुम्बीफल, तरबूजा, सूरणकन्द सब प्रकार के पुष्प, आचार आदि का भक्षण नही करना दर्शनविशुद्धि है । (तत्त्वार्थवृत्ति)

प्रश्न ६–सात भय कौन से हैं ?

उत्तर–इहलोकभय, परलोकभय, अत्राणभय, अगुप्तिभय, मरणभय, वेदनाभय और अकस्मात्भय ।

प्रश्न ७–सम्यक्त्व के आठ अग व उनका स्वरूप सक्षेप मे क्या है ?

उत्तर–नि:शकित्व, नि काक्षिता, निर्विचिकित्सितत्त्व, अमूढदृष्टिता, उपबृहण, स्थितीकरण, वात्सल्य और प्रभावना ये सम्यक्त्व के आठ अग हैं ।

१ "जैन दर्शन सत्य है" ऐसी अटल श्रद्धा होना नि शकित्व अग कहलाता है।

२ इस लोक परलोक सम्बन्धी भोगो की काक्षा नही रखना नि काक्षित अग है।

३ शरीरादिक पवित्र हैं इसप्रकार की मिथ्याबुद्धि का अभाव निर्विचिकित्सा है।

४ अर्हन्त को छोड़कर अन्य कुदेवो के द्वारा उपदिष्ट तत्त्वो मे मोह रहित होना अमूढदृष्टि है ।

५ उत्तम क्षमा आदि के द्वारा आत्मधर्म की वृद्धि करना और चार प्रकार के सघ के दोषो को प्रगट नही करना उपगूहन या उपबृहण है ।

६ क्रोध, मान, माया, लोभादि धर्म के विनाशक कारणो के होने पर भी धर्म से च्युत नही होना स्थितीकरण है ।

७ जिनशासन मे सदा अनुराग रखना वात्सल्य है ।

८ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के द्वारा आत्मा का प्रकाशन तथा जिनशासन की उन्नति करना प्रभावना है ।

प्रश्न ८–तीनमूढता और छह अनायतन कौन से हैं ?

उत्तर–देवमूढ़ता, गुरुमूढ़ता और धर्ममूढ़ता ये तीन मूढ़ताएँ हैं । कुगुरु, कुदेव और कुधर्म ये तीन और तीनो के सेवक ये ६ अनायतन है ।

प्रश्न ९–सूत्र मे दर्शनविशुद्धि का पृथक् निर्देश किसलिये किया है ?

उत्तर–जिनभक्ति रूप वा तत्त्वार्थ श्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन अकेला ही तीर्थंकर प्रकृति के बन्ध का कारण हो सकता है अत दर्शनविशुद्धि का पृथक् कथन किया है ।

प्रश्न १०–प्रश्न ५ के उत्तर मे दर्शनविशुद्धि के लक्षण मे "दर्शनविशुद्धि भावना को चारित्र के साथ जोड़ा गया है जैसे" वह कन्दमूल, प्याज, आलू, लहसुन आचार आदि अभक्ष्य का सेवन नही करता है । हमारा प्रश्न है कि "दर्शनविशुद्धि" का आचरण से क्या सबध है ।

उत्तर–यद्यपि चतुर्थ गुणस्थान मे सम्यक्दृष्टि जीव त्रस और स्थावर की हिसा मे विरत नही होता, मात्र जिनवचनो का कट्टर श्रद्धानी होता है तथापि वह अपने कुलाचार को अवश्य ही पालता है । वह अन्याय अभक्ष्य का त्यागी होता है ।

दर्शनविशुद्धि वाला जीव रात्रि भोजन, आचार, आलू, प्याज आदि अभक्ष्य का सेवन नही कर सकता । जितने अश मे दर्शनविशुद्धि है उतने अशो मे उसके ज्ञान और चारित्र (आचरण) की विशुद्धि भी अवश्य होगी ।

प्रश्न ११–दर्शनविशुद्धि आदि सोलह भावनाओ के लक्षण क्या हैं ?

उत्तर–१ जिन भगवान अर्हत्परमेष्ठी द्वारा कथित निर्ग्रंथ स्वरूप मोक्षमार्ग पर रुचि रखना दर्शविशुद्धि है ।

२ सम्यक्ज्ञानादि मोक्षमार्ग और उनके साधन गुरु आदि के प्रति अपने योग्य आचरण द्वारा आदर सत्कार करना विनय है और इससे युक्त होना विनयसम्पन्नता है।

३ अहिसादिक व्रत है और इनके पालन करने के लिये क्रोधादिक का त्याग करना शील है । दोनो के पालन करने मे निर्दोष प्रवृत्ति रखना शीलव्रतानतिविचार है।

४. जीवादि पदार्थरूप स्वतत्त्वविषयक सम्यग्ज्ञान मे निरन्तर लगे रहना अभीक्ष्णज्ञानोपयोग है ।

५ ससार के दु खो से नित्य डरते रहना सवेग है ।

६ त्याग दान है । शक्ति अनुसार विधिपूर्वक यथाशक्ति तीन प्रकार का दान— आहारदान, अभयदान और ज्ञानदान देना । यहा आहार दान मे औषधदान गर्भित है ।

७ शक्ति को न छिपाकर मोक्षमार्ग के अनुकूल शरीर को क्लेश देना यथाशक्ति तप है ।

८ जैसे भाडार मे आग लग जाने पर बहुत उपकारी होने से आग को शान्त किया जाता है उसी प्रकार अनेक प्रकार के व्रत और शीलो से समृद्ध मुनि के तप करते हुए किसी कारण से विघ्न के उत्पन्न होने पर उसका सधारण करना, शान्त करना साधुसमाधि है ।

९ गुणी पुरुष के दु ख मे आ पड़ने पर निर्दोष विधि से उसका दु ख दूर करना वैयावृत्य है ।

१०-१३ अरिहत, आचार्य, बहुश्रुत और प्रवचन इनमे भावो की विशुद्धि के साथ अनुराग रखना अरिहत भक्ति, आचार्यभक्ति, बहुश्रुतभक्ति और प्रवचनभक्ति है ।

१४ छह आवश्यकक्रियाओ का यथासमय करना आवश्यकापरिहाणि है ।

१५ ज्ञान, तप, दान और जिनपूजा इनके द्वारा धर्म का प्रकाश करना मार्गप्रभावना है ।

१६ जैसे गाय बछड़े पर स्नेह रखती है वैसे ही साधर्मिगो पर स्नेह रखना प्रवचनवत्सलत्व है ।

प्रश्न १२–भावना किसे कहते है ?

उत्तर–बार-बार चिन्तन करने को भावना कहते है ।

प्रश्न १३–सोलह भावनाओ के चिन्तन का फल क्या है ?

उत्तर–इन भावनाओ का निरन्तर अभ्यास करने से जीवो के हृदय मे कषायरूपी अग्नि बुझ जाती है, पर द्रव्यो के प्रति राग गल जाता है और अज्ञानरूपी अन्धकार का नाश होकर ज्ञानरूप दीपक का प्रकाश होता है । तीन लोक मे अनुपम अचिन्त्य ऐसी तीर्थंकर प्रकृति का आस्रव होता है ।

प्रश्न १४–नीचगोत्र कर्म का आस्रव किन परिणामो से होता है ?

उत्तर– परात्मनिन्दाप्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च

नीचैर्गोत्रस्य ॥ २५ ॥

सूत्रार्थ–परनिन्दा, आत्मप्रशसा, सद्गुणो का उच्छादन और असद्गुणो का उद्भावन ये नीच गोत्र के आस्रव के कारण है ।

प्रश्न १–निन्दा किसे कहते है ? परनिन्दा क्या है ?

उत्तर–सच्चे या झूठे दोष को प्रकट करने की इच्छा निन्दा है । दूसरो की निन्दा परनिन्दा है ।

प्रश्न २–प्रशसा किसे कहते है ? आत्मप्रशसा क्या है ?

उत्तर–गुणो के प्रकट करने का भाव प्रशसा है । अपनी प्रशसा आत्मप्रशसा है ।

प्रश्न ३–उच्छादन व सद्गुणोच्छादन किसे कहते हैं ?

उत्तर–उच्छादन का अर्थ है "लोपन" करना । सद् कहते हैं विद्यमान को । दूसरो के ज्ञान, तप आदि सद्गुणो का लोपन करना सद्गुणोच्छादन है ।

प्रश्न ४–उद्भावन असद्गुणोद्भावन किसे कहते है ?

उत्तर–उद्भावन का अर्थ है प्रकट करना । असद् कहते हैं अविद्यमान को । अपने अविद्यमान (झूठे) गुणो का प्रकट करना असद्गुणोद्भावन है ।

प्रश्न ५–सूत्र मे चकार किसलिये दिया है ?

उत्तर–नीचगोत्र के आस्रव के अन्य कारणो का वर्णन के लिये सूत्र मे चकार का प्रयोग हुआ है यथा—जातिमद, कुलमद, बल, रूप, श्रुत, आज्ञा, ऐश्वर्य और तप मद ये आठ मद, दूसरो का अपमान करना, दूसरो की हँसी करना, दूसरो का प्रतिवादन, गुरुओ का विभेदन, गुरुओ को स्थान नही देना, गुरुओ का तिरस्कार करना गुरुओ की भर्त्सना करना, गुरुओ से टकराना, गुरुओ मे असभ्य वचन बोलना, गुरुओ की स्तुति नही करना, गुरुओ को देखकर खड़े नही होना आदि क्रियाएँ भी नीच गोत्र के आस्रव की कारण हैं ।

प्रश्न ६–उच्चगोत्र के आस्रवरूप परिणाम कौन से हैं ?

उत्तर– **तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य ॥ २६ ॥**

सूत्रार्थ–उनका (नीच गोत्र का) विपर्यय अर्थात् परप्रशसा, आत्मनिन्दा, सद्गुणो का उद्भावन, असद्गुणो का उच्छादन तथा नम्रवृत्ति और अनुत्सेक ये उच्चगोत्र के आस्रव है ।

प्रश्न १–सूत्र मे तद्विपर्यय से क्या ग्रहण करना है ?

उत्तर–आत्मनिन्दा, परप्रशसा, सद्गुणो का उद्भावन और असद्गुणो का उच्छादन इन चार को (उससे विपरीत या तद्विपर्यय से) ग्रहण करना चाहिये ।

प्रश्न २–"नीचैर्वृत्ति" का अर्थ क्या है ?

उत्तर–जो गुणो मे उत्कृष्ट हैं उनके प्रति विनय से नम्र रहना नीचैर्वृत्ति है इसे नम्रवृत्ति भी कहते हैं ।

प्रश्न ३–अनुत्सेक किसे कहते हैं ?

उत्तर–ज्ञानादि की अपेक्षा श्रेष्ठ होते हुए भी उसका मद न करना अर्थात् अहकार रहित होना अनुत्सेक है ।

प्रश्न ४–अन्तराय कर्म का आस्रव क्या है ?

उत्तर– **विघ्नकरणमन्तरायस्य ॥ २७ ॥**

सूत्रार्थ–दानादिक मे विघ्न डालना अन्तराय कर्म का आस्रव है ।

प्रश्न १–विघ्न और विघ्नकरण किसे कहते है ?

उत्तर–"विहनन विघ्न·" विघ्नन को विघ्न कहते हैं । दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य मे विघ्न करना विघ्नकरण है ।

प्रश्न २–अन्तराय किसे कहते है ?

उत्तर–दाता और पात्र के मध्य मे आती है, वह अन्तराय है ।

प्रश्न ३–साधु, त्यागी, व्रतियो को भोजन करते समय अन्तराय होता है उस समय दाता के अन्तराय कर्म का उदय है या पात्र के ?

उत्तर–त्यागी, मुनिराज, आदि को भोजन/आहार के समय अन्तराय आता है उस समय दाता और पात्र दोनो के अन्तराय कर्म का उदय रहता है । दाता को दानान्तराय कर्म का उदय रहता है तथा पात्र के लाभान्तराय कर्म का उदय रहता है।

प्रश्न ४–अन्तराय कर्म के आस्रवरूप अन्य भी कौन से परिणाम है ?

उत्तर–दान की निन्दा करना, द्रव्य का सयोग करना, देवो के चढ़ाई हुई नैवेद्य का भक्षण करना, परवीर्य का अपहरण करना, धर्म का उच्छेद करना अधर्म का आचरण करना, दूसरो का निरोध करना, दूसरो का बन्धन, कर्णच्छेदन, गुह्यअगच्छेदन, नाक काटना और दूसरो की आँख फोड़ना आदि से भी अन्तराय कर्म का आस्रव होता है ।

प्रश्न ५–छठम अध्याय मे आठ कर्मों के जो आस्रव कहे हैं वे सैनी जीव को ही लागू होते हैं तो असैनी को इन कर्मों का बध होता है या नही ?

उत्तर–असैनी (एकेन्द्रिय से पञ्चेन्द्रिय असैनी तक) जीव अनादिकाल से निरन्तर कर्मों का बन्ध होने वाले कार्य करते ही आये हैं अत उन्हें अव्यक्त बन्ध हैं । कथन सभी सैनी पञ्चेन्द्रिय के लिये ही होता है ।

प्रश्न ६–षष्ठम अध्याय की विशेषता क्या है ?

उत्तर–यह अध्याय मानव जीवन के उत्थान के लिये एक महान् निधि है। यह आत्मशुद्धि का दर्पण है। इस दर्पण मे हम निरन्तर झाँकते रहे तो अशुभ परिणामरूपी कालिमा को पूर्ण रूप से धोकर अपनी आत्मा को स्वच्छ कर सकते है।

इति श्रीमदुमास्वामिविरचित तत्त्वार्थसूत्रे षष्ठोऽध्यायः।

•

सप्तम अध्याय

शुभ-आस्रव-तत्त्व विवेचना सूत्र [३९]

सूत्र १-८ मे—व्रत का लक्षण, व्रत के भेद, व्रतो की स्थिरता के कारण, पॉच व्रतो की पॉच-पॉच भावनाओ का विवेचन है ।

सूत्र ९-१० मे—हिसादि पापो के विषय मे करने योग्य विचार कथन ।

सूत्र ११-१२ मे—निरन्तर चिन्तन करने योग्य चार भावनाएँ व ससार तथा शरीर के स्वभाव का कथन ।

सूत्र १३-१७ मे—हिसादि पापो के लक्षण ।

सूत्र १८-२१ मे—व्रतो की विशेषता, व्रतो के भेद व अगारी का लक्षण तथा सप्तशील का कथन ।

सूत्र २२-३७ मे—व्रती का कर्तव्य सल्लेखना धारण करे तथा सम्यक्त्व, पाँच व्रत व सात शीलो के और सल्लेखना के अतिचारो का कथन ।

सूत्र ३८-३९ मे—दान का लक्षण । दान मे विशेषता का कथन ।

इसप्रकार कुल ३९ सूत्रो मे आचार्यश्री ने व्रत, व्रतो के भेद, व्रती के कर्तव्य व व्रतो के अतिचारो का सुन्दर व विस्तृत विवेचना किया है ।

●

अथ सप्तमोऽध्याय:

प्रश्न १–छठे अध्याय मे आस्रव का कथन करते हुए अशुभ आस्रव का वर्णन किया, अब यह बताइये "शुभास्रव" क्या है ?

हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ॥ १ ॥

सूत्रार्थ–हिसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह से निवृत्त होना व्रत है ।

प्रश्न १–हिसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म और अपरिग्रह किसे कहते है ?

उत्तर–हिसन को हिसा कहते है । प्रमाद योग से प्राणो का वियोग करना हिसा है ।

जो ऋत न हो, जो सत्य न हो उसे असत्य कहते है ।

नही दी हुई वस्तु ग्रहण करना स्तेय (चोरी) है ।

ब्रह्म का अभाव अब्रह्म अर्थात् मैथुन है ।

चारो तरफ से ग्रहण किया जावे वह परिग्रह है । अर्थात् मन का मूर्च्छित होना, ग्रहण की भावना होना परिग्रह है ।

प्रश्न २–व्रत किसे कहते है ?

उत्तर–१ हिसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह इन पाँच पापो से विरत होना व्रत है ।

२ बुद्धिपूर्वक पतिज्ञा करके हिसादि पाँच पापो का त्याग करना व्रत है ।

३ प्रतिज्ञा करके जो नियम लिया जाता है वह व्रत है ।

४ "यह करने योग्य है और यह करन योग्य नही है" इस प्रकार नियम करना व्रत है ।

प्रश्न ३–सूत्र मे आया विरति शब्द किसके साथ लगाना है ?

उत्तर–"विरति" शब्द को प्रत्येक के साथ जोड़ लेना चाहिये । यथा हिसा से विरति, असत्य मे विरति आदि ।

प्रश्न ४–अहिसादि पाँच व्रतो मे अहिसा व्रत को प्रारम्भ मे क्यो रक्खा है ?

उत्तर–अहिसा व्रत सब व्रतो मे मुख्य है अत इसे सर्वप्रथम रखा है । धान्य के खेत के लिये जैसे उसके चारो ओर काँटो का घेरा होता है, उसी प्रकार सत्यादिक चार व्रत एक अहिसाव्रत की रक्षा के लिये है ।

प्रश्न ५–व्रत तो सवर के हेतु है फिर यहाँ व्रतो को आस्रव का कारण क्यो कहा गया ?

उत्तर–यद्यपि व्रत सवर रूप होते हैं और सवर निवृत्तिरूप होता है किन्तु यहाँ हिसादि पापो से निवृत्ति कर अहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप व्रत स्वीकार किये जाते हैं अत प्रवृत्तिरूप होने से व्रतो को आस्रव का कारण मानना अनुचित नहीं, ठीक है ।

प्रश्न ६–साधु परमेष्ठी के पाँच महाव्रतो के साथ "छठा रात्रिभोजनविरमण" नाम का अणुव्रत भी होता है उसे यहाँ ग्रहण क्यो नही किया ?

उत्तर–रात्रिभोजनविरमण छठे अणुव्रत का अहिसादि व्रतो की भावनाओ मे से "आलोकितपानभोजन" नाम की भावना मे अन्तर्भाव हो जाता है अत उसे यहाँ अलग से नही कहा है ।

प्रश्न ७–रात्रिभोजन का त्याग तो पाक्षिक श्रावक को हो ही जाता है और छठी रात्रिभुक्तित्याग प्रतिमा मे रात्रिभोजन का नव कोटि से त्याग हो जाता है । फिर "छठा रात्रिभोजनविरमण अणुव्रत" साधुओ के लिये क्यो कहा है ?

उत्तर–रात्रि मे चारो प्रकार के आहार का त्याग रात्रिभोजननिवृत्ति है उसे अणुव्रत कहा गया है । क्योंकि जैसे हिसा आदि पापो का सर्वथा त्याग किया जाता है उस तरह भोजन का त्याग सर्वथा नही किया जाता । किन्तु केवल रात्रि मे ही भोजन का त्याग किया जाता है, दिन मे तो समय पर भोजन किया जाता है इसलिये छठा रात्रिभोजनविरमण अणुव्रत कहते है ।

प्रश्न ८–पाँच व्रतो के भेद कितने है ?

उत्तर– **देशसर्वतोऽणुमहती ।। २ ।।**

सूत्रार्थ–हिंसादिक पाँच पापो से एक देश निवृत्त होना अणुव्रत है और सब प्रकार निवृत्त होना महाव्रत है ।

प्रश्न १–सूत्र मे आये देश और सर्व का अर्थ क्या है ?

उत्तर–देश शब्द का अर्थ एकदेश है और सर्वशब्द का अर्थ सकल है ।

प्रश्न २–सूत्र मे आये "अणु और महत्" शब्दो का अर्थ क्या है ?

उत्तर–अणु = अणुव्रत । महत् = महाव्रत ।

हिसादि पापो का एकदेशत्याग अणुव्रत है ।

हिंसादि पापो का सर्वदेश या सम्पूर्ण त्याग महाव्रत है ।

प्रश्न ३–यहाँ विरति शब्द की अनुवृत्ति कहाँ से होती है क्योंकि सूत्र मे विरति शब्द नही देखा जाता ?

उत्तर–इस सूत्र मे विरति शब्द की अनुवृत्ति पूर्व सूत्र (हिसानृतस्तेया-ब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ।। १-७) से होती है ।

प्रश्न ४–अहिंसादि व्रतो के कितने भेद होते है ?

उत्तर–अहिसादि पाँच व्रतो के अणुव्रत और महाव्रत की अपेक्षा दो-दो भेद होते है । यथा—

१ अहिंसाणुव्रत	२ अहिसा महाव्रत
१ सत्याणुव्रत	२ सत्य महाव्रत
१ अचौर्याणुव्रत	२ अचौर्य महाव्रत
१ ब्रह्मचर्याणुव्रत	२ ब्रह्मचर्य महाव्रत
१ परिग्रहपरिमाणाणुव्रत	२ अपरिग्रह महाव्रत

प्रश्न ५–अणुव्रत और महाव्रत पालन के अधिकारी भव्यात्माकौन है ?

उत्तर–गृहस्थ अणुव्रत पालन कर सकता है और महाव्रत के पालक मुनिराज ही होते है । आर्यिकाएँ उपचार से महाव्रती होती है ।

प्रश्न ६–मुनिराज के व्रत को महाव्रत क्यो कहते है ?

उत्तर–चूँकि महापुरुष इनका साधन करते हैं, पूर्ववर्ती महापुरुषो ने इनका आचरण किया है और ये स्वय ही महान् है अत इन्हे महाव्रत कहते है । कहा है—

साहंति जं महल्ला, आयरियं जं महल्लपुव्वेहिं ।
जं च महल्लाणि तदो महल्लया इत्तहे ताइं ।। ३० ।। चा. प्रा

अर्थात् १ गुरुओ के भी गुरु श्रेष्ठ जन इनका साधन करते है ।
२ पूर्ववर्ती बड़े-बड़े आचार्यो व वृषभादि चतुर्विंशति तीर्थ-करो, गणधरो व केवलियो ने इनका आचरण किया है ।
३ ये व्रत स्वय श्रेष्ठ है । इन कारणो से मुनियो के व्रत महाव्रत कहे जाते है ।

प्रश्न ७–इन व्रतो के सेवन का फल क्या है ?

उत्तर–प्रयत्नशील जो पुरुष उत्तम औषधि के समान इन व्रतो का सेवन करता है उसके दु खो का क्षय होता है । लोक मे देखा जाता है शारीरिक रोग से मुक्त होने के प्रयत्नपूर्वक औषधि का सेवन करने से रोग दूर हो जाते है उसी प्रकार जन्म-जरा-मृत्यु रोगो से पीड़ित आत्मा महाव्रतरूप औषधि के सेवन से असाध्य त्रय रोगो से मुक्त हो जाता है ।

प्रश्न ८–पाँच व्रतो को स्थिर करने के लिये कौनसी भावना करनी चाहिये ?

उत्तर– तत्स्थैर्यार्थं भावना पञ्च पञ्च ॥ ३ ॥

सूत्रार्थ–उन अहिसादि पाँच व्रतो को स्थिर करने के लिये एक-एक व्रत की पाँच-पॉच भावनाएँ होती है ।

प्रश्न १–पॉच व्रतो की कितनी भावनाएँ है ?

उत्तर–एक-एक व्रत की पॉच-पॉच भावनाएँ है । अत एक व्रत की पॉच भावनाएँ है तो पॉच व्रत की पच्चीस भावनाएँ है । १×५×५=२५ भावनाएँ ।

प्रश्न २–अहिसाव्रत की भावनाएँ कौनसी है ?

उत्तर– वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपान-भोजनानि पञ्च ॥ ४ ॥

सूत्रार्थ–वचनगुप्ति, मनोगुप्ति, ईर्यासमिति, आदाननिक्षेपणसमिति और आलोकितपानभोजन ये अहिसाव्रत की पाच भावनाएँ है ।

प्रश्न १–वचनगुप्ति, मनोगुप्ति किसे कहते है ?

उत्तर–वचन को वश मे रखना वचनगुप्ति है और मन को वश मे रखना मनोगुप्ति है ।

प्रश्न २–ईर्यासमिति और आदाननिक्षेपणसमिति किसे कहते है ?

उत्तर–चार हाथ भूमि को देखकर चलना ईर्यासमिति है । तथा भूमि को देख-शोधकर किसी वस्तु को रखना या उठाना आदाननिक्षेपणसमिति है ।

प्रश्न ३–आलोकितपान भोजन किसे कहते है ?

उत्तर–सूर्य के प्रकाश मे देखकर वस्तु को खाना-पीना आलोकितभोजनपान कहलाता है ।

प्रश्न ४–वचनगुप्ति और मनोगुप्ति को अहिंसाव्रत की भावना मे क्यो दिया ? हिसा तो काय की प्रवृत्ति है ?

उत्तर–हिसा मात्र काय से ही नही होती है मन और वचन की दुष्प्रवृत्ति अहिसा व्रत की बाधक है । चुगली करना, असभ्य, कठोर, मर्मभेदी आदि वचनो के घाव कभी नही भरते है अत इनसे महाहिसा होती है, वचनगुप्ति वाला वाचनिक हिसा को रोक लेता है अत वचनगुप्ति को अहिंसा व्रत की

भावना मे लिया है । इसी प्रकार ससारी जीव शारीरिक पीड़ा से उतना पीड़ित नही है जितना मानसिक पीड़ा से । पर जीवो का हानि-लाभ उनके कर्माधीन है उस पर विश्वास न कर जीव व्यर्थ ही अच्छे-बुरे विचारो का ताना-बाना बुनता चला जाता है । भाव-हिसा का स्वामी बनता है अत भावहिंसा से बचने के लिये मनोगुप्ति को अहिसाव्रत की भावना मे गर्भित किया है ।

प्रश्न ५-ईर्यासमिति और आदाननिक्षेपणसमिति का अहिंसाव्रत से क्या सबध है ? जो उन्हे भावना मे सम्मिलित किया ?

उत्तर-द्रव्य हिसा के बचने से लिये ईर्यासमिति और आदान-निक्षेपण-समिति को अहिसाव्रत की भावना मे ग्रहण किया है । अहिंसाव्रत की रक्षा के लिये ही जीव ४ हाथ जमीन देखकर चल सकेगा तथा उठाने धरने की वस्तुओ को देख-शोधकर धरेगा उठायेगा, इनकी बार-बार भावना करेगा, क्योंकि श्रावक पापभीरु होता है ।

प्रश्न ६-आलोकितभोजनपान को अहिसाव्रत की भावना क्यो कहा ?

उत्तर-जो पापभीरू श्रावक है सूर्य के प्रकाश मे ही भोजन बनायेगा और सेवन भी करेगा । जो अधेरे मे या बिजली के प्रकाश मे रात्रि के समय भोजनपान बनाते है या सेवन भी करते है उनके द्रव्य-भाव दोनो हिसा का पाप लगता है अत आलोकितभोजनपान को अहिसाव्रत की रक्षार्थ, द्रव्यभाव दोनो हिसा से बचने के लिये भावना मे सम्मिलित किया है ।

प्रश्न ७-अहिंसाव्रत की पाँच भावनाओ के भाने का फल क्या है ?

उत्तर-भावना का बार-बार चिन्तन करने या ध्यान मे रखने से अहिसाव्रत दूषित नही होगा । परिणामो मे विशुद्धि का लाभ प्राप्त होगा । पाप कर्म का अनुभाग हीन होगा और असख्यातगुणी कर्म निर्जरा होगी अत व्रतो की भावना व्रतो की स्थिरता के लिये सतत भाते रहना चाहिये ।

प्रश्न ८-सत्यव्रत की भावनाएँ कौनसी है ?

उत्तर- क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पञ्च ॥ ५ ॥

सूत्रार्थ-क्रोधप्रत्याख्यान, लोभप्रत्याख्यान, भीरुत्वप्रत्याख्यान, हास्य-प्रत्याख्यान और अनुवीचिभाषण ये सत्यव्रत की पाँच भावनाएँ है ।

प्रश्न १-क्रोध, लोभ, हास्य, भीरुत्व और अनुवीचिभाषण के अर्थ क्या है ?

उत्तर-क्रोध गुस्सा को कहते है । लोभ लालच को कहते है । भीरु या भय के भाव को भीरुत्व कहते है । हॅसने के भाव को हास्य कहते है ।

अनुवीचि-भाषण का अर्थ है—विचार कर निर्दोष भाषण करना, कर्तव्य का अनुष्ठान करना, आगम के अनुकूल भाषण करना ।

प्रश्न २–यहाँ पाँच भावनाओ मे चार का त्याग और एक का ग्रहण क्यो कहा है ?

उत्तर–क्रोध, लोभ, भय और हास्य का त्याग ये चार निषेध रूप है और अनुवीचिभाषण विधिरूप है । अर्थात् विधि-निषेध अपेक्षा यहाँ कथन है ?

प्रश्न ३–क्रोध, लोभ, हास्य, भय, त्याग तथा अनुवीचिभाषण कथन को सत्यव्रत की भावना क्यो कहा ?

उत्तर–असत्य चार कारणो से ही बोला जा सकता है क्रोधावेश मे, लोभ के वशीभूत हो, हँसी-हँसी मे अथवा किसी के भय से । जिस जीव ने आगम के अनुकूल बोलने का व्रत लिया है वह कर्तव्यनिष्ठ कभी भी असत्य भाषण नही कर सकता है । इन्ही कारणो से इन्हे असत्यव्रत की भावनाओ मे लिया है ।

प्रश्न ४–अचौर्यव्रत की पॉच भावनाएँ कौनसी है ?

उत्तर–शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्यशुद्धिस-धर्माविसंवादाः पञ्च ।।६।।

सूत्रार्थ–शून्यागार आवास, विमोचित आवास, परोपरोधाकरण, भैक्ष्यशुद्धि और सधर्मा अविसवाद ये अचौर्यव्रत की पाँच भावनाएँ है ।

प्रश्न १–शून्यागार आवास का अर्थ क्या है ?

उत्तर–शून्य जो आगार वह शून्यागार है । पर्वत, गुफा, वृक्ष, कोटर, नदी, तट आदि निर्जन-अस्वामिक इनमे निवास करना शून्यागारावास है ।

प्रश्न २–विमोचितावास किसे कहते है ?

उत्तर–दूसरो के द्वारा छोड़े हुए ग्राम, नगर, पत्तन, शत्रुओ के द्वारा उद्वासित स्थान विमोचित है उनमे निवास विमोचितावास कहलाता है ।

प्रश्न ३–परोपरोधाकरण का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–दूसरो को अपने स्थान पर ठहरने से नही रोकना परोपरोधाकरण है ।

प्रश्न ४–भैक्ष्यशुद्धि किसे कहते है ?

उत्तर–आचारशास्त्र मे कथित उत्पादन आदि ४६ दोषरहित आहार करना भैक्ष्यशुद्धि है ।

प्रश्न ५—सधर्माविसवाद किसे कहते हैं ?

उत्तर—समान धर्म जैनधर्म जिनका होता है वे सधर्म वाले कहलाते है। विरूप सन्मुख होकर "यह मेरा है, यह तेरा है" इस प्रकार भाषण करना विसवाद है। सहधर्मियो के साथ विसवाद नही करना सधर्माविसवाद है।

प्रश्न ६—शून्यागार-आवास, विमोचित-आवास, परोपरोधाकरण, भैक्ष्यशुद्धि और सधर्माविसवाद को अचौर्यव्रत की भावना कहने के हेतु क्या हैं ?

उत्तर—१ शून्यागार निवास, विमोचित आवास और परोपरोधाकरण से जीवन मे निस्पृहता आती है। मन परिग्रह से अलिप्त रहता है तथा अचौर्यव्रत मे परमस्थैर्य / दृढ़ता होती है।

२ सहधर्मियो के साथ विसवाद नही करने से जिन वचनो का व्याघात नही होता है। (विसवाद से जिनवचनो का व्याघात होता है।)

३ भिक्षाशुद्धि से अन्तराय आदि का पालन करने से मन के साथ चौर्य नही होता है। जिसके भिक्षाशुद्धि नही है वह जिनवचनो का लोप करता है, अन्तराय आदि को छिपाता है अत अचौर्यव्रत दूषित होता है।

प्रश्न ८—ब्रह्मचर्यव्रत की पाँच भावनाएँ कौनसी है ?

उत्तर— स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहराङ्गनिरीक्षणपूर्वरतानु-स्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीरसंस्कारत्यागाः पञ्च ॥ ७ ॥

सूत्रार्थ—स्त्रीरागकथाश्रवणत्याग, तन्मनोहराङ्गनिरीक्षणत्याग पूर्वरतानुस्मरण-त्याग वृष्येष्टरसत्याग और स्वशरीर सस्कारत्याग, ब्रह्मचर्यव्रत की पॉच भावनाएँ है।

प्रश्न १—ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षार्थ जो पॉच भावनाएँ है उनका स्वरूप बताइये ?

उत्तर—स्त्रियो मे अनुराग बढ़ाने वाली कथाओ का श्रवण स्त्रीरागकथाश्रवण है।

स्त्रियो के मनोहर अगो का देखना तन्मनोहरागनिरीक्षण है।

पूर्वकाल मे अनुभुक्त भोगो का स्मरण, अनुचिंतन पूर्वरतानुस्मरण है।

कामवर्धक गरिष्ठ रसो का त्याग करना वृष्येष्टरससस्कार त्याग भावना है।

अपने शरीर के सस्कार का त्याग करना स्वशरीर सस्कार त्याग भावना है।

प्रश्न २—स्त्रीरागकथाश्रवण, तन्महोरागनिरीक्षण, पूर्वरतानुस्मरण, वृष्येष्टरस-सेवन और शरीर संस्कार करने मे क्या दोष है ?

उत्तर–इन पॉच क्रियाओ के करने से मनमथ या मानसिक विकार उत्पन्न होता है और ब्रह्मचर्यव्रत का घात होता है ।

प्रश्न ३–इन पॉच भावनाओ के भाने का फल क्या है ?

उत्तर–इन पॉच क्रियाओ का त्याग कर, पॉच भावनाओ के भाने से ब्रह्मचर्यव्रत स्थिर होता है ।

प्रश्न ४–क्या और भी क्रियाएँ है जिनसे ब्रह्मचर्य का घात होता है ?

उत्तर–जी हॉ । अश्लील चित्र देखना, चलचित्र, टी वी मे अश्लील दृश्यो का देखना, अश्लील गाने सुनना, उपन्यास पढ़ना, सस्कृति के विरुद्ध वेषभूषा पहनना आदि क्रियाएँ भी ब्रह्मचर्य की घातक बनती है, अत ब्रह्मचर्य व्रत के धारक को व्रतरक्षा के लिये इनका भी त्याग करना चाहिये ।

प्रश्न ५–परिग्रहत्यागव्रत की पॉच भावनाएँ कौनसी है ?

उत्तर–मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पञ्च ॥ ८ ॥

सूत्रार्थ–मनोज्ञ और अमनोज्ञ इन्द्रियो के विषयो मे क्रम से राग और द्वेष का त्याग करना ये अपरिग्रहव्रत की पाच भावनाए है

प्रश्न १–मनोज्ञ और अमनोज्ञ किसे कहते हैं ?

उत्तर–मनोज्ञ कहते है [illegible] अनुकूल [illegible] । अमनोज्ञ [illegible] अनुकूल न हो ।

प्रश्न २–अपरिग्रहव्रत की रक्षा के लिये क्या करे ?

उत्तर–८ स्पर्श, ५ रप, २ गन्ध, ५ वर्ण और ७ स्वर इन ५ इन्द्रियो के इष्टविषयो मे राग नही करे और अनिष्ट विषयो मे द्वेष नही करे ।

प्रश्न ३–अपरिग्रहव्रत की पॉच भावनाओ का फल क्या है ?

उत्तर–अपरिग्रहव्रत की पॉच भावनाओ के चिन्तन करने से परिग्रह त्यागव्रत मे स्थिरता आती है, और परिग्रह से आसक्ति छूट जाती है ।

प्रश्न ४–पॉच व्रतो की दृढ़ता के लिये व्रतविरोधी हिसादि भावो के विषय मे कौनसी भावना भानी चाहिये ?

उत्तर– हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनम् ॥ ९ ॥

सूत्रार्थ–हिसादिक पॉच दोषो मे ऐहिक और पारलौकिक अपाय और अवद्य का दर्शन भावने योग्य है ।

प्रश्न १–हिसादि पॉच पापो के सबध मे क्या विचार करना चाहिये ?

उत्तर–हिंसा आदि पॉच पापो के होने पर इसलोक और परलोक मे सासारिक और पारमार्थिक प्रयोजनो का नाश होता है तथा निन्दा को देखना पड़ता है ऐसा विचार करे ।

प्रश्न २–अपाय किसे कहते है ?

उत्तर–स्वर्ग और मोक्ष की प्रयोजक क्रियाओ का विनाश करने वाली प्रवृत्ति अपाय है ।

प्रश्न ३–अवद्य का अर्थ क्या है ?

उत्तर–अवद्य का अर्थ है निन्दनीय, अयोग्य या गर्ह्य ।

प्रश्न ४–हिंसा पाप से इस लोक-परलोक मे होने वाले अपाय और अवद्य कौन से हैं ?

उत्तर–हिसक जीव निरन्तर व्याकुल रहता है । वह सदा वैर को बाँधे रहता है । इसलोक मे वध, बन्ध और क्लेश आदि को प्राप्त होता है और परलोक मे निंद्य अशुभगति को प्राप्त होता है ।

प्रश्न ५–असत्य पाप से होने वाले अपाय अवद्य कौन से है ?

उत्तर–असत्यवादी का इसलोक मे कोई विश्वास नही करता है, जिह्वाछेद आदि दुःखो को प्राप्त होता है तथा परलोक मे जिनसे असत्य बोलकर बैर बाँधा था उन जीवो से घोर विपत्तियो को और अशुभगति को प्राप्त होता है । असत्यवादी सदा निंदा का पात्र बनता है ।

प्रश्न ६–चोरी पाप से होने वाले अपाय और अवद्य कौन-कौन से है ?

उत्तर–परद्रव्य का अपहरण करने वाला तिरस्कार को प्राप्त होता है तथा इसलोक मे ताड़ना-मारना, बाँधना, हाथ-पैर-नाक-कान, ऊपर के ओठ का छेदना, भेदना और सर्वस्वहरण आदि दुःखो को और परलोक मे अशुभगति को प्राप्त होता है ।

प्रश्न ७–अब्रह्म के दोष बताइये ?

उत्तर–जो अब्रह्मचारी है उसका चित्त मद से भ्रमता रहता है । जिस प्रकार वन का हाथी हथिनी से जुदा कर दिया जाता है और विवश होकर उसे वध, बन्धन, सक्लेश आदि दुःखो को भोगना पड़ता है ठीक यही दुःख अब्रह्मचारी को उठाने पड़ते हैं । यह लोकनिंद्य हो परलोक मे नरकादि अशुभगतियो मे चिरकाल भ्रमण करता है ।

प्रश्न ८–परिग्रह के दोष (अपाय और अवद्य) कौन से है ?

उत्तर–१ परिग्रह पाप युक्त जीव परिग्रह के उपार्जन, रक्षण और क्षय के द्वारा होने वाले बहुत से दोषो को प्राप्त करता है ।

२ ईंधन के द्वारा वह्नि की तरह धन से उसकी कभी तृप्ति नहीं होती ।

३ लोभ के कारण वह कार्य-अकार्य को नही समझता है ।

प्रश्न ९–परिग्रहधारी लोक मे सम्मान पाता है, सभा आदि मे आगे पूजा को प्राप्त होता है फिर इसे पाप क्यो कहा ?

उत्तर–"सब पापो का बाप परिग्रह है" । परिग्रहधारी सम्मान नही पाता । परिग्रह त्याग कर चार दान मे लगाने वाला लोक मे सम्मान पाता है । अत परिग्रह का त्याग ही कल्याणकारी है ।

प्रश्न १०–हिसादि पाँच पापो के विषय मे करने योग्य अन्य कौनसी भावना है ?

उत्तर– दुःखमेव वा ॥ १० ॥

सूत्रार्थ–ये हिसादि पाँच पाप दुःखरूप है, दुःख स्वरूप ही है, ऐसा चिन्तन करना चाहिये ।

प्रश्न १–हिसादि पॉच पाप दुःख के ही कारण क्यो कहे है ?

उत्तर–हिसादि पॉच पापो से असातावेदनीय कर्मों का आस्रव होता है । अथवा हिंसादि पाप असातावेदनीय के कारण है और असातावेदनीय दुःखस्वरूप है अत पापो को दुःखरूप कहा जाता है ।

प्रश्न २–हिसा करने वाले को हिसा मे आनन्द है, झूठ बोलने वाला, चोरी करने वाला, परिग्रह सचय करने वाला ये सब आनन्द का अनुभव करते है फिर पॉच पापो को दुःखरूप ही है ऐसा क्यो कहा ?

उत्तर–हिसा, झूठ, चोरी, परिग्रह मे आनन्द मानने वाले को रौद्रध्यान होता है और रौद्रध्यान नरकायु बध का कारण होने से पाप दुःखरूप ही है ।

प्रश्न ३–हिसादि पापो को दुःखरूप ही कैसे कह सकते है क्योंकि इनमे भी विषयो के सेवन मे सुख उपलब्ध होता है ?

उत्तर–विषयो के सेवन से जो सुख मिलता है वह सुख नही, सुखाभास है । दाद के खुजलाने के समान वेदना का प्रतिकार मात्र है । कहा भी है— "तत्सुख यत्र नासुखम्" सुख वह है जिसके होने पर दुःख न हो । अन्य सब सुखाभास है ।

प्रश्न ४–निरन्तर चिन्तन करने योग्य भावनाएँ कौनसी है ?

उत्तर–मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यानि च सत्त्वगुणाधिक-क्लिश्यमानाविनयेषु ॥ ११ ॥

सूत्रार्थ–प्राणीमात्र मे मैत्री, गुणाधिको मे प्रमोद, क्लिश्यमानो मे करुणावृत्ति और अविनयी जीवो मे माध्यस्थ्य भावना करनी चाहिये ।

प्रश्न १-मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ्य भावनाओ के लक्षण बताइये ?

उत्तर-परेषा दु खानुपत्त्यभिलाषो मैत्री—दूसरो को दुःख न हो ऐसी अभिलाषा रखना मैत्री है ।

वदनप्रसादादिभिरभिव्यज्यमानान्तर्भक्तिराग प्रमोद—मुख की प्रसन्नता आदि द्वारा भीतर भक्ति और अनुराग का व्यक्त होना प्रमोद है ।

दीनानुग्रहभाव कारुण्यम्—दीनो पर दयाभाव रखना कारुण्य है ।

रागद्वेषपूर्वकपक्षपाताभावो माध्यस्थम्—राग-द्वेषपूर्वक पक्षपात का न करना **माध्यस्थ्य** भावना है ।

मैत्रीभाव जगत मे मेरा, सब जीवों से नित्य रहे ।
दीन दुखी जीवो पर मेरे, उर से करुणा स्रोत बहे ॥
दुर्जन क्रूर कुमार्गरतो पर, क्षोभ नहीं मुझको आवे ।
साम्यभाव रक्खूँ मैं उन पर, ऐसी परिणति हो जावे ॥
गुणीजनो को देख हृदय मे, मेरे प्रेम उमड़ आवे ।।

प्रश्न २-सत्व, गुणाधिक, क्लिश्यमान और अविनेय के लक्षण क्या है ?

उत्तर-१ बुरे कर्मों के फल से जो नाना योनियो मे जन्मते और मरते है वे सत्त्व है । सत्व का अर्थ है जीव ।

२ जो सम्यग्ज्ञानादि गुणो मे बढ़े-चढ़े है वे गुणाधिक कहलाते है ।

३ असातावेदनीय कर्म के उदय से जो दु खी है वे क्लिश्यमान कहलाते है । तथा

४ जिनमे जीवादि पदार्थों के सुनने व ग्रहण करने का गुण नही है, जो सम्यक्त्वादि गुणो से रहित हैं तथा जिनको समझाना या शिक्षण देना शक्य नही है वे अविनेय कहलाते है ।

प्रश्न ३-मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थ भावनाओ के चिन्तन का फल क्या है ?

उत्तर-जो सब जीवो मे मैत्री, गुणाधिको मे प्रमोद, क्लिश्यमानो मे कारुण्य और अविनेयो मे माध्यस्थ्य भाव की भावना करता है उसके अहिसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह पाँच व्रत पूर्णता को प्राप्त होते है ।

प्रश्न ४-मैत्रीभाव से कौनसा गुण प्रकट होता है ?

उत्तर–प्राणी मात्र मे मैत्री भावना से जीवन मे विशालता आती है । यह मेरा-यह तेरा की सकुचित वृत्ति दूर हो "वसुधैव कुटुम्बक" की उदार नीति प्रकट होती है कहा भी—"उदारचरिताना वसुधैव कुटुम्बकम्" ।

प्रश्न ५–गुणाधिक मे प्रमोद भावना से कौन सा गुण प्रकट होता है ?

उत्तर–गुणाधिको मे प्रमोदभावना से अपने भी अव्यक्त गुणो का प्रकाश होता है, कृतज्ञता गुण प्रकट होता है तथा उच्च गोत्र का आस्रव होता है । कहा भी है सम्यग्दृष्टि की भावना कैसी हो—

"गुणग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषो पर जावे" ।

प्रश्न ६–दु खी अपात्रो को दान देना चार दान मे से कौनसा दान है ? इससे कौनसा गुण निखरता है ?

उत्तर–दु खी अपात्रो मे दान देना करुणा दान है । दु खी जीवो मे दयाभाव रखने से अनुकम्पा गुण मे विशेषता आती है ।

प्रश्न ७–सूत्र मे आचार्यश्री विपरीत प्रवृत्ति वालो के लिये माध्यस्थ्य रहने की बात कही है परन्तु ऐसा करने से दुष्प्रवृत्ति बढ़ेगी अत ऐसा करना क्या उचित है ? विपरीत प्रवृत्ति वालो को भी सन्मार्ग पर लाना सज्जनो का कर्तव्य है ?

उत्तर–यद्यपि यह कथन ठीक है किन्तु यहाँ उस जीव की चर्चा है जिसे सज्जनो ने दो-तीन बार समझा दिया है फिर भी वे नही मानते है । उनके लिये आचार्यश्री का कथन है कि—"कर्मानुसारिणी बुद्धि" हे भव्यात्माओ विपरीत वृत्ति वालो को एक-दो बार प्रेम से समझा दो नही माने तो अपने चित्त मे आकुल-व्याकुल होना ठीक नही है, अच्छा यही है कि उससे माध्यस्थ हो जाओ अन्यथा आर्त्त-रौद्र ध्यान बढ़ेगा ।

"मुण्डे-मुण्डे मतिभिन्ना" ।

क्षणिक विचार करो भगवान् आदिनाथ भी ४००० राजाओ को मुनिपद से भ्रष्ट होते हुए नही रोक पाए तो हम क्या कर सकते है ? कर्ता बुद्धि से सम्यग्दृष्टि दूर रहता है । वह कर्तव्य बुद्धि मे जागृत है कर्ताबुद्धि मे सुप्त है ।

प्रश्न ७–व्रती जीवो को सवेग और वैराग्य के लिये निरन्तर कौनसी भावना चिन्तन करना चाहिये ।

उत्तर–जगत्कायस्वभावौ वा संवेगवैराग्यार्थम् ॥ १२ ॥

सूत्रार्थ–सवेग और वैराग्य के लिये ससार और शरीर का चिन्तन करना चाहिये ।

प्रश्न १-जगत् और काय किसे कहते हैं ?

उत्तर-गमन करे या जिसमे भ्रमण करे उसे **जगत्** कहते हैं । जगत् का ही अर्थ ससार है । जो विशेष नामकर्म के उदय से प्राप्त होकर शीर्यंते अर्थात् गलते है वे **शरीर** है । शरीर को **काय** कहते हैं ।

प्रश्न २-सवेग और वैराग्य के लक्षण बताइये ?

उत्तर-ससारभीरुता वा धर्मानुराग को सवेग कहते है ।

शरीर और पञ्चेन्द्रियो के विषयो से विरक्ति को वैराग्य कहते है ।

प्रश्न ३-जगत् के स्वभाव का चिन्तन कैसे करना चाहिये ?

उत्तर-जगत् का स्वभाव—यह जगत् अनादि है, अनिधन है, वेत्रासन, झल्लरी और मृदग के समान है । इस ससार मे जीव अनन्तकाल तक मिथ्यात्व के वशीभूत हो नाना योनियो मे जन्म-मरण के दु खो को भोगते हुए भ्रमण करता है । यहाँ कोई वस्तु नियत नही है । जीवन जल के बुदबुदे के समान है और भोग सम्पदाएँ बिजुली व इन्द्रधनुष के समान चचल है । ससार मे कोई रक्षक नही है, जीव अकेला जन्मता है, अकेला मरता है, अकेला ही अपने सुख-दु ख को भोगता है—

"पुनरपि जनमम् पुनरपिमरणम् पुनरपि जननी जठरे शयनम्
इह संसारे खलु दुस्तारे, त्राता नहि भव कारागारे ।"

प्रश्न ४-शरीर का स्वभाव क्या है ?

उत्तर-शरीर स्वभाव—स्वभाव से शरीर अपवित्र है, अनित्य है, दु ख का कारण है, नि सार है और रोगो का घर है इत्यादि । कहा भी है—

देह अपावन अथिर घिनावन, यामें सार न कोई ।
सागर के जलसो शुचि कीजै, तो भी शुद्ध न होई ॥
सातकुधातुभरी मलमूरत, चर्म लपेटी सोहै ।
अन्तर देखत या सम जग में, अवर अपावन कोहै ॥
नव मल द्वार स्रवै निशिवासर, नाम लिये घिन आवे ।
व्याधि उपाधि अनेक जहाँ तहाँ, कौन सुधी सुख पावै ॥
पोषत तो दुख दोष करै अति, शोषत सुख उपजावै ।
दुर्जन देह स्वभाव बराबर, मूरख प्रीति बढ़ावै ।। वै०भा०॥

प्रश्न ५-ससार और शरीर के स्वभाव का चिन्तन करने से क्या लाभ है ?

उत्तर–ससार और शरीर के स्वभाव का बार-बार चिन्तन करने से ससार के दुखो से भय और राग-द्वेष का अभाव होकर वैराग्य मे दृढ़ता आती है ।

प्रश्न ६–हिसा पाप का लक्षण क्या है ?

उत्तर– **प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा ॥ १३ ॥**

सूत्रार्थ–प्रमत्तयोग से प्राणो का वध करना हिसा है ।

प्रश्न १–प्रमत्त किसे कहते है ?

उत्तर–कषाय सहित अवस्था को प्रमत्त / प्रमाद कहते है ।

प्रश्न २–प्रमादयोग किसे कहते है ?

उत्तर–प्रमाद से युक्त जो आत्मा का परिणाम होता है वह प्रमादयोग कहलाता है ।

प्रश्न ३–प्रमाद कितने है ?

उत्तर–प्रमाद १५ है—पाँच इन्द्रियाँ, चार कषाय और चार विकथा (स्त्रीकथा, राजकथा, चोरकथा और भोजनकथा) निद्रा तथा स्नेह ५+४+४+१+१=१५ ।

प्रश्न ४–प्राणो का वियोग करना मात्र **हिंसा** है ऐसा न कहकर "प्रमत्तयोगात्" विशेषण क्यो दिया ?

उत्तर–ईर्यासमितियुक्त व्रती या साधु के अपने पैर के उठाने पर चलने के स्थान पर यदि कोई क्षुद्रप्राणी उनके पैर से दब जाये और उसके सम्बन्ध से मर जाय तो भी उनके उस निमित्त से थोड़ा भी पाप बन्ध नही होता ऐसा आगम मे कहा है—जैसे अध्यात्मदृष्टि से मूर्च्छा को ही परिग्रह कहा है वैसे रागादि परिणाम को ही हिंसा कहा है । राग मे प्रमाद योग है अत प्रमत्तयोगात् विशेषण दिया है ।

प्रश्न ५–प्राणो का वियोग न हो तो भी प्रमादयोगी को हिंसा क्यो ?

उत्तर–जीव मर जाय या जीता रहे तो भी यत्नाचार से रहित पुरुष के नियम से हिंसा होती है और जो यत्नाचारपूर्वक प्रवृत्ति करता है उसके द्वारा हिंसा के हो जाने पर भी हिंसा पाप का बध उसे नही होता है ।

प्रमादयुक्त आत्मा पहले स्वय अपने द्वारा ही अपना घात करता है इसके बाद दूसरे प्राणियो का वध हो या न भी हो । वहाँ भावरूप प्राणो का नाश तो है ही ।

प्रश्न ६–लोक मे सर्वत्र सूक्ष्म-बादर जीव ठसाठस भरे है अत हिंसा से बचना अति कठिन है, हिसा तो होगी ही ? हिंसा से बचने का उपाय क्या होगा ?

उत्तर–प्रमादयोग को हिंसा का मूल कहा है । यत्नाचारपूर्वक उठो, यत्नाचारपूर्वक बैठो । खाना, पीना, चलना, फिरना आदि सब क्रियाओ मे यत्नाचारपूर्वक प्रवृत्ति करने से हिसा पाप का बध नही होगा । अत. विवेक पूर्वक क्रिया करे । धीवर जीवो को नही मारता हुआ भी पाप का भागी होता है और परिणाम विशेष से किसान जीवो का घात करके भी पाप का भागी नहीं होता है।

प्रश्न ७–एक मछियारा जाल लेकर मछलियाँ पकड़ने गया । बहुत प्रयत्न करने पर भी मछली जाल मे नही आई वह हिसा का पाप बध करेगा या नही ?

उत्तर–जाल म मछली नही आने मे द्रव्यहिसा नही होने पर भी उसके निरन्तर भावहिसा तो हो ही रही ह अत वह हिसक है। बधक है।

प्रश्न ८–एक महिला बहुत यत्नाचारपूर्वक गृहकार्य सब्जी सुधारना, झाड़ू देना आदि कर रही है फिर उसके द्वारा सब्जी सुधारते हुए जीवो का नाश होगा या झाड़ू देते हुए चीटी आदि जीव मर गये तो वह हिंसक है या नही ।

उत्तर–नही, क्योंकि उस महिला की प्रमादयुक्त क्रिया नही है । यत्नाचार क्रिया करने मे जीव मर भी जाय तो पाप बध नहीं है ।

प्रश्न ९–वर्तमान मे साड़ी आदि वस्त्रो पर पेन, टॉवेल्स आदि पर हाथी-घोड़ा-चिड़िया आदि के चित्र छपते है, व्रती श्रावक उनका उपयोग कर सकता है या नही ?

उत्तर–हाथी-घोड़े-मनुष्य आदि जीवो के चित्र जिन पर बने हैं उन वस्तुओ का उपयोग व्रती नही कर सकता क्योंकि इस निमित्त से वह भाव हिंसा का बधक होता है ।

प्रश्न १०–बच्चो को शक्कर से बने मिठाई के खिलौने हाथी, घोड़ा, बन्दर, चिड़िया आदि खिलाये जाते हैं यह उचित है क्या ?

उत्तर–नही, साक्षात् पाप का हेतु है । बच्चो के मुख से एक ही बात निकलती है—"मैंने आज हाथी खाया, मैंने आज घोड़ा खाया आदि । साक्षात् भावहिंसा का पापबध ऐसी वस्तुओ के भक्षण से होता है । अत इन्हे दूर से ही छोड़ दे ।

प्रश्न ११–असत्य का लक्षण क्या है ?

उत्तर– **असदभिधानमनृतम् ॥ १४ ॥**

सूत्रार्थ–असत् बोलना अनृत है ।

प्रश्न १–असत् व अनृत किसे कहते है ?

उत्तर–सत् शब्द प्रशसावाची है जो सत् नही है वह असत् है । असत् का अर्थ अप्रशस्त है । अर्थात् जो पदार्थ नही है उसका करना असत्य / अनृत है ।

प्रश्न २–अप्रशस्त किसे कहते है ?

उत्तर–जिन वचनो से प्राणियो को पीड़ा होती है वह अप्रशस्त है । भले ही वह विद्यमान पदार्थ को विषय करता हो या चाहे अविद्यमान पदार्थ को विषय करता हो ।

प्रश्न ३–एक गुरु ने शिष्य को सुधारने की दृष्टि से उसे असत् वचनो के द्वारा फटकार दिया, क्या उनका वचन असत्य है ?

उत्तर–नही, जिन वचनो से प्राणी को पीड़ा होती है, वे सर्व वचन प्रमत्तयोग सहित होने पर असत्य होते है । गुरु का लक्ष्य शिष्य के उपकार की ओर है अत उनके वचनो को असत्य नही कह सकते है । इसी प्रकार माता-पिता का सतान के लिये कहा गया कटु वचन भी सत्य है क्योंकि प्रमत्तयोग का उन वचनो मे अभाव है ।

प्रश्न ४–प्रमत्तयोग से बोले जाने वाले कौन-कौन से वचन असत्य की कोटि मे आते है ?

उत्तर–जो वचन कर्णकर्कश, कर्णशूल, हृदयविदारक है, मानसिक पीड़ा कारक है, व्यर्थ बकवादरूप है, आगमविरुद्ध है, प्राणियो के वध-बन्ध-कारक है, वैर कराने वाले है, कलह उत्पादक है, गुरुजनो के अवज्ञाकारक है वे सर्ववचन असत्य है इनमे प्रमत्तयोग है । उदाहरण के तौर पर कमबुद्धि वाले को मूर्ख कहना, गरीब को खोटे वचन बोलकर तिरस्कार करना, सूरदास को अन्धा कहना आदि सब असत्य है ।

प्रश्न ५–सद्गृहिणी को घर मे वस्तु (धान्यादि) के होते हुए भी नही है ऐसा कहना पड़ता है, वह वचन सत्य है या असत्य ?

उत्तर–सद्गृहिणी गृहस्थ जीवन की मर्यादा बनाये रखने के लिये सामान को पूर्व नियोजित तरीके से सदा भडार मे रखती है जिससे मुसीबत के समय

कभी तिरस्कृत न होना पड़े अत उसका असत्य वचन (सामान होते हुए भी नही है कहना रूपवचन) भी सत्य ही है क्योंकि यहाँ प्रमाद नही है ।

प्रश्न ६–स्तेय (चोरी) का लक्षण क्या है ?

उत्तर– अदत्तादानं स्तेयं ॥ १५ ॥

सूत्रार्थ–बिना दी हुई वस्तु का लेना स्तेय है ।

प्रश्न १–अदत्त और आदान के अर्थ क्या है ?

उत्तर–दत्त = दिया गया, न दत्त इति अदत्त = नही दिया गया । आदान ग्रहण करना । = [बिना दिया पदार्थ ग्रहण करना] अदत्तादान है ।

प्रश्न २–यदि बिना दी गई वस्तु को लेना चोरी है (अदत्तादान) है तो कर्म, नोकर्म को ग्रहण करना भी चोरी हो जायेगा, क्योंकि ये किसी के द्वारा दिये नही जाते है ?

उत्तर–यह कोई दोष नही है क्योंकि जहॉ लेन-देन सभव होता है वही चोरी का व्यवहार होता है । कर्मवर्गणाओ मे यह व्यवहार नही होता ।

प्रश्न ३–भिक्षु के ग्राम-नगरादि मे भ्रमण करते समय गली, कूचा, दरवाजा आदि मे प्रवेश करके जाने पर अदत्तग्रहण होगा ?

उत्तर–यह कोई दोष नही क्योंकि साधुजन उन्ही गली, कूचा या द्वार से प्रवेश करते है जो सबके लिये खुले हो । बन्द या व्यक्तिगत मे वे प्रवेश नही करते है । दूसरी बात भिक्षुक के गली आदि मे प्रवेश करते हुए प्रमत्तयोग का अभाव है ।

प्रश्न ४–मार्ग मे किसी की सोने-चॉदी आदि की कीमती वस्तु उठाकर उसे शुभकाम मे लगाना युक्त है या नही ?

उत्तर–यद्यपि शुभकाम मे लगाने के परिणामो से उठाना युक्त है तथापि जिसकी वस्तु है यदि वह वहाँ खोजने आवे और न मिले तो उसके परिणामो मे सक्लेश होगा । अत बाह्य वस्तु ली जाय या न ली जाय, जहॉ सक्लेशरूप परिणाम के साथ प्रवृत्ति होती है वहाँ चोरी है । उत्तम तो यही है कि परद्रव्य की ओर दृष्टिपात ही नही करना ।

प्रश्न ५–अब्रह्म किसे कहते है ?

उत्तर– मैथुनमब्रह्म ॥ १६ ॥

सूत्रार्थ–मैथुन अब्रह्म है ।

प्रश्न १–मैथुन किसे कहते है ?

उत्तर–चारित्रमोहनीय का उदय होने पर राग परिणाम से युक्त स्त्री और पुरुष के जो एक दूसरे को स्पर्श की इच्छा होती है वह मिथुन कहलाता है और मिथुन का कार्य मैथुन है ।

प्रश्न २– कोई जन कहते है स्पर्श मात्र अब्रह्म है ?

उत्तर–प्रमत्तयोगात् पद की यहाँ अनुवृत्ति है इसलिये रतिजन्य सुख के लिये स्त्री-पुरुष की मिथुनविषयक जो चेष्टा है वही मैथुन या अब्रह्म है स्पर्श मात्र अब्रह्म नही है । यदि ऐसा नही माना जावेगा तो माता-पुत्र, पिता-पुत्री, ससुर-बहू, सास-जँवाई आदि का लोकप्रचलित प्रेम व पूज्यता मे चरण-स्पर्श और आशीर्वाद आदि व्यवहार दूषित हो जायेगा ।

प्रश्न ४-अब्रह्म को पाप क्यो कहा ?

उत्तर-१ एक बार भोग करने मे ९ लाख त्रस जीवो का घात होता है ।

२ अब्रह्म हिसादि सब पापो को पुष्ट करता है ।

३ मैथुन सेवन मे दक्ष जीव त्रस-स्थावर सब जीवो की हिसा करता है, झूठ बोलता है, चोरी करता है और चेतन-अचेतन सभी प्रकार के परिग्रहो का सचय करता है ।

४ **विषयासक्त जीवानां, गुणः को वा न नश्यति ।**
न वैदुष्यं न मानुष्यं, नाभिजात्यं न सत्यवाक् ॥ -क्ष त्र १

प्रश्न ५–ब्रह्म किसे कहते है ?

उत्तर–अहिसादिक गुण जिसके पालन करने पर बढ़ते है वह ब्रह्म कहलाता है ।

प्रश्न ६–परिग्रह का लक्षण क्या है ?

उत्तर– **मूर्च्छा परिग्रहः ॥ १७ ॥**

सूत्रार्थ–मूर्च्छा को परिग्रह कहते है ।

प्रश्न १-मूर्च्छा का लक्षण क्या है ?

उत्तर-परपदार्थों के ममत्व को मूर्च्छा कहते हैं

अथवा

गाय-भैंस, मणि और मोती आदि चेतन-अचेतन बाह्य उपधि, तथा रागादिरूप अभ्यन्तर उपाधि का सरक्षण, अर्जन और सस्कार आदि रूप व्यवहार मूर्च्छा है ।

प्रश्न २–एक राजा अपरिग्रही, निस्पृही और एक भिखारी परिग्रही कैसे हो सकते है ?

उत्तर–एक राजा अरबपति होकर भी यदि वैरागी है, अनासक्त है, धन-वैभव को निस्सार, क्षणभगुर समझकर छोड़ने की इच्छा से भोग रहा है तो वह परिग्रह रहते हुए भी अपरिग्रही है । और एक भिखारी महलो के सपने देख रहा है, ममत्व मे लगा हुआ है तो परिग्रही ही है क्योंकि राजा के अप्रमत्तयोग है और भिखारी के प्रमत्तयोग है ।

प्रश्न ३–परिग्रह का लक्षण क्या है ?

उत्तर–१ ब्राह्य धन-धान्यादि पदार्थों तथा अन्तरग रागादि परिणामो मे "यह मेरा है" इस प्रकार का सकल्प परिग्रह है । क्योंकि इस प्रकार के सकल्प के होने पर सरक्षण आदि रूप भाव होते है ।

२ परि समन्तात् ग्रहति इति परिग्रह = जो चारो तरफ से ग्रहण किया जावे वह परिग्रह है ।

प्रश्न ४–रागादि परिणामो के समान "ज्ञान आदिक मे भी यह मेरा है" ऐसा सकल्प देखा जाता है अत ज्ञानादिक को भी परिग्रह कहना चाहिये ?

उत्तर–१ जो ज्ञान-दर्शन-चारित्रवाला है वह प्रमाद रहित है अत उसके मूर्च्छा का अभाव होने से परिग्रहरहितपना सिद्ध हो ही जाता है ।

२ ज्ञानादिक आत्मा के स्वभाव होने से रागादिक के समान हेय नहीं हैं अत उनमे परिग्रहपना नही है ।

प्रश्न ५–हिसादि पाँच पापो मे प्रसिद्ध जीवो के नाम बताओ ?

उत्तर–धनश्री हिसा पाप मे, सत्यघोष असत्य मे, तपस्वी चोरी मे, कोतवाल यमदड कुशील मे और श्मश्रुनवनीत परिग्रह पाप मे प्रसिद्ध हुए ।

धनश्रीसत्यघोषौ च तापसाऽऽरक्षकावपि ।
उपाख्येयास्तथाश्मश्रुनवनीतो यथाक्रमम् ॥ ६५ ॥ र. श्रा.

प्रश्न ६–अहिसा आदि पाँच व्रतो मे प्रसिद्ध महापुरुषो के नाम बताओ ?

उत्तर–अहिसा अणुव्रत मे चाण्डाल
सत्यव्रत मे धनदेव सेठ
अचौर्याणुव्रत मे वारिषेण राजकुमार
ब्रह्मचर्याणुव्रत मे नीली वणिक्पुत्री और
परिग्रहपरिमाणव्रत मे जय राजा पूजातिशय को प्राप्त हुए ।

मातङ्गो धनदेवश्च, वारिषेणस्ततः परः ।
नीलीजयश्च संप्राप्ता, पूजातिशयमुत्तमम् ॥ ६४ ॥ –र. श्रा.

प्रश्न ७–व्रती का लक्षण क्या है ?

उत्तर- निश्शल्यो व्रती ॥ १८ ॥

सूत्रार्थ-शल्य रहित व्रती होता है ।

प्रश्न १-शल्य किसे कहते है ?

उत्तर-"शृणाति हिनस्ति इति शल्य" जो दुख देती है, निरन्तर चुभती है, वह शल्य है । अथवा शल्य का अर्थ है पीड़ा देनेवाली वस्तु । जब शरीर मे काँटा आदि चुभ जाता है तब वह प्राणियो को पीड़ाकर होता है वैसे ही शरीर और मन सम्बन्धी बाधा का जो कारण है वह शल्य है ।

प्रश्न २-शल्य के भेद कितने है ?

उत्तर-शल्य के तीन भेद है—१ मायाशल्य २ निदानशल्य और ३ मिथ्याशल्य ।

प्रश्न ३-माया, निदान, मिथ्या शल्य के लक्षण क्या है ?

उत्तर-माया निकृति और वञ्चना अर्थात् ठगने की वृत्ति यह माया शल्य है ।

भोगो की लालसा निदान शल्य है और

अतत्त्वो का श्रद्धान मिथ्या शल्य है ।

प्रश्न ४-निदान शल्य और निदान नामक आर्त्तध्यान मे क्या अन्तर है ?

उत्तर-१ निदान शल्य मिथ्यात्व गुणस्थान मे ही होता है जबकि निदान नामक आर्त्तध्यान प्रथम गुणस्थान से पचम गुणास्थान तक होता है ।

२ निदान शल्य सदा रहती है, निदान ध्यान क्वचित् कदाचित् होता है ।

प्रश्न ५-मात्र शल्यरहित जीव व्रती हो सकता है क्या ?

उत्तर-मात्र शल्यरहित हो किन्तु व्रत नही हो वह भी व्रती नही हो सकता । जो व्रत रहित हो और शल्य रहित हो वही व्रती कहलाता है ।

प्रश्न ६-व्रत सहित को ही व्रती या शल्य रहित को ही व्रती क्यो नही कहा ?

उत्तर-जैसे किसी के घर बहुत सा दूध और घी होता है वह गाय वाला कहलाता है । यदि उसके घी, दूध नही होता है गाये बहुत है तो भी वह गायवाला नही कहलाता । उसी प्रकार जो सशल्य है उसके पास व्रतो के होने पर भी व्रती नही कहा जा सकता । अहिसादि व्रतो का विशिष्ट फल शल्यवान प्राप्त नही कर सकता । नि शल्य ही व्रती होकर अहिंसादि व्रतो

का विशिष्ट फल प्राप्त कर सकता है । अत: व्रती को व्रत सहित और शल्य रहित दोनो विशेषण युक्त होना आवश्यक है ।

प्रश्न ७–अहिंसादि व्रतो का विशिष्ट फल क्या है ?

उत्तर–पूर्ण अहिंसा व्रत के पालन का साक्षात् फल है मुक्ति की प्राप्ति होना । राग-द्वेष का अभाव कर शाश्वत स्व-स्वरूप मे लीनता । एकदेश अहिंसादि व्रतो का पालन करने वाला क्रमश स्वर्गसुखो को प्राप्त कर परम्परा से मुक्ति को प्राप्त करता है ।

प्रश्न ८–व्रती मानव कितने प्रकार के होते है ?

उत्तर– **अगार्य्यनगारश्च ॥ १९ ॥**

सूत्रार्थ–अगारी और अनगार के भेद से व्रती दो प्रकार के होते है ।

प्रश्न १–अगारी-अनगारी का लक्षण क्या है ?

उत्तर–अगार का अर्थ वेश्म अर्थात् घर है । जिसके घर है वह अगारी है और जिसके घर नही है वह अनगार है ।

प्रश्न २–जिसके घर है वह अगारी ऐसा मानने पर शून्यागार, मन्दिर और मठ आदि मे निवास करने वाले मुनि भी अगारी हो जायेगे और जो विषय तृष्णा को त्यागे बिना वन मे रहते है वह अनगारी कहलायेंगे ?

उत्तर–यह कोई दोष नही है क्योंकि यहाँ "भावागार" की विवक्षा है । चारित्रमोहनीय का उदय होने पर घर के प्रति अभिलाषा का नाम भावघर है । वह भावघर जिसके मन मे स्थित है, वह वन मे निवास करते हुए भी चाहे नग्न हो या वस्त्रधारी हो, अगारी कहलाता है और जिसके चारित्रमोह के उदय से होनेवाला तृष्णारूपी भावघर नही है वह मुनि चैत्यालयादि मे रहता हुआ भी अनगार है ।

प्रश्न ३–अगारी के पूर्ण व्रत नही होते है फिर उसे व्रती क्यो कहा ?

उत्तर–जैसे कोई पुरुष किसी मकान मे निवास करता है उससे यह पूछने पर कि आप कहाँ रहते हो, वह कहता है मैं कलकत्ता मे रहता हूँ, वह पूरे कलकत्ता मे न रहता हुआ भी अपने को नगरवासी कहता है वैसे ही नैगम, सग्रह और व्यवहार इन तीनो नयो की अपेक्षा अगारी भी व्रती है ।

प्रश्न ४–जैसे एकदेश व्रत पालने वाला व्रती कहलाता है वैसे पाँच पापो मे से किसी एक पाप का त्यागी भी व्रती कहा जा सकता है क्या ?

उत्तर–नही ? पाँच पापो का एकदेश त्याग करने वाला अपरिपूर्ण व्रतो का पालन करने वाला ही व्रती कहलाता है । एक-एक पाप का त्यागी व्रती नही कहा जा सकता ।

प्रश्न ५–अगारी का लक्षण क्या है ?

उत्तर– **अणुव्रतोऽगारी ॥ २० ॥**

सूत्रार्थ–अणुव्रतो का धारी अगारी है ।

प्रश्न १–अणुव्रत का अर्थ क्या है ?

उत्तर–अणु = अल्प । व्रत = व्रत । अल्पव्रतो को अणुव्रत कहते है ।

प्रश्न २–अगारी के व्रतो को अल्पव्रत क्यो कहा ?

उत्तर–अल्पव्रत मे सावद्य योग (पाप क्रिया) का पूर्ण त्याग का अभाव है इसलिये ये अल्पव्रत कहलाते है ।

प्रश्न ३–अणुव्रत कितने व कौनसे है ?

उत्तर–अणुव्रत पाँच है—१ अहिसाणुव्रत २ सत्याणुव्रत ३ अचौर्याणुव्रत ४ ब्रह्मचर्याणुव्रत ५ परिग्रहपरिमाण अणुव्रत । इन व्रतो से युक्त जीव अणुव्रती कहलाता है ।

प्रश्न ४–अहिसाणुव्रती का लक्षण क्या है ?

उत्तर–जो सकल्पपूर्वक त्रस हिसा का त्यागी है और बिना प्रयोजन स्थावर जीवो की भी विराधना नही करता है वह अहिसाणुव्रती है । कहा है—

त्रसहिसा को त्याग, वृथा थावर न सहारे ।। छ ४ ।।

प्रश्न ५–सत्याणुव्रती का लक्षण ?

उत्तर–राग, द्वेष, भय आदि के वश हो स्थूल असत्य बोलने का त्यागी सत्याणुव्रती होता है । यह लोभ, मोह, स्नेहादि के वशीभूत होकर गृहविनाश आदि के कारण झूठ बोलता है । पर के वधकारक निंद्य वचनो का उच्चारण कभी नही करता है— ''परवधकार कठोर निंद्य नही वचन उचारे ।। छ ४ ।।

प्रश्न ६–अचौर्याणुव्रती का लक्षण क्या है ?

उत्तर–श्रावक राजा के भय से स्थूल चोरी का त्यागी अचौर्याणुव्रती है ।

प्रश्न ७–ब्रह्मचर्याणुव्रती का लक्षण क्या है ?

उत्तर–स्वीकृत या अस्वीकृत जो परस्त्री है उस परस्त्री मे गृहस्थ रति नही करता है परस्त्री का परित्याग करता है वह ब्रह्मचर्याणुव्रती कहलाता है । अथवा परस्त्री का त्यागी ब्रह्मचर्याणुव्रती कहलाता है ।

प्रश्न ८–परिग्रहपरिमाणअणुव्रत का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–आवश्यकता से अधिक परिग्रह का त्यागकर शेष धन, धान्य, क्षेत्र और मकान आदि का स्वेच्छा से परिमाण करने वाला परिग्रहपरिमाणअणुव्रती कहलाता है ।

प्रश्न ९–अणुव्रत के सहायक व्रत कितने हैं ?

उत्तर–दिग्देशानर्थदण्डविरतिसामायिकप्रोषधोपवासोपभोग-परिभोग परिमाणातिथिसंविभागव्रतसम्पन्नश्च ॥ २१ ॥

सूत्रार्थ–दिग्विरति, देशविरति, अनर्थदण्डविरति, सामायिकव्रत, प्रोषधोपवासव्रत, उपभोगपरिभोगपरिमाणव्रत और अतिथिसविभागव्रत ये ७ शीलव्रत हैं। व्रती इन व्रतो से भी सम्पन्न होते है ।

प्रश्न १–विरति और व्रत का सबध किन-किन के साथ जोड़ना है ?

उत्तर–विरति शब्द तीन पर लागू करना है—दिग्विरति, देशविरति और अनर्थदण्डविरति । व्रत का सम्बन्ध चार के साथ जोड़ना है यथा—सामायिकव्रत, प्रोषधोपवासव्रत, उपभोगपरिमाणव्रत और अतिथिसविभागव्रत ।

प्रश्न २–विरति और व्रत शब्दो का अर्थ बताइये ?

उत्तर–विरति = विरक्ति यथा प्रयोजनभूत दिशा आदि के बाहर गमनागमन की विरक्ति । व्रत = व्रत यथा—सामयिक आदि व्रतो का पालन ।

प्रश्न ३–गुणव्रत का लक्षण व उसके भेद कितने है ?

उत्तर–अणुव्रतो का उपकार करे उन्हे गुणव्रत कहते हैं । गुणव्रत के तीन भेद है—१ दिग्विरति २ देशविरति ३ अनर्थदण्डविरति ।

प्रश्न ४–दिग्विरति का लक्षण क्या है ?

उत्तर–पूर्वादि दिशाओ मे प्रसिद्ध चिह्नो के द्वारा मर्यादा करके आजीवन नियम करना दिग्विरति है। यथा—उत्तर म काश्मीर, दक्षिण मे मद्रास, पूर्व मे कलकत्ता, पश्चिम मे बम्बई तक ही आजीवन जाऊँगा। इससे बाहर का त्याग।

प्रश्न ५–देशविरति का लक्षण क्या है ?

उत्तर–ग्रामादिक की निश्चित मर्यादा रूप प्रदेश देश कहलाता है। उससे बाहर जाने का त्याग करना देशविरति है ।

दिग्विरति मे की गई मर्यादा के भीतर ही—

ताहू मे फिर, ग्राम, गली, गृह बाग बजारा ।
गमनागमन प्रमाण ठान अन सकल निवारा ।। –छ ४ ।।

प्रश्न ६–देशविरति की मर्यादा को उदाहरण देकर बताओ ?

उत्तर–जैसे किसी श्रावक ने दिग्व्रत मे आजीवन दशो दिशाओ मे गमनागमन की मर्यादा भरतक्षेत्र की निश्चित की थी। वह पुन प्रतिदिन उस

क्षेत्र मे घड़ी, घण्टा, दिन, महीना, पक्ष, वर्ष के लिये गमन क्षेत्र को घटाकर घर, रम्य वन, उपवन, गाँव, खेत, नदी, गली, मुहल्ला, सरोवर आदि की सीमा करता है यह देशविरति कहलाता है ।

प्रश्न ७–दिग्विरति और देशविरति से लाभ क्या है ?

उत्तर–१ मर्यादा के बाहर त्रस और स्थावर हिसा का त्याग हो जाने से उस व्रती के अणुव्रत भी महाव्रतपने की समानता को प्राप्त होते है—

अवधेर्बहिरणुपाप, प्रतिविरतेर्दिग्व्रतानि धारयताम् ।
पञ्चमहाव्रत परिणति-मणुव्रतानि प्रपद्यन्ते ॥ ७० ॥ -र श्रा

२ मर्यादा के बाहर लाभ होते हुए भी उसमे परिणाम न रहने के कारण लोभ का त्याग हो जाता है ।

प्रश्न ८–अनर्थदण्डविरति का लक्षण क्या है ?

उत्तर–उपकार न होकर जो प्रवृत्ति केवल पाप का कारण है वह अनर्थदण्ड है । इससे विरत होना अनर्थदण्डविरति है ।

प्रश्न ९–अनर्थदण्ड का अर्थ क्या है ?

उत्तर–अनर्थ = बिना प्रयोजन / व्यर्थ

दण्ड = अशुभोपयोग । अत प्रयोजन रहित मन-वचन-काय की अशुभोपयोग रूप क्रिया को अनर्थदण्ड कहते है ।

प्रश्न १०–अनर्थदण्ड के भेद कितने है ?

उत्तर–अनर्थदण्ड के पॉच भेद हैं—

पापोपदेशहिसादानापध्यानदु श्रुती पञ्च ।
प्राहु प्रमादचर्यामनर्थदण्डानदण्डधरा ॥ ७५ ॥-र० श्रा०

(१) पापोपदेश (२) हिंसादान (३) अपध्यान (४) दु श्रुती और (५) प्रमादचर्या ।

प्रश्न ११–पापोपदेश अनर्थदण्ड का लक्षण क्या है ?

उत्तर–जिन व्यापारो के करने से तिर्यंचो को कष्ट होता है ऐसे व्यापारो को करने का दूसरो को उपदेश देना, प्राणियो के वध, कृषि आदि सावद्य-कर्म तथा लोगो को ठगने की कला का उपदेश देना पाप-उपदेश नाम का अनर्थदण्ड है ।

प्रश्न १२–हिसादान अनर्थदण्ड का लक्षण ?

उत्तर–विष, कॉटा, शस्त्र, अग्नि, रस्सी, चाबुक और लकड़ी आदि हिसा के उपकरणो का प्रदान करना हिसादान नाम का अनर्थदण्ड है ।

प्रश्न १३–अपध्यान अनर्थदण्ड का लक्षण क्या है ?

उत्तर–दूसरो का जय-पराजय, मारना, बाँधना, अगो का छेदना और धन का अपहरण आदि कैसे किया जाय इस प्रकार मन से विचार करना अपध्यान नाम का अनर्थदण्ड है ।

प्रश्न १४–दु श्रुति अनर्थदण्ड किसे कहते है ?

उत्तर–बिना प्रयोजन हिसा और राग आदि को बढानेवाली दुष्ट कथाओ का सुनना और उनकी शिक्षा देना अशुभ श्रुति या दु श्रुति नामक अनर्थदण्ड है ।

प्रश्न १५–प्रमादचर्या अनर्थदण्ड का लक्षण क्या है ?

उत्तर–बिना प्रयोजन वृक्षादिका छेदना, भूमि का कूटना, पानी का सीचना, बिना प्रयोजन यहॉ-वहॉ घूमना आदि कार्य प्रमादचर्या है ।

प्रश्न १६–शिक्षाव्रत का स्वरूप बताइये ?

उत्तर–जिनसे मुनिव्रत पालन करने की शिक्षा मिले उन्हे शिक्षाव्रत कहते है ।

प्रश्न १७–शिक्षाव्रत के भेद कितने हैं ?

उत्तर–१ सामायिक २ प्रोषधोपवास ३ उपभोगपरिभोगपरिमाणव्रत और ४ अतिथिसविभाग के भेद से शिक्षाव्रत के ४ भेद है ।

प्रश्न १८–सामायिक शिक्षाव्रत का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–सामायिक मे मूल शब्द है समय । इसके दो अवयव है सम् और अय । सम् उपसर्ग का अर्थ है "एक रूप" । अय का अर्थ गमन है । अर्थात् एकरूप हो जाना समय है । समय ही सामायिक है । अथवा समय अर्थात् एकरूप हो जाना ही जिसका प्रयोजन है वह सामायिक है । अथवा

मन, वचन, काय और कृत, कारित अनुमोदना से पाँचो पापो का त्याग करना सो सामायिक है ।

प्रश्न १९–सामायिक करते समय क्या विचार करना चाहिये ?

उत्तर–श्रावक सामायिक मे सदा चिन्तन करे कि जिस ससार मे मै रहता हूँ वह अशरण है, अशुभ है, विनाशीक है और शारीरिक-मानसिक दु:खो से व्याप्त है तथा मोक्ष तत्त्व ठीक इसके विपरीत है । समन्तभद्र आचार्यश्री ने लिखा है—

> अशरणमशुभमनित्य दु:खमनात्मानमावसामि भवम् ।
> मोक्षस्तद्विपरीतात्मेति ध्यायन्तु सामायिके ।। १०४ ।।–र० श्रा०

प्रश्न २०–सामायिक शिक्षाव्रत की महिमा क्या है ?

उत्तर–निश्चित काल और निश्चित देश मे सूक्ष्म तथा स्थूल दोनो प्रकार के हिसादि पापो का त्याग होने से सामायिक मे स्थित श्रावक महाव्रतपने को प्राप्त होता है । कहा भी है —

सामायिके सारम्भ परिग्रहा नैव सन्ति सर्वेऽपि ।

चेलोपसृष्टमुनिरिव गृही तदा याति यतिभावम् ।। १०२ ।।-र॰ श्रा॰

आरंभ और परिग्रह रहित गृहस्थ उपसर्ग से ओढ़े हुए कपड़े सहित मुनि की तरह मुनिपने को प्राप्त होता है ।

प्रश्न २१–यदि सामायिक काल मे श्रावक मुनिवत् महाव्रत को प्राप्त होता है तो क्या उसे उतने समय तक सकलसयमी माना जा सकता है ? उसे उस समय षष्ठम गुणस्थान हो सकता है क्या ?

उत्तर–नही । श्रावक के सामायिक काल मे महाव्रत उपचार से माना है । उनके सकल सयम का घात करने वाले कर्मों का उदय पाया जाता है अत उन्हे सकल सयम सज्ञा नही हो सकती । वस्त्रधारी को कभी भी षष्ठम गुणस्थान नही हो सकता है ।

गुणस्थान नही हो सकता है ।

प्रश्न २२–प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–प्रोषध का अर्थ पर्व है । अष्टमी और चतुर्दशी इन दोनो पर्वों को प्रोषध कहते हैं । पाँचो इन्द्रियो के शब्दादि विषयो के त्यागपूर्वक आत्मा मे निवास करना उपवास है । अर्थात् चारो प्रकार के आहार का त्याग करना उपवास है । तथा प्रोषध (पर्व) के दिनो मे जो उपवास किया जाता है उसे प्रोषधोपवास कहते हैं ।

प्रश्न २३–प्रोषधोपवासी या उपवास करने वाले श्रावक के व्रत के दिन न करने योग्य कार्य कौनसे हैं ?

उत्तर–प्रोषधोपवासी श्रावक व्रत के दिन शारीरिक शृगार, गृहारम्भ खेती, व्यापार आदि सुगन्धित इत्र-फुलेल आदि वस्तु का शरीर पर लेपन, विविध सुगन्धित पुष्पों का सूँघना या धारण करना, स्नान करना, नेत्रो मे काजल आँजना, सुरमा लगाना, नस्य सूँघना, इसके अलावा टी वी देखना, अश्लील उपन्यास आदि पढ़ना, ताश, सतरज आदि खेलना आदि कार्यों को न करे ।

प्रश्न २४–श्रावक उपवास के दिन जिनपूजा, अभिषेक, दान आदि शुभ क्रियाओ के लिये स्नान कर सकता है या नही ?

उत्तर-देव-पूजा, अभिषेक आदि शुभ क्रियाओ के लिये श्रावक स्नान कर सकता है क्योंकि ये क्रियाएँ शारीरिक शुद्धि के बिना नहीं हो सकती है। परन्तु यहाँ भी मर्यादा का उल्लघन न करे-साबुन आदि पदार्थों का उपयोग न कर शुद्ध प्रासुक जल से स्नान मात्र करे।

प्रश्न २५-उपवास के दिन करने योग्य कार्य कौनसे हैं ?

उत्तर-शिक्षाव्रत का धारी, उपवास करने वाला श्रावक आलस्य रहित होकर अत्यत उत्साहित होता हुआ कानो से धर्मरूपी अमृत का स्वयं पान करे और दूसरो को भी पिलावे। ज्ञान ध्यान मे अपना समय बितावे।

प्रश्न २६-उपवास, प्रोषध व प्रोषधोपवास के लक्षण बताइये ?

उत्तर-चतुराहार विसर्जनमुपवास = चारो प्रकार के आहार का त्याग करना उपवास है।

सकृद्भक्ति प्रोषध. = एक बार भोजन करना प्रोषध है और

यदुपोष्यारम्भमाचरित स प्रोषधोपवासो=जो उपवास करके पारणा के दिन एक समय भोजन करना है वह प्रोषधोपवास है। (र श्रा १०९)

प्रश्न २७-उपभोगपरिभोगपरिमाणव्रत का स्वरूप क्या है ?

उत्तर-भोजन, पान, गन्ध और माला आदि जो एक बार भोगने के बाद पुन भोगने मे न आवे उसे उपभोग कहते हैं और जो स्त्री, वस्त्र, वाहन आदि वस्तुएँ बार-बार भोगने मे आती है, वे परिभोग हैं।

प्रश्न २८-उपभोगपरिभोगपरिमाणव्रती को प्रतिज्ञापूर्वक पालने योग्य नियम कौनसे है ?

उत्तर-जिसका चित्त त्रस हिसा से निवृत्त है ऐसे व्रती को सदा के लिये मद्य, मास और मदिरा का त्याग कर देना चाहिये। साथ ही जो बहुत जन्तुओ की उत्पत्ति के आधार है जिन्हे अनन्तकाय कहते हैं ऐसे केतकी पुष्प, अर्जुन के फूल, नीम के फूल, अदरख, मूली, अनन्तकायिक सर्वपुष्प, छिद्रवाली शाक, नाली आदि वस्तुओ का भी यावज्जीवन त्याग करना चाहिये। अभक्ष्य त्याग के साथ-साथ प्रकृतिविरुद्ध, अनुपसेव्य (उत्तमकुल मे सेवन के अयोग्य) का भी त्याग कर देना चाहिये।

यान-वाहन-वस्त्र-मकान और आभरण आदिक मे भी अपने लिये इतना ही इष्ट है शेष सब अनिष्ट है इस प्रकार विचार करके कुछ काल के लिये या जीवनभर के लिये शक्त्यनुसार जो अपने लिये अनिष्ट हो उसका त्याग करना चाहिये।

प्रश्न २९–अनिष्ट और अनुपसेव्य पदार्थ कौनसे हैं ?

उत्तर–जो शरीर की प्रकृति के विरुद्ध है उन्हे अनिष्ट पदार्थ समझना चाहिये जैसे—ज्वर के रोगी के लिये घी अनिष्ट है। कफ के रोगी को दही अनिष्ट है।

जो पदार्थ प्रासुक होने पर भी उत्तमकुलवानो के द्वारा सेवनीय नही है उन सब पदार्थों को अनुपसेव्य जानना चाहिये। यथा गोमूत्र, हथिनी का दूध, शखचूर्ण गिलोय आदि।

प्रश्न ३०–अभक्ष्य कितने हैं ?

उत्तर–अभक्ष्य पॉच है—१ त्रसघात विषय २ बहुघात विषय ३ प्रमादविषय ४ अनिष्ट और ५ अनुपसेव्य।

प्रश्न ३१–त्रसघात आदि पॉच अभक्ष्य का स्वरूप अलग-अलग बताइये ?

उत्तर–१ जिन पदार्थों के खाने मे बहुत से त्रस जीवो का घात होता है जैसे—मद्य-मास-मधु। वह त्रसघात अभक्ष्य है।

२ जिन पदार्थों के खाने मे बहुत से स्थावर जीवो का घात होता है जैसे—गीला अदरक, मूली, गाजर, आलू आदि बहुघात अभक्ष्य है।

३ जिन पदार्थों के सेवन करने से प्रमाद या नशा उत्पन्न होता है जैसे—भॉग, चरस, गाँजा आदि प्रमाद विषय अभक्ष्य है।

४ जो वस्तुऍ भक्ष्य होने पर भी धार्मिक पुरुषो के द्वारा सेवन करने योग्य नही हो जैसे—दमा के रोगी को दही वगैरह अनिष्ट अभक्ष्य है। और

५ जो वस्तुएँ भक्ष्य होने पर भी धार्मिक, कुलीन पुरुषो के द्वारा सेवन करने के योग्य न हो, जैसे हथिनी का दूध आदि अनुपसेव्य अभक्ष्य है।

अनुपसेव्य मे देश, समाज व सस्कृति तथा सभ्यता की दृष्टि से अनेक वस्तुओ का समावेश हो जाता है। जैसे—लड़को का बड़े-बड़े बाल रखना, लड़कियो का बाल कटाना, चुस्त कपड़े पहनना, स्त्रियो का अश्लील परिधान ग्रहण करना आदि सब भारतीय सस्कृति, सभ्यता की दृष्टि से गर्हित होने से अनुपसेव्य हैं।

प्रश्न ३२–अतिथिसविभाग शिक्षाव्रत का स्वरूप बताइये ?

उत्तर–अतिथि के लिये समीचीन विभाग, निज भोजन मे से विशिष्ट भोजन प्रदान करना अतिथिसविभाग शिक्षाव्रत है।

प्रश्न ३३–अतिथि का लक्षण क्या है ?

उत्तर–सयम का विनाश न हो इस विधि से जो आता है वह अतिथि है अथवा जिसके आने की कोई तिथि नही है उसे अतिथि कहते हैं ।

प्रश्न ३४–अतिथिसविभाग कितने प्रकार से होता है ? सबका स्वरूप क्या है ?

उत्तर–अतिथि सविभाग चार प्रकार का है—१. भिक्षा २. उपकरण ३ औषध और ४ वसतिका दान ।

(१) जो मोक्ष के लिये उद्यत है, सयमपालन मे तत्पर है और शुद्ध है उस अतिथि के लिये शुद्ध मन से निर्दोष भिक्षा देना ।

(२) रत्नत्रय के वर्द्धक पिच्छिका, पुस्तक, स्लेट, कमण्डलु आदि प्रदान करना चाहिये ।

(३) योग्य औषध का दान देना चाहिये । तथा

(४) परम अहिंसामयी जैनधर्म मे श्रद्धापूर्वक अतिथिजनो को निवास स्थान देना, तथा त्यागी निवास आदि बनवाना ।

प्रश्न ३५–सूत्र मे ''च'' शब्द क्यो दिया है ?

उत्तर–श्रावक के १२ व्रतो मे देवपूजा, अभिषेक, स्वाध्याय आदि भी गर्भित हैं इस बात को सूचित करने के लिये सूत्र मे ''च'' को ग्रहण किया है ?

प्रश्न ३६–श्रावक के बारह व्रत कौनसे हैं ?

उत्तर–अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत, परिग्रह-परिमाणअणुव्रत. दिग्व्रत देशव्रत, अनर्थदण्ड व्रत, सामायिक, प्रोषधोपवास, उपभोगपरिभोगपरिमाण और अतिथिसविभाग इस प्रकार ५ अणुव्रत, ३ गुणव्रत और ४ शिक्षाव्रत के भेद से श्रावक के १२ व्रत होते हैं ।

प्रश्न ३७–श्री समन्तभद्र आचार्य और श्री उमास्वामि आचार्य दोनो की अपेक्षाओ मे श्रावक के १२ व्रतो मे क्या विशेषता है ।

उत्तर–श्री समन्तभद्राचार्य ने गुणव्रतो मे दिग्व्रत, अनर्थदण्डव्रत और उपभोपरिभोगपरिमाणव्रत को स्वीकार किया और शिक्षाव्रतो मे देशावकाशिक; सामायिक, प्रोषधोपवास तथा वैय्यावृत्य को स्वीकार किया है जबकि आ॰ उमास्वामीजी ने गुणव्रतो मे "दिग्व्रत, देशव्रत और अनर्थदण्ड को और शिक्षाव्रतो मे सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग और अतिथिसविभाग को स्वीकार किया है । सामान्य से सख्या अपेक्षा दोनो आचार्यों ने श्रावक के १२ व्रत तो स्वीकार किये ही हैं । विभाजन की अपेक्षा दोनो में भेद है ।

जिसे उमास्वामि आचार्य ने अतिथिसंविभाग कहा उसी को समन्तभद्रजी ने वैय्यावृत्य नाम से स्वीकार किया है ।

प्रश्न ३८–सूत्र २३ मे आगत "च" शब्द जिस गृहस्थधर्म के लिये सग्रह किया गया है वह गृहस्थधर्म कौन-सा है ?

उत्तर– मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता ॥ २२ ॥

सूत्रार्थ–वह (गृहस्थ) मारणान्तिक सल्लेखना को प्रीतिपूर्वक सेवन करने वाला होता है ।

प्रश्न १–मरण किसे कहते है ?

उत्तर–अपने ही परिणामो से प्राप्त आयु, इन्द्रियो, मन-वचन-काय, तीन बल और श्वासोच्छ्वास का कारण विशेष से नाश होना उसे मरण कहते है ।

प्रश्न २–सूत्र मे मरण के साथ "अन्त" क्यो जोड़ा गया है ? "मारणान्तिकी" का क्या अर्थ है ?

उत्तर–उसी भव के मरण का ज्ञान कराने के लिये सूत्र मे मरण शब्द के साथ "अन्त" पद को ग्रहण किया है । वर्तमान भव का अवसान मरणान्त है और जिसका यह मरणान्त ही प्रयोजन है वह मारणान्तिकी कहलाती है ।

प्रश्न ३–सल्लेखना का लक्षण क्या है ?

उत्तर–सत् + लेखना । सत का अर्थ है सम्यक् प्रकार से । लेखना का अर्थ है कृष करना । अर्थात् बाह्य मे शरीर को और अभ्यतर मे कषायो को सम्यक् प्रकार से कृश करना सल्लेखना है ।

प्रश्न ४–सूत्र मे जोषिता पद के स्थान पर सेविता पद देने से सूत्र का अर्थ सरलता से स्पष्ट हो जाता है ।

उत्तर–नही । सेविता का अर्थ है सेवन करना । यहाँ मात्र सेवन करना ही आचार्यश्री का भाव नही है "प्रीतिपूर्वक" सल्लेखना को धारण करे इस प्रकार विशेष अर्थ सूचित करना आचार्यश्री का तात्पर्य है । क्योंकि सल्लेखना बलपूर्वक नही करायी जाती किन्तु प्रीति के रहने पर जीव स्वय ही सल्लेखना करता है । तात्पर्य यह कि "प्रीतिपूर्वक सेवन करने" अर्थ मे सूत्र मे जोषिता पद को ग्रहण किया है ।

प्रश्न ५–सल्लेखना मे अभिप्रायपूर्वक आयु आदि १० प्राणो का त्याग किया जाता है अत सल्लेखना आत्मघात है ?

उत्तर–ऐसा कथन ठीक नही है । सल्लेखना में प्रमत्तयोग/प्रमाद का अभाव है । प्रमादयोग से प्राणो का वध करना हिंसा है सल्लेखना मे प्रमाद न होने से आत्मघात नही है ।

सल्लेखनाधारी के राग-द्वेष नही पाये जाते। जो राग-द्वेष-मोह से युक्त होकर विष, शस्त्र आदि उपकरणो का प्रयोग करके अपना घात करे उसे आत्मघात का दोष आता है किन्तु सल्लेखनाधारी इस दोष से मुक्त है।

सल्लेखना वीरो का धर्म है, कायर व्यक्ति सल्लेखना नही कर सकता। कायर व्यक्ति आत्मघात करता है। वीर सल्लेखना धारण करते हैं।

प्रश्न ६–सल्लेखना कब और क्यो धारण करना चाहिये ?

उत्तर–नि प्रतीकार देव, मनुष्य, तिरञ्चि व अचेतनकृत कोई उपसर्ग आने पर, अकाल पड़ने पर, अतिवृद्धावस्था मे जब अपनी चर्या का सही पालन न हो पा रहा हो तथा जिसका कोई प्रतीकार नही ऐसी रोग के उपस्थित हो जाने पर रत्नत्रय धर्म की रक्षा के लिये सज्जन पुरुषो को समाधि-धारण कर लेना चाहिये।

प्रश्न ७–जिस कारण से सम्यग्दृष्टि व्रती होता है वह सम्यग्दर्शन सापवाद होता है या निरपवाद ?

उत्तर–किसी जीव के मोहनीय कर्म की अवस्था विशेष के कारण शकादि अपवाद होते है। अत सम्यग्दर्शन भी सदोष होता है जिन्हे सम्यग्दृष्टि के अतिचार कहते है।

प्रश्न ८–सम्यग्दृष्टि के कितने अतिचार हैं ?

उत्तर– शङ्काकाङ्क्षाविचिकित्सान्यदृष्टि प्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतीचाराः ॥ २३ ॥

सूत्रार्थ–शका, काङ्क्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टि प्रशसा और अन्यदृष्टि सस्तव ये सम्यग्दृष्टि के पाँच अतिचार हैं।

प्रश्न १–शका अतिचार किसे कहते है ?

उत्तर–जिनेन्द्रदेव के द्वारा कहे गये सूक्ष्म पदार्थों मे सन्देह करना शका है। अथवा जैसे निर्ग्रंथो के मुक्ति कही है वैसे क्या सग्रन्थ और गृहस्थ अवस्था मे भी मुक्ति होती है ? इस प्रकार सशय को शका कहते हैं।

प्रश्न २–काक्षा अतिचार का लक्षण क्या है ?

उत्तर–सासारिक सुखो की इच्छा करना काक्षा है।

प्रश्न ३–विचिकित्सा अतिचार का लक्षण क्या है ?

उत्तर–रत्नत्रय से मडित पर बाह्य मे मलिन मुनियो के शरीर मे ग्लानि करना "ये स्नान नहीं करते" इत्यादि रूप से दूषित करना विचिकित्सा अतिचार है।

प्रश्न ४–अन्यदृष्टि प्रशंसा अतिचार का लक्षण क्या है ?

उत्तर–मिथ्यादृष्टियो के ज्ञान चारित्रादि गुणो का मन से कथन करना अन्येदृष्टिप्रशसा है ।

प्रश्न ५–अन्यदृष्टिसस्तव किसे कहते हैं ?

उत्तर–मिथ्यादृष्टियो के विद्यमान, अविद्यमान गुणो का सद्भाव बतलाते हुए वचनो के द्वारा कथन करना अन्यदृष्टिसस्तव है ।

प्रश्न ६–सस्तव और प्रशसा मे क्या अन्तर है ?

उत्तर–प्रशसा मन से होती है, सस्तव वचनात्मक होता है ।

प्रश्न ७–सम्यग्दर्शन के आठ अग है अत सम्यग्दृष्टि के अतिचार भी आठ कहना थे पॉच क्यो कहे है ?

उत्तर–यह कोई दोष नही है क्योंकि जो जीव मिथ्यादृष्टियो का प्रशसक है वह अन्यदृष्टि प्रशसा अतिचार वाला मूढ़दृष्टि है । वह मूढदृष्टि प्रमाद और असमर्थता से होने वाले रत्नत्रयधारियो के दोषो का उपगूहन और स्थितिकरण नही कर सकता, वात्सल्य अग भी उसके पास रहता नही तथा जिनशासन की प्रभावना करने की योग्यता भी उसमे नही रहती । अत अन्यदृष्टिप्रशसा और अन्यदृष्टि सस्तव मे अनुपगूहन, आदि दोषो का अन्तर्भाव हो जाने से सम्यग्दृष्टि के ५ अतिचार ही कहे है ।

प्रश्न ८–अतिचार का लक्षण क्या है ?

उत्तर–व्रत के एकदेश भग होने को अतिचार कहते है ।

प्रश्न ९–व्रत के भग होने मे सहायक परिणाम कौन-कौन से है ?

उत्तर–व्रतभग के लिये सहायक परिणाम चार है—अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार । कही भी है —

क्षतिं मन शुद्धिविधेरतिक्रम, व्यतिक्रम शील व्रतेर्विलघनम् ।

प्रभोऽतिचार विषयेषु वर्तन, वदन्त्यनाचारमिहातिसक्ताम् ।। ९ ।। - सा पा

मन की शुद्धि की क्षति होना अतिक्रम है व्रत का उल्लघन व्यतिक्रम है, विषयो मे एक बार प्रवृत्ति अतिचार है और बार-बार विषयो मे प्रवृत्ति अनाचार है ।

प्रश्न १०–व्रत मे लगे दोषो के प्रायश्चित्त का अधिकारी कौन हो सकता है ?

उत्तर–अतिक्रम, व्यतिक्रम और अतिचार व्रतो के प्रति होने पर प्रायश्चित्त के द्वारा शुद्धिकरण किया जा सकता है किन्तु अनाचार का कोई प्रायश्चित नही है ।

प्रश्न ११–व्रत और शीलो के अतिचार कितने हैं ?

उत्तर– व्रतशीलेषु पञ्च पञ्च यथाक्रमम् ॥ २४ ॥

सूत्रार्थ–व्रत और शीलो के पाँच-पाँच अतिचार होते है । वे क्रम से इस प्रकार है ।

प्रश्न १–श्रावक के १२ व्रत है अत. व्रत के अतिचार मात्र न कहकर व्रत और शील दो क्यो कहे ?

उत्तर–यद्यपि व्रतो मे शील का अन्तर्भाव हो जाता है तथापि शीलव्रत को अलग से ग्रहण करने का हेतु शीलव्रतो की विशेषता बताना है । क्योंकि यहाँ शील से ब्रह्मचर्य अर्थ नही लेना है । यहाँ शील का अर्थ है—"जो व्रतो की रक्षा करता है वह शील है" । वे शील दिग्विरति आदि ७ है ।

प्रश्न २–श्रावक व्रतो के कुल अतिचार कितने है ?

उत्तर–कुल अतिचार व्रतो की अपेक्षा १२x५ = ६० है तथा सम्यग्दर्शन के ५ अतिचार और सल्लेखना के ५ अतिचार सब जोड़ करने पर अतिचार ६०+५+५ = ७० होते है ।

प्रश्न ३–प्रथम अहिसाव्रत के अतिचार कौन से है ?

उत्तर– बन्धवधच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः ॥ २५ ॥

सूत्रार्थ–बन्ध, वध, छेद, अतिभार का आरोपण और अन्नपान का निरोध ये अहिसा अणुव्रत के अतिचार हैं ।

प्रश्न १–बध किसे कहते है ?

उत्तर–किसी को अपने इष्ट स्थान पर जाने से रोकने के कारण को बन्ध कहते है ।

प्रश्न २–वध का अर्थ क्या है ?

उत्तर–वध का अर्थ है डडा, चाबुक और बेत आदि से प्राणियो को मारना ।

प्रश्न ३–वध का अर्थ तो प्राणो का वियोग करना है / मारना है उसे यहाँ ग्रहण क्यो नही किया ?

उत्तर–नही किया क्योंकि हिंसा का त्याग तो अतिचार के पहले ही हो जाता है ।

प्रश्न ४–अतिभार आरोपण किसे कहते है ?

उत्तर–उचित भार से अधिक भार का लादना अतिभार-आरोपण है जैसे—कोई पशु पाँच बोरी भार वहन कर सकता है उस पर पाँच से अधिक

छ -सात आदि बोरियो का भार लादना। किसी मानव मे ३ घण्टे काम करने की क्षमता है उससे बलात् ४-५ घण्टो काम कराना। बच्चो मे १-२ पुस्तके पढ़ने की क्षमता है उन पर १० पुस्तको के अध्ययन का भार लादना आदि सब अतिभारारोपण नामक अतिचार है ।

प्रश्न ५–अन्नपाननिरोध किसे कहते है ?

उत्तर–गाय, भैस, घोड़ा, हाथी, बैल आदि पशुओ तथा पक्षियो और स्वाश्रित नौकर आदि को भूख-प्यास लगने पर अन्नपान का रोकना अन्नपाननिरोध है ।

प्रश्न ६–व्रती पुरुष अपने घर में पशुओ को बॉधकर रख सकता है या नही ?

उत्तर–व्रती पुरुष पशुओ को बॉधकर नही रख सकता यदि बॉधता भी है तो इस प्रकार कि वह समय पर वहाँ से निकल सके ऐसा ढीला बॉधे। यथा—कही आग लग गई हो, क्रूर जानवर सामने आ गया हो तो वह आसानी से भाग सके ऐसा ढीला बॉधे ।

प्रश्न ७–सत्याणुव्रत के अतिचार कौनसे है ?

उत्तर–मिथ्योपदेशरहोभ्याख्यानकूटलेखक्रियान्यासापहार-साकारमन्त्र भेदाः ॥ २६ ॥

सूत्रार्थ–मिथ्योपदेश, रहोभ्याख्यान, कूटलेखक्रिया, न्यासापहार और साकारमन्त्रभेद ये सत्याणुव्रत के पाँच अतिचार हैं ।

प्रश्न १–मिथ्योपदेश का लक्षण क्या है ?

उत्तर–अभ्युदय और नि.श्रेयस की कारणभूत सत्यक्रियाओ का किसी को अन्यथा कथन करके विपरीत मार्ग से लगाना अथवा मिथ्यावचनो के द्वारा धन आदि के निमित्त दूसरो को ठगना मिथ्योपदेश कहलाता है ।

प्रश्न २–अभ्युदय किसे कहते है ?

उत्तर–इन्द्रपद, महामण्डलेश्वर, चक्रवर्तीपद, राज्यपद, सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त अहमिन्द्रपद आदि सासारिक सुखो को अभ्युदय कहते है ।

प्रश्न ३–नि श्रेयस् सुख का लक्षण क्या है ?

उत्तर–केवलज्ञान कल्याणक, निर्वाणकल्याणक, अनन्त चतुष्टय और परम निर्वाणपद ये सब नि श्रेयस् सुख हैं ।

प्रश्न ४–रहोभ्याख्यान का लक्षण क्या है ?

उत्तर–स्त्री-पुरुष द्वारा एकान्त मे किये गये आचरण विशेष का प्रगट कर देना रहोभ्याख्यान है ।

प्रश्न ५–कूटलेखक्रिया किसे कहते है ?

उत्तर–दूसरे ने न तो कुछ कहा हो और न कुछ किया हो तो भी अन्य किसी की प्रेरणा से (द्वेष के वशीभूत या पीड़ा देने के लिये) इसने ऐसा कहा है, ऐसा किया है इस प्रकार छल से लिखना कूटलेखक्रिया है। (अर्थात् झूठे दस्तावेज आदि लिखना)

प्रश्न ६–न्यासापहार किसे कहते है ?

उत्तर–धरोहर मे चॉदी आदि को रखनेवाला कोई उसकी सख्या को भूलकर २ किलो के स्थान पर १।। किलो, कमती लेने लगा तो "ठीक है" इस प्रकार स्वीकार करना न्यासापहार है।

प्रश्न ७–न्यासापहार का अर्थ क्या है ?

उत्तर–"धरोहर का अपहरण करना" न्यासापहार है।

प्रश्न ८–साकारमन्त्रभेद किसे कहते हैं ?

उत्तर–अर्थवश, प्रकरणवश, शरीर के विकारवश या भ्रूक्षेप आदि के कारण दूसरे के अभिप्राय को जानकर डाह से उसे प्रकट कर देना साकारमन्त्रभेद है।

प्रश्न ९–क्या सत्याणुव्रती कोर्ट मे झूठी गवाही दे सकता है ?

उत्तर–नही दे सकता क्योंकि उसे ऐसा करने पर "कूटलेखक्रिया" नामक अतिचार होगा।

प्रश्न १०–सत्याणुव्रती परनिन्दा या पैशुन्य (चुगली) कर सकता है क्या ?

उत्तर–नही कर सकता। यदि करता है तो उसका सत्यव्रत दूषित होता है।

प्रश्न ११–अचौर्याणुव्रत के पाँच अतिचार कौन-कौन से है ?

उत्तर-स्तेनप्रयोगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रमहीनाधिक-मानोन्मानप्रतिरूपकव्यवहाराः ॥ २७ ॥

सूत्रार्थ–(१) स्तेनप्रयोग (२) स्तेन आहृतादान (३) विरुद्धराज्यातिक्रम (४) हीनाधिक मान-उन्मान और (५) प्रतिरूपक व्यवहार ये पाँच अचौर्याणुव्रत के अतिचार है।

प्रश्न १–स्तेन प्रयोग किसे कहते है ?

उत्तर–किसी को चोरी के लिये स्वय प्रेरित करना, या दूसरे के द्वारा प्रेरणा दिलाना या चोरी करते हुए की अनुमोदना करना स्तेन प्रयोग है।

प्रश्न २–स्तेन आहृतादान किसे कहते है ?

उत्तर–चोर के द्वारा चुराई गई वस्तु को खरीदना ''स्तेन आहृतादान'' है।

प्रश्न ३–विरुद्धराज्यातिक्रम किसे कहते है ?

उत्तर–राज्य मे किसी प्रकार का विरोध होने पर मर्यादा का पालन नही करना, राजाज्ञा के विरुद्ध चलना अथवा राज्य मे विप्लव होने पर अधिक मूल्य की वस्तु अल्पमूल्य मे खरीदना और अल्प मूल्य की वस्तु को अधिक मूल्य मे बेचना ये सब विरुद्ध राज्यातिक्रम है।

प्रश्न ४–मान और उन्मान का लक्षण क्या है ?

उत्तर–मानपद से प्रस्थ आदि या काष्ठ आदि से निर्मित मापने के बर्तन लिये जाते है। और उन्मान पद से तराजू आदि से तोलने के बाट लिये जाते है।

प्रश्न ५–हीनाधिकमानोन्मान किसे कहते है ?

उत्तर–कमती माप-तौल से दूसरे को देना और बढ़ती माप तौल से स्वय लेना इत्यादिक कुटिलता से लेन-देन करना हीनाधिकमानोन्मान है।

प्रश्न ६–प्रतिरूपक व्यवहार किसे कहते है ?

उत्तर–बहुमूल्य वस्तु मे अल्पमूल्य की वस्तु मिलाकर असली भाव से बेचना अथवा बनावटी चाँदी आदि से कपटपूर्वक व्यवहार प्रतिरूपक व्यवहार है।
है।

प्रश्न ७–अचौर्याणुव्रती विदेश से लाई गई वस्तु का प्रयोग कर सकता है या नही ?

उत्तर–यदि विदेश से राजाज्ञा पूर्वक लाई गई वस्तु है तो अचौर्याणुव्रती उपयोग कर सकता है राजाज्ञा के विरोध मे या छिपाकर, चोरी से लाई गई वस्तु का प्रयोग नही कर सकता है।

प्रश्न ८–ब्रह्मचर्याणुव्रत के अतिचार कौनसे हैं ?

उत्तर-परविवाहकरणेत्वरिकापरिगृहीतापरिगृहीतागमनानङ्ग-क्रीडाकामतीव्राभिनिवेशाः ॥ २८ ॥

सूत्रार्थ–(१) परविवाह करण (२) इत्वरिकापरिगृहीतागमन (३) इरित्वका अपरिगृहीतागमन (४) अनङ्गक्रीडा (५) कामतीव्राभिनिवेश ये स्वदारसतोष ब्रह्मचर्याणुव्रत के पाँच अतिचार है।

प्रश्न १–विवाह किसे कहते हैं ?

उत्तर–कन्या का ग्रहण करना विवाह कहलाता है। अथवा कन्यादान को विवाह कहते हैं।

प्रश्न २–परविवाहकरण किसे कहते है ?

उत्तर–अपने पुत्रादिक से भिन्न दूसरो के पुत्र-पुत्री आदि का विवाह परविवाहकरण है।

प्रश्न ३–इत्वरी किसे कहते हैं ?

उत्तर–जिसका स्वभाव अन्य पुरुषो के पास जाना-आना है वह "इत्वरी" कहलाती है। इत्वरी कहते है अभिसारिका को।

प्रश्न ४–इत्वरिका कौन होती है ?

उत्तर–इत्वरी नारियो मे भी जो अत्यन्त कुत्सित / आचरट होती हैं वह इत्वरिका होती है। (इत्वरी के साथ कुत्सित अर्थ क प्रत्यय का प्रयोग होकर इत्वरिका शब्द बना है)

प्रश्न ५–परिगृहीता कौन होती है ?

उत्तर–जिसका कोई एक पुरुष भर्ता हो वह परिगृहीता कहलाती है।

प्रश्न ६–अपरिगृहीता किसे कहते हैं ?

उत्तर–जो वेश्या या व्यभिचारिणी होने से दूसरे पुरुषो के पास जाती-आती रहती है और जिसका कोई पुरुष स्वामी नही है वह अपरिगृहीता कहलाती है।

प्रश्न ७–इत्वरिकापरिगृहीतागमन और इत्वरिका-अपरिगृहीता दोनो का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–जिसका कोई पुरुष भर्ता है ऐसी स्त्री के पास आना-जाना इत्वरिकापरिगृहीतागमन कहलाता है और जो वेश्या है या जिसका कोई स्वामी नही है ऐसी स्त्रियो के पास आना-जाना इत्वरिका-अपरिगृहीतागमन है।

प्रश्न ८–अनङ्गक्रीड़ा किसे कहते हैं ?

उत्तर–कामसेवन के निश्चित अगो को छोड़कर अन्य अगो से काम सेवन करना अनगक्रीड़ा है।

प्रश्न ९–कामतीव्राभिनिवेश किसे कहते है ?

उत्तर–कामसेवन की तीव्र अभिलाषा कामतीव्राभिनिवेश कहलाता है।

प्रश्न १०–विवाह पुत्र का होता है या कन्या का ?

उत्तर–कन्यादान विवाह कहलाता है अतः विवाह कन्या का ही होता है ?

प्रश्न ११–एक बार जो वस्तु दान दी जा चुकी है उसे पुन: दान दिया जा सकता है क्या ?

उत्तर–नही । दान दी गई वस्तु पुन छूने योग्य भी नहीं है तो पुन दान कैसे दी जा सकती है अर्थात् नही ।

प्रश्न १२–कन्या का पुनर्विवाह या विधवा विवाह हो सकता है क्या ?

उत्तर–जो कन्या एक बार दान दी जा चुकी है वह पुन दान के योग्य नही है अत कन्या का पुनर्विवाह और विधवा विवाह दोनो का ही आगम अपेक्षा निषेध है ।

प्रश्न १३–ब्रह्मचर्याणुव्रती टी वी , सिनेमा आदि देख सकता है क्या ?

उत्तर–टी वी सिनेमा मे अश्लील चित्रो के देखने वालो के ब्रह्मचर्य व्रत मे दोष लगता है अत वर्जनीय है ।

प्रश्न १४–परिग्रहपरिमाणअणुव्रत के कितने अतिचार है ?

उत्तर– **क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्य-प्रमाणातिक्रमा: ॥ २९ ॥**

सूत्रार्थ–(१) क्षेत्र और वास्तु के प्रमाण का अतिक्रम (२) हिरण्य और सुवर्ण के प्रमाण का अतिक्रम (३) धन-धान्य के प्रमाण का अतिक्रम (४) दासी दास के प्रमाण का अतिक्रम और (५) कुप्य के प्रमाण का अतिक्रम करना परिग्रहपरिमाण अणुव्रत के अतिचार है ।

प्रश्न १–क्षेत्र और वास्तु किसे कहते है ?

उत्तर– धान्य के उत्पत्ति स्थान को क्षेत्र कहते है ।
घर या मकान को वास्तु कहते हैं ।

प्रश्न २–धन्य-धान्य से कौनसी वस्तुएँ ली जाती है ?

उत्तर–धन से गाय, बैल, हाथी आदि पशु लिये जाते है और धान्य से ब्रीहि आदि अनाज जानना चाहिये ।

प्रश्न ३–ब्रीहि आदि धान्य कितने प्रकार का होता है ?

उत्तर–ब्रीहि आदि धान्य १८ प्रकार के होते हैं—

गेहूँ, धान्य (जिससे चावल निकलते हैं) जौ, सरसो, उड़द, मूँग, श्यामक कगु, तिल, कौदो, राजमाष, कीनाश, नाल, मठवैणव (ज्वारी), तूर (अरहर) सिंवा, कुल्थ और चना इनको बीज धान्य कहते हैं ।

प्रश्न ४–तिल आदि तीन धान्य कौनसे हैं ?

उत्तर–तिल, शाली, यव इनको तीन धान्य कहते है ।

प्रश्न ५–सात धान्य कौनसे हैं ?

उत्तर–तूर, चना, उड़द, मूँग, गेहूँ, शालि, जौ इनको मनीषियों ने सात धान्य कहा है।

प्रश्न ६–दासी-दास और कुप्य किसे कहते हैं ?

उत्तर–नौकर, स्त्री-पुरुष दासी दास कहलाते हैं। रेशम, कपास और कोसा के वस्त्र कुप्य कहलाते हैं।

प्रश्न ७–प्रमाणातिक्रम किसे कहते हैं ?

उत्तर–किये गये प्रमाण का उल्लघन प्रमाणातिक्रम कहलाता है।

प्रश्न ८–परिग्रहपरिमाण अतिक्रम किसे कहते हैं ?

उत्तर–क्षेत्र-वास्तु, हिरण्य-सुवर्ण, धन-धान्य, दासी-दास और कुप्य इनके विषय मे मेरा इतना ही प्रमाण है इससे अधिक नहीं ऐसा प्रमाण निश्चित करके लोभवश प्रमाण को बढ़ा लेना परिग्रह प्रमाणातिक्रम है।

प्रश्न ९–दिग्विरति या दिग्व्रत के पाँच अतिचार कौनसे है ?

उत्तर– **उर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धिस्मृत्यन्तरा-धानानि ॥ ३० ॥**

सूत्रार्थ–(१) उर्ध्वव्यतिक्रम (२) अधोव्यतिक्रम (३) तिर्यग्व्यतिक्रम (४) क्षेत्रवृद्धि और (५) स्मृत्यन्तराधान ये पॉच दिग्विरति व्रत के अतिचार है।

प्रश्न १–अतिक्रम किसे कहते हैं ? उसके कितने भेद हैं ?

उत्तर–दिशा की जो मर्यादा निश्चित की है उसका उल्लघन करना अतिक्रम है। यह सक्षेप से तीन प्रकार का है—(१) उर्ध्व-अतिक्रम (२) अध अतिक्रम और तिर्यक् अतिक्रम।

प्रश्न २–तीनो अतिक्रम के लक्षण बताओ ?

उत्तर–मर्यादा के बाहर पर्वतादिक पर चढ़ने से उर्ध्व अतिक्रम होता है।
मर्यादा के बाहर कुएँ आदि मे उतरने से अध अतिक्रम होता है और
मर्यादा के बाहर बिल आदि मे घुसने से तिर्यक् अतिक्रम होता है।

प्रश्न ३–क्षेत्रवृद्धि किसे कहते हैं ?

उत्तर–लोभ के वशीभूत मर्यादा की हुई दिशा के बढ़ाने का अभिप्राय रखना क्षेत्रवृद्धि है।

प्रश्न ४–स्मृति अन्तराधान किसे कहते हैं ?

उत्तर–दिशाओ मे की गई मर्यादा का स्मरण न रखना/भूल जाना स्मृति अन्तराधान है ।

प्रश्न ५–व्रतो मे की गई मर्यादा का उल्लघन या विस्मरण किस कारण होता है ?

उत्तर–मर्यादा का उल्लघन या विस्मरण प्रमाद से, मोह से या व्यासग से होता है । अत व्रती को सदा व्रतो मे निष्प्रमाद व जागृत रहना चाहिये ।

प्रश्न ६–देशविरति के पाँच अतिचार कौनसे है ?

उत्तर–आनयनप्रेष्यप्रयोगशब्दरूपानुपातपुद्गलक्षेपाः ॥ ३१ ॥

सूत्रार्थ–(१) आनयन (२) प्रेष्यप्रयोग (३) शब्दानुपात (४) रूपानुपात और (५) पुद्गलक्षेप ये देशविरति के पॉच अतिचार है ।

प्रश्न १–आनयन किसे कहते है ?

उत्तर–मर्यादा के बाहर की वस्तु को लाने की आज्ञा करना अथवा बुलाना आनयन है ।

प्रश्न २–प्रेष्यप्रयोग किसे कहते है ?

उत्तर–मर्यादित देश के बाहर नौकर आदि को भेजकर इच्छित कार्य की सिद्धि करना प्रेष्यप्रयोग है ।

प्रश्न ३–शब्दानुपात किसे कहते हैं ?

उत्तर–खॉसी, ताली बजाना आदि शब्दो के द्वारा मर्यादा से बाहर वाले आदमियो को अपना अभिप्राय समझाकर कार्य सिद्ध करना शब्दानुपात है ।

प्रश्न ४–रूपानुपात किसे कहते है ?

उत्तर–मर्यादा से बाहर स्थित जीवो को अपना शरीर दिखाकर इशारा आदि करके कार्य सिद्ध करना रूपानुपात है ।

प्रश्न ५–पुद्गलक्षेप किसे कहते है ?

उत्तर–मर्यादा से बाहर ककर, पत्थर फेककर अपने कार्य की सिद्धि कर लेना पुद्गलक्षेप है ।

प्रश्न ६–व्रती पुरुष मर्यादा से बाहर क्षेत्र मे फोन लगाना, पत्र-व्यवहार करना आदि कर सकता है या नहीं ?

उत्तर–मर्यादा से बाहर फोन लगाकर कार्य सिद्ध कर लेना, पत्र-व्यवहार से कार्य सिद्ध कर लेना ये कार्य व्रत को दूषित करते हैं अत व्रती के अयोग्य हैं ।

प्रश्न ७–मर्यादा के बाहर स्वय न जाकर अन्य उपायो से कार्य सिद्ध करने से व्रती की किस भावना की क्षति होती है ?

उत्तर–व्रती सतोषी होता है। मर्यादा का बधन भी सतोष धन की प्राप्ति के लिये ही किया जाता है अत व्रती मर्यादा मे कार्य हो तो करता है अन्यथा सतोष धारण करता है। परन्तु यदि वह आनयन, प्रेष्यप्रयोग, शब्दानुपात, रूपानुपात, पुद्गलक्षेप, पत्र-व्यवहार, फोन, तार आदि के द्वारा कैसे भी अपना कार्य बनाता है तो उसके सन्तोष गुण की क्षति होती है।

प्रश्न ८–अनर्थदण्डव्रत के कितने व कौनसे अतिचार है ?

उत्तर–कन्दर्पकौत्कुच्यमौखर्य्याऽसमीक्ष्याधिकरणोपभोग-परिभोगानर्थक्यानि ॥ ३२ ॥

सूत्रार्थ–अनर्थदण्डविरतिव्रत के पाँच अतिचार है—(१) कन्दर्प (२) कौत्कुच्य (३) मौखर्य (४) असमीक्ष्याधिकरण और (५) उपभोगपरिभोगानर्थक्य।

प्रश्न १–कन्दर्प किसे कहते है ?

उत्तर–रागभाव की तीव्रतावश हास्यमिश्रित असभ्यवचन बोलना कन्दर्प है।

प्रश्न २–कौत्कुच्य का लक्षण क्या है ?

उत्तर–हास्यमिश्रित और असभ्यवचन दोनो के साथ दूसरो के लिये शारीरिक कुचेष्टाएँ करना कौत्कुच्य है।

प्रश्न ३–मौखर्य किसे कहते है ?

उत्तर–धृष्टतापूर्वक, नि सार, आवश्यकता से अधिक बोलना मौखर्य है।

प्रश्न ४–असमीक्ष्याधिकरण किसे कहते हैं ?

उत्तर–प्रयोजन का विचार किये बिना मर्यादा के बाहर अधिक काम करना असमीक्ष्याधिकरण है।

प्रश्न ५–अर्थक्य व अनर्थक्य का अर्थ क्या है ?

उत्तर–जितनी वस्तु की आवश्यकता है वह अर्थक्य है। तथा आवश्यकता से अधिक वस्तु रखना अनर्थक्य है।

प्रश्न ६–उपभोगपरिभोगानर्थक्य किसे कहते है ?

उत्तर–अधिक मूल्य देकर उपभोग-परिभोग वस्तु को ग्रहण करना उपभोगपरिभोगानर्थक्य है। अथवा

आवश्यकता से अधिक उपभोग-परिभोग की वस्तु रखना उपभोगपरि-भोगानर्थक्य है ।

प्रश्न ७–मिथ्यादृष्टियो के द्वारा रचित अनर्थक काव्यादि का चिन्तन करना कौनसा अतिचार है ?

उत्तर–अप्रयोजनीय मिथ्या काव्यो का चिन्तन मनोगत असमीक्ष्याधिकरण नामक अतिचार है ।

प्रश्न ८–बिना प्रयोजन दूसरो को पीड़ा देने वाले भण्ड वचन बोलना कौनसा अतिचार है ?

उत्तर–पीड़ाकारक वचन बोलना "वचनगत असमीक्ष्याधिकरण" नामक अतिचार है ।

प्रश्न ९–बिना प्रयोजन सचित्त-अचित्त पुष्प, फल आदि का छेदना, विष, अग्नि, शस्त्र आदि का देना कौनसा अतिचार है ?

उत्तर–बिना प्रयोजन पुष्प-फल आदि छेदना आदि सब कायगत असमीक्ष्याधिकरण अतिचार है ।

प्रश्न १०–सामायिक व्रत के पाँच अतिचार कौन से है ?

उत्तर– **योगदुष्प्रणिधानानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥ ३३ ॥**

सूत्रार्थ–काययोगदुष्प्रणिधान, वचनयोगदुष्प्रणिधान, मनोयोगदुष्प्रणिधान, अनादर और स्मृति का अनुपस्थान ये सामायिक व्रत के पाँच अतिचार है ।

प्रश्न १–योग किसे कहते है ?

उत्तर–मन-वचन-काय की क्रिया से जो आत्मप्रदेशो मे प्रकम्पन होता है उसे योग कहते हैं ।

प्रश्न २–योग दुष्प्रणिधान किसे कहते है ?

उत्तर–योगो की दुष्ट प्रवृत्ति को तथा अन्यथा प्रवृत्ति को योगदुष्प्रणिधान कहते है ।

प्रश्न ३–दुष्टप्रवृत्ति किसे कहते है ?

उत्तर–सामायिक के समय क्रोध, मान, माया और लोभ सहित मन-वचन-काय प्रवृत्ति दुष्टप्रवृत्ति है ।

प्रश्न ४–कायदुष्प्रणिधान का लक्षण क्या है ?

उत्तर–शरीर के अगोपागो को आसनबद्ध या नियत्रित नही रखना तथा काय की अन्यथा प्रवृत्ति करना कायदुष्प्रणिधान है ।

प्रश्न ५–वचन दुष्प्रणिधान का लक्षण क्या है ?

उत्तर–अर्थरहित शब्दो का प्रयोग करना, वचन की अन्यथा प्रवृत्ति करना वचन दुष्प्रणिधान है ।

प्रश्न ६–मन दुष्प्रणिधान किसे कहते हैं ?

उत्तर–सामायिक मे उदासीन रहना, मन की अन्यथा प्रवृत्ति करना मन दुष्प्रणिधान है ।

प्रश्न ७–सामायिक मे अनादर अतिचार कैसे होता है ?

उत्तर–सामायिक व्रत मे उत्साह न होना, उद्यम न करना, प्रमाद आना सामायिक मे अनादर नामक अतिचार है ।

प्रश्न ८–स्मृत्यनुपस्थान नामक अतिचार किसे कहते हैं ?

उत्तर–एकाग्रता के अभाव मे सामायिक पाठ को भूल जाना, न मालूम यह पाठ मैने पढ़ा है या नही ऐसी भ्राति होना स्मृत्यनुपस्थान नामक सामायिक व्रत का अतिचार है ।

प्रश्न ९–प्रोषधोपवास व्रत के पाँच अतिचार कौनसे है ?

उत्तर–अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्ज्जितोत्सर्गादानसंस्तरोपक्रमणानादर-स्मृत्यनुपस्थानानि ॥ ३४ ॥

सूत्रार्थ–(१) अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जितभूमि मे उत्सर्ग (२) अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जित वस्तु का आदान (३) अप्रमार्जित सस्तर का उपक्रमण (४) अनादर और (५) स्मृति का अनुपस्थान ये प्रोषधोपवास व्रत के पाँच अतिचार है ।

प्रश्न १–प्रत्यवेक्षित व प्रमार्जित का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–यहाँ जीव है या नही इस प्रकार अपनी चक्षु से देखना प्रत्यवेक्षित है ।

कोमल उपकरण (पीछी आदि) से झाड़ने को प्रमार्जित कहते हैं ।

प्रश्न २–उत्सर्ग किसे कहते हैं ?

उत्तर–मूत्र पुरीष (मूत्र-मल) का छोड़ना उत्सर्ग है ।

प्रश्न ३–अप्रत्यवेक्षित-अप्रमार्जित-उत्सर्ग किसे कहते हैं ?

उत्तर–बिना देखी, बिना प्रमार्जित भूमि में मल-मूत्र का त्याग करना अप्रत्यवेक्षित प्रमार्जित उत्सर्ग है ।

प्रश्न ४–अप्रत्यवेक्षित-अप्रमार्जित-आदान किसे कहते हैं ?

उत्तर–अरहत और आचार्य की पूजा के उपकरण, गन्ध, माला और धूप आदि को तथा अपने ओढ़ने आदि के वस्त्रादि पदार्थों को बिना देखे और बिना परिमार्जन किये हुए ले लेना अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितादान है ।

प्रश्न ५–अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जित सस्तरोपक्रमण किसे कहते है ?

उत्तर–बिना देखे और बिना परिमार्जन किये हुए प्रावरण आदि सस्तर का बिछाना, उन पर सोना अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितसस्तरोपक्रमण है ।

प्रश्न ६–प्रोषधोपवास मे अनादर अतिचार का लक्षण क्या है ?

उत्तर–क्षुधा, तृषा आदि से व्याकुल होने के कारण आवश्यक षट् कार्यों मे अनुत्साहित होना प्रोषधोपवास मे अनादर नामक अतिचार है ।

प्रश्न ७–प्रोषधोपवास व्रत मे स्मृत्यनुपस्थान नामक अतिचार किसे कहते हैं ?

उत्तर–करने योग्य कार्यों को भूल जाना स्मृत्यनुपस्थान है ।

प्रश्न ८–उपभोग-परिभोग परिमाण व्रत के पॉच अतिचार कौनसे है ?

उत्तर–सचित्तसम्बन्धसन्मिश्राभिषवदुःपक्वाहाराः ॥ ३५ ॥

सूत्रार्थ–(१) सचित्त आहार (२) सचित्त सम्बन्ध आहार (३) सचित्त-समिश्र आहार (४) अभिषव आहार (५) दु पक्व आहार ये उपभोग परिभोग परिमाणव्रत के पाँच अतिचार है ।

प्रश्न १–सचित्त किसे कहते है ?

उत्तर–चित्त अर्थात् जीव । जो चित्त सहित है वह सचित्त कहलाता है ।

प्रश्न २–सचित्तआहार किसे कहते है ?

उत्तर–सचित्त से चेतना सहित द्रव्य लिया जाता है अत चेतना सहित आहार को सचित्ताहार कहते है ।

प्रश्न ३–सचित्तसम्बन्धाहार किसे कहते है ?

उत्तर–जो आहार स्वय शुद्ध होते हुए भी सचित्त के सम्बध मात्र से दूषित है उसे सचित्तसम्बन्धाहार कहते है ।

प्रश्न ४–सचित्तसन्मिश्राहार किसे कहते है ?

उत्तर–सचित्त से व्यतिकीर्ण (एकमेक) सचित्त सम्मिलित सचित्त द्रव्याश्रित सूक्ष्म प्राणियो से मिश्रित जिसको पृथक् करना शक्य नही है वह सचित्त सन्मिश्राहार कहलाता है ।

प्रश्न ५–सचित्त सम्बन्ध और सचित्त सन्मिश्र मे क्या अन्तर है ?

उत्तर–सचित्त सम्बन्ध आहार को सचित्त से पृथक् करना शक्य है किन्तु सचित्त सन्मिश्र आहार सचित्त से इस प्रकार मिश्रित हो जाता है कि उसे पृथक् करना शक्य नही है, यही दोनो मे अन्तर है ।

प्रश्न ६–व्रती गृहस्थ सचित्तादिक मे प्रवृत्ति किस कारण से करता है ?

उत्तर–मोह और प्रमाद के कारण, बुभुक्षा और पिपासा से आतुर हुआ पुमान् (व्रती गृहस्थ) अन्नपान, लेपन, आच्छादान आदि सचित्त विशिष्ट पदार्थों मे प्रवृत्ति करता है ।

प्रश्न ७–अभिषव आहार किसे कहते हैं ?

उत्तर–रात्रि के चतुर्प्रहर के भिगोए हुए चावल द्रव्य कहलाते हैं । इन्द्रियो के बल का वृद्धिकारक–उड़द विकारादि वृष्य कहलाते है । जिस आहार से मानव बैल के समान कामी होता है, ऐसा कामउत्पादक आहार भी वृष्य कहलाता है । द्रव और वृष्य ये दोनो अभिषव कहलाते हैं । अभिषव के आहार को अभिषवाहार कहते है ।

प्रश्न ८–दु.पक्व आहार किसे कहते है ?

उत्तर–जो ठीक तरह से पका नही है, अर्द्धपक्व है, अति गीला होने से दुष्टपक्व है, जला हुआ है उसे भी दुष्पक्व कहते हैं । दु पक्व आहार को दु पक्वाहार कहते है ।

प्रश्न ९–वृष्य और दु पक्वाहार का सेवन करने से क्या हानि है ?

उत्तर–वृष्य आहार के सेवन से इन्द्रियो के मद की वृद्धि होती है और दुपक्वाहार के सेवन से वातादि का प्रकोप, उदर पीड़ा आदि रोगो की उत्पत्ति होती है पुन रोग का प्रतीकार करने के लिये सचित्त का उपयोग तथा अग्नि आदि के जलाने मे महान् असयम होता है । अत व्रतो की हानि होती है ।

प्रश्न १०–अतिथिसविभाग व्रत के पॉच अतिचार कौनसे है ?

उत्तर– सचित्तनिक्षेपापिधानपरव्यपदेशमात्सर्यकालातिक्रमाः ॥ ३६ ॥

सूत्रार्थ–(१) सचित्तनिक्षेप (२) सचित्तापिधान (३) परव्यपदेश (४) मात्सर्य और (५) कालातिक्रम ये अतिथिसंविभाग व्रत के पाँच अतिचार हैं ।

प्रश्न १–सचित्त निक्षेप किसे कहते हैं ?

उत्तर–सचित्त कमलपत्र, केले के पत्ते आदि मे रखना सचित्तनिक्षेप है।

प्रश्न २–अपिधान का अर्थ क्या है तथा सचित्तापिधान किसे कहते है ?

उत्तर–अपिधान का अर्थ ढाँकना है। सचित्त कमलपत्र आदि से ढाँकना सचित्त अपिधान है।

प्रश्न ३–परव्यपदेश किसे कहते है ?

उत्तर–इस दान की वस्तु का दाता अन्य है ऐसा कहकर देना परव्यपदेश है। अथवा अपनी असुविधा के कारण दूसरे दाता के द्वारा अपना द्रव्य अर्पण कराना, मुझे कार्य है तुम दो, ऐसा कहना भी परव्यपदेश है।

प्रश्न ४–कोई व्यक्ति धन तो खर्च करता है किन्तु स्वय त्याग लेकर दान नही देता है उसे उस दान का फल प्राप्त होगा या नही ?

उत्तर–अपना द्रव्य खर्च करके दूसरो से दान कराने वाले जीवो को धनादिक की प्राप्ति तो होती है, परन्तु वह अपने भोग के लिये नही, उसका भोक्ता दूसरा ही होता है।

प्रश्न ५–कृत-कारित-अनुमोदना तीनो का फल बराबर है फिर द्रव्यदाता (मात्र धन खर्च करने वाला) को उचित फल की प्राप्ति क्यो नही होती है ?

उत्तर–पात्रदान, जिनपूजा और पुत्रोत्पत्ति तीन कार्य स्वय को करने पर ही फलित होते हैं। हाँ, यदि कोई मनुष्य अपग है, रोगी है, विकलाग है तो वह स्वय पश्चात्ताप करके दूसरो से दान-पूजा कराके उचित फल प्राप्त कर सकता है। तिर्यंच-पशु, पक्षी तथा दीन-हीन मानव दान-पूजा की अनुमोदना मात्र से धर्म के फल को प्राप्त होते है जैसे—जटायु पक्षी। परन्तु योग्यता होने पर भी जो प्रमादी, विषयान्ध होकर, दान, धर्म, जिनपूजादि स्वय नही करते है दूसरो से कराते है वे सब कुछ सामग्री प्राप्त करके भी धर्म के फल के भोक्ता नही बन सकते है।

प्रश्न ६–स्वय दान-धर्म करने का फल क्या है ?

उत्तर–भोजन और भोजन की शक्ति, रतिशक्ति और स्त्री की प्राप्ति, विभव और दानशक्ति ये स्वय धर्म करने के फल है।

प्रश्न ७–मात्सर्य किसे कहते है ?

उत्तर–दान करते हुए भी पात्रादि मे आदर का न होना या दूसरे दाता के गुणो को न सह सकना मात्सर्य है।

प्रश्न ८–कालातिक्रम किसे कहते है ?

उत्तर–भिक्षाकाल को छोड़कर दूसरा काल अकाल है और उस अकाल मे आहार दान देना कालातिक्रम है ।

प्रश्न ९–भिक्षाकाल कौनसा है ?

उत्तर–सूर्योदय के तीन घड़ी पश्चात् और सूर्यास्त के तीन घड़ी पूर्व का काल भिक्षाकाल है । अथवा जिस काल मे पात्र चर्या को निकलते है उस काल को भिक्षाकाल कहते है यथा प्रथमबेला, द्वितीयबेला ।

प्रश्न १०–सल्लेखना के पाँच अतिचार कौनसे है ?

उत्तर– **जीवितमरणाशंसामित्रानुरागसुखानुबन्ध-निदानानि ॥ ३७ ॥**

सूत्रार्थ–जीवित-आशसा, मरण-आशसा, मित्र-अनुराग, सुख-अनुबन्ध और निदान ये पाँच सल्लेखनाव्रत के अतिचार है ।

प्रश्न १–जीवित आशसा किसे कहते है ?

उत्तर–सल्लेखना धारण करके "जीने की चाह करना" जीवत आशसा है ।

प्रश्न २–ससार मे प्रत्येक व्यक्ति जीना चाहता है फिर जीने की इच्छा को सल्लेखना का अतिचार क्यो कहा ?

उत्तर–निश्चय से यह शरीर नाशवन्त है, हेय है तथापि इसके स्थिर रहने मे आदर करना ठीक नही है क्योंकि व्रतो की निर्दोष साधना जब तक इससे होती है तब तक इसमे रहना ठीक है अपने व्रतो का बाधक हो जाने पर इस शरीर को "जीर्णकुटी" सम जानकर हँसते-हँसते छोड़ देना उचित है, इसमे अधिक समय रहने की इच्छा अतिचार ही है ।

प्रश्न ३–मरण-आशसा किसे कहते है ?

उत्तर–सल्लेखना व्रत धारणकर शीघ्र मरने की इच्छा करना मरणाशसा नामक अतिचार है ।

प्रश्न ४–कोई सल्लेखनाधारी असाध्य वेदना से पीड़ित है अत. वह शीघ्र मरकर वेदना व सक्लेश परिणामो से बच जाता है अत. मरण-आशसा को अतिचार कहना कहाँ तक उचित है ?

उत्तर–उचित ही है । सल्लेखना का अर्थ ही है—जीवन-मरण मे साम्यभाव । वेदना या सक्लेश परिणामो को समतापूर्वक जीतना सल्लेखना है कायर होकर मरने की इच्छा करना अतिचार ही है । क्योंकि मात्र मर

जाने से पूर्वकृत कर्म का फ न नही छूटता, कर्म का फल इस पर्याय मे नही तो अगली पर्याय मे भोगना ही पड़ेगा। अत मरने की इच्छा करना अतिचार ही कहा ही है—सल्लेखना वीरमरण है, यह वीरो का कार्य है।

प्रश्न ५–मित्र-अनुराग किसे कहते है ?

उत्तर–पूर्व मे मित्रो के साथ की गई धूलिक्रीड़ा आदि क्रीडाओ का स्मरण करना। तथा पूर्व मे मेरे मित्रो ने मुझे किस-किस प्रकार सुख-दु ख मे सहायता दी थी आदि क्रियाओ का स्मरण करना मित्रानुराग है।

प्रश्न ६–सुखानुबन्ध किसे कहते है ?

उत्तर–पूर्व मे अनुभव मे आये हुए स्त्री, पुत्र, वैभव जनित विविध सुखो का पुन -पुन स्मरण करना सुखानुबन्ध है।

प्रश्न ७–निदान किसे कहते है ?

उत्तर–भोगाकाक्षा मे जिसके कारण से चित्त नियम से दिया जाता है वह निदान है अथवा परलोक मे विषयभोगो की इच्छा करना निदान है।

प्रश्न ८–सम्यग्दृष्टि के भी मुक्ति जाने की, दु खो के नाश की, कर्मो के नाश की आदि इच्छा होती है, क्या वह भी निदान है ?

उत्तर–निदान दो प्रकार का है—प्रशस्त निदान और अप्रशस्त निदान।

दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमण, समाहिमरण रूप प्रशस्त निदान सम्यग्दृष्टि के होता है, यह अनन्त कर्मबन्ध का कारण नही होता जबकि मिथ्यादृष्टि का विषयभोग रूपनिदान अनन्त सासार का हेतु है।

प्रश्न ९–दान का लक्षण क्या है ?

उत्तर– **अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम् ॥ ३८ ॥**

सूत्रार्थ–अनुग्रह के लिये अपनी वस्तु **का** त्याग करना दान है।

प्रश्न १–अनुग्रह किसे कहते है ?

उत्तर–स्वय अपना और दूसरे **का उपकार** करना अनुग्रह है।

प्रश्न २–दान देने से अपना **क्या उपकार** होता है ?

उत्तर–दान देने से दाता को **विशिष्ट** पुण्य का सचयरूप लाभ होता है यह स्व उपकार है।

प्रश्न ३–दान लेने वाले को तो लज्जा का अनुभव होता है फिर उससे पर उपकार क्या है ?

उत्तर–दान देने से पात्र के सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की वृद्धिरूप परोपकार होता है।

प्रश्न ४–दान किसे कहते है ?

उत्तर–स्व और पर उपकार के लिये जो वस्तु दी जाती है वही दान है ।

प्रश्न ५–आहार आदि देने से मुनियो के रत्नत्रय की वृद्धि कैसे होती है ?

उत्तर–सरस आहार देने से मुनियो के शरीर मे शक्ति, अरोग्यता आदि होती है, इससे ज्ञानाभ्यास, तीर्थवदना, उपवास आदि मे वे मुनि सुखपूर्वक प्रवृत्ति करते है । इसी प्रकार सयमोपकरण पीच्छी, शोचोपकरण कमण्डलु और ज्ञानोपकरण शास्त्रदान से भी परोपकार होता है ।

प्रश्न ६–दाता देय वस्तु को अन्य दातार से दिला सकता है क्या ?

उत्तर–विज्ञानी योग्य दाता अपने हाथ से योग्यपात्र के लिये योग्यवस्तु का दान दे । कहा भी है—

धर्मेषु स्वामिसेवाया सुतोत्पत्तौ च क सुधी ।
अन्यत्र कार्य देवाभ्या प्रतिहस्त च समादिशेत् ।। –यश उ पृ. ४०५

अर्थात् धर्म, स्वामिसेवा और पुत्रोत्पत्ति मे स्वय व्यापार करना चाहिये, दूसरो के द्वारा नही ।

हॉ, यदि दाता के रोगादिवश देने की योग्यता नही है तो वह अन्य से दिला भी सकता है ।

प्रश्न ७–दाता के द्वारा दिया जाने वाला द्रव्य कैसा होना चाहिये ?

उत्तर–जो अन्न विवर्ण, विरस और घुना हुआ हो, स्वरूप चलित हो, झिरा हुआ हो, रागोत्पादक हो, जूठा हो, नीचजनो के योग्य हो, अन्य के उद्देश्य से बनाया गया हो, निन्द्य हो, दुर्जनो के द्वारा स्पर्श किया गया हो, देवयक्ष्य आदि के लिए सकल्पित हो, दूसरे गॉव से लाया गया हो, मन्त्र से लाया गया हो, किसी के उपहार के लिये रखा गया हो, बाजारू बनी मिठाई आदि के रूप मे हो, प्रकृतिविरुद्ध हो, ऋतुविरुद्ध हो, घी, दूध, दही आदि से बना हुआ होने पर बासा हो गया हो, चलितरस हो इत्यादि इसी प्रकार और भी अनेक प्रकार का भ्रष्ट अन्न पात्रो को नही देना चाहिये । विवेकी दाता का कर्तव्य है कि वह पात्रो को शुद्ध आहार देवे ।

प्रश्न ८–पात्रदान का फल सबको समान मिलता है या कुछ विशेषता है ?

उत्तर– **विधिद्रव्यदातृपात्रविशेषात्तद्विशेषः ॥ ३९ ॥**

सूत्रार्थ–विधिविशेष, द्रव्यविशेष, दाता विशेष और पात्रविशेष से दान के फल मे विशेषता होती है ।

प्रश्न १–पात्रदान की विधि क्या है ?

उत्तर–प्रतिग्रह (पड़गाहन) आदि करने का क्रम विधि है । यथा— सुपात्र के लिये खड़े होकर पड़गाहना, उच्च आसन देना, चरण धोना, चरणो की पूजन करना, नमस्कार करना, मन·शुद्धि, वचनशुद्धि, कायशुद्धि और भोजन की शुद्धि का उच्चारण करना, ये नव विधि है इसीको नवधा भक्ति या नवपुण्य भी कहते है । कहा भी है—

पडिगहणमुच्चट्ठाणं, पादोदयमच्चणं च पणमं च ।
मणवयणकाय सुद्धी, एसणसुद्धी य नवविहं पुण्णं ॥

प्रश्न २–विधिविशेष किसे कहते है ?

उत्तर–नवधाभक्ति या नवविधि मे आदर और अनादर करना विधिविशेष है ।

प्रश्न ३–द्रव्य किसे कहा जाता है ?

उत्तर–मद्य, मास और मधु रहित चर्म पात्र से स्पर्श नही किया हुआ शुद्ध चावल, गेहूँ, घृत, दूध आदि द्रव्य कहलाते है ।

प्रश्न ४–द्रव्यविशेष किसे कहते है ?

उत्तर–पात्र के तप, स्वाध्याय आदि की वृद्धि मे हेतुभूत द्रव्य विशिष्ट पुण्य का कारण होता है । तथा जो द्रव्य तप आदि की वृद्धि मे कारण नही होता है वह विशिष्ट का भी कारण नही होता है । यही द्रव्य विशेष कहलाता है । अर्थात् द्रव्य की शुद्धता-अशुद्धता ही द्रव्यविशेष है ।

प्रश्न ५–दाता कौन हो सकता है ?

उत्तर–ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्य ये दाता होते है ।

प्रश्न ६–दाता विशेष कौन होता है ?

उत्तर–जो दाता पात्र मे असूया रहित हो, दान मे विषाद रहित हो, देने की इच्छा से देता हो, देने के लिये प्रेरित करता हो, दान के फल की इच्छा से रहित हो वह दाताविशेष कहलाता है । ऐसा दाताविशेष सप्तगुणो युक्त होता है—

श्रद्धा तुष्टिर्भक्तिर्विज्ञानमलुब्धता क्षमा शक्ति. ।
यत्रैते सप्तगुणास्तं दातारं प्रशंसन्ति ॥ १ ॥ -यश. उ. पृ. ४०४

(१) श्रद्धा, (२) तुष्टि, (३) भक्ति, (४) विज्ञान, (५) अलोभता, (६) क्षमा और (७) शक्ति ये दाता के सात गुण है ।

प्रश्न ७–पात्र कितने प्रकार के है ?

उत्तर–उत्तम पात्र, मध्यम पात्र और जघन्य पात्र के भेद से पात्र तीन प्रकार के है ।

प्रश्न ८–उत्तम-मध्यम-जघन्य पात्र कौन हैं ?

उत्तर–महाव्रतधारी मुनि उत्तम पात्र हैं, देशव्रती श्रावक मध्यम पात्र है तथा सम्यग्दर्शन सहित और व्रत रहित जीव जघन्य पात्र हैं । अर्थात् उत्तम पात्र महाव्रत से शोभित हैं, मध्यम पात्र श्रावक व्रत से पवित्र है तथा जघन्य पात्र सम्यक्त्व से निर्मल है ।

प्रश्न ९–नवधाभक्ति सहित दान देने योग्य पात्र कौनसे हैं ?

उत्तर–आचार्य श्री समन्तभद्रस्वामी ने पात्र के लिये विशेषताएँ निर्धारण की है, पात्र निर्धारण नही किये है । कारण गुणो से गुणी की पूजा होती है, कसौटी पर निर्णय करना हमारा कर्तव्य है । पात्रो की दो विशेषताएँ आचार्यश्री ने दी है—(१) सूना (वध के स्थान) (२) सेवा, कृषि, वाणिज्य आदि आरम्भ । इससे स्पष्ट है कि जिस पात्र मे भक्तिपूर्वक दान देना है—वे कृषि, वाणिज्य आदि आरम्भ कार्यों के साथ, ओखली, चक्की, चूल्ही, पानी भरना, बुहारी देना रूप पचसूना पाप स्थानो से रहित होना चाहिये । ऐसे पात्र दसवी अनुमतित्याग प्रतिमा के धारी सहित क्षुल्लक, क्षुल्लिका, ऐलक, आर्यिका और मुनिवृन्द ही है, अत इन सभी मे नवधाभक्ति पूर्वक आहार देना श्रावक का कर्तव्य है । जैसा कि कहा भी है—

नवपुण्यैः प्रतिपत्तिः सप्तगुणसमाहितेन शुद्धेन ।
अपसुनारम्भाणामार्याणामिष्यते दानम् ॥ ११३ ॥–र श्रा.

अर्थात् पञ्चसूना और आरम्भ कृष्यादि से रहित आर्यो, मुनीश्वरो, व्रतियो को सप्तगुण सहित, नवधाभक्तिपूर्वक, कुल, आचार व शारीरिक शुद्धि सहित आहारादिक से आदर/सत्कार करना दान नामक शिक्षाव्रत है ।

प्रश्न १०–दाता की कुल शुद्धि, आचार व शारीरिक शुद्धि का स्पष्टीकरण कीजिये ?

उत्तर–जिसकी "वश परम्परा" शुद्ध हो अर्थात् जिस वश मे विजातीय विवाह, विधवा विवाह नहीं हुआ हो उसे कुल शुद्धि कहते हैं । जो दाता

आचरण से शुद्ध हो अर्थात् अभक्ष्य वस्तुओ को सेवन करने वाला न हो, सप्त व्यसन सेवन नही करता हो उसे उसकी आचार शुद्धि जानो । जिसने स्नानादि करके शुद्ध वस्त्र धारण किये है, जिसका अगभग या हीनाधिक न हो, जिसके शरीर मे रक्त, पीव आदि को झराने वाली कोई व्याधि न हो उसे दाता की शरीर शुद्धि कहते है । कुल शुद्धि, आचार शुद्धि व शारीरिक शुद्धि युक्त मानव ही प्रशसनीय दाता हो सकता है ।

प्रश्न ११–योग्य पात्र मे विधिवत् दिये गये दान का फल क्या है ?

उत्तर–क्षितिगतमिव वटबीज पात्रगतं दानमल्पमपि काले ।

फलतिच्छायाविभवं बहुफलमिष्टं शरीरभृताम् ॥११६॥-र. श्रा.

आचार्य श्री समन्तभद्र स्वामी रत्नकरण्ड श्रावकाचार ग्रन्थ मे लिखते है कि जिस प्रकार भूमि मे बोया हुआ छोटा भी वट का बीज प्राणियो को समय पर बहुत छाया देता है उसी प्रकार पात्र मे विधिवत् दिया गया थोड़ा भी दान समय पर इष्ट बहुफल को देता है ।

इति श्रीमदुमास्वामी विरचिते मोक्षशास्त्रे सप्तमोऽध्याय:

●

अष्टम अध्याय

बन्ध तत्त्व सूत्र [२६]

सूत्र १-३ मे—बन्ध हेतु, बन्ध लक्षण, बन्ध भेद ।

सूत्र ४-५ मे—प्रकृतिबन्ध के मूल व उत्तर भेद । (प्रकृतिबन्ध)

सूत्र ६-१३ मे—अष्टकर्मों के उत्तर भेद ।

सूत्र १४-२० मे—अष्टकर्मों की उत्कृष्ट व जघन्य स्थिति । (स्थितिबन्ध)

सूत्र २१-२३ मे—अनुभागबन्ध विवेचन ।

सूत्र २४ मे—प्रदेशबन्ध स्वरूप कथन ।

सूत्र २५-२६ मे—पुण्य-पापप्रकृतियो का कथन ।

इसप्रकार अष्टम अध्याय मे प्रकृति-स्थिति-अनुभाग-प्रदेशबन्ध की विवेचना पाई जाती है ।

●

अथाष्टमोऽध्यायः

बन्ध तत्त्व का वर्णन

प्रश्न १–बन्ध के कारण कौन है ?

उत्तर– मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतवः ॥ १ ॥

सूत्रार्थ–मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये बन्ध के हेतु है ।

प्रश्न २–मिथ्यादर्शन किसे कहते है ?

उत्तर–मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से होने वाले तत्त्वार्थों के अश्रद्धान को या विपरीत श्रद्धान को मिथ्यादर्शन कहते है ।

प्रश्न ३–मिथ्यादर्शन के कितने भेद है ?

उत्तर–मिथ्यादर्शन के दो भेद है—(१) नैसर्गिक [अगृहीत] मिथ्यादर्शन और (२) परोपदेशपूर्वक [गृहीत] ।

प्रश्न ४–नैसर्गिक मिथ्यात्व का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–परोपदेश के बिना मिथ्यादर्शन कर्म के उदय से जीवादि पदार्थों का अश्रद्धानरूप भाव होता है वह नैसर्गिक मिथ्यादर्शन है । [इसका दूसरा नाम अगृहीत मिथ्यात्व है]

प्रश्न ५–परोपदेशपूर्वक होने वाले मिथ्यात्व का स्वरूप व भेद बताइये ?

उत्तर–पर के उपदेश के निमित्त से जो अतत्त्व श्रद्धान हो उसे परोपदेशपूर्वक होने वाला मिथ्यादर्शन जानो । [इसी का दूसरा नाम गृहीत मिथ्यात्व है] । गृहीत मिथ्यात्व के ४ भेद है—(१) क्रियावादी (२) अक्रियावादी (३) अज्ञानिक और (४) वैनयिक । अथवा गृहीत मिथ्यात्व ५ भेद रूप भी है—(१) एकान्त (२) विपरीत (३) सशय (४) वैनयिक और (५) अज्ञान । विस्तार से मिथ्यात्व के असख्यात लोक प्रमाण भेद हो सकते है ।

प्रश्न ६–एकान्त मिथ्यात्व का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–अनेक धर्मात्मक वस्तु के किसी एक धर्म को ही मानना एकान्त मिथ्यात्व है । यथा—सब पदार्थ नित्य ही हैं या अनित्य ही हैं । अथवा यह सब जग परब्रह्म रूप ही है इत्यादि । बौद्ध मतवाले वस्तु को अनित्य ही मानते है और वेदान्ती सर्वथा नित्य ही मानते है ।

प्रश्न ७–विपरीत मिथ्यात्व का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–वस्तु तत्त्व का विरुद्ध या उल्टा श्रद्धान विपरीत मिथ्यात्व है। जैसे—सग्रन्थ को निर्ग्रन्थ मानना, केवली को कवलाहारी माना, स्त्री मुक्ति मानना आदि।

प्रश्न ८–सशय मिथ्यात्व का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–जिनेन्द्र देव के वचनो मे सन्देह करना सशय मिथ्यात्व है, यथा—सम्यक्दर्शन, ज्ञान और चारित्र मोक्ष के मार्ग है या नही।

प्रश्न ९–अज्ञान मिथ्यात्व का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–हिताहित की परीक्षा से रहित होना अज्ञान मिथ्यात्व है।

प्रश्न १०–विनय मिथ्यात्व का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–सब देवता और सब मतो को एक समान मानना वैनयिक मिथ्यादर्शन है।

प्रश्न ११–मिथ्यात्व के पाँच भेदो के दृष्टान्त दीजिये ?

उत्तर– एयत बुद्धदरसी, विवरीओ बह्म तावसो विणओ।
इदो वि य ससइयो, मक्कडियो चेव अण्णाणी ॥१६॥-जी का

बौद्ध मत वाले एकान्त मिथ्यात्वी हैं, याज्ञिक ब्राह्मण आदि विपरीत मिथ्यादृष्टि है, तापस आदि विनय मिथ्यात्वी मिथ्यादृष्टि है। इन्द्र नामक श्वेताम्बर गुरु आदि सशय मिथ्यादृष्टि है और मस्करी आदि अज्ञान मिथ्यादृष्टि है।

प्रश्न १२–मिथ्यादृष्टि का लक्षण बताइये ?

उत्तर–मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से उत्पन्न होने वाले मिथ्या परिणामो का अनुभव करने वाला जीव मिथ्यादृष्टि / विपरीत श्रद्धान वाला होता है। मिथ्यादृष्टि को यथार्थ धर्म उसी प्रकार अच्छा नही लगता, जिस प्रकार पित्तज्वर से पीड़ित को मीठा दूध भी अच्छा मालूम नही होता।

प्रश्न १३–मिथ्यादृष्टि के बाह्य चिह्न कौन से हैं ?

उत्तर–मिथ्यादृष्टि जीव समीचीन गुरुओ के निर्दोष, हितकारी वचनो का यथार्थ श्रद्धान नही करता किन्तु इसके विपरीत आचार्याभासो के द्वारा उपदिष्ट या अनुपदिष्ट पदार्थ के विपरीत, अहितकर, सदोष वचनो का भी श्रद्धान करता है।

प्रश्न १४–मिथ्यादृष्टियो के ३६३ मत कौन से हैं ?

उत्तर–क्रियावादियों के १८०, अक्रियावादियो के ८४, अज्ञानियो के ६७ और वैनयिको के ३२ भेद इस प्रकार मिथ्यादृष्टियो के ३६३ भेद हैं।

प्रश्न १५–अविरति किसे कहते है ?

उत्तर–छहकाय [पॉच स्थावर एक त्रस] के जीवो की दया न करना तथा पाँच इन्द्रिय व छठे मन को वश मे नही रखना अविरति है यह अविरति बारह भेद रूप है ।

प्रश्न १६–प्रमाद किसे कहते है ?

उत्तर–"कुशलेष्वनादर प्रमाद" अथवा "पुण्यकर्मस्वनादर प्रमाद उच्यते" अर्थात् अच्छे कार्यो के करने मे आदर का न होना प्रमाद है ।

प्रश्न १७–वे शुभ या अच्छे कार्य कौन से है जिनमे आदर न करने से प्रमाद दोष लगता है ?

उत्तर–पॉच समितियो मे, तीन गुप्तियो मे, विनय शुद्धि, काय शुद्धि, वचनशुद्धि, मन शुद्धि, ईर्यापथशुद्धि, व्युत्सर्गशुद्धि, भैक्ष्यशुद्धि, शयनशुद्धि और आसनशुद्धि इन आठ शुद्धियो मे तथा दशलक्षण धर्म मे आदरपूर्वक प्रवृत्ति नही करने पर प्रमादजन्य दोष प्राप्त होता है ।

प्रश्न १८–प्रमाद कितने है ?

उत्तर–प्रमाद के पन्द्रह भेद है—

विकहा तहा कसाया, इदिय णिद्दा तहेव पण-योय ।
चदु चदु पणमेगेग हाति पमादा हु पण्णरस ।।"-जी का ३४

चार विकथा, चार कषाय, पॉच इन्द्रिय, निद्रा और स्नेह= ४+४+५+१+१=१५ प्रमाद है ।

प्रश्न १९–कषाय के कितने भेद है ?

उत्तर–अनन्तानुबधी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान, सञ्ज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ सोलह कषाय और नौ (हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुसकवेद) नो कषाय के भेद से कषाय के २५ भेद हैं ।

प्रश्न २०–योग के भेद कितने है ?

उत्तर–सत्य मनोयोग, असत्यमन, उभयमन और अनुभय मन की ऐसे मनोयोग के ४ भेद है । सत्य वचन, असत्य वचन, उभय वचन और अनुभय वचन ऐसे वचनयोग के ४ भेद है । औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रियिक, वैक्रियिकमिश्र, आहारक, आहारकमिश्र, और कार्मण ऐसे काययोग के सात भेद । ४+४+७=१५ योग ।

प्रश्न २१–बध के पॉच कारणो से १४ गुणस्थानो मे कौन-कौन हेतु है ?

उत्तर–प्रथम मिथ्यादृष्टि गुणस्थान मे—मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, योग पॉच ।
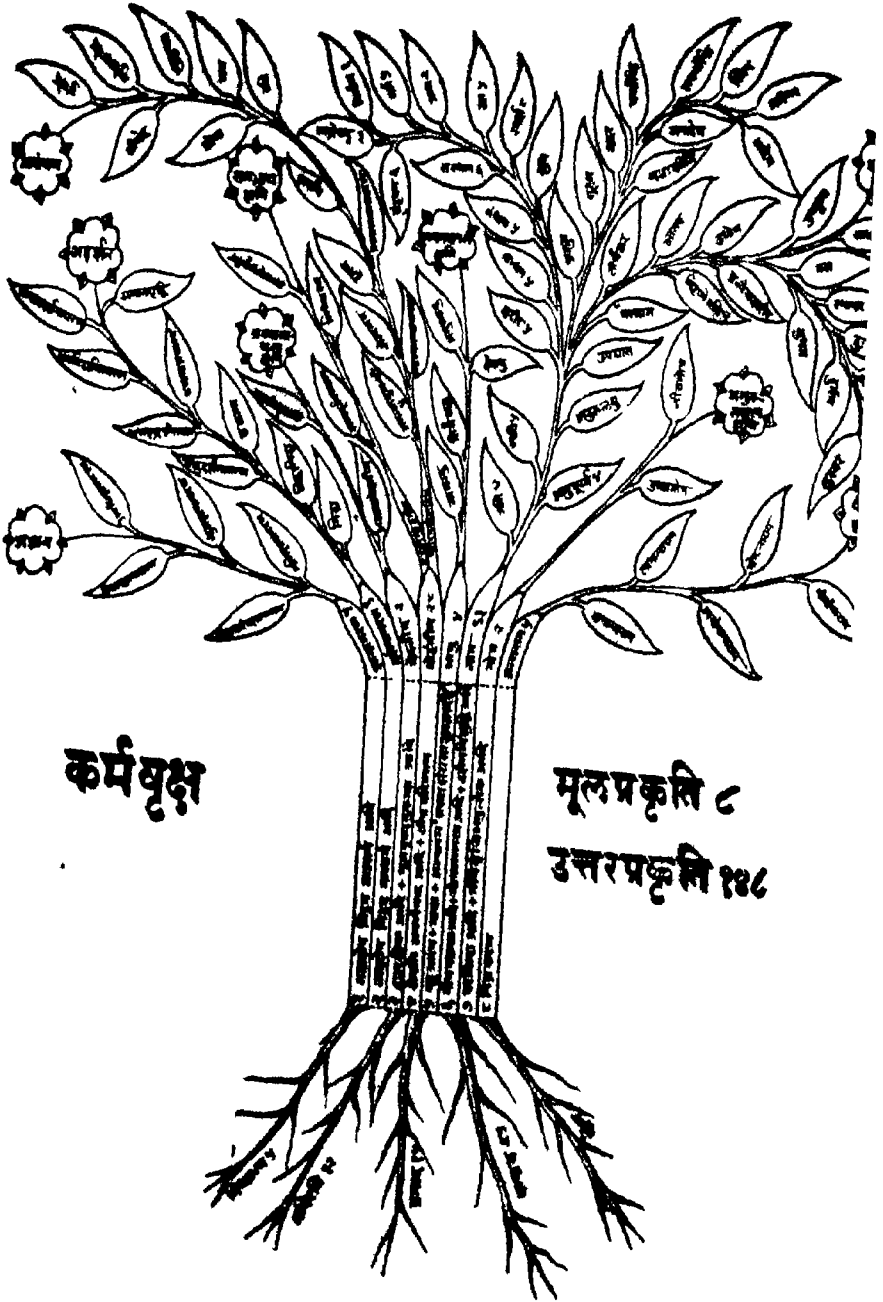
कर्मवृक्ष
मूलप्रकृति ८
उत्तरप्रकृति १४८

सासादन, मिश्र और असयतगुणस्थान मे—अविरति, प्रमाद, कषाय और योग चार ।

देशविरत गुणस्थान वालो के—विरति और अविरति ये दोनो मिश्ररूप तथा प्रमाद कषाय और योग चार ।

प्रमत्तसयत गुणस्थान मे—प्रमाद, कषाय और योग ।

अप्रमत्तसयत, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण व सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान मे—कषाय और योग ।

उपशान्त कषाय, क्षीणकषाय, सयोग केवली गुण. मे—योग बध के हेतु है ।

प्रश्न २२–अयोगकेवली बध के हेतु कितने हैं ?

उत्तर–अयोगकेवली के बध हेतु का अभाव है ।

प्रश्न २३–बन्ध का स्वरूप क्या है ?

उत्तर– **सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान्पुद्गलानादत्ते स बन्धः ॥ २ ॥**

सूत्रार्थ–कषायसहित होने से जीव कर्म के योग्य पुद्गलो को ग्रहण करता है वह बन्ध है ।

प्रश्न १–पूर्व सूत्र मे कषाय को बन्ध का हेतु कह चुके हैं पुन· यहाँ "सकषायत्वात्" कषाय को बन्ध का हेतु क्यो कहा है ?

उत्तर–जिस प्रकार जठराग्नि के अनुरूप आहार का ग्रहण होता है उसी प्रकार तीव्र, मन्द और मध्यम कषायाशय के अनुरूप ही स्थिति अनुभाग होता है । अर्थात् तीव्र, मन्द, मध्यम कषाय के भेद से स्थितिबन्ध, अनुभाग भी तीव्र, मन्द, मध्यम होता है । इसीका स्पष्टीकरण करने के लिये पुन. "सकषायत्वात्" पद को ग्रहण किया है ।

प्रश्न २–अमूर्तिक, बिना हाथवाला आत्मा कर्म को ग्रहण कैसे करता है ?

उत्तर–अमूर्तिक आत्मा कभी भी कर्म का ग्रहण नही करता है । कर्म को ग्रहण करने वाला मूर्तिक आत्मा है, जिसे जीव कहते हैं ।

प्रश्न ३–जीव किसे कहते है तथा सूत्र मे जीव पद क्यो कहा ?

उत्तर–जीव शब्द का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ है—"जीवनाज्जीवः" जो जीता है वह जीव है । अर्थात् जो दस प्राणो को धारण करता है, जिसके आयु का सद्भाव है वह जीव है । आयु प्राण सहित जीव ही कर्मों को ग्रहण करता है इसी की सूचना के लिये सूत्र में जीव पद को ग्रहण किया है ।

प्रश्न ४–सूत्र प्राप्त "कर्मणो योग्यान्" पदो का भाव समझाइये ?

उत्तर–"कर्मण " यह हेतुपरक निर्देश है जिसका भाव है कि कर्म के कारण जीव कषाय सहित होता है, कर्मरहित जीव के कषाय का लेप नही होता है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि जीव और कर्म का अनादि सम्बन्ध है।

प्रश्न ५–जीव और कर्म का बन्ध सादि मानने से क्या दोष आयेगा ?

उत्तर–बन्ध को सादि मानने पर आत्यन्तिक शुद्धि को धारण करनेवाले सिद्ध जीव के समान ससारी जीव के बन्ध का अभाव प्राप्त होता है।

प्रश्न ६–जीव और कर्म का अनादि सबध किस प्रकार है उदाहरण देकर बताओ ?

उत्तर–जिस प्रकार स्वर्ण पाषाण मे किट्टकालिमा का अनादि सम्बन्ध है, उसी प्रकार जीव व कर्म का अनादिकाल से सम्बन्ध है। इन दोनो का अस्तित्व स्वय सिद्ध है। जैसा कि कर्मकाण्ड मे नेमिचन्द्राचार्यश्री लिखते है—

पयडी सील सहावो जीवगाण अणाइसबधो।
कणयोवले मल वा ताणत्थित्त सय सिद्ध ॥२॥ कर्म

प्रश्न ७–जीव का और कर्म का स्वभाव क्या है ?

उत्तर–जीव का स्वभाव रागादि रूप परिणमने का और कर्म का स्वभाव तद्रूपपरिणमाने का है।

प्रश्न ८–शरीर मे जीव के अस्तित्व की सिद्धि कैसे होती है ?

उत्तर–"अह" प्रत्यय से शरीर मे विराजमान जीव का अस्तित्व सिद्ध होता है। "मैं" शब्द ही जीव का वाचक है।

प्रश्न ९–जीव के साथ कर्म के अस्तित्व की सिद्धि कीजिये ?

उत्तर–ससार मे अनन्त जीव हैं किसी के ज्ञान का क्षयोपशम की वृद्धि है, किसी के हानि है, कोई दरिद्री है, कोई धनाढ्य है, कोई सुखी, कोई दुखी है इत्यादि भिन्नताओ के देखने से कर्म का अस्तित्व सहज सिद्ध हो जाता है, क्योंकि आवरण कर्म के बिना तरतमता नही हो सकती है।

प्रश्न १०–सूत्र मे पुद्गल शब्द क्यो दिया ? (पुद्गलानादत्ते पद मे)

उत्तर–पुद्गल का कर्म के साथ तादात्म्य दिखाने के लिये "पुद्गल" का ग्रहण किया है। अर्थात् इससे यह सूचित होता है कि पुद्गल की कर्म के साथ और कर्म की पुद्गल के साथ तन्मयता है दूसरी यह विशेषता है कि

पुद्गल कर्म आत्मा का गुण नही है क्योंकि आत्मगुण ससार का कारण नही होता ।

प्रश्न ११–"सूत्र मे आया "आदत्ते" शब्द अपनी क्या विशेषता दर्शाता है ?

उत्तर–"आदत्ते" यह क्रिया वचन है, यह "हेतुहेतुमद्भाव" को दिखाता है । यथा मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये हेतु हैं और मिथ्यादर्शनादि से युक्त आत्मा हेतुमान है ।

प्रश्न १२–हेतु हेतुमद्भाव किसे कहते है ?

उत्तर– हेतु = कारण, हेतुमद् = कार्य = कारण-कार्य को हेतु, हेतुमान कहते है । इन्ही को हेतुहेतुमद्भाव कहते है ।

प्रश्न १३–बन्ध कैसे होता है ?

उत्तर–मिथ्यादर्शन आदि के अभिनिवेशवश गीले किये गये आत्मा के सब अवस्थाओ मे योग विशेष से उन सूक्ष्म, एक क्षेत्रावगाही अनन्तानन्त कर्मभाव को प्राप्त होने योग्य पुद्गलो का उपश्लेष होता है, यही बन्ध है ।

प्रश्न १४–आत्मा मे स्थित पुद्गल कर्मपने को कैसे प्राप्त होते हैं ?

उत्तर–जिस प्रकार पात्र विशेष मे रखे हुए विविध रसवाले बीज, फूल और फलो का मदिरा रूप से परिणमन होता है उसी प्रकार आत्मा मे स्थित हुए पुद्गलो का भी योग व कषायो के निमित्त से कर्मरूप परिणमन जानना चाहिये ।

प्रश्न १५–जीव द्रव्य स्वतत्र द्रव्य होकर भी ससार मे परिभ्रमण क्यो कर रहा है ?

उत्तर–जीव द्रव्य का स्वतत्र अस्तित्व होने पर भी अनादिकाल से वह कर्मों के आधीन हो रहा है जिससे नर-नारक आदि गतिरूप ससार मे परिभ्रमण कर रहा है ।

प्रश्न १६–जीव कर्मों के आधीन क्यो होता है ?

उत्तर–कषायाविष्ट आत्मा कर्मों के आधीन होता है । योग सेनापति कर्मों को निमत्रण देता है और कषाय सखियाँ स्वागताध्यक्ष हैं जो उनका स्वागत करती है बस जीव राजा स्वागत से प्रसन्न हो कर्माधीन हो जाता है ।

प्रश्न १७–पूर्ण सूत्र का भाव क्या है ?

उत्तर–१. जीव कर्मों के कारण कषायाविष्ट (कषाययुक्त) होता है इससे उसके कर्म के योग्य पुद्गलो का उपश्लेष होता है । यही बन्ध है ।

२ कर्म के निमित्त से जीव मे अशुद्धता आती है और इस अशुद्धता के कारण कर्म का बन्ध होता है ।

३ जीव और कर्म का यह बन्ध परम्परा से अनादि है ।

इस प्रकार बन्ध क्या है, वह किस कारण से होता है और कब से हो रहा है यह इस सूत्र से जाना जाता है ।

प्रश्न १८–बन्ध कितने भेद रूप है ?

उत्तर– प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशास्तद्विधयः ॥ ३ ॥

सूत्रार्थ–उस बन्ध के प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश ये चार भेद है ।

प्रश्न १–प्रकृति किसे कहते है ?

उत्तर–पयडी, सील, सहावो–प्रकृति, शील, स्वभाव ये पर्यायवाची शब्द है । प्रकृति का अर्थ स्वभाव होता है । यथा नीम की प्रकृति कडुवापना । गुड़ की प्रकृति मीठापना ।

प्रश्न २–ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों की प्रकृति बताइये ?

उत्तर– कर्म प्रकृति

ज्ञानावरण—अर्थ का ज्ञान नही होने देना ।

दर्शनावरण—अर्थ का अवलोकन नही होना ।

वेदनीय— सुख–द ख का सवेदन कराना, साता–असाता वेदनीय की प्रकृति है ।

मोहनीय—तत्त्वार्थ का श्रद्धान न होने देना । दर्शनमोह की प्रकृति है तथा असयमभाव चारित्रमोह की प्रकृति है ।

आयु—भवधारण आयु कर्म की प्रकृति है ।

नाम— नारक आदि गति, एकेन्द्रिय आदि जाति नामकरण नाम की प्रकृति है ।

गोत्र— उच्च–नीच कुल मे उत्पन्न करना गोत्र कर्म की प्रकृति है तथा

अन्तराय—दान–लाभ–भोग आदि मे विघ्न करना ।

प्रश्न ३–स्थितिबन्ध किसे कहते है ?

उत्तर–जिसका जो स्वभाव है उस स्वभाव से च्युत न होना स्थिति है । जिस प्रकार बकरी, गाय और भैंस आदि के दूध का माधुर्यस्वभाव से च्युत

न होना उसकी स्थिति है उसी ज्ञानावरण आदि कर्मों का अर्थ का ज्ञान न होने देना आदि स्वभाव से च्युत न होना स्थितिबन्ध है ।

प्रश्न ४–अनुभव (अनुभाग) किसे कहते है ?

उत्तर–कर्मों के रसविशेष का नाम अनुभव (अनुभाग) है । जिस प्रकार बकरी, गाय और भैस आदि के दूध का अलग-अलग तीव्र, मन्द आदि रसविशेष होता है उसी प्रकार कर्म पुद्गलो का अलग-अलग स्वगत सामर्थ्यविशेष अनुभाग कहलाता है ।

प्रश्न ५–प्रदेशबन्ध किसे कहते है ?

उत्तर–इयत्ता (इतने है) का अवधारण अर्थात् कर्मरूप से परिणत पुद्गलस्कधो का परमाणुओ की जानकारी करके निश्चय करना प्रदेशबन्ध है ।

प्रश्न ६–एक दृष्टान्त द्वारा चारो बन्ध स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर–यथा उदाहरणार्थ गाय का दूध—इसकी प्रकृति-मीठापन स्वभाव । २४ घटे की दूध की मर्यादा यह उसकी स्थिति है । गाय का दूध पीने वाले के लिये पौष्टिक है, बुद्धिवर्द्धक है—यह अनुभाग है तथा दूध का परिमाण १ किलो मात्र यह प्रदेश है । इसीप्रकार बँधे हुए कर्म का स्वभाव प्रकृति है । जीव के साथ कर्म के रहने का काल स्थिति है । अपने स्वभावानुसार वह कर्म न्यूनाधिक फल देता है यही अनुभव है तथा आत्मा के साथ वह कितने प्रमाण मे बन्ध को प्राप्त होता है यही प्रदेश है । कहा भी हैं—

प्रकृति परिणाम· स्यात् स्थिति कालावधारणम् ।
अनुभागो रसो ज्ञेय· प्रदेश प्रचयात्मक· ।।

प्रश्न ७–प्रकृति, स्थिति, अनुभव और प्रदेश बन्ध के कारण बताइये ?

उत्तर–यह जीव योग से प्रकृति और प्रदेश बन्ध को तथा कषाय से स्थिति व अनुभाग बन्धको करता है—

"जोगा पयडिपदेसा ठिदिअणुभागाकसायदो कुणदि ।"

"योग का कार्य निमन्त्रण देना है तथा कषाय का कार्य स्वागत करना है ।"

प्रश्न ८–कौनसा आस्रव चार बन्ध रूप परिणत देखा जाता है ?

उत्तर–साम्परायिक आस्रव से जो भी कर्म बँधता है उसे हम प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश चार रूपो मे देखते हैं ।

प्रश्न ९–चारो प्रकार का बन्ध कौनसे गुणस्थान तक होता है ?

उत्तर–प्रकृति-प्रदेश-अनुभाग और स्थिति चारो बन्ध प्रथम गुणस्थान से दसम गुणस्थान तक होते हैं ।

प्रश्न १०–ग्यारहवे, बारहवे, तेरहवे गुणस्थान मे कौनसा बन्ध होता है ?

उत्तर–दसम गुणस्थान तक ही कषाय का अस्तित्व पाया जाता है, ग्यारहवे गुणस्थान मे जीव कषायरूप से परिणत नही होते, बारहवे गुणस्थान मे उसका उच्छेद (अभाव) हो जाता है अत ग्यारहवे, बारहवे और तेरहवे गुणस्थान मे यद्यपि सातावेदनीय का बन्ध होता है पर वहाँ कषाय न होने से स्थिति, अनुभाग का बन्ध नही होता, योग के मौजूद रहने से यहाँ मात्र प्रकृति, प्रदेश बन्ध ही होता है ।

प्रश्न ११–प्रकृति, प्रदेश, स्थिति व अनुभाग बन्ध कौनसे गुणस्थान तक होते है ?

उत्तर–प्रकृति, प्रदेश बन्ध प्रथम गुणस्थान से तेरहवे गुणस्थान तक होते है तथा स्थिति, अनुभाग दसम गुणस्थान तक ही होते है ।

प्रश्न १२–ग्यारहवे आदि गुणस्थान मे स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध क्यो नही होता ?

उत्तर–क्योंकि यहाँ कषाय के अभाव में मात्र ईर्यापथ आस्रव होने से कर्म आते है और चले जाते है । यहाँ यद्यपि एक समय मात्र की स्थिति वाला बन्ध होता है । पर एक समय की स्थिति वाले कर्म को आचार्यों ने स्थितिबन्ध नही स्वीकार किया है, अत· वहाँ स्थितिबन्ध नही है । तथा एक समय स्थिति वाले कर्म का अनुभाग भी दो, तीन, चार आदि समय की स्थितिबन्ध वाले कषाय के निमित्त से प्राप्त होनेवाले अनुभाग से अनन्तगुणा हीन होता है अत. ग्यारहवे आदि गुणस्थानो मे अनुभागबन्ध भी नही है ।

प्रश्न १३–साम्परायिक आस्रव और ईर्यापथ आस्रव के गुणस्थान कौन-कौन से है ?

उत्तर–प्रथम मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से सूक्ष्मसाम्पराय दसवे गुणस्थान तक साम्परायिक आस्रव होता है तथा ईर्यापथ आस्रव ग्यारहवे, उपशातकषाय, बारहवे क्षीणमोह और सयोगकेवली जिनो के ही होता है ।

प्रश्न १४–अयोगकेवली गुणस्थान मे कौनसा बन्ध होता है ?

उत्तर–अयोगकेवली मे योग और कषाय के अभाव मे बन्ध का भी अभाव ही है ।

प्रश्न १५–सिद्धभगवन्त बन्ध रहित क्यों हैं ?

उत्तर–कारण होने पर कार्य होता है, कारण के अभाव मे कार्य का भी अभाव हो जाता तदनुसार बन्ध का कारण और योग ही है सिद्ध भगवन्तो के कषाय, योग दोनो कारणो का अभाव होने से बन्धरूप कार्य का भी अभाव देखा जाता है ।

प्रश्न १६–प्रकृतिबन्ध के कितने भेद हैं ?

उत्तर– **आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नाम-गोत्रान्तरायाः ॥ ४ ॥**

सूत्रार्थ–आदि का प्रकृतिबन्ध ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तरायरूप है ।

प्रश्न १–आवरण का अर्थ बताइये ?

उत्तर–आवरण का अर्थ आच्छादन, ढकना हैं । जो आवृत करता हे या जिसके द्वारा आवृत किया जाता है वह आवरण कहलाता है ।

प्रश्न २–ज्ञानावरण आदि आठ प्रकृतिबन्ध (कर्म) का स्वरूप बताओ ?

उत्तर–१ जो ज्ञान को आवृत करता है या जिसके द्वारा ज्ञान आवृत किया जाता है, वह ज्ञानावरण है ।

२ जो दर्शन को आवृत करता है या जिसके द्वारा दर्शन का आवरण किया जाता है वह दर्शनावरण है ।

३ जो वेदन कराता है या जिसके द्वारा वेदा जाता है वह वेदनीय कर्म है ।

४ जो मोहित करता है या जिसके द्वारा मोहा जाता है वह मोहनीय कर्म है ।

५ जिसके द्वारा नारक आदि भव को जाता है वह आयु कर्म है ।

६ जो आत्मा को नमाता है या जिसके द्वारा आत्मा नमता है वह नामकर्म है ।

७ जिसके द्वारा जीव उच्च और नीच कहा जाता है वह गोत्र कर्म है ।

८. जो पात्र और दाता के अथवा दाता और देय आदि के बीच मे आता है, अन्तर कराता है, विघ्न डालता है वह अन्तराय कर्म है ।

प्रश्न ३–केवल विभावरूप आत्मपरिणामो के द्वारा ग्रहण किये गये पुद्गल ज्ञानावरणादि अनेक भेदो को कैसे प्राप्त होते है ?

उत्तर–जिस प्रकार एक बार खाये गये अन्न का रस, रुधिर, मास, भेद, अस्थि, मज्जा, वीर्य सात धातुरूप अनेक प्रकार से परिणमन होता है अथवा अनेक विकाररूप परिणमन करने मे समर्थ वात-पित्त-कफ, खल, रस, लार आदि रूप परिणमन होता है उसी प्रकार एक बार भी किये गये विभाव आत्मपरिणामो का निमित्त पाकर पुद्गल वर्गणाएँ ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, नाम, गोत्र और अन्तराय सप्त कर्मरूप अथवा कदाचित् आयु कर्मसहित आठ कर्मरूप परिणमन करती है। विशेषता यह है कि भोजन क्रम-क्रम से रस-रुधिरादि सप्तधातुरूप परिणमन करता है, परन्तु पुद्गल वर्गणाएँ एक साथ अष्टकर्मरूप परिणत हो जाती है ।

प्रश्न ४–कर्म कितने है ?

उत्तर–कर्म सामान्य से एक प्रकार का है । पुण्य-पाप के भेद से दो प्रकार का है । द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्म अपेक्षा तीन प्रकार का है । प्रकृति, स्थिति अनभाग और प्रदेश बन्ध की अपेक्षा चार प्रकार का है । ज्ञानावरणादि के भेद से आठ प्रकार का है तथा विभाव / विकारी परिणामो की अपेक्षा सख्यात, असख्यात अनन्तभेद भी कर्म के होते है ।

प्रश्न ५–आठकर्मों के क्रम मे ज्ञानावरण आदि रूप क्रम क्यो रखा ?

उत्तर–आत्मा के सर्वगुणो मे ज्ञानगुण पूज्य एव प्रधान है इसलिये सर्वप्रथम ज्ञान को रखा है । व्याकरण का भी नियम है कि जिसमे अल्पाक्षर हो उसे पहले रखना । इसीकारण अल्पाक्षर व पूज्यता की अपेक्षा ज्ञानावरण को पहले रखा ।

ज्ञान के बाद क्रम से दर्शनावरण को रखा है । पश्चात् वेदनीय कर्म को रखा है क्योंकि वेदनीय कर्म मोहनीय कर्म के बल से ही घातियाकर्मो के समान जीवो के अव्याबाधगुणो को घातता है । यह अघातिया होकर घातिया कर्मो के समान जीवो के गुणो को घातता है इसीलिये इसे मोहनीय के पहले कहा है । वेदनीय कर्म मोहनीय के बल से गुणो को घातता है अत वेदनीय के बाद मोहनीय को रखा है ।

आयु कर्म के निमित्त से भव मे स्थिति होती है इसलिये नामकर्म से पूर्व आयुकर्म को कहा है और भव के आश्रय से ही नीचपना, उच्चपना होता है इसलिये नामकर्म को गोत्रकर्म के पहले कहा है ।

अन्तरायकर्म यद्यपि घातिया है तथापि अघातिया कर्मों के समान जीव के गुणो को पूर्णरूपसे घातने मे समर्थ नही है । नाम, गोत्र और वेदनीय

के निमित्त से ही अन्तरायकर्म अपना कार्य करता है, इसी कारण अन्तराय कर्म को अघातिया कर्मों के अन्त मे कहा है ।

इस प्रकार अष्टकर्मों का क्रम सिद्ध होता है । प्रथम ज्ञानावरण पश्चात् दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र व अन्तराय ।

प्रश्न ६–अष्ट कर्मों के दो भेद कौनसे है ?

उत्तर–घातिया व अघातिया के भेद से अष्टकर्म दो भेद वाले है ।

प्रश्न ७–घातिया कर्म किसे कहते है वे कौनसे है ?

उत्तर–जो जीव के (देवत्वरूप) गुणो को घातते है वे घातिया कर्म कहलाते है, ये कर्म चार है—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय ।

प्रश्न ८–अघातिया कर्म किसे कहते है वे कौनसे है ?

उत्तर–जो जीव (देवत्वप्रगट होने रूप) गुणो को नही घातते है उनको अघातिया कर्म कहते है, ये कर्म चार है—वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र ।

प्रश्न ९–वे कौनसे देवत्व गुण है जिन्हे घातिया कर्म घातते है ?

उत्तर–केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तवीर्य, क्षायिकसम्यक्त्व तथा क्षायिकचारित्र, क्षायिक दान, लाभ, भोग, उपभोगवीर्य आदि ५ लब्धि रूप क्षायिक भाव देवत्वगुण व मति-श्रुत-अवधि-मन पर्यय ज्ञानादिक रूप क्षायोपशमिक भाव इन गुणो को घातिया कर्म घातते है । कहा भी है—

केवलणाण दसणमणतविरिय च खयियसम्म च ।
खयियगुणे मदियादी खओवसमिए य घादी दु ।। १० ।। -कर्म.का

प्रश्न १०–आठ कर्मों के स्वभाव के दृष्टान्त दीजिये ?

उत्तर-

कर्म	दृष्टान्त
ज्ञानावरण कर्म	"पट" देवता के मुख पर ढके वस्त्र समान ।
दर्शनावरण कर्म	द्वारपाल समान ।
वेदनीय कर्म	शहद लपेटी तलवार समान ।
मोहनीय कर्म	मदिरा के समान ।
आयु कर्म	हलि (खोड़ा) के समान ।
नाम कर्म	चित्रकार के समान ।
गोत्र कर्म	कुभकार के समान ।
अन्तराय कर्म	भडारी के समान ।

कहा भी है—

पडपडिहारसिमज्जा हलिचितकुलालभडयारीण ।

जह एदेसिं भावा तहवि य कम्मा मुणेयव्वा ।। २१ ।। – कर्म का०

प्रश्न ११–मूल प्रकृति बन्ध आठ प्रकार के हैं, उनके उत्तरभेद कितने हैं ?

उत्तर– पञ्चनवद्व्यष्टाविंशतिचतुर्द्विचत्वारिंशद्द्विपञ्च भेदा यथाक्रमम् ॥ ५ ॥

सूत्रार्थ–आठ मूल प्रकृतियो के अनुक्रम से पाँच, नौ, दो, अट्ठाईस, चार, ब्यालीस, दो और पॉच भेद यथाक्रम से हैं ।

प्रश्न १–आठो कर्मों के उत्तरभेद यथाक्रम से बताइये ?

उत्तर–ज्ञानावरणकर्म के ५, दर्शनावरण के ९, वेदनीयकर्म के २, मोहनीयकर्म के २८, आयुकर्म के ४, नामकर्म के ४२, गोत्रकर्म के २ और अन्तरायकर्म के ५ भेद है ।

प्रश्न २–ज्ञानावरणकर्म के पाँच भेद कौन से है ?

उत्तर– मतिश्रुतावधिमनःपर्यय केवलानाम् ॥ ६ ॥

सूत्रार्थ–मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान इनको आवरण करनेवाले कर्म पाँच ज्ञानावरण हैं ।

प्रश्न १–ज्ञानावरणकर्म के ५ भेदो के नाम बताइये ?

उत्तर–मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मन पर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण ।

प्रश्न २–मति–श्रुत–अवधि–मन·पर्यय और केवलज्ञानावरण के लक्षण बताइये ?

उत्तर–मतिज्ञान को ढॉकनेवाला मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञान को ढँकने वाला श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञान को ढाँकने वाला अवधिज्ञानावरण, मन पर्ययज्ञान को आच्छादित करने वाला मन पर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञान को आवृत करने वाला कर्म केवलज्ञानावरण कर्म कहलाता है ।

प्रश्न ३–अभव्य व भव्य दोनो के पाँचो ज्ञानावरण कर्म पाये जाते है या नही ?

उत्तर–अभव्य व भव्य दोनो के पाँचो ज्ञानावरण कर्म पाये जाते हैं ।

प्रश्न ४–अभव्य जीव के मन पर्ययज्ञान व केवलज्ञान की शक्ति होती है या नही ?

उत्तर–अभव्यजीव के भी मन पर्यय व केवलज्ञान की शक्ति होती है। अत: मन पर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण कर्मों का उनके सद्भावयुक्त ही है।

प्रश्न ५–यदि होती है तो उसके अभव्यपना कैसे कहा गया है ?

उत्तर–अभव्य जीव के द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा मन·पर्यय और केवलज्ञान शक्ति पायी जाती है पर पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा उसके उसका अभाव है।

प्रश्न ६–यदि अभव्य-भव्य दोनो के मन:पर्ययज्ञान व केवलज्ञान की शक्ति का सद्भाव है तो फिर भव्य-अभव्य की कल्पना निरर्थक सिद्ध होगी ?

उत्तर–भव्य या अभव्यपना शक्ति के सद्भाव और असद्भाव की अपेक्षा नही कहा गया है।

प्रश्न ७–जीवो को भव्य-अभव्य किस आधार से कहा गया है ?

उत्तर–व्यक्ति की सद्भाव और असद्भाव की अपेक्षा यह विकल्प कहा गया है जिसके कनक, पाषाण और इतर पाषाण की तरह सम्यग्दर्शनादि रूप से व्यक्ति होगी वह भव्य है और जिसके नही होगी वह अभव्य है।

प्रश्न ८–मूल मे ज्ञान एक है, आत्मा ज्ञान स्वरूप है, तथापि ज्ञान के पाँच भेद क्यो हुए ?

उत्तर–जिस प्रकार अतिसघन मेघपटल सूर्य को आच्छादित करते है तो भी अतिमन्द सूर्य किरणे मेघपटल मे से प्रस्फुटित होती रहती है, उसी प्रकार केवलज्ञानावरण कर्म के आवृत होने पर भी कुछ न कुछ ज्ञानाश प्रस्फुटित होता रहता है और उसी को आवृत करने की अपेक्षा से चार आवरण कर्म और प्राप्त होते है। (ध टी)। इस प्रकार ज्ञान के आवरण (क्षयोपशम) की अपेक्षा ज्ञानावरण के पाँच भेद प्राप्त होते है।

प्रश्न ९–सतान अपेक्षा बन्ध कितने प्रकार का है ?

उत्तर–सन्तान अपेक्षा बन्ध दो प्रकार है—(१) जो सन्तान की अपेक्षा अनादि अनन्त होता है। (२) दूसरा बन्ध जो अनादि सान्त होता है।

प्रश्न १०–भव्य और अभव्य जीवो के कौनसा बन्ध होता है ?

उत्तर–भव्य जीवों के अनादि सान्त बन्ध होता है और अभव्य जीवो के कर्म का अनादि अनन्त बन्ध होता है। इसलिए शक्ति सब जीवो मे एक-सी होकर भी उसके व्यक्त होने मे अन्तर हो जाता है। यथा—कनकपाषाण और अन्धपाषाण।

प्रश्न ११–दर्शनावरणकर्म के नौ भेद बताइये ?

उत्तर- चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रा-निद्रानिद्राप्रचला-प्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धयश्च ॥ ७ ॥

सूत्रार्थ–चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन इन चारो के चार आवरण तथा निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचला-प्रचला और स्त्यानग्रद्धि ये पाँच निद्रादिक के भेद से दर्शनावरण कर्म के नौ भेद हैं।

प्रश्न १–चक्षु और अचक्षु किसे कहते है ? तथा अवधिदर्शन, केवलदर्शन किसे कहते है ?

उत्तर–दोनो नेत्रो को चक्षु कहते है। मन और शेष चार इन्द्रियो को अचक्षु कहते है। अवधि और दर्शन अवधिदर्शन है। केवल और दर्शन केवलदर्शन है।

प्रश्न २–दर्शनावरण किसे कहते है ?

उत्तर–चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल इन चारो दर्शनो का आवरण करने वाला दर्शनावरण है।

प्रश्न ३–चक्षुदर्शनावरण किसे कहते है ?

उत्तर–जो चक्षु द्वारा होने वाले सामान्य अवलोकन को न होने दे वह चक्षु दर्शनावरण है।

प्रश्न ४–अचक्षुदर्शनावरण किसे कहते है ?

उत्तर–जो चक्षु को छोड़कर अन्य इन्द्रियो से होने वाले सामान्य अवलोकन को न होने दे उसे अचक्षुदर्शनावरण कहते है।

प्रश्न ५–अवधिदर्शनावरण व केवलदर्शनावरण किसे कहते है ?

उत्तर–जो अवधिज्ञान के पूर्व होने वाले सामान्य अवलोकन को न होने दे वह अवधिदर्शनावरण है। और केवलज्ञान के साथ होने वाले अवलोकन को जो न होने दे वह केवलदर्शनावरण है।

प्रश्न ६–निद्रा व निद्रानिद्रा दर्शनावरण कर्म का लक्षण बताइये ?

उत्तर–मद खेद और परिश्रमजन्य थकावट को दूर करने के लिये नीद लेना निद्रा है। तथा निद्रा पर पुन पुन निद्रा लेना निद्रा-निद्रा है।

प्रश्न ७–निद्रा और निद्रा-निद्रा मे क्या अन्तर है ?

उत्तर–निद्रावान् पुरुष सुखपूर्वक जागृत हो जाता है जबकि निद्रा-निद्रा वाला बहुत कठिनता से सचेत होता है।

प्रश्न ८–प्रचला व प्रचला-प्रचला दर्शनावरण कर्म के लक्षण बताइये ?

उत्तर–जो शोक, श्रम और मद आदि के कारण उत्पन्न हुई है और जो बैठे हुए प्राणी के भी नेत्र गात्र की विक्रिया की सूचक है ऐसी जो क्रिया

आत्मा को चलायमान करती है वह प्रचला है । प्रचला की पुन -पुन आवृत्ति होना प्रचला-प्रचला है ।

प्रश्न ९–स्त्यानगृद्धि दर्शनावरण कर्म का लक्षण बताइये ?

उत्तर–जिसके निमित्त से स्वप्न मे वीर्यविशेष का आविर्भाव होता है वह स्त्यानगृद्धि है । (यद्यपि स्त्यायति धातु के अनेक अर्थ हैं तथापि यहाँ स्वप्न अर्थ मे लिया गया है और गृद्धि का अर्थ दीप्ति लिया गया है) अर्थात् जिसके उदय से आत्मा दिन मे करने योग्य अन्य रौद्र कार्यों को रात्रि मे कर डालता है वह स्त्यानगृद्धि दर्शनावरण कर्म है ।

प्रश्न १०–"दर्शन" तो चक्षु-अचक्षु-अवधि और केवलदर्शन के भेद से चार प्रकार का ही होता है, अत दर्शनावरण के भी "चार" भेद ही कहने थे "नौ" भेद क्यो कहे ? पॉच निद्रा की गणना दर्शनावरण कर्म मे किस कारण की गई ?

उत्तर–चक्षु-अचक्षु-अवधि और केवलदर्शन की अपेक्षा दर्शन के चार भेद है, उनकी अपेक्षा चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण और केवलदर्शनावरण चार भेद कहे है । तथा यद्यपि निद्रा आदि सामान्य आवरण कर्म है पर ससारी जीव के पहले दर्शनोपयोग होता है, और ये निद्रा (पॉच निद्रा) आदिक दर्शनोपयोग मे बाधक है इसलिये निद्रा आदि पॉच कर्मों की दर्शनावरण के भेदो मे परिगणना की जाती है । इससे दर्शनावरण कर्म के नौ भेद सिद्ध होते है ।

प्रश्न ११–छद्मस्थ जीवो के दर्शन ज्ञानोपयोग और केवली भगवान् के दर्शन ज्ञानोपयोग मे क्या अन्तर है ?

उत्तर- १ केवलीभगवान् के क्षायिक दर्शन और क्षायिक ज्ञान अपेक्षा, उनके ज्ञान-दर्शन दोनो उपयोग क्षायिक होते हैं । छद्मस्थ जीवो के दर्शन-ज्ञान दोनो क्षायोपशमिक होते है ।

२ केवलीभगवान् के दर्शन और ज्ञान युगपत् होता है क्योंकि उनके बाधक कर्मों का एकसाथ क्षय होता है किन्तु छद्मस्थ जीवो के दर्शन पूर्वक ज्ञान होता है ।

द्रव्यसग्रह मे कहा भी है—

दसण पुव्व णाण छद्मत्थाण ण दुण्णि उवओगा ।
जुगव जह्मा केवलिणाहे जुगव तु ते दो वि ॥ ४४ ॥

प्रश्न १२–वेदनीयकर्म के भेद बताइये ?

उत्तर- **सदसद्वेद्ये ॥ ८ ॥**

सूत्रार्थ—सद्वेद्य (सातावेदनीय) और असद्‌वेद्य (आसातावेदनीय) ये दो वेदनीय के भेद है ।

प्रश्न १—सद्वेद्य किसे कहते है ?

उत्तर—प्रशस्त वेद्य को सद्वेद्य कहते है अर्थात् जिस कर्म के उदय से देवादि गतियो मे शरीर और मन सम्बन्धी सुख की प्राप्ति होती है वह सद्वेद्य (सातावेदनीय) है ।

प्रश्न २—असद्वेद्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से शारीरिक-मानसिक अनेक प्रकार के दुखो को प्राप्त होते है वह असद्वेद्य (असातावेदनीय) है ।

प्रश्न ३—मोहनीय कर्म के उत्तर भेद बताइये ?

उत्तर-दर्शनचारित्रमोहनीयाकषायकषायवेदनीयाख्यास्त्रिद्वि-नवषोडशभेदाः सम्यक्त्वमिथ्यात्वतदुभयान्यकषाय कषायौहास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुन्नपुंसकवेदा अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलन-विकल्पाश्चैकशः क्रोधमानमायालोभाः ॥ ९ ॥

सूत्रार्थ—दर्शनमोहनीय, चारित्रमोहनीय, अकषायवेदनीय और कषायवेदनीय इनके क्रम से तीन, दो, नौ और सोलह भेद हैं । सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यक्‌मिथ्यात्व ये दर्शनमोहनीय के तीन भेद है । कषाय वेदनीय और अकषाय वेदनीय ये चारित्रमोहनीय के दो भेद है । हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुवेद और नपुसकवेद ये नौ अकषायवेदनीय है । तथा अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और सज्वलन ये प्रत्येक क्रोध, मान, माया, लोभ के भेद से सोलह कषाय वेदनीय है ।

प्रश्न १—दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय का स्वरूप क्या है ?

उत्तर—जो आत्मा के सम्यक्त्व गुण को घाते वह दर्शनमोहनीय है और जो आत्मा के चारित्रगुण को घाते वह चारित्रमोहनीय है ।

प्रश्न २—दर्शनमोहनीय कर्म के कितने भेद है ?

उत्तर—दर्शनमोहनीय कर्म के तीन भेद है—मिथ्यात्व, सम्यक्‌मिथ्यात्व और सम्यक्‌प्रकृति ।

प्रश्न ३—मिथ्यात्व दर्शनमोहनीय किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसके उदय से यह जीव सर्वज्ञप्रणीत मार्ग से विमुख, तत्त्वार्थ श्रद्धान करने मे निरुत्सुक, हिताहित विचार करने मे असमर्थ ऐसा मिथ्यादृष्टि होता है वह मिथ्यात्व दर्शनमोहनीय है ।

प्रश्न ४–सम्यक्त्व दर्शनमोहनीय का स्वरूप बताइये ?

उत्तर–जिस प्रकृति के उदय से आत्मा के सम्यग्दर्शन गुण मे चल-मल-अगाढ़ दोष लगता है वह "सम्यक्प्रकृति" है। वही मिथ्यात्व जब शुभ परिणामों के कारण अपने विपाक को रोक देता है और उदासीन रूप से अवस्थित रहकर आत्मा के श्रद्धान को नही रोकता है तब सम्यक्त्व होता है। इसका वेदन करने वाला पुरुष सम्यग्दृष्टि कहा जाता है।

प्रश्न ५–सम्यक् मिथ्यात्व दर्शनमोहनीय का स्वरूप बताओ ?

उत्तर–वह मिथ्यात्व प्रक्षालन विशेष के कारण क्षीणाक्षीण मदशक्ति वाले कोदो के समान अर्द्धशुद्ध स्वरस (विपाक) वाला होने पर सम्यक् मिथ्यात्व कहा जाता है।

प्रश्न ६–चारित्रमोहनीय कर्म के कितने भेद हैं ?

उत्तर–दो भेद है—अकषाय वेदनीय और कषाय वेदनीय।

प्रश्न ७–अकषाय वेदनीय का अर्थ क्या है ? उसके कितने भेद कौन-कौन से है ?

उत्तर–ईषद् अर्थात् किंचित् अर्थ मे "नञ्" समास का प्रयोग होकर "न कषाय अकषाय" बना है। "किंचित् कषाय को अकषाय कहते हैं"। इसके नौ भेद हैं—हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुसकवेद।

प्रश्न ८–हास्यादि छ अकषाय का स्वरूप बताइये ?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से हँसी आती है वह हास्य कर्म है, जिस कर्म के उदय से देश आदि मे उत्सुकता होती है वह रति है, रति से विपरीत अरति है, जिसके उदय से शोक होता है वह शोक है, जिसके उदय से उद्वेग होता है वह भय है, जिसके उदय से आत्मदोषो का सवरण और परदोषो का आविष्करण होता है वह जुगुप्सा कर्म है।

प्रश्न ९–स्त्रीवेद का स्वरूप व लक्षण बताइये ?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से स्त्री सम्बन्धी भावो को प्राप्त होता है वह स्त्रीवेद है। योनि, कोमलता, भयशील होना, मुग्धपना, पुरुषार्थशून्यता, स्तन और पुरुषभोग की इच्छा ये ७ स्त्रीवेद के लक्षण हैं।

प्रश्न १०–पुरुषवेद का स्वरूप और लक्षण बताइये ?

उत्तर–जिसके उदय से पुरुष सम्बन्धी भावो को प्राप्त होता है वह पुरुषवेद है। लिंग, कठोरता, स्तब्धता, शौण्डीरता, दाढ़ी-मूँछ, जबर्दस्तपना और स्त्रीभोग इच्छा ये सात पुवेद के सूचक लक्षण है।

प्रश्न ११–नपुसकवेद का स्वरूप व लक्षण क्या है ?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से नपुसक सम्बन्धी भावो को प्राप्त होता है वह नपुसक वेद है। स्त्रीवेद और पुरुषवेद के सूचक १४ चिह्न मिश्रित रूप मे नपुंसकवेद के लक्षण है।

प्रश्न १२–कषायवेदनीय की कितनी अवस्थाएँ है तथा उनके कितने भेद है ?

उत्तर–कषायवेदनीय की अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और सज्वलन की अपेक्षा चार अवस्थाएँ है। अनन्तानुबन्धी आदि चारो अवस्थाओ के ४-४ भेद है—क्रोध, मान, माया और लोभ। इस प्रकार कषायवेदनीय के १६ भेद है। अनन्तानुबधी क्रोध-मान-माया-लोभ। अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ। प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ और सज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ।

प्रश्न १३–अनन्त व अनन्तानुबन्धी किसे कहते है ?

उत्तर–अनन्त ससार का कारण होने से मिथ्यात्व को अनन्त कहते है। तथा जो कषाय मिथ्यात्व की अनुबन्धी है उसे अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ कषाय कहते है।

प्रश्न १४–अनन्तानुबन्धी कषाय का कार्य, उदय काल व वासना काल बताइये ?

उत्तर–अनन्तानुबन्धी कषाय **सम्यक्त्वाचरण** चारित्र का घात करती है। इसका उदय काल **अनन्तर्मुहूर्त** व वासनाकाल **अनन्तकाल** है।

प्रश्न १५–अप्रत्याख्यानकषाय का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–जिस कषाय के उदय से यह जीव देशविरति या सयमासयम को स्वल्प भी करने मे समर्थ नही होता है वह अप्रत्याख्यान क्रोध-मान-माया-लोभ कषाय है।

प्रश्न १६–अप्रत्याख्यान कषाय का कार्य, उदय काल व वासना काल कितना है ?

उत्तर–अप्रत्याख्यान का कार्य देश प्रत्याख्यान को आवृत्त करना अर्थात् देशचारित्र नही होने देना है। इस कषाय का उदयकाल अन्तर्मुहूर्त है तथा वासना काल ६ माह है।

प्रश्न १७–प्रत्याख्यानकषाय का स्वरूप बताइये ?

उत्तर–जिनके उदय से सयम नाम वाली परिपूर्ण विरति को यह जीव करने मे समर्थ नही होता वह प्रत्याख्यान क्रोध-मान-माया-लोभ कषाय है।

प्रश्न १८—प्रत्याख्यानकषाय का कार्य, उदयकाल व वासनाकाल बताइये ?

उत्तर—सकल प्रत्याख्यान को आवृत करना अथवा सकल चारित्र को आवृत करना प्रत्याख्यान कषाय का कार्य है। इसका उदयकाल अन्तर्मुहूर्त व वासनाकाल १५ दिन है।

प्रश्न १९—संज्वलन कषाय किसे कहते हैं ?

उत्तर—सयम के साथ अवस्थान होने से एक होकर जो ज्वलित होते है अर्थात् चमकते है या जिनके सद्भाव मे सयम चमकता रहता है वे सज्वलन क्रोध, मान, माया लोभ हैं।

प्रश्न २०—सज्वलन कषाय का कार्य, उदयकाल व वासनाकाल कितना है ?

उत्तर—यथाख्यातचारित्र को नही होने देना सज्वलन कषाय का कार्य है। इसका उदयकाल व वासनाकाल अन्तर्मुहूर्त है।

प्रश्न २१—क्रोध, मान, माया, लोभ, तीव्र, मन्द आदि चार अवस्थाओ को दृष्टान्त द्वारा बताते हुए, उन सहित जीवो के उत्पत्ति स्थान बताइये ?

उत्तर—अपने और पर के उपघात अनुपकार आदि से प्राप्त क्रूर परिणाम क्रोध है वह चार प्रकार का है—

अनन्तानुबधी क्रोध— शिला रेखा के समान— नरकायु मे उत्पत्ति।
अप्रत्याख्यान क्रोध— पृथ्वी रेखा के समान— तिर्यञ्चायु मे उत्पत्ति।
प्रत्याख्यान क्रोध— धूलि रेखा के समान— मनुष्यायु मे उत्पत्ति।
सज्वलन क्रोध— जल रेखा के समान— देवायु मे उत्पत्ति।

ज्ञान, पूजा, कुल आदि के मद के कारण दूसरो के प्रति नम्र वृत्ति का न होना मान है। यह चार प्रकार का है—

अनन्तानुबधी मान— शिला सम भाव— नरकायु मे उत्पत्ति।
अप्रत्याख्यान मान— हड्डीसम भाव— तिर्यञ्चायु मे उत्पत्ति।
प्रत्याख्यान मान— काष्ठ सम भाव— मनुष्यायु मे उत्पत्ति।
संज्वलन मान— बेंत सम भाव— देवायु मे उत्पत्ति।

दूसरो को ठगने के लिये जो छल कपट और कुटिलभाव होते हैं वह माया है। यह माया चार भेद रूप है—

अनन्तानुबंधी माया— बांस की जड़ सम भाव— नरकायु मे उत्पत्ति।
अप्रत्याख्यान माया— मेंढे के सींग सम भाव— तिर्यञ्चायु मे उत्पत्ति।

प्रत्याख्यान माया—	गोमूत्र सम भाव—	मनुष्यायु मे उत्पत्ति ।
संज्वलन माया—	खुरपे सम भाव—	देवायु मे उत्पत्ति ।

जीव के अनुग्राहक-उपकारक धन आदि की विशेष आकाक्षा लोभ है—

अनन्तानुबंधी लोभ—	कृमिराग सम—	नरकायु मे उत्पत्ति ।
अप्रत्याख्यान लोभ—	गाड़ी के ओगण सम—	तिर्यञ्चायु मे उत्पत्ति ।
प्रत्याख्यान लोभ—	शरीर के मैल सम—	मनुष्यायु मे उत्पत्ति ।
संज्वलन लोभ—	हल्दी रंग सम—	देवायु मे उत्पत्ति ।

प्रश्न २२–वासनाकाल किसे कहते है बताते हुए कषायो का वासनाकाल बताइये ?

उत्तर–उदय का अभाव होते हुए भी कषाय का सस्कार जितने काल तक रहे उसका नाम वासनाकाल है । जैसे किसी पुरुष को क्रोध का उदय हुआ उस समय वह किसी कार्य में लग गया तो उसका वह क्रोध मिट गया । अब उसके क्रोध का उदय तो नहीं है, किन्तु वासना (सस्कार) विद्यमान है, क्योंकि उसने जिस पर क्रोध किया उसके प्रति उसके मन मे क्षमाभाव नही हैं । इसी प्रकार सभी कषायो का वासनाकाल है—

अतोमुहुत्त पक्ख छम्मास सखऽसखणतभव ।
सजलणमादियाण वासणकालो दु णियमेण ।।४६।।

संज्वलन का वासनाकाल अन्तर्मुहूर्त है, प्रत्याख्यान कषाय का एक पक्ष, अप्रत्याख्यान का छह महिना तथा अनन्तानुबधी का सख्यात-असख्यात और अनन्तभव है ।

प्रश्न २३–अनादिकाल से मिथ्यादृष्टि जीव के समीचीन दर्शन/सम्यक्दर्शन कब होता है ?

उत्तर–अनादिमिथ्यादृष्टि के सम्यक्त्व के प्रतिपक्षभूत मिथ्यात्व कर्म के उपशम से ही सम्यक्दर्शन होता है ।

प्रश्न २४–अनादि मिथ्यादृष्टि के सर्वप्रथम कौनसा सम्यक्त्व होता है ?

उत्तर–सर्वप्रथम उपशम सम्यक्त्व ही होता है, जिसे प्रथमोशम सम्यक्त्व कहते हैं ।

प्रश्न २५–जीव मे सम्यग्दर्शन प्राप्ति की योग्यता कब आती है ?

उत्तर– सामान्यत अनादिमिथ्यादृष्टि जीव का ससार मे रहने का काल जब अर्द्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण शेष रहता है तब सम्यग्दर्शन प्राप्ति की योग्यता आती है, इसके पहले नही । अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल के शेष रहने पर ही होना चाहिये ऐसा नियम नही है इससे कम काल शेष रहने पर भी यह हो सकता है ।

प्रश्न २६–जब जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है तब मिथ्यात्व की स्थिति क्या होती है ?

उत्तर–जैसे कोदो-धान्य विशेष को दलने (पीसने) पर तन्दुल, कण और भूसी इस प्रकार तीन रूप हो जाते है, उसी प्रकार मिथ्यात्वरूपी कर्मद्रव्य भी प्रथमोपशमसम्यक्त्वरूपी यत्र के द्वारा मिथ्यात्व-सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति रूप परिणमन करता है । इनमे सबसे अधिक मिथ्यात्व का द्रव्य है उससे असख्यातगुणाहीन सम्यक् मिथ्यात्व का द्रव्य है तथा उससे भी असख्यातगुणा ही सम्यक्प्रकृति का द्रव्य है ।

कहा भी है—

जतेण कोद्दव वा पढमुवसमसम्मभाव जंतेण ।
मिच्छ दव्व तु तिधा असखगुणहीणदव्वकमा ।। २६ ।। –गो क.

प्रश्न २७–एक दर्शनमोहनीय तीन भेद रूप क्यो हुआ ?

उत्तर–एक मिथ्यात्व कर्म सम्यक्त्व का निमित्त पाकर तीन भेद रूप विभक्त हुआ है इसीलिये बन्ध की अपेक्षा दर्शनमोहनीय एक होकर भी सत्ता की अपेक्षा वह तीन प्रकार का कहा गया है ।

प्रश्न २८–प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति के योग्य जीव कौन होता है ?

उत्तर–चदुगदिमिच्छो सण्णी पुण्णो गब्भज विसुद्ध सागारो ।
पढमुवसमं स गिण्हदि पचमवरलद्धिचरिमम्हि ।। २ ।। –ल सा

चारो गति का मिथ्यादृष्टि-सज्ञी-पर्याप्त-गर्भज-विशुद्ध-परिणामी-साकारोपयोगी जीव अतिम पञ्चमलब्धि का अन्त होने पर प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करता है ।

प्रश्न २९–सम्यक्त्वोत्पत्ति से पूर्व मिथ्यात्व गुणस्थान मे पाँच लब्धियाँ होती है वे कौनसी है ?

उत्तर–क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि, प्रायोग्यलब्धि और करणलब्धि इन पाँच लब्धियो मे करणलब्धि के होने पर ही सम्यक्त्व व चारित्र होता है । अत· इनमे चार लब्धियाँ तो सामान्य हैं तथा करणलब्धि विशेष है ।

प्रश्न ३०–क्षयोपशमलब्धि किसे कहते हैं ?

उत्तर–अशुभ कर्मों के अनुभाग की हानि होना अथवा स्थावर पर्याय से निकलकर सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त पद प्राप्त होने को क्षयोपशमलब्धि कहते हैं ।

प्रश्न ३१–विशुद्धिलब्धि किसे कहते हैं ?

उत्तर–कषायो की मन्दता व शुभ कर्मों के अनुभाग की वृद्धि को विशुद्धिलब्धि कहते हैं ।

प्रश्न ३२–देशनालब्धि का लक्षण क्या है ?

उत्तर–गुरु उपदेश प्राप्त होने को देशनालब्धि कहते है ।

प्रश्न ३३–प्रायोग्यलब्धि का लक्षण क्या है ?

उत्तर–आयुकर्म छोड़कर शेष सात कर्मों की स्थिति को अन्त कोटा कोटी प्रमाण करने को प्रायोग्यलब्धि कहते हैं ।

प्रश्न ३४–करणलब्धि का लक्षण बताओ ?

उत्तर–जब तक पाँचवी करणलब्धि न हो, तब तक इस जीव को सम्यक्त्व का लाभ नही होता, ऐसा नियम है । "करण नाम परिणामो का है" । जब मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्त्व के सम्मुख होता है उस समय उसके परिणाम अध करण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण रूप होते है । यह करणलब्धि है । इन तीन परिणामो मे मिथ्यात्व को खडन करने की शक्ति पाई जाती है ।

प्रश्न ३५–आयुकर्म का उत्तर प्रकृतियाँ कौनसी है ?

उत्तर– **नारकतैर्यग्योनमानुषदैवानि ॥ १० ॥**

सूत्रार्थ–नरक आयु, तिर्यञ्च आयु, मनुष्य आयु और देव आयु ये आयु कर्म के चार भेद हैं ।

प्रश्न १–आयुकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर–दस प्राणो मे आयुप्राण मुख्य है । जिसके सद्भाव मे जीवन और अभाव मे मरण हो वह आयु है । अर्थात् जो नरक आदि भवो मे रोके रखे वह आयु है ।

प्रश्न २–नरकायु किसे कहते हैं ?

उत्तर–जिसके निमित्त से तीव्र–शीत–उष्ण वेदनाकारक नरको मे दीर्घ काल तक प्राणी जीवित रहता है, वह नरक आयु है ।

प्रश्न ३–तिर्यञ्चायु किसे कहते हैं ?

उत्तर–जिसके उदय होने पर क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दशमशक आदि अनेक दुखो के स्थानभूत तिर्यंच पर्याय मे यह प्राणी जीवित रहता है वह तिर्यंच आयु है ।

प्रश्न ४–मनुष्यायु किसे कहते हैं ?

उत्तर–जिसके उदय से शारीरिक, मानसिक अत्यधिक सुख–द.ख से समाकुल मानुष पर्याय मे जन्म हो वह मनुष्यायु कहलाती है ।

प्रश्न ५–देवायु किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस आयु कर्म के उदय मे प्राय: कर शारीरिक, मानसिक सुखों से युक्त देव पर्याय मे जन्म होता है उसे देव आयु जानना चाहिये। प्राय: शब्द का तात्पर्य है कि कभी-कभी देवों के भी प्रिय देवागनाओं आदि के वियोग से, महर्द्धिक देवों की विभूति देखने से, देवपर्याय की हानि सूचक आज्ञा हानि, माला मुरझाने, शरीर की काति कम होने के कारण मानसिक दु ख भी उत्पन्न होता है।

प्रश्न ६—अन्नादि जीवन-मरण के निमित्त मानने चाहिये क्योंकि अन्नादि का लाभ होने पर प्राणियों का जीवन और अन्नादि के अलाभ में मरण देखा जाता है ?

उत्तर—अन्नादि के लाभ-अलाभ मे जीवन-मरण मानना ठीक नहीं है क्योंकि अन्नादि तो आयु उपकारक हैं। यथा घट आदि की उत्पत्ति मे मूल कारण मिट्टी का पिण्ड है और कुम्भकार आदि उपकारक हैं तथैव भवधारण का मूल कारण आयु ही है, अन्नादि तो उपकारक मात्र है। क्योंकि अन्नादि का सेवन करते हुए भी क्षीण आयु वाला मरण देखा जाता है।

प्रश्न ७—चार आयु मे शुभ और अशुभ आयु कितनी और कौनसी है ?

उत्तर—तीन आयु तिर्यञ्च, मनुष्य और देवआयु शुभ है तथा नरक आयु मात्र अशुभ है।

प्रश्न ८—तिर्यञ्च आयु को शुभ क्यो माना गया है ?

उत्तर—तिर्यञ्च आयु मे कोई जाना नही चाहता इसलिये तो वह अशुभ ही है परन्तु तिर्यञ्च आयु मे जाकर कोई असमय मे मरना नहीं चाहता अत. तिर्यञ्च आयु शुभ है।

प्रश्न ९—नरक आयु अशुभ क्यो है ?

उत्तर—नरक आयु मे कोई जाना नही चाहता और यदि कर्मोदय से जाना भी पड़ गया तो वहाँ प्रतिपल मरना ही चाहता, कोई उस आयु में जीवित रहना नही चाहता अत· नरकायु अशुभ ही है।

प्रश्न १०—नामकर्म के उत्तर भेद बताइये ?

उत्तर-गतिजातिशरीराङ्गोपाङ्गनिर्माणबंधनसंघातसंस्थान-
संहननस्पर्शरसगन्धवर्णानुपूर्व्यागुरुलघूपघातपर-
घातातपोद्योतोच्छ्वासविहायोगतयः प्रत्येकशरीरत्रस-
सुभगसुस्वरशुभसूक्ष्मपर्याप्तिस्थिरादेय यशःकीर्ति
सेतराणि तीर्थकरत्वं च ।।११।।

सूत्रार्थ-गति, जाति, शरीर, अगोपाग, निर्माण, बन्धन, सघात, सस्थान, संहनन, स्पर्श रस, गध, वर्ण, आनुपूर्व्य, अगुरुलघु, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास और विहायोगति तथा प्रतिपक्ष प्रकृतियो के साथ साधारण शरीर और प्रत्येक शरीर, स्थावर और त्रस, दुर्भग और सुभग, दु.स्वर और सुस्वर, अशुभ और शुभ, बादर और सूक्ष्म, अपर्याप्त और पर्याप्त, अस्थिर और स्थिर, अनादेय और आदेय, अयश कीर्ति और यश·कीर्ति एव तीर्थंकर ये ब्यालीस नामकर्म के भेद है ।

प्रश्न १—गतिनामकर्म किसे कहते है उसके कितने भेद हैं ?

उत्तर—जिसके उदय से आत्मा भवान्तर को जाता है वह गति नामकर्म है । यह चार प्रकार का होता है—नरकगति, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति और देवगति ।

प्रश्न २—नरक-तिर्यंच आदि गतियो के लक्षण क्या है ?

उत्तर—जिस कर्म का निमित्त पाकर आत्मा का नारक भाव होता है वह नरक गति नामकर्म है । इसी प्रकार जिसका निमित्त पाकर आत्मा तिर्यंच, मनुष्य, देव भाव को प्राप्त होता है वह तिर्यंच, मनुष्य, देवगति नामकर्म कहलाता है ।

प्रश्न ३—जाति नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—नरकादि गतियो मे जिस अव्यभिचारी सादृश्य से एकपने का बोध होता है वह जाति है ।

प्रश्न ४—जाति के भेद व उनके लक्षण बताओ ?

उत्तर—जातिनामकर्म के पाँच भेद है—एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति और पञ्चेन्द्रिय जाति नामकर्म ।

जिस कर्म के उदय से आत्मा एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय व पञ्चेन्द्रिय जाति मे जन्म लेता है, वह एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय व पञ्चेन्द्रिय जाति नामकर्म है ।

प्रश्न ५—शरीर नामकर्म का लक्षण व भेद बताइये ?

उत्तर—जिसके उदय से आत्मा के शरीर की रचना होती है वह शरीर नामकर्म है । वह पाँच प्रकार का है—औदारिक शरीर नामकर्म, वैक्रियिक शरीर, आहारक शरीर, तैजस शरीर और कार्मण शरीर नामकर्म ।

प्रश्न ६—अंगोपाग नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिसके उदय से अगोपांग का भेद होता है (स सि) वह अगोपांग नामकर्म है । अथवा जिसके कर्म के उदय से अंग-उपागो की रचना हो उसे आगोपाग नामकर्म कहते है ।

प्रश्न ७—अंगोपाग के भेद व लक्षण बताइये ?

उत्तर—औदारिक शरीर अगोपाग, वैक्रियिक शरीर अगोपाग और आहारक शरीर अगोपाग के भेद से अगोपाग नामकर्म के तीन भेद हैं। जिसके उदय से औदारिक, वैक्रियिक और आहारक शरीर के अग-उपागो की रचना हो उसे औदारिक, वैक्रियिक और आहारक शरीर अगोपाग नामकर्म कहते है।

प्रश्न ८—अगोपाग तीन शरीर के ही क्यो कहे ? शरीर तो पाँच होते है अत पाँच अगोपाग क्यो नही कहे ?

उत्तर—तैजस और कार्मण शरीर के अगोपाग नही है इसीलिये अगोपाग तीन ही कहे है। "द्वितीय अध्याय मे इसीलिये तैजस-कार्मण को "निरुपभोगमन्त्यम्" कहा। जितना भोग होता है वह अग-उपाग के द्वारा होता है, तैजस, कार्मण के अगोपाग नहीं हैं वे निरुपभोग है।

प्रश्न ९-अग और उपाग कौनसे हैं ?

उत्तर— णलया बाहू य तहा णियबपुट्ठी उरो य सीसो य।
अट्ठेव दु अगाइ देहे मेसा उवगाइ ॥२८॥-क क

दो पैर, दो हाथ, नितम्ब, पीठ, वक्षस्थल और शिर मस्तक ये आठ अग है। शेष ललाट, नासिका, कान, नेत्र, ओष्ठ, अगुलि, नख आदि को उपाग कहते है।

प्रश्न १०—निर्माण नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसके निमित्त से परिनिष्पत्ति अर्थात् रचना होती है वह निर्माण नामकर्म है। अर्थात् "निर्मीयतेऽनेनेति निर्माणम्" जिसके द्वारा रचना की जाती है वह निर्माण है।

प्रश्न ११—निर्माण नामकर्म के भेद व लक्षण बताओ ?

उत्तर—निर्माण नामकर्म के दो भेद हैं—स्थाननिर्माण और प्रमाणनिर्माण। जिसके उदय आगोपाग की यथास्थान रचना हो वह स्थाननिर्माण है तथा यथा प्रमाण रचना हो उसे प्रमाणनिर्माण कहते हैं।

प्रश्न १२—बन्धन नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—शरीर नामकर्म के उदय से प्राप्त हुए पुद्गलो का अन्योन्य प्रदेश सश्लेष जिसके निमित्त से होता है वह बन्धन नामकर्म है।

प्रश्न १३—बधन नामकर्म के भेद व लक्षण बताओ ?

उत्तर—बधन के ५ भेद हैं—(१) औदारिक बंधन, (२) वैक्रियिक बधन, (३) आहारक बधन, (४) तैजस बधन और (५) कार्मण बधन।

जिसके उदय से औदारिक शरीर के परमाणु दीवाल मे लगे ईंट और गारे की तरह छिद्र सहित परस्पर सबन्ध को प्राप्त हो वह औदारिक बधन नामकर्म है ।

इसी प्रकार वैक्रियिक, आहारक, तैजस व कार्माण शरीर के परमाणु जिस कर्म के उदय से छिद्र सहित परस्पर सबध को प्राप्त हो वह वैक्रियिक, आहारक, तैजस व कार्माण बन्धन कहलाता है ।

प्रश्न १४—सघात नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से औदारिक आदि शरीरो की छिद्र रहित होकर परस्पर प्रदेशो के अनुप्रवेश द्वारा एकरूपता आती है वह सघात नामकर्म है ।

प्रश्न १५—सघात नाम के भेद व लक्षण बताओ ?

उत्तर—सघात नामकर्म के पाँच भेद हैं—(१) औदारिक सघात (२) वैक्रियिक सघात, (३) आहारक सघात, (४) तैजस सघात और (५) कार्माण सघात ।

जिस कर्म के उदय से औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस व कार्माण शरीरो के परमाणु दीवाल मे लगे हुए ईंट और गारे पर सीमेन्ट के प्लास्टर की तरह छिद्र रहित होकर परस्पर प्रदेशो के अनुप्रवेश द्वारा एकरूपता को प्राप्त होते हैं वह औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस व कार्माण सघात कहलाता है ।

प्रश्न १६—सस्थान नामकर्म किसे कहते हैं ? उसके कितने भेद है ?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से औदारिक आदि शरीरो की आकृति बनती है वह सस्थान नामकर्म है । सस्थान के ६ प्रकार हैं—(१) समचतुरस्रसस्थान (२) न्यग्रोधपरिमडल सस्थान, (३) स्वाति सस्थान, (४) कुब्जक सस्थान, (५) वामन सस्थान तथा (६) हुण्डक सस्थान ।

प्रश्न १७-समचतुरस्रसस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर-जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर ऊपर नीचे तथा बीच मे समान भागरूप अर्थात् सुडौल हो उसे समचतुरस्र संस्थान कहते है ।

प्रश्न १८-न्यग्रोधपरिमडल सस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर-जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर वटवृक्ष की तरह नाभि से नीचे पतला और ऊपर मोटा हो उसे न्यग्रोधपरिमडलसस्थान कहते हैं ।

प्रश्न १९—स्वाति सस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर सर्प की वामी की तरह ऊपर पतला और नीचे मोटा हो उसे स्वाति संस्थान कहते हैं।

प्रश्न २०—कुब्जक संस्थान किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर कुबड़ा हो उसे कुब्जक संस्थान कहते है।

प्रश्न २१—वामन संस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से बौना शरीर हो वह वामन संस्थान है।

प्रश्न २२—हुण्डक संस्थान किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से शरीर के आगोपाग किसी खास आकृति के न हो उसे हुण्डक संस्थान कहते हैं।

प्रश्न २३—वर्तमान भरत क्षेत्र मे पंचमकाल के जीवो का कौनसा संस्थान है ?

उत्तर—हुण्डक संस्थान।

प्रश्न २४-देव-नारकी जीवो का कौनसा संस्थान होता है ?

उत्तर—देवो का समचतुरस्रसंस्थान होता है तथा नारकी जीवो का हुण्डक संस्थान होता है।

प्रश्न २५—संहनन नामकर्म किसे कहते है, इसके कितने भेद है ?

उत्तर-जिसके उदय से अस्थियो का बन्धन विशेष होता है वह संहनन नामकर्म है। इसके ६ भेद है—(१) वज्रवृषभनाराचसंहनन, (२) वज्रनाराच-संहनन, (३) नाराचसंहनन, (४) अर्द्धनाराचसंहनन, (५) कीलकसंहनन और (६) असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन।

प्रश्न २६—छः संहननो के लक्षण बताइये ?

उत्तर—१ जिस कर्म के उदय से वृषभ (वेष्टन) नाराच (कील) और संहनन (हड्डियाँ) वज्र की हो उसे वज्रवृषभनाराचसंहनन कहते हैं।

२. जिस कर्म के उदय से वज्र के हाड़, वज्र की कीलियाँ हो परन्तु वेष्टन वज्र का न हो वह वज्रनाराचसंहनन है।

३ जिस कर्म के उदय से सामान्य वेष्टन और कीली सहित हाड़ हो उसे नाराचसंहनन कहते हैं।

४ जिसके उदय से हड्डियो की संधियाँ अर्द्धकीलित हो उसे अर्द्धनाराचसंहनन कहते है।

५ जिसके उदय से हड्डियाँ परस्पर कीलित हो उसे कीलकसंहनन कहते हैं। और

६ जिसके उदय से जुदी-जुदी हड्डियाँ नसो से बधी हुई हो, परस्पर कीलित नही हो उसे असंप्राप्तासृपाटिकासहनन कहते है ।

प्रश्न २७—स्पर्श नामकर्म व उसके भेद बताइये ?

उत्तर—जिसके उदय से स्पर्श की उत्पत्ति होती है वह स्पर्श नामकर्म है । इसके ८ भेद हैं—(१) कर्कश, (२) मृदु, (३) गुरु, (४) लघु, (५) स्निग्ध, (६) रूक्ष, (७) शीत और (८) उष्ण ।

प्रश्न २८—रस नामकर्म व उसके भेद बताइये ?

उत्तर—जिसके उदय से रस मे भेद होता है वह रस नामकर्म है । इसके ५ भेद है—(१) तिक्त, (२) कटु, (३) कषाय, (४) आम्ल, (५) मधुर नामकर्म ।

प्रश्न २९—गध नामकर्म किसे कहते है, उसके कितने भेद है ?

उत्तर—जिसके उदय से गन्ध की उत्पत्ति होती है उसे गन्ध नामकर्म कहते हैं । इसके दो भेद है—(१) सुरभिगन्ध तथा (२) असुरभिगन्ध ।

प्रश्न ३०—वर्ण नामकर्म का लक्षण व इसके भेद बताइये ?

उत्तर—जिसके निमित्त से वर्ण म विभाग होता हे वह वर्ण नामकर्म है इसके ५ भेद है—(१) कृष्णवर्ण नामकर्म, (२) नीलवर्ण, (३) रक्तवर्ण, (४) पीतवर्ण और (५)शुक्ल (सफेद) वर्ण ।

प्रश्न ३१—आनुपूर्व्य नामकर्म किसे कहते है ? उसके कितने भेद है ?

उत्तर—जिसके उदय से पूर्व शरीर के आकार का विनाश न हो वह आनुपूर्व्य नामकर्म है । इसके चार भेद है—(१) नरकगति प्रायोग्यानुपूर्व्य, (२) तिर्यग्गति प्रायोग्यानुपूर्व्य, (३) मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्व्य और (४) देवगति-प्रायोग्यनुपूर्व्य ।

प्रश्न ३२—नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्य का लक्षण क्या है ?

उत्तर—जिस समय आत्मा मनुष्य अथवा तिर्यंच आयु को पूर्ण कर पूर्व शरीर से पृथक् हो नरकभव के प्रति जाने को सन्मुख होता है उस समय पूर्व शरीर के आकार आत्मा के प्रदेश जिस कर्म के उदय से होते हैं उसे नरकगत्यानुपूर्व्य कहते हैं (इसीप्रकार शेष आनुपूर्व्य का लक्षण जानना)

प्रश्न ३३—अगुरुलघु नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से लोहे के पिण्ड के समान गुरु (भारी) होने से न तो नीचे गिरता है और न अर्कतूल (रूई का ढेर) के समान लघु होने से ऊपर जाता है वह अगुरुलघु नामकर्म है ।

प्रश्न ३४—"उपघात" नामकर्म का लक्षण बताओ ?

उत्तर—जिसके उदय से स्वयकृत उद्बन्धन और पहाड़ से गिरना आदि निमित्तक उपघात होता है वह उपघात नामकर्म है। शस्त्रघात, विषभक्षण, अग्निपात, जलमज्जन आदि के द्वारा आत्मघात करना भी उपघात है।

प्रश्न ३५—"परघात" नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिसके निमित्त से परशस्त्रादिक का निमित्त पाकर व्याघात होता है वह परघात नामकर्म है।

प्रश्न ३६—"आतप" नामकर्म किसे कहते है ? यह किस जीव के होता है ?

उत्तर—जिसके उदय से शरीर मे आतप की प्राप्ति होती है वह आतप नामकर्म है। इसका उदय सूर्य के विमान मे स्थित बादर पर्याप्त पृथ्वीकायिक जीवो के होता है।

प्रश्न ३७—"उद्योत" नामकर्म का लक्षण क्या है तथा इसका उदय किन जीवो के होता है ?

उत्तर—जिसके निमित्त से शरीर मे उद्योत होता है, वह उद्योत नामकर्म है। इस कर्म का उदय चन्द्रमा के विमान मे स्थित पृथ्वीकायिक जीवो के, जुगनू (खद्योत) के तथा सिंह, बिल्ली आदि किन्ही-किन्ही तिर्यंचो के होता है।

प्रश्न ३८—आतप-उद्योत और उष्ण नामकर्मों मे क्या अन्तर है ?

उत्तर— मूलुण्हपहा अग्गी आदावो होदि उण्हसहियपहा
आइच्चे तेरिच्छे उण्हूणपहा हु उज्जोओ ।। ३३ ।। -गो. क

जिसकी मूल और प्रभा दोनो ही उष्ण रहते हैं उसके उष्ण नामकर्म का उदय है यथा अग्नि। जिसकी केवल प्रभा अर्थात् किरणो मे उष्णपना हो उसको आतप कहते हैं जैसे सूर्यकान्तमणि मे उत्पन्न हुए पृथ्वीकायिक तिर्यंच जीव तथा जिसकी मूल और प्रभा दोनो उष्णता रहित हो उसके उद्योत नामकर्म कहते है जैसे जुगनू, चन्द्रबिम्ब आदि।

प्रश्न ३९—उच्छ्वास नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्म के निमित्त से उच्छ्वास होता है वह उच्छ्वास नामकर्म है।

प्रश्न ४०—विहायोगति किसे कहते है, इसके कितने भेद हैं ?

उत्तर—विहायस्=आकाश। जिसके उदय से आकाश में गमन होता है वह विहायोगति नामकर्म है। इसके दो भेद हैं—प्रशस्त विहायोगति, अप्रशस्त विहायोगति।

प्रश्न ४१—प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति का लक्षण क्या है ?

उत्तर—गज, वृषभ, हस, मयूर आदि के गमन की तरह सुन्दर गति को प्रशस्त विहायोगति कहते है। ऊँट, गधा, बिल्ली, कुत्ता, सर्प आदि के समान कुटिल गति को अप्रशस्त विहायोगति कहते हैं।

प्रश्न ४२—प्रत्येक शरीर नामकर्म का लक्षण क्या है ?

उत्तर—जिस कर्म के निमित्त से "शरीर" एक आत्मा के उपभोग का कारण होता है वह प्रत्येक शरीर नामकर्म है।

प्रश्न ४३—साधारण शरीर नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—बहुत आत्माओ के उपभोग का हेतुरूप साधारण शरीर जिसके निमित्त से होता है वह साधारण शरीर नामकर्म है।

प्रश्न ४४—त्रस नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिसके उदय से द्वीन्द्रियादिक मे जन्म होता है वह त्रस नामकर्म है।

प्रश्न ४५—स्थावर नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिसके उदय से एकेन्द्रियो मे उत्पत्ति होती है वह स्थावर नामकर्म है।

प्रश्न ४६—सुभग-दुर्भग नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसके उदय से अन्यजन मे प्रीतिकार अवस्था होती है सुभग नामकर्म है। जिसके उदय से रूपादि गुणयुक्त होकर भी अप्रीतिकर अवस्था होती है वह दुर्भग नामकर्म है।

प्रश्न ४७—सुस्वर-दुस्वर नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसके उदय से मनोज्ञस्वर की रचना होती है वह सुस्वर नामकर्म है तथा जिसके उदय से गधे, बिल्ली, कौआ आदि के स्वर की तरह कर्कश स्वर हो वह दुस्वर नामकर्म है।

प्रश्न ४८—शुभ-अशुभ नामकर्म के लक्षण बताइये ?

उत्तर—जिसके उदय से शरीर के अवयव रमणीय होते हैं वह शुभ नामकर्म है तथा जिसके उदय से शरीर के अवयव मनोहर न हो उसे अशुभ नामकर्म कहते हैं।

प्रश्न ४९—सूक्ष्म-बादर नामकर्म के लक्षण क्या है ?

उत्तर—जिसके उदय से ऐसा शरीर प्राप्त हो जो न किसी को रोकता हो और न किसी से रोका जा सकता हो उसे **सूक्ष्म** शरीर नामकर्म कहते है।

जिसके उदय से ऐसा शरीर प्राप्त हो जो दूसरो को रोकता हो तथा दूसरे से रुकने वाला हो वह स्थूल/बादर शरीर नामकर्म है।

प्रश्न ५०—पर्याप्ति व अपर्याप्ति नामकर्म का लक्षण बताइये ?

उत्तर—जिसके उदय से अपने योग्य पर्याप्ति पूर्ण हो उसे **पर्याप्ति** नामकर्म कहते है। जिस कर्म के उदय से जीव के एक भी पर्याप्ति पूर्ण न हो उसे **अपर्याप्ति** नामकर्म कहते है।

प्रश्न ५१—पर्याप्ति किसे कहते है वे कितनी है ?

उत्तर—आहारवर्गणा, भाषावर्गणा, मनोवर्गणा के परमाणुओ को शरीर, इन्द्रिय आदि रूप परिणत करने वाली शक्ति की पूर्णता को पर्याप्ति कहते है। पर्याप्ति के ६ भेद है—(१) आहार पर्याप्ति, (२) शरीर, (३) इन्द्रिय, (४) श्वासोच्छ्वास, (५) भाषा और (६) मन पर्याप्ति।

प्रश्न ५२—अपर्याप्ति नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस जीव की पर्याप्ति पूर्ण नही होती उसे अपर्याप्तिक नामकर्म कहते हैं। इसके दो भेद हैं—(१) निर्वृत्यपर्याप्तक और (२) लब्ध्यपर्याप्तक।

प्रश्न ५३—निर्वृत्यपर्याप्तक और लब्ध्यपर्याप्तक के लक्षण बताओ ?

उत्तर—जिस जीव की शरीर पर्याप्ति अभी पूर्ण तो न हुई हो किन्तु नियम से पूर्ण होने वाली हो उसे निर्वृत्यपर्याप्तक कहते है।

जिस जीव की एक भी पर्याप्ति पूर्ण न हुई हो और न होने वाली हो उसे लब्ध्यपर्याप्तक कहते हैं।

प्रश्न ५४—अस्थिर-स्थिर नामकर्म का लक्षण बताओ ?

उत्तर-जिसके उदय से धातु-उपधातुएँ अपने-अपने स्थान मे स्थिर न रहे वह अस्थिर नामकर्म है।

जिसके उदय से शरीर की धातु तथा उपधातुएँ अपने-अपने स्थान मे स्थिरता को प्राप्त हो, वह स्थिर नामकर्म है।

प्रश्न ५५—धातु और उपधातुओ के नाम बताइये ?

उत्तर—रस, रुधिर, मास, मेद, हाड़, मज्जा और शुक्र ये शरीर में रहने वाली सात धातुएँ हैं तथा वात, पित्त, कफ, शिरा, स्नायु, चाम और जठराग्नि ये उपधातुएँ है।

प्रश्न ५६—आदेय और अनादेय नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—प्रभायुक्त शरीर का कारण आदेय नामकर्म है, निष्प्रभ शरीर का कारण अनादेय नामकर्म है ।

प्रश्न ५७—यश·कीर्ति और अयश कीर्ति नामकर्म के लक्षण बताओ ?

उत्तर—पुण्य गुणो की प्रसिद्धि का कारण यश कीर्ति नामकर्म है और अपयश का कारणभूत नामकर्म अयशकीर्ति है ।

प्रश्न ५८—अयश·कीर्ति और निन्दा मे क्या अन्तर है ?

उत्तर—अयश कीर्ति लोकव्यापी होती है जैसे रावण का अयश हुआ । निन्दा व्यक्तिगत होती है यथा किसी व्यक्ति से विचार नही मिलते है तो निन्दा शुरु हो जाती है ।

प्रश्न ५९—तीर्थंकर प्रकृति किसे कहते है ?

उत्तर—जिसके उदय से जीव पञ्चकल्याणक विभूति रूप अर्हंत अवस्था को प्राप्त करता है वह तीर्थंकर नामकर्म है ।

प्रश्न ६०—अर्हन्त केवलि कितने प्रकार के होते है ?

उत्तर—तीर्थंकर केवली सामान्य केवलि, समुद्घात केवलि, उपसर्ग केवलि, मूक केवलि, अन्त·कृत केवलि और मुण्ड केवलि की अपेक्षा अर्हन्त केवलि सात प्रकार के होते है ।

प्रश्न ६१—क्या सभी तीर्थंकर पञ्चकल्याणक विभूति के स्वामी होते है ?

उत्तर—भरत व ऐरावत क्षेत्र मे २४-२४ तीर्थंकर होते हैं वे सभी पञ्चकल्याणक विभूतियुक्त होते है किन्तु विदेह क्षेत्र के बीस तीर्थंकर जो शाश्वत रहते है वे तो पाँच कल्याणकयुक्त होते हैं, शेष तीर्थंकरो का नियम नही है । वहाँ तीन व दो कल्याणक (तप, ज्ञान, मोक्ष या ज्ञान व मोक्ष कल्याणक) के धारक तीर्थंकर भी होते हैं ।

प्रश्न ६२—नामकर्म की अभेद व भेद रूप से कितनी प्रकृतियाँ है ?

उत्तर—अभेद रूप ४२ और भेद रूप से नामकर्म की ९३ प्रकृतियाँ है ।

प्रश्न ६३—नामकर्म का कार्य क्या है ?

उत्तर-नामकर्म चित्रकार के समान अनेक प्रकार से जीवविपाकी, पुद्गलविपाकी, क्षेत्रविपाकी आदि प्रकृतियो रूप परिणमन करता है । उक्तं च—"नानामिनोति इति नाम" जो नाना प्रकार से बनाता है वह नामकर्म है ।

प्रश्न ६४—गोत्रकर्म के उत्तर भेद बताइये ?

उत्तर— उच्चैर्नीचैश्च ॥ १२ ॥

सूत्रार्थ—गोत्र कर्म के उच्च गोत्र और नीच गोत्र दो भेद है।

प्रश्न १—उच्च गोत्र किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसके उदय से लोकपूजित कुलो मे जन्म होता है वह उच्च गोत्र है।

प्रश्न २—नीच गोत्र किसे कहते है ?

उत्तर—जिसके उदय से लोकनिदित कुलो मे जन्म होता है वह नीच गोत्र है।

प्रश्न ३—गोत्रकर्म का कार्य क्या है ?

उत्तर— सताणकमेणागयजीवायरणस्स गोदमिदि सण्णा।

उच्च णीच चरण उच्च णीच हवे गोद ॥ १३ ॥ -क का

सतानक्रम से चले आये जीव के आचरण को गोत्र कहते है। उच्च व नीच आचरण से उच्च व नीच गोत्र होता है।

"उच्च-नीच गमयतीति गोत्रम्" अर्थात् जो उच्च और नीच का आचरण कराता है वह गोत्र कहलाता है। गोत्रकर्म को निष्फल नही जानना चाहिये क्योकि जिनका दीक्षायोग्य साधु आचार है, साधु आचार वालो के साथ जिन्होने सबध स्थापित किया है तथा जो "आर्य" इस प्रकार के ज्ञान और वचन व्यवहार के निमित्त है उन पुरुषो की परम्परा को उच्च गोत्र कहा जाता है तथा उनमे उत्पत्ति का कारणभूत कर्म भी उच्च गोत्र है। उससे विपरीत कर्म नीच गोत्र कर्म है।

प्रश्न ४—कुल परम्परा के आचरण के विषय मे दृष्टान्त दीजिये ?

उत्तर—एक सियाल का बच्चा बचपन से ही सिंहनी ने पाला। वह सिंह के बच्चो के साथ ही खेला करता था। एक दिन खेलते हुए वे सभी बच्चे किसी एक जगल मे जा पहुँचे। वहाँ उन्होने हाथियो का समूह देखा, देखकर जो सिंहनी के बच्चे थे वे हाथी के सामने हुए, किन्तु वह सियाल जिसमे अपने कुल का डरपोकपने का सस्कार था, हाथी को देखकर भागने लगा। तब वे सिंह के बच्चे भी अपना बड़ा भाई जानकर उसका अनुकरण करते हुए अपनी माता के पास लौट आये और उस सियाल की शिकायत की कि इसने हमको शिकार से रोका। तब सिंहनी से उस सियाल के बच्चे को एक श्लोक कहा—

शूरोऽसि कृतविद्योऽसि दर्शनीयोऽसि पुत्रक ।
यस्मिन् कुले त्वमुत्पन्नो गजस्तत्र न हन्यते ।।

हे पुत्र, तू शूरवीर है, विद्यावान् है, देखने मे सुन्दर है जिस कुल मे तुम उत्पन्न हुए हो उस कुल मे हाथी नही मारे जाते है । अत तू यहाँ से भाग जा नही तो तेरी जान नही बचेगी ।

तात्पर्य यह कि रजोवीर्य का सस्कार अवश्य आ जाता है, चाहे वह कैसे भी विद्या आदि गुणो से सहित क्यो न हो उस पर्याय के सस्कार नही मिटते, क्योंकि जैसे रजवीर्य से शरीर-मस्तिष्क व मन का निर्माण होता है वैसे ही जीव के विचार होते हैं । खान-पान व बाह्य वातावरण का भी प्रभाव विचारो पर पड़ता है ।

प्रश्न ५—अन्तराय कर्म के उत्तर भेद कितने है ?

उत्तर— दानलाभभोगोपभोगवीर्याणाम् ॥ १३ ॥

सूत्रार्थ—दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय ये अन्तराय के पाँच भेद है ।

प्रश्न १—दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्यन्तराय के लक्षण क्या है ?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से देने की इच्छा करता हुआ भी नही देता है, वह दानान्तराय है ।

जिस कर्म के उदय से प्राप्त करने की इच्छा रखता हुआ भी नही प्राप्त करता है वह लाभान्तराय है ।

जिस कर्म के उदय से भोगने की इच्छा करता हुआ भी नही भोग सकता है वह भोगान्तराय है ।

जिस कर्म के उदय से उपभोग की इच्छा करता हुआ भी उपभोग नही कर सकता है वह उपभोगान्तराय है ।

जिस कर्म के उदय से उत्साहित होने की इच्छा रखता हुआ भी उत्साहित नही होता है वह वीर्यन्तराय कर्म है ।

प्रश्न २—अन्तराय कर्म का कार्य क्या है ?

उत्तर—दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य ये पाँच लब्धियाँ है । अन्तराय कर्म का कार्य इन पाँच लब्धियो की अभिव्यक्ति बाधक बनना है ।

प्रश्न ३—प्रकृतिबध कितने प्रकार का है, इनमे बन्ध, उदय व सत्त्व योग्य प्रकृतियाँ कितनी हैं ?

उत्तर—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय के भेद से प्रकृति बन्ध आठ प्रकार का है ।

इनमे बन्ध योग्य प्रकृतियाँ १२० हैं—पाँच ज्ञानावरण, नव दर्शनावरण, दो वेदनीय, छब्बीस मोहनीय की, क्योंकि सम्यक्त्व और सम्यक् मिथ्यात्व प्रकृति का बन्ध नही होता है । आयु की चार, नामकर्म की सड़सठ (पाँच बधन और पाँच सघात का पाँच शरीरो मे अन्तर्भाव होता है तथा वर्णादि की १६ प्रकृतियो का वर्णचतुष्क मे अन्तर्भाव होने से २६ प्रकृतियो को बध मे पृथक् नही गिना है) गोत्र की २ और अन्तराय की ५ = ५+९+२+२६+४+६७+२+५ = १२० अभेद विवक्षा से बन्ध योग्य कही हैं । भेद विवक्षा से बन्ध योग्य १४६ प्रकृतियाँ हैं ।

प्रश्न ४—उदय योग्य प्रकृतियाँ कितनी व कौनसी है ?

उत्तर—ज्ञानावरण की ५, दर्शनावरण की ९, वेदनीय २, मोहनीय २८, आयु ४, नाम ६७, गोत्र २ और अन्तराय कर्म की ५ ये सब मिलाकर अभेद विवक्षा से उदय योग्य प्रकृतियाँ १२२ है । तथा भेद विवक्षा से उदययोग्य १४८ सर्व प्रकृतियाँ है ।

प्रश्न ५—सत्त्व योग्य प्रकृतियाँ कितनी व कौनसी है ?

उत्तर—पाँच ज्ञानावरण, नव दर्शनावरण, दो वेदनीय, अट्ठाईस मोहनीय, चार आयु, तिरानवे नामकर्म, दो गोत्र और पाँच अन्तराय इस प्रकार १४८ प्रकृतियाँ सत्त्वयोग्य है ।

प्रश्न ६—आठ कर्मों का दो भेदो मे विभाजन कीजिये ?

उत्तर—आठ कर्मों को दो भेदो मे विभाजित किया जाता है—(१) घाति कर्म (२) अघातिया कर्म ।

प्रश्न ७—घातिया कर्म कौनसे हैं तथा घातिया कर्मों के कितने भेद हैं ?

उत्तर—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय ये ४ घातिया कर्म है । घातिया कर्मों के दो भेद है—(१) सर्वघाति (२) देशघाति ।

प्रश्न ८—सर्वघाति प्रकृतियाँ कितनी व कौनसी हैं ?

उत्तर—सर्वघाति प्रकृतियाँ २१ है—केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण, स्त्यानगृद्धि आदि ५ निद्रा तथा अनन्तानुबधी-अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ १२ कषाय और मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व ।

प्रश्न ९—ये उपर्युक्त २१ प्रकृतियाँ सर्वघाति क्यो हैं ?

उत्तर—ये उपर्युक्त २१ प्रकृतियाँ जीव गुणो का पूर्णरूपेण घात करती है अत इन्हे सर्वघाती कहते हैं ।

प्रश्न १०—देशघाती प्रकृतियाँ कितनी व कौनसी है, इन्हे देशघाती क्यो कहते है ?

उत्तर—मति-श्रुत-अवधि-मन पर्यय ये ज्ञानावरण की ४, चक्षु-अचक्षु-अवधिदर्शन ये दर्शनावरण की ३, सम्यक्त्व व सज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुवेद, नपुसक वेद, ये १४ मोहनीय की व दान, लाभ, भोग, उपभोग व वीर्य ये अन्तराय की ५ = २६ प्रकृतियाँ देशघाति है। ये २६ प्रकृतियाँ जीवगुणो का पूर्णरूप से घात नही करती है अत ये देशघाति है।

प्रश्न ११—१४८ प्रकृतियो मे पुण्य प्रकृतियाँ कितनी व कौनसी है ?

उत्तर—पुण्य प्रकृतियाँ ६८ है—(भेद विवक्षा से ६८ और अभेद विवक्षा से ४२ प्रकृतियाँ है) सातावेदनीय, तीन आयु, उच्च गोत्र, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी पञ्चेन्द्रिय जाति, पाँच शरीर, पाँच बन्धन, पाँच सघात, तीन आगोपाग, वर्णचतुष्क, समचतुरस्रसस्थान, वज्रर्षभनाराचसहनन, अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, आतप और उद्योत, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशस्कीर्ति और निर्माण व तीर्थंकर।

प्रश्न १२—१४८ प्रकृतियो मे पाप प्रकृतियाँ कितनी है ?

उत्तर—पाप प्रकृतियाँ १०० है—घातिया कर्म की ४७ प्रकृतियाँ पाप रूप ही है। नीच गोत्र, असातावेदनीय और नरकायु = ४७+१+१+१ = ५० और नामकर्म की ५०, नरक गति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रियादि ४ जाति, ५ सस्थान (समचतुरस्र सस्थान को छोड़कर), ५ सहनन (वज्रर्षभनारा. स को छोड़कर) अशुभ वर्णादि २०, उपघात, अप्रशस्तविहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त, अस्थिर, अशुभ, दुस्वर, अनादेय और यशस्कीर्ति = ५० = (५० + ५० = १००)।

प्रश्न १३—वर्णादि की २० प्रकृतियो को प्रशस्त व अप्रशस्त दोनो रूप क्यो माना है ?

उत्तर—किसी जीव को शीत अच्छा लगता है किसी को उष्ण, किसी को श्वेत वर्ण, किसी को कृष्ण वर्ण इस प्रकार २० वर्णादि की प्रकृतियो मे किसी को कोई रुचिकर है किसी को कोई तदनुसार ही इन्हे प्रशस्त व अप्रशस्त दोनो रूप कहा है।

प्रश्न १४—पुद्गलविपाकी प्रकृतियाँ कितनी हैं ?

उत्तर—पुद्गलविपाकी प्रकृतियाँ ६२ है—५ शरीर, ५ बधन, ५ सघात, ६ सस्थान, ६ सहनन, ३ आगोपाग =३० और वर्णादि २० = ५० तथा निर्माण, आतप, उद्योत, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, प्रत्येक शरीर, साधारण शरीर, अगुरुलघु, उपघात तथा परघात = १२ (५० + १२ = ६२)

प्रश्न १५—पुद्गलविपाकी प्रकृतियाँ किसे कहते है ?

उत्तर—जिन प्रकृतियो का विपाक पुद्गल (शरीर) मे ही पड़ता है उन्हे पुद्गल विपाकी कहते है जैसे शरीर नामकर्म के उदय से पुद्गल शरीर रूप परिणमन करता है ।

प्रश्न १६—भवविपाकी प्रकृति किसे कहते है ये कितनी हैं ?

उत्तर—जिन प्रकृतियो का फल भव मे प्राप्त होता है उन्हे भव विपाकी कहते है ये चार है—नरकायु, तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु और देवायु ।

प्रश्न १७—क्षेत्र विपाकी प्रकृति किसे कहते है ? ये कितनी है ?

उत्तर—जिन कर्म प्रकृतियो का उदय विग्रहगति मे होता है वे क्षेत्र विपाकी है, ये चार है—नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और देवगत्यानुपूर्वी ।

प्रश्न १८—जीवविपाकी प्रकृतियाँ किसे कहते है, वे कितनी व कौनसी है ?

उत्तर—जो प्रकृतियाँ जीव की नरक आदि पर्याय को उत्पन्न कराने मे कारण है वे जीवविपाकी कहलाती है । जीवविपाकी प्रकृतियाँ ७८ है—घातिया कर्म की ४७, वेदनीय की २, गोत्र कर्म की २ = ५१ और नामकर्म की २७—तीर्थंकर, उच्छ्वास, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, सुस्वर-दु स्वर, आदेय-अनादेय, यशस्कीर्ति, अयशकीर्ति, त्रस, स्थावर, प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति, सुभग-दुर्भग, चार गति, पाँच जाति ।

स्थिति-बन्ध

प्रश्न १९-स्थिति बन्ध कितने प्रकार का है ?

उत्तर-स्थिति बन्ध दो प्रकार का है—उत्कृष्ट स्थितिबन्ध और जघन्य स्थितिबन्ध ।

प्रश्न २०—वे कितने व कौनसे कर्म है जिनकी उत्कृष्ट स्थिति समान हैं ?

उत्तर— **आदितस्तिसृणामन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपमकोटी-कोट्यः परा स्थितिः ॥ १४ ॥**

सूत्रार्थ—आदि की तीन प्रकृतियाँ अर्थात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण और वेदनीय तथा अन्तराय इन चार कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोटाकोटि सागरोपम है।

प्रश्न १—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति कितनी है ?

उत्तर—तीस कोडाकोड़ी सागरोपम है।

प्रश्न २—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति का बधक जीव कौन है ?

उत्तर—अतितीव्र सक्लेश परिणामो से मिथ्यादृष्टि, सज्ञी, पञ्चेन्द्रिय, पर्याप्तक जीव ही ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय कर्म की तीस कोटाकोटी सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति बॉधता है।

प्रश्न ३—मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति कितनी है ?

उत्तर— **सप्ततिर्मोहनीयस्य ॥ १५ ॥**

सूत्रार्थ—मोहनीय की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोटाकोटी सागरोपम है।

प्रश्न १—मोहनीय की उत्कृष्ट स्थिति का बधक जीव कौन है ?

उत्तर—मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति मिथ्यादृष्टि, सज्ञी, पञ्चेन्द्रिय, पर्याप्तक जीव ही बॉधता है।

प्रश्न २—नाम और गोत्रकर्म की उत्कृष्ट स्थिति कितनी है ?

उत्तर— **विंशतिर्नामगोत्रयोः ॥ १६ ॥**

सूत्रार्थ—नाम और गोत्रकर्म की उत्कृष्ट स्थिति बीस कोड़ा-कोड़ी सागरोपम है।

प्रश्न १—नाम और गोत्रकर्म की उत्कृष्ट स्थिति का बधक कौन हे ?

उत्तर—नाम और गोत्र कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति का बधक मिथ्यादृष्टि, सज्ञी, पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तक जीव को जानना चाहिये।

प्रश्न २—आयु कर्म की उत्कृष्ट स्थिति कितनी है ?

उत्तर— **त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः ॥ १७ ॥**

सूत्रार्थ—आयु कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तैतीस सागरोपम प्रमाण है।

प्रश्न १—आयु कर्म की उत्कृष्ट स्थिति का बन्धक जीव कौन है ?

उत्तर—आयु कर्म का उत्कृष्ट बन्ध मिथ्यादृष्टि व सम्यग्दृष्टि दोनो ही करते है, वह इसप्रकार मिथ्यादृष्टि सज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तक जीव नरकायु बन्ध

के योग्य उत्कृष्ट सक्लेश परिणामो के होने पर सप्तम नरक की उत्कृष्ट ३३ सागर की स्थिति का बध करता है। तथा देवायु का ३३ सागरोपम उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सकल सयम के धारी सम्यग्दृष्टि के ही होता है।

प्रश्न २—वेदनीय कर्म की जघन्य स्थिति कितनी है ?

उत्तर— **अपरा द्वादश मुहूर्ता वेदनीयस्य ॥ १८ ॥**

सूत्रार्थ—वेदनीय कर्म की जघन्य स्थिति बारह मुहूर्त की है। (२४ घटिका प्रमाण)

प्रश्न १—नाम गोत्र कर्म की जघन्य स्थिति कितनी है ?

उत्तर— **नामगोत्रयोरष्टौ ॥ १९ ॥**

सूत्रार्थ—नाम और गोत्र कर्म की जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त है। (१६ घटिका प्रमाण)

प्रश्न १—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, आयु और अन्तराय पाँच कर्मों की जघन्य स्थिति कितनी है ?

उत्तर— **शेषाणामन्तर्मुहूर्ता ॥ २० ॥**

सूत्रार्थ—शेष पॉच कर्मों (ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, आयु व अन्तराय) की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त है।

प्रश्न १—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, आयु और अन्तराय पाँच कर्मों की जघन्य स्थिति कौन से गुणस्थान मे कौन जीव बाँधते है ?

उत्तर—ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्म की जघन्य स्थिति सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान मे, मोहनीय की जघन्य स्थिति अनिवृत्ति बादरसाम्पराय गुणस्थान मे और आयु कर्म की जघन्य स्थिति सख्यात वर्ष की आयुवाले तिर्यंचो और मनुष्यो मे प्राप्त होती है।

प्रश्न २—वेदनीय और नाम-गोत्र कर्मों की जघन्य स्थिति कौन जीव बाँधता है ?

उत्तर—वेदनीय और नाम, गोत्र तीनो कर्मों की जघन्य स्थिति को मानव सूक्ष्मसाम्पराय दशम गुणस्थान मे बाँधता है।

अनुभाग-बन्ध

प्रश्न ३—अनुभाग (अनुभव) किसे कहते है ?

उत्तर— **विपाकोऽनुभवः ॥ २१ ॥**

सूत्रार्थ—विपाक अर्थात् विविध प्रकार के फल देने की शक्ति का पडना ही अनुभव (अनुभाग) है ।

प्रश्न १—विपाक किसे कहते है ?

उत्तर—वि = विशिष्ट या नाना प्रकार के पाक का नाम विपाक है । कषायो के तीव्र, मन्द आदि रूप भावास्रव के भेद से विशिष्ट पाक का होना विपाक है । अथवा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव लक्षण निमित्त भेद से उत्पन्न हुआ नाना प्रकार का पाक विपाक है ।

प्रश्न २—कर्म प्रकृतियो का प्रकृष्ट अनुभव और निकृष्ट अनुभव कब होता है ?

उत्तर—शुभ परिणामो के प्रकर्षभाव के कारण शुभ प्रकृतियो का प्रकृष्ट अनुभव होता है और अशुभ प्रकृतियो का निकृष्ट अनुभव होता है । तथा अशुभ परिणामो के प्रकर्षभाव के कारण अशुभ प्रकृतियो का प्रकृष्ट अनुभव होता है और शुभ प्रकृतियो का निकृष्ट अनुभव होता है ।

प्रश्न ३—जिस समय यह जीव अशुभ कर्म प्रकृतियो का बध कर रहा है उसी समय शुभ का भी बध होता है क्या ? और जिस समय शुभ का बध कर रहा है उस समय अशुभ का भी बध करता है क्या ?

उत्तर—जी हॉ, एक ही समय मे अशुभ-शुभ, शुभ-अशुभ दोनो प्रकृतियो का बध जीव करता है । यथा जिस समय एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय अशुभ का बध करता है उस समय औदारिक शरीर, निर्माण अगुरुलघु, प्रत्येक आदि शुभ प्रकृतियो का भी बध होता है । इसी प्रकार जिस समय वैक्रियिक शरीर शुभ प्रकृति का बध करता है उसी समय नरकायु अशुभ प्रकृति का बध हो सकता है ।

प्रश्न ४—अनुभव का अर्थ क्या है ?

उत्तर—कर्मों का आत्मा मे फल देना या कर्मदत्तफल को आत्मा के द्वारा स्वीकार करना अनुभाग है ।

प्रश्न ५—अनुभव कितने प्रकार का होता है ?

उत्तर—परिणामो के कारण अनुभव दो प्रकार का होता है— (१) स्वमुख से और (२) परमुख से ।

प्रश्न ६—स्वमुख से अनुभव किन-किन प्रकृतियो का होता है ?

उत्तर-सब मूल प्रकृतियो का अनुभव स्वमुख से ही होता है । आयु, दर्शनमोहनीय, चारित्रमोहनीय इनका अनुभव स्वमुख से ही होता है । नरकायु

के मुख से तिर्यंचायु या मनुष्यायु का विपाक नही होता और दर्शनमोह चारित्र मोहरूप से और चारित्रमोह-दर्शनमोहरूप से विपाक को नही प्राप्त होता है ।

प्रश्न ७—परमुख से उदय किन प्रकृतियो का आता है ?

उत्तर—आयु, दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय के सिवा तुल्य जातीय उत्तर प्रकृतियो का अनुभव परमुख से प्रवृत्त होता है ।

प्रश्न ८—कर्मप्रकृतियो का अनुभव सार्थक (नामानुसार) होता है या अनन्वर्थ (असार्थक) होता है ?

उत्तर— स यथानाम् ॥ २२ ॥

सूत्रार्थ—वह अनुभव, जिस कर्म का जैसा नाम है, उसके अनुरूप होता है ।

प्रश्न १—ज्ञानावरण कर्म का विपाक क्या है ?

उत्तर—ज्ञानावरण कर्म के ५ भेद है, उनका फल है, उस-उस ज्ञान का अभाव करना । यह ज्ञानावरण का विपाक है । ज्ञानावरण का फल है ज्ञान शक्ति का आच्छादन करना ।

प्रश्न २—दर्शनावरण कर्म का फल (अनुभव/विपाक) क्या है ?

उत्तर—दर्शनशक्ति का आच्छादन करना दर्शनावरण कर्म का विपाक है ।

प्रश्न ३—वेदनीय कर्म का अनुभव/विपाक क्या है ?

उत्तर—वेदनीय कर्म का फल (विपाक) है सुख-दु ख प्रदान करना ।

प्रश्न ४—मोहनीय कर्म का फल क्या है ?

उत्तर—मोह का उत्पादन करना मोहनीय कर्म का फल है ।

प्रश्न ५—आयु कर्म का विपाक क्या है ?

उत्तर—आयु कर्म का विपाक (फल) भवधारण करना है ।

प्रश्न ६—नामकर्म का विपाक क्या है ?

उत्तर—नामकर्म का विपाक है नाना प्रकार की शरीर रचना का अनुभव कराना ।

प्रश्न ७—गोत्रकर्म का विपाक क्या है ?

उत्तर—गोत्रकर्म का फल उच्चत्व नीचत्व का अनुभव कराना है ।

प्रश्न ८—अन्तराय कर्म का अनुभव क्या है ?

उत्तर—अन्तराय कर्म का फल विघ्नो का अनुभव कराना है ।

प्रश्न ९—घातिया कर्मों की अनुभाग शक्ति (फलदानशक्ति) को उदाहरण द्वारा बताइये ?

उत्तर—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तरायरूप घातियाकर्मों की शक्ति लता, दारू, अस्थि, शैल के समान चार प्रकार की है । जिस प्रकार लता दारू आदि मे क्रमश अधिक-अधिक कठोरता पाई जाती है, उसी प्रकार इन कर्मवर्गणा के समूह मे अपने फल देने की शक्तिरूप अनुभाग भी क्रम से अधिक पाया जाता है ।

प्रश्न १०—अघातिया कर्मों मे अनुभाग शक्ति को उदाहरण द्वारा बताइये ?

उत्तर—अघातिया कर्मों मे पुण्य व पाप दोनो प्रकार की प्रकृतियॉ है । पुण्य प्रकृतियो के अनुभाग गुड़, खाण्ड, शर्करा और अमृत के समान अधिक-अधिक सुख के कारण है । तथा पाप प्रकृतियो का अनुभाग निम्ब, काञ्जीर विष और हलाहल के समान अधिक-अधिक कटु व दु ख के कारण है ।

प्रश्न ११—अनुभूत (फल देने के बाद) होने पर वह कर्म आभरण के समान अवस्थित रहता है या पुष्प की तरह झड़ जाता है ?

उत्तर— **ततश्चनिर्जरा ॥ २३ ॥**

सूत्रार्थ—अनुभव के बाद कर्मो की निर्जरा होती है ।

प्रश्न १—निर्जरा किसे कहते है ?

उत्तर—जिस प्रकार भुक्त (खाया हुआ) अन्न, भात, मल-मूत्र आदि विकार रूप होकर निर्जीर्ण हो जाता है, उसी प्रकार अनुभव के अनन्तर वह कर्म आत्मा के लिये पीड़ा, अनुग्रह देकर निर्जीर्ण हो जाता है । उपार्जित कर्मो का एकदेश क्षय हो जाता है यही निर्जरा है ।

प्रश्न २—निर्जरा के कितने भेद है ?

उत्तर—निर्जरा दो प्रकार की है—विपाकजा और अविपाकजा ।

प्रश्न ३—विपाकजा निर्जरा किसे कहते हैं ?

उत्तर—चतुर्गति ससार रूप महासमुद्र मे चिरकाल तक भ्रमण करने वाले इस जीव के क्रम से परिपाक काल को प्राप्त हुए और अनुभवोदयावलि रूपी सोते मे प्रविष्ट हुए ऐसे शुभाशुभ कर्मों का फल देकर निर्जीर्ण हो जाना वह विपाकजा निर्जरा है ।

प्रश्न ४—अविपाकजा निर्जरा किसे कहते हैं ?

उत्तर—आम और पनस को औपक्रमिक क्रिया विशेष के द्वारा जिस प्रकार अकाल मे पका लेते है उसी प्रकार जिसका विपाक काल अभी प्राप्त नही हुआ है फिर भी औपक्रमिक क्रिया विशेष की सामर्थ्य से उदयावलि के बाहर स्थित जो कर्म है उन्हे बलपूर्वक उदयावलि मे लाकर अनुभवा जाता है वह अविपाकजा निर्जरा है ।

प्रश्न ५—जीव प्रतिसमय कर्म-नो-कर्म रूप होने वाले कितने पुद्गल परमाणुओ को ग्रहण करता है ?

उत्तर—सिद्धाणतिमभाग अभव्वसिद्धादणतगुणमेव ।

समयपबद्ध बधदि जोगवसादो दु विसरित्थ ।। ४ ।। -गो क

यह जीव प्रतिसमय सिद्धो के अनन्तवे भाग व अभव्य सिद्धो से अनन्तगुणी वर्गणाओ वाले समयप्रबद्ध को प्रतिसमय बाँधता है, तथा योगो की विशेषता से हीनाधिक कर्म परमाणुओ को बाँधता है ।

प्रश्न ६—यह जीव प्रतिसमय कितने समयप्रबद्ध की निर्जरा करता है ?

उत्तर—प्रतिसमय सिद्धराशि के अनन्तवे भाग और अभव्यराशि से अनन्तगुणा वर्गणावाले समयप्रबद्ध की निर्जरा होती है, किन्तु तपस्यारूप विशिष्ट अतिशय से तथा आत्मा के सम्यक्त्वादि प्रवृत्ति के प्रयोग रूप हेतुओ से निर्जरा के ११ स्थान नवम अध्याय मे कहेगे । उनकी विवक्षा से एक समय मे अनेक समयप्रबद्धो की भी निर्जरा हो जाती है ।

प्रश्न ७—प्रकृति बध और अनुभाग बध दोनो को अलग क्यो कहा, उनके योग और कषाय अलग-अलग कारण भी क्यो बतलाये गये, जबकि विपाक (अनुभव) को प्रकृति के अनुरूप बतलाया है, वस्तुत ये दो नही है, किन्तु बन्ध की अपेक्षा जिसका नाम प्रकृति है, उदयकाल की अपेक्षा उसीका नाम अनुभाग (अनुभव/विपाक) है ?

उत्तर—कर्मबन्ध के समय कर्म का विविध रूप से विभाग योग के निमित्त से ही होता है और विभाग को प्राप्त हुए कर्मों मे हीनाधिक फलदान शक्ति का प्राप्त होना कषाय के निमित्त से होता है, इसलिये प्रकृति और अनुभाग को स्वतत्र माना गया है । स्वतत्र प्रकृति कहने से यद्यपि उसकी शक्ति का बोध हो ही जाता है तथापि ऐसी शक्ति की एक सीमा होती है। उसका उल्लघन कर जो न्यूनाधिक शक्ति पायी जाती है उसी का बोध कराना अनुभागबध का काम है । उदाहरण के लिये ग्यारहवे, बारहवे, तेरहवे गुणस्थान मे सातावेदनीय प्रकृति का बन्ध होता है और बन्ध एक नियत मर्यादा मे अनुभाग को लिये हुए ही होता है फिर भी यहाँ अनुभागबध का निषेध

किया गया है, इसका कारण यह है कि जो अनुभाग सकषाय अवस्था मे सातावेदनीय को प्राप्त होता था वह यहाँ प्राप्त नही होता है। सकषाय अवस्था मे प्राप्त होने वाले जघन्य अनुभाग से भी यह अनन्तवे भाग मात्र होता है। इतना कम अनुभाग सकषाय अवस्था मे नही प्राप्त हो सकता। इससे प्रकृतिबन्ध से अनुभागबन्ध को अलग कहने की उपयोगिता सिद्ध हो जाती है।

प्रश्न ८—अनुभाग बधकाल मे जैसा बँधा है एकान्तत वैसा ही बना रहता है या कुछ विशेषता आती है ?

उत्तर—अनुभाग बन्धकाल मे जैसा प्राप्त होता है एकान्तत वैसा ही नही बना रहता है अपने अवस्थान काल के भीतर वह बदल भी जाता है और नही भी बदलता है।

प्रश्न ९—अनुभाग के अवस्थान काल के भीतर बदलने पर कितनी अवस्थाएँ होती है ?

उत्तर—अनुभाग के अपने काल के भीतर बदलने पर तीन अवस्थाएँ होती है—सक्रमण, उत्कर्षण और अपकर्षण।

प्रश्न १०—सक्रमण किसे कहते है यह किन प्रकृतियो मे होता है ?

उत्तर—कर्म प्रकृतियो का पर रूप हो जाना सक्रमण है। सक्रमण मूल प्रकृतियो का नही होता, सक्रमण अवान्तर प्रकृतियो मे होता है। उसमे भी आयु कर्म की अवान्तर प्रकृतियो का सक्रमण नही होता और दर्शनमोहनीय का चारित्र मोहनीय रूप से और चारित्रमोहनीय का दर्शनमोहनीय रूप से सक्रमण नही होता।

प्रश्न ११—सक्रमण के कितने भेद है ?

उत्तर—प्रकृतिसक्रमण, स्थितिसक्रमण, अनुभागसक्रमण और प्रदेशसक्रमण। जहाँ प्रकृति और प्रदेशसक्रमण की मुख्यता होती है, वहाँ सक्रमण शब्द द्वारा सम्बोधित किया जाता है और जहाँ मात्र स्थितिसक्रमण, अनुभागसक्रमण होता है वहाँ वह उत्कर्षण और अपकर्षण शब्द द्वारा सम्बोधित किया जाता है।

प्रश्न १२—अपकर्षण किसे कहते है ?

उत्तर—बन्धकाल मे जो स्थिति और अनुभाग प्राप्त होता है उसमे कमी होना अपकर्षण है।

प्रश्न १३—उत्कर्षण किसे कहते है ?

उत्तर—बन्धकाल जो स्थिति और अनुभाग प्राप्त होता है उसमे वृद्धि होना उत्कर्षण है।

प्रश्न १४—स्वमुख और परमुख से अनुभाग किन प्रकृतियो का मिलता है ?

उत्तर—उदयवाली प्रकृतियों का फल/अनुभाग स्वमुख से मिलता है और अनुदयवाली प्रकृतियो का फल परमुख से मिलता है। उदाहरण के लिये—साता का उदय रहने पर उसका भोग साता रूप से होता है किन्तु तब असाता स्तिबुक सक्रमण द्वारा सातारूप से परिणमन करती जाती है इसलिये इसका उदय परमुख से होता है।

प्रश्न १५—स्तिबुक सक्रमण किसे कहते है ?

उत्तर—उदयकाल के एक समय पहले अनुदयरूप प्रकृति के निषेक का उदय को प्राप्त हुई प्रकृति रूप से परिणम जाना स्तिबुक सक्रमण है। (जो प्रकृतियाँ जिस काल मे उदय मे नही होती है किन्तु सत्तारूप से विद्यमान रहती है उन सबका प्रतिसमय इसी प्रकार परिणमन होता रहता है

प्रदेश-बन्ध

प्रश्न १—प्रदेशबध का स्वरूप क्या है ?

उत्तर—**नामप्रत्ययाः सर्वतो योगविशेषात्सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिताः सर्वात्मप्रदेशेष्वनन्तानन्तप्रदेशाः ॥ २४ ॥**

सूत्रार्थ—कर्म प्रकृतियो के कारणभूत प्रति समय योगविशेष से सूक्ष्म, एकक्षेत्रावगाही और स्थित अनन्तानन्त पुद्गल परमाणु सब आत्मप्रदेशो मे (सम्बन्ध को प्राप्त) होते है।

प्रश्न २—प्रदेशबन्धका हेतु क्या है ?

उत्तर—नाम के कारणभूत कर्मपरमाणु **नाम प्रत्यय** कहलाते है। नाम अर्थात् सर्वप्रकृतियो के समूह के हेतु के हेतु का नाम प्रत्यय है। ऐसे अनन्तानन्त प्रदेश अनन्त से भी अनन्त गुणे अनन्तानन्त कहलाते है, वे अनन्तानत प्रदेश आठ प्रकार की कर्म प्रकृतियो के योग्य पुद्गलस्कध अनन्तानत प्रदेश कहलाते है। वे अनन्तानन्त अभव्य राशि से अनन्तगुणे और सिद्धो के अनन्तवे भाग प्रमाण है।

प्रश्न ३—इस प्रकार के पुद्गल स्कध कहाँ रहते है ?

उत्तर—इस प्रकार के कर्मयोग्य स्कध सर्वआत्मप्रदेशो मे रहते है। उन सर्व आत्मप्रदेशो मे एक-एक आत्मप्रदेश पर अनन्तानन्त कर्म प्रकृतियो के योग्य पुद्गलस्कन्ध रहते है। इस प्रकार के कर्मप्रदेश ऊपर, नीचे, तिरछे सब आत्मप्रदेशो मे व्याप्त होकर रहते है।

प्रश्न ४—इस प्रकार वह प्रदेशबन्ध किस काल मे होता है ?

उत्तर—कर्म प्रदेशो का बन्ध सर्वकालो मे होता है। एक-एक प्राणी के अतीत भव अनन्तानन्त होते है और भविष्यकाल के भव किसी के सख्यात, किसी के असख्यात और किसी के अनन्त भी होते है। अर्थात् सब भवो मे जीव अनन्तानन्त कर्मपुद्गल वर्गणाओ का बन्ध करता है। इसीलिये सूत्र मे **सर्वत:** पद दिया है।

प्रश्न ५—इस प्रकार के प्रदेश-बन्ध का निमित्त क्या है ?

उत्तर—योगविशेषात्—योग विशेष प्रदेश बन्ध का निमित्त है। काय-वचन-मन की क्रियालक्षण योग की विशेषता के कारण जीव के द्वारा पुद्गल कर्म रूप से ग्रहण किया जाता है।

प्रश्न ६—प्रकृति, प्रदेश, स्थिति अनुभाग चारो बध का निमित्त क्या है ?

उत्तर—"जोगापयडिपदेसा ठिदिअणुभागा कसायदो होंति" योगो मे प्रकृति-प्रदेश बध होता है और कषाय मे स्थिति-अनुभाग बन्ध होता है।

प्रश्न ७—उन कर्मयोग्य पुद्गल परमाणुओ का स्वभाव क्या है ?

उत्तर—ये कर्म परमाणु अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं, आत्मा के एक प्रदेश मे अनन्तानन्त कर्मपरमाणु स्थिर होकर रहते है। अत "सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिता" यह पद सूत्र मे दिया है।

प्रश्न ८—सूक्ष्म एकक्षेत्रावगाह का तात्पर्य क्या है ?

उत्तर—आत्मा के एक प्रदेश को एकक्षेत्र कहते है, उस एकक्षेत्र मे जिनका अवगाह होता है वे एक क्षेत्रावगाह कहलाते है। ये परमाणु सूक्ष्म होते है इसलिये सूक्ष्म क्षेत्रावगाह कहलाते है। जिस आकाश प्रदेश मे आत्म प्रदेश है उसी स्थान मे अनन्तानन्त कर्म प्रदेश रहते है, इसलिये भी एकक्षेत्रावगाह कहलाते है।

प्रश्न ९—सूत्र प्राप्त स्थिता से क्या अर्थ लेना चाहिये ?

उत्तर—उस आत्मप्रदेश मे कर्म पुद्गल स्थिर रहते है, चलते नही इसलिये स्थित कहलाते है।

प्रश्न १०—कर्मपरमाणुओ की सख्या कितनी है ?

उत्तर—ये कर्मपरमाणु सख्यात, असख्यात और अनन्त नही अपितु अनन्तानन्त होते है। सिद्धो के अनन्तवे भाग व अभव्यो से अनन्तगुणे प्रमाण सख्या वाले हैं।

प्रश्न ११—कर्मपरमाणुओ की अवगाहना कितनी है ?

उत्तर—घनाङ्गुल के असख्यातवे भाग प्रमाण क्षेत्र की अवगाहना वाले होते है।

प्रश्न १२—कर्मपरमाणुओ की स्थिति कितनी है ?

उत्तर—ये कर्मपरमाणु एक, दो, तीन, चार, सख्यात, असंख्यात समय की स्थिति वाले होते है ।

प्रश्न १३—कर्मपुद्गल का लक्षण क्या है ?

उत्तर—ये कर्मपुद्गल पाँच वर्ण, पाँच रस, दो गध व आठ स्पर्श से युक्त होते है ।

प्रश्न १४—सक्षेप से इस सूत्र मे वर्णित प्रदेश बन्ध का सार बताइये ?

उत्तर—जो पुद्गल परमाणु कर्मरूप से ग्रहण किये जाते है वे ज्ञानावरण आदि आठ प्रकार से परिणमन करते है । उनका ग्रहण ससार अवस्था मे सदा ही होता है । ग्रहण का मुख्य कारण योग है । वे सूक्ष्म होते है । जिस क्षेत्र मे आत्मा स्थित होता है उसी क्षेत्र के परमाणुओ का ग्रहण होता है अन्य का नही । उसमे भी स्थित कर्मपरमाणुओ का ही ग्रहण होता है अन्य का नही । ग्रहण किये कर्म परमाणु आत्मा के सब प्रदेशो मे स्थित रहते है वे अनन्तानन्त होते है यह इस सूत्र का भाव है । इस प्रकार इस सूत्र मे प्रदेशबध का हेतु क्या है, वह कब होता है, उसका निमित्त क्या है, उसका स्वभाव क्या है और उसका परिणाम क्या है क्रम से वर्णन है ।

प्रश्न १५—बध के प्राप्त कर्मों की प्रकृतियो की कितनी अवस्थाएँ होती है, नाम बताओ ?

उत्तर—बन्ध को प्राप्त कर्मों की दस अवस्थाएँ होती है—

बधुक्कट्टणकरण, सकममोकट्टुदीरणा सत्त ।
उदयुवसामणिधत्ती,णिकाचणा होदि पडिपयडी ।। ४३७ ।। –गो क का

बन्ध, उत्कर्षण, सक्रमण, अपकर्षण, उदीरणा, सत्त्व, उदय, उपशम, निधत्ति और निकाचित ये दस करण कर्मप्रकृतियो के होते है ।

प्रश्न १६—बन्ध, उत्कर्षण, सक्रमण का लक्षण क्या है ?

उत्तर-१ पुद्गलद्रव्य का कर्मरूप होकर आत्मप्रदेशो के साथ सश्लेष सम्बन्ध होना **बन्ध** है ।

२ कर्मों का जो स्थिति व अनुभाग पूर्व मे था उसमे वृद्धि का होना **उत्कर्षण** कहलाता है ।

३ जो प्रकृति पूर्व मे बँधी थी उस प्रकृति के परमाणुओ का अन्यप्रकृतिरूप होना **प्रकृतिसंक्रमण** है ।

प्रश्न १७—अपकषर्ण किसे कहते है ?

उत्तर—कर्मो की स्थिति व अनुभाग जो पूर्व मे था उसको कम करना (घटाना) **अपकर्षण है** ।

प्रश्न १८—उदीरणा किसे कहते है ?

उत्तर—उदयावली के बाहर स्थित द्रव्य को अपकर्षण करण के बल से उदयावली मे लाना उदीरणा है ।

प्रश्न १९—सत्त्व किसे कहते है ?

उत्तर—सत्त्व अर्थात् अस्तित्व, पुद्गलो का कर्म रूप रहना सत्त्व है ।

प्रश्न २०—उदय किसे कहते है ?

उत्तर—आबाधापूरी करके कर्मों का अपनी पूर्वबद्ध स्थितिबन्ध के अनुसार उदय को प्राप्त होना उदय कहलाता है ।

प्रश्न २१—उपशम (उपशान्तकरण) किसे कहते है ?

उत्तर—जो कर्म परमाणु उदीरणा को प्राप्त होने मे समर्थ न हो उसे उपशम/उपशान्तकरण कहते है ।

प्रश्न २२—निधत्तिकरण का लक्षण क्या है ?

उत्तर—जो कर्मपरमाणु उदयावली को प्राप्त करने मे तथा अन्य प्रकृतिरूप सक्रमण करने मे समर्थ नही होता उसे निधत्ति कहते है ।

प्रश्न २३—निकाचित करण का लक्षण बताइये ?

उत्तर—जो कर्मपरमाणु उदयावली को प्राप्त करने मे तथा अन्यप्रकृतिरूप सक्रमण करने मे अथवा उत्कर्षण-अपकर्षण करने मे समर्थ नही होता उसे निकाचितकरण कहते हैं ।

प्रश्न २४—पुण्य प्रकृतियाँ कौनसी हैं ?

उत्तर— सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यं ॥ २५ ॥

सूत्रार्थ—साता वेदनीय, शुभआयु, शुभनाम और शुभगोत्र ये पुण्य प्रकृतियाँ हैं ।

प्रश्न १—शुभआयु कौनसी हैं नाम बताइये ?

उत्तर—तिर्यंचायु, मनुष्यायु और देवायु ये तीन शुभ आयु हैं ।

प्रश्न २—शुभनामकर्म की प्रकृतियाँ कौनसी है ?

उत्तर—शुभनामकर्म—मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, पञ्चेन्द्रियजाति, पाँच शरीर, तीन आगोपाग, समचतुरस्रसस्थान, वज्रर्षभनाराचसहनन, प्रशस्त वर्ण, प्रशस्त रस, प्रशस्त गध और प्रशस्त स्पर्श, अगुरुलघु, परघात,

उच्छ्‌वास, आतप, उद्योत, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यश कीर्ति और तीर्थंकर ।

प्रश्न ३—शुभ गोत्र कौन सा है ?

उत्तर—उच्च गोत्र शुभ गोत्र है ।

प्रश्न ४—कुल पुण्य प्रकृतियाँ कितनी है ?

उत्तर—सातावेदनीय १, आयु ३, उच्चगोत्र १ और नामकर्म की ३७ = ४२ प्रकृतियाँ पुण्य रूप हैं ।

प्रश्न ५—पाप प्रकृतियाँ कौनसी है ?

उत्तर- **अतोऽन्यत्पापम् ॥ २६ ॥**

सूत्रार्थ—इनके सिवा सब प्रकृतियाॅ पापरूप है ।

प्रश्न १—पाप प्रकृतियो के नाम बताइये ?

उत्तर—घातिया कर्म की प्रकृतियाँ पापरूप ही है (ज्ञानावरण की ५, दर्शनावरण की ९, मोहनीय २६, अन्तराय ५) । असातावेदनीय १, नरकायु १, और नीच गोत्र १ = ४८ नामकर्म की नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, चार जाति, पॉच सस्थान, पाँच सहनन, अप्रशस्त वर्ण, अप्रशस्त रस, गध, स्पर्श, उपघात, अप्रशस्तविहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्ति, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और अशय कीर्ति ये नामकर्म की ३४ प्रकृतियाँ है । = ८२ प्रकृतियाँ पापरूप है ।

इति श्रीमदुमास्वामीविरचिते तत्त्वार्थसूत्रेऽष्टमोऽध्यायः

नवम अध्याय

संवर निर्जरा तत्त्व विवेचना सूत्र [४७]

सूत्र १-२ मे—सवर का लक्षण व सवर के हेतु ।

सूत्र ३ मे—सवर-निर्जरा के हेतु ।

सूत्र ४-७ मे—गुप्ति, समिति, धर्म व अनुप्रेक्षा कथन ।

सूत्र ८-१७ मे—परीषह कथन ।

सूत्र १८ मे—पॉच प्रकार चारित्र का कथन

(१-१८ सूत्र तक सवर तत्त्व का विवेचन)

सूत्र १९-२६ मे—बाह्याभ्यन्तर तप व तप के उत्तर भेदो का कथन । (निर्जरा तत्त्व प्रारभ)

सूत्र २७-२९ मे—ध्यान का लक्षण, भेद, परम्परा व साक्षात् मोक्ष के हेतु ध्यानो का कथन ।

सूत्र ३०-३४ मे—आर्त्तध्यान का लक्षण, भेद, स्वामी ।

सूत्र ३५ मे—रौद्रध्यान के भेद व स्वामी ।

सूत्र ३६ मे—धर्म्यध्यान के भेद ।

सूत्र ३७-४२ मे—शुक्लध्यान के स्वामी, भेद, आलम्बन, विशेषता ।

सूत्र ४३-४४ मे—वितर्क और वीचार लक्षण ।

सूत्र ४५ मे—निर्जरा के न्यूनाधिक स्थान ।

सूत्र ४६ मे—निर्ग्रंथ साधुओ के भेद ।

सूत्र ४७ मे—निर्ग्रंथ साधुओ मे विशेषता ।

इसप्रकार नवम अध्याय मे सवर और निर्जरा तत्त्व का सूक्ष्मरीत्या सुन्दर विवेचन आचार्यश्री ने किया है ।

●

अथ नवमोऽध्याय:

प्रश्न १–सवर का लक्षण क्या है ?

उत्तर– **आस्रव निरोध: संवर: ॥ १ ॥**

सूत्रार्थ–आस्रव का निरोध करना सवर है ।

प्रश्न २–सवर के भेद कितने है ?

उत्तर–सवर के भेद दो है—(१) भावसवर, (२) द्रव्यसवर ।

प्रश्न ३–भावसवर किसे कहते है ?

उत्तर–"ससारनिमित्तक्रियानिवृत्तिर्भावसवर "ससार निमित्तभूत क्रिया की निवृत्ति होना भावसवर है ।

चेदणपरिणामो जो कम्मस्सासवणिरोहणे हेदू ।
सो भावसवरो खलु दव्वस्सावरोहणे अण्णो ॥३४॥द्र स

अर्थात् आत्मा के जो परिणाम कर्मास्रव को रोकने मे कारण है, उन परिणामो को भावसवर कहते है ।

प्रश्न ४–द्रव्यसवर किसे कहते है ?

उत्तर–भावसवर होने पर तत्पूर्वक होने वाले कर्म-पुद्गलो के ग्रहण का विच्छेद होना द्रव्यसवर है । अर्थात् द्रव्यकर्मो का आस्रव नही होना द्रव्यसवर है ।

प्रश्न ५–भावसवर पहले होता है या द्रव्यसवर ?

उत्तर–भावसवर पूर्वक ही द्रव्यसवर होता है ।

प्रश्न ६–मिथ्यात्व पारणामो से होने वाले आस्रव का कब या कौनसे गुणस्थान मे सवर होता है ?

उत्तर–मिथ्यात्व परिणामो से होने वाला द्रव्यास्रव मिथ्यात्व परिणाम के निरोध से रुक जाता अत जिन परिणामो से मिथ्यात्व मे जिन कर्मों का आस्रव होता है, उन कर्मों का सासादन आदि विशेष गुणस्थानो मे सवर हो जाता है ।

प्रश्न ७–सासादन नामक (द्वितीय) गुणस्थान मे कितनी कर्मप्रकृतियो का सवर होता है ?

उत्तर–मिथ्यादर्शन का अभाव हो जाने पर द्वितीय सासादन गुणस्थान मे १६ प्रकृतियो का सवर होता है—मिथ्यात्व, नपुसकवेद, नरकायु,

नरकगति, एकेन्द्रिय आदि ४ जाति, हुण्डक सस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिकासहनन, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण और अपर्याप्त ।

प्रश्न ८–असयम कितने प्रकार का है ? अनतानुबधी असयम से होने वाले आस्रव का सवर कब होता है ?

उत्तर–असयम तीन प्रकार का है—(१) अनन्तानुबन्धी कषायोदयजनित, (२) अप्रत्याख्यान कषायोदयजनित और (३) प्रत्याख्यान कषायोदयजनित । अनन्तानुबधी कषायोदयजनित आस्रव का सवर तीसरे आदि गुणस्थानो मे होता है ।

प्रश्न ९–तीसरे आदि गुणस्थानो मे सवर होने वाली प्रकृतियाँ कितनी व कौनसी है ?

उत्तर–अनन्तानुबधी कषाय के अभाव मे तीसरे आदि गुणस्थानो मे २५ प्रकृतियो का सवर होता है—(१) निद्रा-निद्रा, (२) प्रचलाप्रचला, (३) स्त्यानगृद्धि, (४-७) अनतानुबधी क्रोध, मान, माया लोभ, (८) स्त्रीवेद, (९) तिर्यंचायु, (१०) तिर्यंचगति, (११) न्यग्रोधपरिमडल सस्थान, (१२) स्वाति सस्थान, (१३) कुब्जकसस्थान, (१४) वामनसस्थान (मध्य के ४ सस्थान), (१५) वज्रनाराचसहनन, (१६) नाराचसहनन, (१७) अर्द्ध-नाराचसहनन, (१८) कीलकसहनन (मध्य के ४ सहनन), (१९) तिर्यंच-गत्यानुपूर्वी, (२०) उद्योत, (२१) अप्रशस्तविहायोगति, (२२) दुर्भग, (२३) दु स्वर, (२४) अनादेय और (२५) नीचगोत्र ।

प्रश्न १०–अप्रत्याख्यानावरणकषाय के उदय के अभाव मे कितनी प्रकृतियो का कहाँ सवर होता है ?

उत्तर–अप्रत्याख्यानावरण कषायोदय से बँधने वाली १० प्रकृतियो का पञ्चम आदि गुणस्थानो मे सवर होता है । वे प्रकृतियाँ—अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया लोभ १-४, ५ मनुष्यायु, ६ मनुष्यगति ७ औदारिक शरीर ८ औदारिक आगोपाग ९ वज्रवृषभनाराचसहनन और १० मनुष्यगत्यानुपूर्वी ।

प्रश्न ११–प्रत्याख्यानावरण कषायोदय से बँधनेवाली प्रकृतियाँ कितनी है, इनका सवर कब होता है ?

उत्तर–प्रत्याख्यानावरण कषायोदय से बँधने वाली प्रकृतियाँ ४ है—प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया और लोभ इनका छठे, सातवे आदि गुणस्थानो मे सवर होता है ।

प्रश्न १२–प्रमाद के सद्भाव मे कितनी प्रकृतियो का बध होता है, इनका सवर कब होता है ?

उत्तर–प्रमाद के निमित्त से बँधनेवाले कर्मों का उसके अभाव मे सवर होता है । वे कर्म है ६—असातावदेनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयश कीर्ति इनका अप्रमत्तगुणस्थान मे सवर होता है ।

प्रश्न १३–देवायु कर्म का सवर कौनसे गुणस्थान मे होता है ?

उत्तर–देवायु का सवर प्रमत्त-अप्रमत्तगुणस्थान के ऊपर अर्थात् अपूर्वकरण गुणस्थान मे होता है ।

प्रश्न १४–प्रमाद रहित कषाय के कितने भेद है वह किन गुणस्थानो मे है ?

उत्तर–प्रमादरहित कषाय उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य के भेद से तीन प्रकार की है । वह अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानो मे व्यवस्थित है ।

प्रश्न १५–अपूर्वकरण गुणस्थान मे बँधने वाली ३६ प्रकृतियो का सवर कहाँ होता है ?

उत्तर–अपूर्वकरण गुणस्थान के प्रारभिक सख्येय भाग मे निद्राप्रचला ये दो प्रकृतियाँ बध को प्राप्त होती है इससे आगे सख्येय भाग मे देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, आहारक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसस्थान, वैक्रियिकशरीरआगोपाग, आहारकशरीर आगोपाग, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और तीर्थंकर ये तीस प्रकृतियाँ बन्ध को प्राप्त होती है । तथा इसी गुणस्थान के अन्तिम समय मे हास्य, रति, भय, जुगुप्सा ये चार प्रकृतियाँ बन्ध को प्राप्त होती है । ये तीव्र कषाय से आस्रव को प्राप्त होने वाली प्रकृतियाँ है, इसलिये तीव्र कषाय का उत्तरोत्तर अभाव होने से विवक्षित भाग के आगे उनका सवर होता है ।

प्रश्न १६–मध्यम कषाय के निमित्त से आस्रव होने वाली प्रकृतियाँ कौनसी है उनका बध व सवर कहाँ होता है ?

उत्तर–अनिवृत्तिबादर साम्पराय के प्रथम समय से लेकर उसके सख्यात भागो मे पुवेद और क्रोधसज्वलन का बध होता है । शेष सख्यात भागो मे मान, माया सज्वलन का बन्ध होता है और उसी के अन्तिम मे लोभ बध को प्राप्त होता है । इन प्रकृतियो का मध्यम कषाय के निमित्त से आस्रव होता है, अतएव मध्यम कषाय का उत्तरोत्तर अभाव होने पर विवक्षित भाग के आगे उनका सवर होता है ।

प्रश्न १७–मन्दकषाय के निमित्त से आस्रव होने वाली प्रकृतियाँ कौनसी है, उनका बन्ध व सवर कहाँ होता है ?

उत्तर–पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, यश कीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय इन सोलह प्रकृतियो का सूक्ष्मसाम्पराय जीव बन्ध करता है अत मन्दकषाय का अभाव होने से आगे इनका सवर है ।

प्रश्न १८–योग के निमित्त से आस्रव को प्राप्त प्रकृतियाँ कौनसी है, उनका बन्ध व सवर कहाँ होता है ?

उत्तर–केवलयोग के निमित्त से आस्रव को प्राप्त होने वाली सातावेदनीय का उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय और सयोगकेवली जीवो के बन्ध होता है । योग का अभाव हो जाने से अयोगकेवली के उसका सवर होता है ।

प्रश्न १९–सवर का कार्य क्या है ?

उत्तर–सवर जीवन मे नये दोष और दोषो के कारण एकत्रित न होने देने का मार्ग है ।

प्रश्न २०–सवर का लाभ क्या है ?

उत्तर–सवर के बाद ही सचित हुए दोषो व उनके कारणो का परिमार्जन किया जा सकता है और तभी मुक्ति लाभ होता है । कहा भी है—

सवर सहित करो तप प्राणी, मिले मुक्ति रानी ।
इस दुलहिन की यही सहेली जाने सब ज्ञानी ।।
"मुक्तिरूपी दुल्हन की सखी सवर है" ।

प्रश्न २१–गुणस्थानो मे बध और सवर तो जाना पर हम यह नही जानते कि गुणस्थान किसे कहते है ? ये कितने होते है ?

उत्तर–दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय आदि कर्मों की उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम आदि अवस्था होने पर जीव जिन परिणामो से युक्त देखे जाते है उन परिणामो को सर्वज्ञदेव ने गुणस्थान कहा है । (तथा उन परिणामयुक्त जीव को उस गुणस्थान वाला कहते है)

अथवा

मोह और योग के निमित्त से होने वाली आत्मा के सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्गुण अवस्थाओ को गुणस्थान कहते है ।

ये गुणस्थान १४ होते है—(१) मिथ्यात्व, (२) सासादन, (३) मिश्र, (४) अविरत, (५) देशविरत, (६) प्रमत्त, (७) अप्रमत्त, (८) अपूर्वकरण, (९) अनिवृत्तिकरण, (१०) सूक्ष्मसाम्पराय, (११) उपशान्तमोह, (१२) क्षीणमोह, (१३) सयोगकेवली और (१४) अयोगकेवली ।

प्रश्न २२–चौदह गुणस्थानों का दर्शनमोह-चारित्रमोह अपेक्षा विभाजन किस प्रकार है ?

उत्तर–मिथ्यादृष्टि से अविरत तक चार गुणस्थान मे नियम से औदयिक भाव हैं वे दर्शनमोह की अपेक्षा से है। देशविरत, प्रमत्त व अप्रमत्त गुणस्थानो चारित्रमोह अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव हैं।

उपशमश्रेणी वाला अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय तीनो गुणस्थानो मे चारित्रमोह की इक्कीस प्रकृतियो का उपशम करता है, अत यहाँ औपशमिकभाव चारित्रमोह के उपशम की अपेक्षा है, तथा क्षपकश्रेणी वाला आठवे, नवमे, दसवे गुणस्थान मे इक्कीस प्रकृतियो का क्षय करता है अत क्षपक श्रेणी मे (८, ९, १० गु मे) क्षीणमोह, सयोगकेवली, अयोगकेवली व सिद्धो के क्षायिक भाव ही होता है।

प्रश्न २३–मिथ्यात्व गुणस्थान का लक्षण और उदाहरण दीजिये ?

उत्तर–मिथ्यात्वप्रकृति के उदय से होने वाले तत्त्वार्थ के अश्रद्धान को मिथ्यात्व नामक प्रथम गुणस्थान कहते हैं। उदाहरण—जिसप्रकार पित्तज्वर के रोगी को मीठा दूध भी कड़वा प्रतीत होता है।

प्रश्न २४–औपशमिक सम्यक्त्व कब होता है उसका काल कितना है ?

उत्तर–दर्शनमोहनीय के तीन भेद है—मिथ्यात्व, सम्यक्‌मिथ्यात्व और सम्यक्‌प्रकृति। इन तीनो तथा अनन्तानुबधी चार कषायो के अनुदय होने पर औपशमिक सम्यक्त्व उत्पन्न होता है। औपशमिक सम्यक्त्व का काल अन्तर्मुहूर्त मात्र है।

प्रश्न २५–सासादन गुणस्थान का स्वरूप व दृष्टान्त दीजिये ?

उत्तर–उपशम सम्यक्त्व के काल मे उत्कृष्ट छ आवली और जघन्य एक समय शेष रहने पर अनन्तानुबधी क्रोध, मान, माया और लोभ मे से किसी एक के उदय मे आने से सम्यक्तव की विराधना होने पर सम्यग्दर्शन गुण की जो अव्यक्त अश्रद्धानरूप परिणति होती है वह सासादन गुणस्थान है। दृष्टान्त—सम्यक्त्वरूपी रत्नपर्वत के शिखर से गिरकर जो जीव मिथ्यात्वरूपी भूमि के सम्मुख हो चुका है। (मिथ्यात्व को अभी प्राप्त नही हुआ है) वह सासादन गुणस्थानवर्ती है।

प्रश्न २६–मिश्रगुणस्थान का स्वरूप उदाहरणपूर्वक बताइये ?

उत्तर–मिश्रगुणस्थान मे सम्यक्-मिथ्यात्व कर्म के उदय से उभयरूप परिणाम होते है। यहाँ सम्यक्‌मिथ्यात्व प्रकृति के उदय होने से मनाक् सक्लेश परिणाम होते है। उदाहरण—जिसप्रकार दही-गुड़ को परस्पर इस तरह मिलाने पर कि फिर उन दोनो को अलग-अलग न कर सके, उसके प्रत्येक परमाणु मिश्ररूप होते हैं।

प्रश्न २७–मिश्र गुणस्थान मे ज्ञान मिथ्या होते है या सम्यक् ?

उत्तर–सम्यग्मिथ्यादृष्टि के तीन अज्ञान सत्यासत्यरूप होते है ।

प्रश्न २८–चतुर्थ गुणस्थान का लक्षण बताइये ?

उत्तर–अविरत नामक चतुर्थ गुणस्थान मे चारित्रमोहनीय के उदय से सम्यग्दृष्टि जीव सयम का पालन करने मे नितान्त असमर्थ होता है । यह इन्द्रियो के विषयो से तथा त्रस-स्थावर जीवो की हिसा से विरक्त नही है किन्तु जिन वचनो का श्रद्धान करता है ।

प्रश्न २९–अविरत गुणस्थान मे श्रद्धान की अपेक्षा क्या विशेषता है ?

उत्तर–सम्यग्दृष्टि जीव "अरिहत का ऐसा ही उपदेश है" ऐसा समझकर यदि कदाचित् किसी पदार्थ का विपरीत श्रद्धान भी करता है तो भी वह सम्यग्दृष्टि है, किन्तु आगम दिखाकर समीचीन पदार्थ के समझने पर भी यदि वह जीव पूर्व मे अज्ञान से किये अतत्त्वश्रद्धान को न छोड़े तो वह जीव उसी काल मे मिथ्यादृष्टि हो जाता है । जैसा कि कहा है—

सम्माइट्ठीजीवो, उवइट्ठ पवयण तु सद्दहदि ।
सद्दहदि असब्भाव अजाणमाणो गुरुणियोगा ।। २७ ।।
सुत्तादो त सम्म, दरसिज्जत जदा-ण सद्दहदि ।
सो चेव हवइ मिच्छाइट्ठी, जीवो तदो पहुदी ।। २८ ।। -गो जी

प्रश्न ३०–देशविरत गुणस्थान का लक्षण क्या है ?

उत्तर–इस गुणस्थान मे जीव प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय से त्रस हिसा से विरत, स्थावर की हिसा से अविरत होता है । इसलिये इसे विरताविरत भी कहते है तथा श्रावक के व्रतो को तो पालता है परन्तु मुनिव्रत धारण करने मे असमर्थ होता है अत यह देशविरत कहलाता है ।

प्रश्न ३१–प्रमत्तगुणस्थान का लक्षण क्या है ?

उत्तर–इस प्रमत्त गुणस्थान मे महाव्रती मुनिराज के पूर्ण सयम तो होता है, किन्तु सज्वलन और नोकषाय का उदय रहने से सयम मे मल का उत्पादक प्रमाद भी होता है । अत यहाँ प्रमत्तगुणास्थानवर्ती चित्रल आचरणवाला माना गया है ।

प्रश्न ३२–अप्रमत्तगुणस्थान का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–जघा प्रक्षालन, भोजन, विकथा, निद्रा आदि प्रमाद का अभाव होने से सातवे गुणस्थान का नाम अप्रमत्त है ।

प्रश्न ३३–अपूर्वकरण गुणस्थान किसे कहते है ?

उत्तर–जिस गुणस्थान मे प्रथम समय मे होने वाले परिणामों की अपेक्षा द्वितीयादिक क्षणो मे अपूर्व-अपूर्व ही परिणाम होते हैं उसे अपूर्वकरण गुणस्थान कहते हैं।

प्रश्न ३४–अनिवृत्तिकरण गुणस्थान किसे कहते है ?

उत्तर–जिस गुणस्थान मे कषायो का स्थूलरूप से उपशम और क्षय होता है तथा एक समयवर्ती उपशमक, क्षपक नानाजीवो के परिणाम सदृश ही होते है उसे अनिवृत्तिकरण गुणस्थान कहते हैं।

प्रश्न ३५–सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान किसे कहते है ?

उत्तर–साम्पराय कषाय को कहते हैं। जिस गुणस्थान मे कषाय का सूक्ष्मरूप से उपशम या क्षय होता है उसे सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान कहते है।

प्रश्न ३६–उपशान्तमोह गुणस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर–जिस गुणस्थान मे मोह का उपशम हो जाता है उसे उपशान्तमोह गुणस्थान कहते है।

प्रश्न ३७–क्षीणमोह गुणस्थान किसे कहते है ?

उत्तर–जिस गुणस्थान मे मोह का पूर्ण क्षय हो जाता है उसे क्षीणमोह गुणस्थान कहते है।

प्रश्न ३८–श्रेणी कितनी होती है, उनके गुणस्थान कितने होते है ?

उत्तर–श्रेणी दो होती है—(१) उपशम श्रेणी (२) क्षपक श्रेणी। आठवे, नवे और दसम गुणस्थानो मे दोनो श्रेणियाँ होती है।

प्रश्न ३९–उपशम श्रेणी किसे कहते है ? इसके चढ़ने का व उतरने का क्रम बताइये ?

उत्तर–जिस श्रेणी मे आत्मा मोहनीय कर्म का उपशम करता है वह उपशम श्रेणी है। उपशम श्रेणी चढ़ने वाला पुरुष आठवे गुणस्थान से नवे, दसवे और ग्यारहवे गुणस्थान मे जाकर पुन. वहाँ से च्युत होकर नीचे के गुणस्थान मे आ जाता है।

प्रश्न ४०–ग्यारहवे गुणस्थान से गिरने का हेतु क्या है ? वे कौन से परिणाम है जो उसे गिराते हैं ?

उत्तर–ग्यारहवे गुणस्थान से गिराने मे हेतु परिणाम नही हैं। गिरने के हेतु दो है—(१) कालक्षय, (२) भवक्षय।

प्रश्न ४१–एक जीव एक भव मे और पूरे जीवन मे उपशम श्रेणी कितनी बार चढ़ सकता है ?

उत्तर–एक जीव एक भव मे उपशम श्रेणी दो बार चढ़ सकता है, अधिक नही तथा पूर्ण जीवन मे उपशम श्रेणी चार बार ही चढ़ेगा, अधिक नही।

प्रश्न ४२–क्षपकश्रेणी किसे कहते है ? इसके गुणस्थान कितने है ?

उत्तर–जिस श्रेणी मे आत्मा मोहनीय कर्म का क्षय करता है उसे क्षपक-श्रेणी कहते हैं। क्षपकश्रेणी चढ़ने वाला पुरुष आठवे से नवे, दसवे, गुणस्थानो मे जाता है और इसके बाद ग्यारहवे गुणस्थान को छोड़कर बारहवे गुणस्थान मे जाता है। वहाँ से पतित नही होता है।

प्रश्न ४३–सयोगकेवली गुणस्थान किसे कहते है ?

उत्तर–बारहवे गुणस्थान का विनाश होते ही जहाँ घातिया कर्म की ४७ और अघातियाँ की १६ ऐसी ६३ प्रकृतियो का क्षय होकर आत्मा अनन्तचतुष्टय व नवकेवलब्धि का स्वामी बनता है, केवलज्ञान सूर्य आत्मा मे प्रकट हो जाता किन्तु योग का सद्भाव रहता है उसे सयोगकेवली गुणस्थान कहते है।

प्रश्न ४४–अयोगकेवली गुणस्थान का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–जो अठारह हजार शील के भेद के स्वामी हो चुके हैं, जिनके कर्मो के आने का द्वार रूप आस्रव पूर्ण बन्द हो गया है, जो कर्मरज से सर्वथा मुक्त होने ही वाले है, योग से रहित है उन्हे अयोगकेवली गुणस्थान वाले कहते है।

प्रश्न ४५–अयोगकेवली गुणस्थान का काल कितना है ?

उत्तर–अ, इ, उ, ऋ, लृ इन पाँच अक्षरो के उच्चारण करने मे जितना काल लगता है उतना ही काल अयोगकेवली गुणस्थान का है।

प्रश्न ४६–अयोगकेवली के जिन १८ हजार शीलो की पूर्णता होती है वे कौनसे है ?

उत्तर– जोए करणे सण्णा, इदिय भोम्मादि समणधम्मे य।
अण्णोण्णेहि अभत्था, अट्ठारहससील महस्साइ ॥२॥ –मू शी

अर्थात् तीन योग, तीन करण, चार सज्ञाएँ, पॉच इन्द्रियाँ, दस पृथ्वीकायिक आदि जीव भेद और दस उत्तम क्षमा आदि श्रमण धर्म इनको परस्पर गुणा करने से शील के १८ हजार भेद होते है।

३x३x४x५x१०x१० = १८००० शीलभेद।

प्रश्न ४७–सवर के हेतु कौनसे है ?

उत्तर- स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरीषहजयचारित्रैः ॥ २ ॥

सूत्रार्थ–वह सवर गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय और चारित्र से होता है।

प्रश्न १–गुप्ति किसे कहते है ?

उत्तर– "यत संसारकारणादात्मनो गोपनं भवति सा गुप्तिः"— जिसके बल से ससार क कारणो से आत्मा की गोपन/रक्षा होती है वह गुप्ति है।

प्रश्न २–समिति किसे कहते हैं ?

उत्तर– "प्राणिपीड़ापरिहारार्थं सम्यगयनं समितिः"—प्राणिपीड़ा परिहार के लिये भले प्रकार आना-जाना, उठाना-धरना, ग्रहण करना व मोचन करना समिति है ।

प्रश्न ३–धर्म किसे कहते है ?

उत्तर–"इष्टे स्थाने धत्ते इति धर्म·"—जो इष्ट स्थान मे धारण करता है वह धर्म है ।

प्रश्न ४–अनुप्रेक्षा का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–शरीरादीनां स्वभावानुचिन्तनमनुप्रेक्षा—शरीर आदि के स्वभाव का बार-बार चिन्तन करना अनुप्रेक्षा है ।

प्रश्न ५–परीषहजय का लक्षण बताइये ?

उत्तर–क्षुधादिवेदनोत्पत्तौ कर्मनिर्जरार्थं सहन परीषह । परीषहस्य जय परीषहजयक्षुधादि वेदना के होने पर कर्मों की निर्जरा करने के लिये उसे सह लेना परीषह है और परीषह का जीतना परीषहजय है ।

प्रश्न ६–चारित्र का लक्षण क्या है ?

उत्तर–कर्मों के आस्रव मे कारणभूत बाह्य और आभ्यन्तर क्रियाओ के त्याग करने को चारित्र कहते है ।

प्रश्न ७–सूत्र मे "स " पद देने का प्रयोजन क्या है ?

उत्तर–सूत्र मे आये "स " पद यह निर्धारण करता है कि वह सवर गुप्ति आदि के द्वारा ही हो सकता है अन्य उपायो से नही । इस कथन से तीर्थ यात्रा करना, अभिषेक करना, दीक्षा लेना, उपहार स्वरूप सिर को अर्पण करना, जल मे डूबना, सिरमुण्डन, शिखाधारण, कुदेवो की पूजा करना आदि के द्वारा सवर नही हो सकता ।

प्रश्न ८–सूत्र मे तृतीया विभक्ति का प्रयोग क्यो किया गया ?

उत्तर–गुप्ति समिति आदि सवर के अत्यत सहकारी साधकतम करण हैं अत सूत्र मे करण तृतीया विभक्ति का प्रयोग किया है ।

प्रश्न ९–सवर और निर्जरा का विशेष हेतु क्या है ?

उत्तर– तपसा निर्जरा च ॥ ३ ॥

सूत्रार्थ–तप से सवर और निर्जरा होती है ।

प्रश्न १–सूत्र मे च शब्द क्यो दिया है ?

उत्तर–तप के द्वारा एकदेश कर्मों का क्षय होता है तथा "च" शब्द सवर को सूचित करता है अर्थात् च शब्द सवर का प्रबोधक है ।

प्रश्न २–तप का दस धर्मों मे अन्तर्भाव होता है उसीसे सवर और निर्जरा हो जायेगी पुन यहाँ पर तप शब्द का ग्रहण क्यो किया ?

उत्तर–यद्यपि दसधर्मों मे तप गर्भित है, तथा उसी तप से सवर निर्जरा का कारण सिद्ध भी हो जाता है तथापि तप को अलग से ग्रहण करने की सार्थकता यह है कि तप नवीन कर्मो के सवरपूर्वक कर्मक्षय का कारण होता है तथा तप सवर का प्रधान कारण है ।

प्रश्न ३–तप को आचार्यों ने अभ्युदय का कारण कहा है, फिर वह सवर निर्जरा का कारण कैसे हो सकता है ?

उत्तर–इसमे कोई विरोध नही है क्योंकि एक पदार्थ भी अनेक कार्य करता है जैसे—एक ही छत्र छाया भी करता है तथा धूप और पानी से भी बचाता है । एक ही अग्नि पाचक और दाहक दोनो कार्य करती है, एक ही नारी पितृकुल और पतिकुल दोनो को उज्ज्वल करती है, ठीक इसी प्रकार एक ही तपश्चरण भी अभ्युदय और कर्मक्षय दोनो का हेतु है ।

प्रश्न ४–गुप्ति का स्वरूप बताइये ?

उत्तर– **सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः ॥ ४ ॥**

सूत्रार्थ–योगो का सम्यक् प्रकार से निग्रह करना गुप्ति है ।

प्रश्न १–योग और निग्रह का लक्षण क्या है ?

उत्तर–"कायवाङ्मन कर्मयोग " मन-वचन-काय की क्रिया को योग कहते है । योगो की स्वच्छन्द प्रवृत्ति को रोकना निग्रह है ।

प्रश्न २–सम्यक् पद सूत्र मे क्यो दिया ?

उत्तर–विषय सुख की अभिलाषा के लिये की जानेवाली प्रवृत्ति का निषेध करने के लिये "सम्यक्" पद सूत्र मे दिया है । सम्यक् पद सूत्र का विशेषण है ।

प्रश्न ३–"योग निग्रहो गुप्ति " इतना मात्र सूत्र कहने मे क्या हानि थी ?

उत्तर–सम्यक् विशेषण से रहित योग निग्रह सक्लेश कारक होने से तन्निमित्तक आस्रव को रोकने मे समर्थ नही होता है । सम्यक् विशेषण युक्त

मन-वचन-काय का निग्रह संक्लेशकारक नही होने से सवर का हेतु सिद्ध होता है। योग निग्रह गुप्ति मात्र कहने से गुप्ति से सवर की हानि का प्रसग आता है।

प्रश्न ४–गुप्ति के भेद कितने है ?

उत्तर–गुप्ति के तीन भेद है—(१) कायगुप्ति, (२) वचनगुप्ति, (३) मनोगुप्ति।

प्रश्न ५–जो मुनिराज गुप्ति के पालन मे असमर्थ है उनके निर्दोष सयम की प्रवृत्ति कैसे हो ?

उत्तर–जो मुनिराज गुप्ति के पालने मे असमर्थ है, उन्हे निर्दोष चारित्र/सयम पालन के लिये समिति मे प्रवृत्ति करना चाहिये ऐसी जिनेन्द्रदेव की आज्ञा है।

प्रश्न ६–समितियाँ कितनी है ?

उत्तर– **ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः ।।५।।**

सूत्रार्थ–ईर्यासमिति, भाषासमिति, एषणासमिति, आदाननिक्षेपणसमिति और उत्सर्गसमिति ये पाँच समितियाँ है।

प्रश्न १–यदि चलना, बोलना, खाना, रखना, उठाना, मलमूत्र त्यागना रूप क्रियाएँ ही समिति है तो सर्वससारी जीवो के समिति का प्रसग प्राप्त होता है ?

उत्तर–ऐसी शका करना ठीक नही क्योकि ईर्या, भाषा आदि क्रियाओ के साथ यहाँ "सम्यक्" पद की अनुवृत्ति पूर्व सूत्र ४ से करना चाहिये—सम्यक् ईर्या समिति, सम्यक्भाषा, सम्यक्एषणा सम्यक्आदाननिक्षेप और सम्यक्उत्सर्ग समिति।

प्रश्न २–सम्यक् ईर्यासमिति का लक्षण क्या है ?

उत्तर–जिसकी दृष्टि सावधान है, जिसने जीवो के स्थान को अच्छी तरह से जान लिया है, जिसका चित्त दया से आर्द्र है, एकाग्र है, ऐसे मुनि का तीर्थयात्रा, धर्मकार्य आदि के लिये चार हाथ आगे पृथ्वी को देखकर चलना सम्यक् ईर्यासमिति है। कहा भी है—

"परमाद तजि, चौकर मही लखि, समिति ईर्या ते चले" ।। -छ ६

प्रश्न ३–जीवस्थान कौन से है ?

उत्तर–एकेन्द्रिय-सूक्ष्म और बादर २, दो इन्द्रिय बादर, तीन इ बा , चार इ बा ३ और पचेन्द्रिय असैनी, सैनी = ७ । ये सातो ही पर्याप्त और अपर्याप्त दोनो प्रकार के होते है, अत जीवसमास के ७ X २ = १४ जीवसमास होते है ।

प्रश्न ४–सम्यक् भाषा समिति किसे कहते है ?

उत्तर–हित, मित और प्रिय वचन बोलना अर्थात् असदिग्ध, असूया, मात्सर्य आदि से रहित सत्य, कर्णप्रिय, सशय के अनुत्पादक, कषाय के अनुत्पादक, सभा स्थान के योग्य, मृदु, धर्म अविरोधी, देशकाल आदि के योग्य हास्य आदि से रहित वचनो कों बोलना सम्यक् भाषा समिति है । कहा भी है—

"जग सुहितकर सब अहितहर श्रुति सुख सब मशय हरै ।
भ्रम रोग हर जिनके वचन मुख चन्द्रतै अमृत झरै" ।। -छ ६

प्रश्न ५-सम्यक् एषणा समिति का स्वरूप स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर-छियालीस दोषो से रहित, बना याचना किये, शरीर के दिखाने मात्र से प्राप्त अमृतसज्ञक उद्गम, उत्पादन आदि आहार के दोषो से रहित, अस्पृश्य वस्तु के सस्पर्श/ससर्ग से रहित, दूसरे के द्वारा बनाये गये भोजन को योग्य काल मे ग्रहण करना सम्यक् एषणा समिति है—

"छियालीस दोष बिना सुकुल श्रावक तने घर अशन को ।
ले तप बढ़ावन हेतु नही तन पोषते तजि रसन को ।। -छ ६

प्रश्न ६–सम्यक आदान-निक्षेपणसमिति का स्वरूप बताइये ?

उत्तर–धर्म के उपकरणो को मयूरपख की पीछी से अथवा पीछी के अभाव मे कोमलवस्त्र आदि से अच्छी तरह झाड़-पोछकर उठाना और रखना सम्यक् आदाननिक्षेप समिति है—

"शुचिज्ञान सयम उपकरण लखि के धरे, लखि के गहे" ।

प्रश्न ७–सम्यक् उत्सर्ग समिति किसे कहते हैं ?

उत्तर–जीव रहित स्थान मे मल-मूत्र का त्याग करना सम्यक् उत्सर्ग समिति है । कहा भी है—

"निर्जन्तु थान विलोक, तन मल मूत्र श्लेषम परिहरै" ।

प्रश्न ८–समिति पालन करने से क्या लाभ है ?

उत्तर–पाँच समितियाँ प्राणिपीड़ा के परिहार का उपाय हैं अत पाँच समितिरूप क्रियाओ मे प्रवृत्ति करने वाले मुनिराज के असयम निमित्त होने वाले कर्मों के आस्रव का अभाव हो जाने से सवर होता है ।

प्रश्न ९–समिति प्रवृत्तिरूप है, प्रवृत्ति से सवर कैसे हो सकता है, क्योंकि सवर तो निर्वृत्ति से होता है ?

उत्तर–समिति मे अशुभ की निवृत्ति होने से वह सवर रूप ही है ।

प्रश्न १०–सवर के कारणभूत दस धर्म कौन से है ?

उत्तर– उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतप-
स्त्यागाकिञ्चन्य ब्रह्मचर्याणि धर्मः ॥ ६ ॥

सूत्रार्थ–उत्तमक्षमा, उत्तममार्दव, उत्तमआर्जव, उत्तमशौच, उत्तमसत्य, उत्तमसयम, उत्तमतप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिञ्चन्य और उत्तम ब्रह्मचर्य ये दस धर्म है ।

प्रश्न १–दसधर्मों को सवर के हेतु मे स्वीकार किसलिये किया है ?

–दसधर्मों का कथन समितियो मे प्रवृत्ति करनेवाले के प्रमाद का परिहार करने के लिये कहा है ।

प्रश्न २–सूत्र मे "धर्म" पद एकवचन मे क्यो दिया ?

उत्तर–"धर्म" एक ही है, उसके अग दस है, इसलिये "धर्म" एक वचन दिया है । दसधर्म कहा जाता है वह अगो मे अगी के उपचार की अपेक्षा कहा जाता है, धर्म एक ही है ।

प्रश्न ३–उत्तम क्षमाधर्म का लक्षण क्या है ?

उत्तर–शरीर की स्थिति के कारण खोज करने के लिये परकुलो मे जाते हुए भिक्षु को दुष्ट जन गाली-गलौज करते है, उपहास करते है, तिरस्कार करते है, मारते-पीटते है और शरीर को तोड़ते-मरोड़ते है तो भी उनके कलुषता का उत्पन्न न होना उत्तम क्षमा है ।

प्रश्न ४–उत्तम मार्दवधर्म का लक्षण क्या है ?

उत्तर–जाति आदि मदो के आवेशवश होने वाले अभिमान का अभाव करना उत्तम मार्दव धर्म है । उक्त च—

"जात्यादिमदावेशादभिमानाभावो मार्दव माननिर्हरणम्" ॥ -स सि

प्रश्न ५–उत्तम आर्जव धर्म का लक्षण क्या है ?

उत्तर–योगस्यावक्रताआर्जवम्—योगो का वक्र न होना उत्तम आर्जव धर्म है ।

प्रश्न ६–उत्तम शौच धर्म किसे कहते है ?

उत्तर–प्रकर्षलोभान्निवृत्ति शौच—प्रकर्ष लोभ का त्याग करना उत्तम शौच धर्म है ।

प्रश्न ७–मनोगुप्ति और शौच धर्म मे क्या अन्तर है ?

उत्तर–मनोगुप्ति मे सम्पूर्ण मानसिक व्यापारो का निरोध किया जाता है, किन्तु जो सम्पूर्ण मानसिक व्यापारो का निरोध करने मे समर्थ नही है, उसको दूसरो के पदार्थों मे लोभ का त्याग करने के लिये शौच धर्म धारण का उपदेश है, यही दोनो मे अन्तर है ।

प्रश्न ८–उत्तम सत्य धर्म का स्वरूप क्या है ?

उत्तर– "सत्सु प्रशस्तेषु जनेषु साधु वचन सत्यमित्युच्यते" ।

अर्थात् सज्जन पुरुषो के साथ साधु वचन बोलना उत्तम सत्य धर्म है ।

प्रश्न ९–भाषा समिति मे उत्तम सत्यधर्म का अन्तर्भाव क्यो नही किया ?

उत्तर–भाषा समिति के अनुसार प्रवृत्ति करनेवाले मुनि साधु असाधु दोनो प्रकार के मनुष्यो मे भाषा का व्यवहार करते हुए हितकारी परिमित वचन बोलते है यदि साधु विधर्मी (असाधु) के साथ अहितकारी अपरिमित वचन बोलते है तो राग-द्वेष, कलह आदि अनर्थ होते है । जिन वचनो से राग-द्वेष उत्पन्न होते है तब भाषा समिति कैसे रह सकती है, अर्थात् नही हो सकती है । सत्यधर्म के अनुसार प्रवृत्ति करने वाले मुनि सज्जन पुरुष, दीक्षित या उनके भक्तो मे साधु सत्य वचन बोलते हुए भी ज्ञान चारित्र के शिक्षण आदि के निमित्त से बहुविध कर्तव्यो की सूचना देते है और यह सब धर्मवृद्धि के अभिप्राय से करते है । अत सत्यधर्म का भाषासमिति मे अन्तर्भाव नही किया ।

प्रश्न १०–भाषा समिति और सत्य महाव्रत मे क्या अन्तर है ?

उत्तर–भाषासमिति वाला साधु-असाधु पुरुष दोनो के साथ सभाषण करेगा परन्तु उसके वचन परिमित होगे और सत्य महाव्रती साधुपुरुषो मे ही वचन का प्रयोग करेगा लेकिन उसके वचन अपरिमित भी हो सकते है ।

प्रश्न ११–सयमधर्म का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–समितियो मे प्रवृत्ति करनेवाले मुनि के उनका परिपालन करने के लिये जो प्राणियो का और इन्द्रियो का परिहार होता है वह सयम धर्म है । और भी कहा है—

> वदसमिदिकसायाण, दडाण तहिंदियाण पचण्ह ।
> धारणपालणणिग्गह चागजओ सजमो भणिओ ।। ४६५ ।। –गो जी

अर्थात् अहिसादि पॉच व्रतो का धारण करना, पॉच समिति का पालन करना, कषायो का निग्रह करना, मन-वचन-काय तीन दण्ड का त्याग करना तथा पॉच इन्द्रियो को जीतना सयम कहलाता है ।

प्रश्न १२–सयम और चारित्र मे क्या भेद है ?

उत्तर–सामान्य से चारित्र और सयम दोनो अविनाभावी है, दोनो मे भेद है भी और नही भी है । फिर भी विशेष रूप से देखने पर दोनो मे कथचित् अन्तर है—

१ चारित्र और सयम दोनो मे शब्दनयापेक्षा भेद है समभिरूढ नयापेक्षा दोनो अभेद है ।

२ समीचीन प्रवृत्ति सयम है अत सयम प्रवृत्यात्मक है जबकि चारित्र निर्वृत्यात्मक है—"असुहादो विणिवित्ति"

३ किसी के चारित्र हो और सयम नही भी हो ऐसा हो सकता है जैसे कोई चारित्रधारी होकर अपने योग्य कार्य नही करता और अयोग्य कार्य करता है ।

४ चारित्र बाह्य मे देखा जा सकता है, सयम नही ।

प्रश्न १३–उत्तम तप "धर्म" का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–"कर्मक्षयार्थं तप्यते इति तप " कर्मक्षय के लिये जो तपा जाता है वह उत्तम तप धर्म कहलाता है ।

प्रश्न १४–उत्तम त्याग धर्म का लक्षण क्या है ?

उत्तर–"सयतस्य योग्य ज्ञानादि दान त्याग " अर्थात् सयत के योग्य ज्ञानोपकरण (शास्त्रादि) सयमोपकरण पिछी और शोचोपकरण कमण्डलु आदि का दान करना त्याग है ।

प्रश्न १५–उत्तम आकिञ्चन्य धर्म का लक्षण क्या है ?

उत्तर–जिसका कुछ नही है वह अकिचन है और अकिचन का भाव या कर्म आकिञ्चन्य धर्म है । अर्थात् "जो शरीरादिक उपात्त हैं उनमे भी सस्कार का त्याग करने के लिये यह मेरा है "इस अभिप्राय का त्याग करना उत्तम आकिञ्चन्य धर्म है" ।

प्रश्न १६–उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–अनुभूत स्त्री का स्मरण न करने से, स्त्री विषयक कथा के सुनने का त्याग करने से और स्त्री से सटकर सोने व बैठने का त्याग करने से

परिपूर्ण ब्रह्मचर्य धर्म होता है । अथवा स्वतन्त्रवृत्ति का त्याग करने के लिये गुरुकुल मे निवास करना ब्रह्मचर्य धर्म है ।

प्रश्न १७-"धर्म" किसे कहते है ?

उत्तर-धर्म शब्द धृ धातु से बना है जिसका अर्थ है धरना अत धर्म शब्द का अर्थ है—जो धरता है वह धर्म है अर्थात् जो जीवो को संसार के दु:खो से उठाकर मोक्षसुख मे धरता है उसे धर्म कहते हैं । (यह धर्म शब्द का व्युत्पत्ति सिद्ध अर्थ है) ।

परमार्थ से जीव की सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्ररूप विशुद्धि को धर्म कहते है ।

प्रश्न १८-ये क्षमादि १० धर्म उत्तम ही होते है, पुन इनके साथ उत्तम विशेषण किसलिये लगाया है ?

उत्तर-यद्यपि क्षमादि दस धर्म उत्तम ही है तथापि किसी लौकिक फल की अपेक्षा से पाले गये क्षमा आदि धर्म उत्तम नही होते । जैसे शत्रु को बलवान जानकर क्षमाभाव धारण करना उत्तमक्षमा नही है । अत **प्रत्यक्ष** फल लाभ आदि की अपेक्षा न होने से धर्म के साथ "उत्तम" पद लगाया है ।

प्रश्न १९-मुनिगण उपसर्ग आदि के निमित्त होने पर क्रोध, मान आदि विभाव परिणामो को कर सकते है या नही ?

उत्तर-सतप्त लोहे के समान आत्मीय गुणों के नाशक क्रोधादि के निमित्त मिल जाने पर भी अपने हित के इच्छुक मुनिगण उत्तमक्षमा आदि धर्मों को छोड़कर क्रोधादि विभाव परिणाम को नही करे, ऐसी जिनेन्द्राज्ञा है ।

प्रश्न २०-तपस्वी का क्रोध क्या हानि कर सकता है ? धर्म क्या लाभ कर सकता है ?

उत्तर-मुनिराज तपस्वी होकर क्रोधादि करते है तो उनकी दुर्गति द्वीपायन मुनि के समान होती है । ससार की वृद्धि होती है । और उत्तम क्षमादि धर्म को धारण करने वाले महामुनि पाडव, गजकुमार के समान अनन्त ससार का नाशकर मुक्ति को प्राप्त करते है ।

प्रश्न २१-सवर की कारणभूत अनुप्रेक्षा कितनी तथा कौनसी है ?

उत्तर- **अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्त्रव-**
संवरनिर्जरालोकबोधिदुर्लभधर्मस्वाख्या-
तत्त्वानुचिंतनमनुप्रेक्षाः ॥ ७ ॥

सूत्रार्थ–अनित्य, अशरण, ससार, एकत्व, अशुचि, आस्रव, सवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ, धर्मस्वाख्या तत्त्व का बार-बार चिन्तन करना (ये १२ सवर की कारण-भूत) अनुप्रेक्षा है ।

प्रश्न १–अनुप्रेक्षा किसे कहते है ?

उत्तर–स्वाख्या—निज-निज नाम वाले अनित्य अशरण आदि इनके तत्त्व-अर्थ का बार-बार चिन्तन, पुन -पुन स्मरण अनुप्रेक्षा है ।

प्रश्न २–अनित्य भावना / अनुप्रेक्षा का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–ये समुदाय रूप शरीर, इन्द्रिय विषय, उपभोग-परिभोग द्रव्य जल के बुदबुदे के समान अनवस्थित, क्षणभगुर, विनाशीक स्वभाव वाले होते है , दुष्टजन की मित्रता आदि के समान अनित्य अध्रुव है । मोहवश अज्ञ प्राणी इनमे नित्यता का अनुभव करता है परन्तु वस्तुत. आत्मा के ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग के सिवा इस ससार मे कोई भी पदार्थ ध्रुव नही है इस प्रकार चिन्तन करना अनित्यानुप्रेक्षा है । कहा भी है—

"एक सदाशाश्वतिको ममात्मा"

एगो मे सासगो आदा, णाणदसणलक्खो ।

सेसा मे बाहिरा भावा, सव्वे सजोगलक्खणा ।। १०२ ।। -नि सा

प्रश्न ३–अनित्य अनुप्रेक्षा का फल क्या है ?

उत्तर–जो ससार-शरीर-भोगो की अनित्यता का बार-बार स्मरण/ चिन्तन करता है उसके शरीर आदि मे आसक्ति का अभाव होता है तथा भोग कर छोड़े हुए गन्ध-माला आदि के समान इष्टवियोग मे सन्ताप नही होता है ।

प्रश्न ४–अशरण अनुप्रेक्षा का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–जिस प्रकार एकान्त मे क्षुधित और मास के लोभी बलवान व्याघ्र के द्वारा पकड़े गये मृगशावक के लिये कोई भी शरण नही होता उसी प्रकार जन्म-जरा-मृत्यु और व्याधि आदि दु खो के मध्य परिभ्रमण करने वाले जीव का कोई भी शरण नही है । एक मात्र धर्म ही मुझे शरण है ।

कहा भी है— पुनरपि जनम पुनरपि मरण, पुनरपि जननी जठरे शयनम् ।
इह ससारे खलु दुस्तारे त्राता नहि भव कारागारे ।।

और भी कहा है—

दलबल देवी देवता, मातपिता परिवार ।
मरती बिरिया जीव को कोई न राखनहार ।। -भूधर कवि

प्रश्न ५–अशरण भावना के चिन्तन का फल क्या है ?

उत्तर–अशरण भावना का चिन्तन करने वाला जीव "मैं सदा अशरण हूँ" ऐसा विचारकर सदा वैराग्यवान् रहता है और ससार के कारणभूत पदार्थों मे उसकी ममता नही रहती है, वह भगवान् अरहत प्रणीत मार्ग मे ही प्रयत्नशील रहता है ।

प्रश्न ६–ससार भावना का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–जिस प्रकार रगस्थल मे नट नानारूप धारण करता है उसी प्रकार पचपरावर्तन रूप ससार (द्रव्य-क्षेत्र-काल भव और भाव) मे यह जीव अनेक कुल और योनियो मे भ्रमण करता हुआ कर्मरूप मन्त्र से प्रेरित होकर पिता होकर भाई, पुत्र और पौत्र होता है । माता होकर भगिनी, भार्या और लड़की होती है । स्वामी होकर दास और दास होकर स्वामी भी होता है । अधिक कहने से क्या प्रयोजन स्वय अपना पुत्र होता है । इस प्रकार ससार के स्वभाव का चिन्तन करना ससार-अनुप्रेक्षा है । छहढ़ाला मे लिखा भी है—

चहुँगति दुख जीव भरे हैं, परिवर्तन पञ्च करे हैं ।
सब विधि ससार असारा, यामे सुख नाहि लगारा ।।

प्रश्न ७–ससार भावना के चिंतन का फल क्या है ?

उत्तर–ससार भावना का चितक ससार के दुखो से उद्विग्न हो, इससे विरक्त हो ससार नाश के लिए पुरुषार्थ करता है ।

प्रश्न ८–एकत्व अनुप्रेक्षा का स्वरूप बताइये ?

उत्तर–जन्म-जरा और मरण की आवृत्ति रूप महादु ख का अनुभव करने के लिये मै अकेला ही हूँ, यहाँ न कोई मेरा स्व है, न कोई पर है, मै अकेला ही जन्मता हूँ, अकेला ही मरता हूँ । बन्धु, मित्र आदि मरणोपरान्त श्मशान से आगे नही जाते । धर्म ही एक मात्र मेरा सहायक है जो सदाकाल मेरे साथ रहता है, धर्म कभी साथ छोड़ने वाला नही है । इस प्रकार चिन्तन करना एकत्व अनुप्रेक्षा है ।

जन्मै मरै अकेला चेतन, सुख-दुख का भोगी ।
और किसी का क्या, इकदिन यह, देह जुदी होगी ।।
कमला चलत न पैड जाय, मरघट तक परिवारा ।
अपने-अपने सुख को रोवै, पिता पुत्र दारा ।।
ज्यो मेले मे पथीजन मिल नेह फिरै धरते ।
ज्यो तरवर पै रैन बसेरा, पछी आ करते ।।

कोस कोई दो कोस कोई उड़ फिर थक-थक हारै ।

जाय अकेला हस सग मे, कोई न पर मारै ।। ११ ।।

-बा भा मगत ।।

प्रश्न ९-एकत्व अनुप्रेक्षा का फल क्या है ?

उत्तर-एकत्व भावना का चिन्तन करनेवाले जीव के स्वजन मे प्रीति और परजन मे अप्रीति रूप परिणाम नही होते, अत नि सगता को प्राप्त होकर वह मुक्ति के लिये प्रयत्न करता है ।

प्रश्न १०-अन्यत्व अनुप्रेक्षा का स्वरूप बताइये ?

उत्तर-जल पय ज्यो जिय तन मैला, पै भिन्न-भिन्न नाही भेला ।

त्यो प्रगट जुदै धन धामा, क्यो व्है इक मिल सुत रामा ।। छ ढ़ा

शरीर और आत्मा मे बन्ध अपेक्षा अभेद होने पर भी लक्षण के भेद से 'मै' अन्य हूँ, शरीर अन्य है, मै चैतन्य हूँ शरीर जड़ है, मैं अतीन्द्रिय हूँ शरीर ऐन्द्रियिक है । शरीर अज्ञ है, मैं ज्ञाता हूँ । शरीर अनित्य है, मैं नित्य हूँ । शरीर आदि अन्तवाला है, मै अनादि अनत हूँ । ससार मे परिभ्रमण करते हुए अनन्त शरीर अतीत हो गये उनसे भिन्न वह मै ही हूँ, ऐसा बार-बार चितन करना अन्यत्व अनुप्रेक्षा है ।

प्रश्न ११-अन्यत्व अनुप्रेक्षा का फल क्या है ?

उत्तर-अन्यत्व भावना के चिन्तन से भेद विज्ञान की सिद्धि होती है । इससे तत्त्वज्ञानपूर्वक वैराग्य भावना प्रकर्ष होने पर मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है ।

प्रश्न १२-अशुचि भावना का स्वरूप बताइये ?

उत्तर-यह शरीर अत्यन्त अशुचि पदार्थो की योनि है । शुक्र और शोणितरूप अशुचि पदार्थों से वृद्धि को प्राप्त हुआ है, शौचगृह के समान अशुचि पदार्थों का भाजन है । त्वचामात्र से आच्छादित है । अति दुर्गंध रस को बहानेवाला झरना है । अगार के समान अपने आश्रय मे आये पदार्थों को अति शीघ्र नष्ट करता है । स्नान, इत्र, फुलेल आदि सुगध पदार्थों द्वारा भी इसकी अशुचिता को दूर करना शक्य नही है, किन्तु अच्छी तरह धारण किया गया रत्नत्रय जीव की आत्यन्तिक शुद्धि को प्रकट करते है इसी के लिये कहा है—"स्वभावतो शुचौ काये, रत्नत्रय पवित्रिते" ।

प्रश्न १३-अशुचि भावना के चिन्तन का फल क्या है ?

उत्तर-अशुचि भावना करने वाला जीव शरीर से विरक्त होता हुआ जन्मोदधि से तरने के लिये चित्त को लगाता है ।

प्रश्न १४–आस्रव अनुप्रेक्षा का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–मिथ्यात्व आदि भावो से कर्मो का आस्रव होता है । आस्रव इहलोक-परलोक दु खदायी है । महानदी के प्रवाह के वेग के समान तीक्ष्ण है तथा इन्द्रिय, कषाय और अव्रतरूप है । ये आस्रव ही ससार के मूल कारण है इस प्रकार आस्रव के दोषो का चिन्तन करना आस्रव अनुप्रेक्षा है ।

मोहनीद के जोर, जगवासी घूमै सदा ।
कर्मचोर चहुँ ओर, सरवस लूटै सुध-नही ।।७।।

प्रश्न १५–आस्रव भावना के चिन्तन का फल क्या है ?

उत्तर–आस्रव भावना का चिन्तन करने वाले जीव कछुए के समान अपनी आत्मा को सवृत कर लेते है और आस्रव के दोषो से बच जाते है ।

प्रश्न १६–सवर अनुप्रेक्षा का स्वरूप बताइये ?

उत्तर–जिस प्रकार महा-समुद्र मे नाव के छिद्र के नही ढके रहने पर क्रम से झिरे हुए जल से व्याप्त होने पर उनके आश्रय मे बैठे हुए मनुष्यो का विनाश अवश्यभावी है और छिद्र के ढँके रहने पर उपद्रव रहित इष्ट स्थान को प्राप्त होना निश्चित है, उसी प्रकार कर्मागम के द्वारा ढक जाने पर आत्मा का मुक्त होना निश्चित हो जाता है, उस मोक्षमार्गी का मोक्षगमन अवश्यभावी है, ऐसा सवर के गुणो का चिन्तन करना सवर अनुप्रेक्षा है । सवर ही कल्याण का मार्ग है ।

सतगुरु देय जगाय, मोहनीद जब उपशमै ।
तब कुछ बनै उपाय, कर्म-चोर आवत रुकैं ।। ८ ।।

प्रश्न १७–सवर भावना के चिन्तन का फल क्या है ?

उत्तर–सवर भावना के चिन्तन से मोक्षमार्ग मे प्रवृत्ति होती है और अन्त मे मोक्षपद की प्राप्ति होती है ।

प्रश्न १८–निर्जरा-अनुप्रेक्षा का स्वरूप बताइये ?

उत्तर–सविपाक निर्जरा से आत्मा का कुछ भला नही होता, आत्मा का कल्याण अविपाक निर्जरा से ही होता है, ऐसा चिन्तन करना निर्जरा अनुप्रेक्षा है । कहा भी है—

ज्यो सरवर जल रुका सूखता, तपन पड़ै भारी ।
सवर रोकै कर्म निर्जरा ह्वै सोखन हारी ।।
उदय भोग सविपाकसमय, पक जाय आम डाली ।
दूजी है, अविपाक पकावै, पालविषै माली ।। २० ।।

पहली सबके होय, नही कुछ सरै काम तेरा ।
दूजी करै जु उद्यम करकै, मिटे जगत् फेरा ।।
सवर सहित करो तप प्रानी, मिलै मुकत रानी ।
इस दुलहिन की यही सहेली, जानै सब ज्ञानी ।। २१ ।।

प्रश्न १९–लोकभावना का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–चारो ओर से अनन्त अलोककाश के बहुमध्यदेश मे स्थित चौदह राजू प्रमाण लोक के आकार और उसके स्वभाव का बार-बार चिन्तन करना लोक-अनुप्रेक्षा है । कहा है—

चौदह राजू उतुग नभ, लोकपुरुष सठाण ।
तामै जीव अनादितै, भरमत है बिन ज्ञान ।। ११ ।।

प्रश्न २०–लोक भावना के चिन्तन का फल क्या है ?

उत्तर–लोक भावना के चिन्तन से तत्त्वज्ञान की विशुद्धि होती है ।

प्रश्न २१–बोधि-दुर्लभ भावना का स्वरूप बताइये ?

उत्तर–एक निगोद शरीर मे सिद्ध राशि से अनन्तगुणे जीव है। इस प्रकार सर्वलोक स्थावर जीवो से भरा है। अत इस लोक मे त्रस पर्याय का पाना इतना दुर्लभ है जितना कि बालुका के समुद्र मे पड़ी हुई वज्रसिकता की कणिका का प्राप्त होना दुर्लभ है। उसमे भी विकलेन्द्रिय जीवो की बहुलता होने के कारण जैसे गुणो मे कृतज्ञता गुण का प्राप्त होना बहुत दुर्लभ होता है वैसे ही पञ्चेन्द्रिय पर्याय का प्राप्त होना बहुत दुर्लभ है । उसमे भी पशु-पक्षी की बहुलता होने से, जिस प्रकार चौपथ पर रत्नराशि का प्राप्त होना अति कठिन है, उसी प्रकार मनुष्य पर्याय का प्राप्त होना भी अति कठिन है । और मनुष्य पर्याय से एक बार च्युत हो जाने पर पुन उसकी उत्पत्ति होना उतना ही कठिन है जितना कि जले हुए वृक्ष के पुद्गलो का पुन उस वृक्ष पर्यायरूप से उत्पन्न होना कठिन होता है । कदाचित् मनुष्य पर्याय पुन प्राप्त भी हो जाय तो भी देश, कुल, इन्द्रियसम्पत् और निरोगता इनका प्राप्त होना उत्तरोत्तर दुर्लभ है । इन सबके मिलने पर भी यदि समीचीन धर्म की प्राप्ति न होवे तो जिस प्रकार दृष्टि के बिना मुख व्यर्थ है उसी प्रकार मनुष्य जन्म का प्राप्त होना व्यर्थ है। इस प्रकार अति कठिनता से प्राप्त होने योग्य उस धर्म को प्राप्त कर विषयसुख मे रममाण होना भस्म के लिये चन्दन को जलाने के समान निष्फल है। कदाचित् विषय सुख से विरक्त हो भी जाय तो इस जीव के लिये तप की भावना, धर्म की प्रभावना और सुख पूर्वक मरणरूप समाधि का होना अतिदुर्लभ है। इसके होने पर ही बोधिलाभ सफल है, ऐसा विचार करना बोधिदुर्लभ अनुप्रेक्षा है—

एक जथारथ ज्ञान सु दुर्लभ है जग में अधिकाना ।
थावर त्रस दुर्लभ निगोद तै नरतन सगति पाना ।।
कुल श्रावक रत्नत्रय दर्लभ अरु षष्ठम गुनथाना ।
सबतै दुर्लभ आतमज्ञान सु जो जगमाहि प्रधाना ।।

प्रश्न २२–बोधिदुर्लभ भावना के चिन्तन का फल क्या है ?

उत्तर–बोधिदुर्लभभावना का चिन्तन करने वाले जीव के बोधि की प्राप्ति होने पर प्रमाद कभी भी नही होता ।

प्रश्न २३–धर्मभावना का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–जिनेन्द्रदेवकथित अहिसा लक्षण धर्म है । इस धर्म का सत्य आधार है, विनय उसकी जड़ है, क्षमा उसका बल है, ब्रह्मचर्य से रक्षित है, उपशम की उसमे प्रधानता है, नियति उसका लक्षण है परिग्रह रहितपना उसका आलम्बन है । इस पावन धर्म की प्राप्ति नही होने से ही यह जीव अनादि ससार मे परिभ्रमण करते है । परन्तु धर्म लाभ होने पर नाना प्रकार के अभ्युदयो की प्राप्ति पूर्वक मुक्ति की प्राप्ति सुनिश्चित होती है ऐसा चिन्तन करना धर्मस्वातशतत्वानुप्रेक्षा है ।

प्रश्न २४–धर्मभावना के चिन्तन का फल क्या है ?

उत्तर–धर्मभावना का चिन्तन करने वाले जीव के धर्मानुरागवश सदा धर्म प्राप्ति का प्रयत्न होता है ।

प्रश्न २५–सक्षिप्त मे बारह भावनाओ का स्वरूप बताइये ?

उत्तर–जो नित्य नही है उसे अनित्य कहते है । शरण नही है, उसे अशरण कहते है ।

ससरण पर्यटन जिसमे होता है उसे ससार कहते हैं । एक आत्मा का भाव एकत्व है । शरीरादि आत्मा से भिन्न है यह अन्यत्व है । कायादि की अपवित्रता अशुचि है । कर्मों का आगमन आस्रव है । नवीन कर्मो को नही आने देना सवर है । एकदेश कर्मों का गलन निर्जरा है । जीवादि पदार्थ जहाँ देखे जावे वह लोक है । ससार, शरीर और भोगो से विरक्ति बोधि है, इस बोधि की दुर्लभता बोधिदुर्लभता है । उत्तमपद मे धरता है वह धर्म है । इनका निज-निज नाम के अनुसार चिन्तन करना अनित्यादि अनुप्रेक्षा है ।

प्रश्न २६–परीषह सहन क्यो करना चाहिये ?

उत्तर-मार्गाच्यवननिर्जरार्थं परिषोढव्याः परीषहाः ।। ८ ।।

सूत्रार्थ–मार्ग से च्युत न होने के लिये और कर्मों की निर्जरा करने के लिये जो सहन करने योग्य हो वे परीषह है ।

प्रश्न १–परीषहो का सहन आवश्यक क्यो है ?

उत्तर– अदु:खभावित ज्ञान क्षीयते दु:खसन्निधौ ।
तस्माद्यथाबल दु खैरात्मान भावयेन्मुनिः ।। १०२ ।। स०त०

सुखपूर्वक प्राप्त किया ज्ञान दुख आने पर विस्मृत हो जाता है इसलिये परीषहो के सहन का अभ्यास आवश्यक है । परीषह सहन का अभ्यास नहीं हो तो आत्मा विपत्ति आने पर मोक्षमार्ग से च्युत हो सकता है । और मोक्षमार्ग से च्युत होने पर कर्मों का सवर और निर्जरा कभी नही हो सकते हैं अत. परीषहो पर विजय प्राप्त करना आवश्यक है ।

प्रश्न २–परीषह सहन का लाभ क्या है ?

उत्तर–१ क्षुधा, पिपासा आदि को सहन करने वाले ग्रहीत व्रतो से कभी च्युत नही होते हैं ।

२ मोक्षमार्ग के सतत अभ्यासरूप परिचय के द्वारा कर्मागमद्वार को रोकते है, मवर करते है ।

३ औपक्रमिक कर्मफल को अनुभव करने वाले क्रम से कर्मों की निर्जरा करके मोक्ष को प्राप्त होते है ।

प्रश्न ३–परीषह किसे कहते है ?

उत्तर–"मार्गाच्यवननिर्जरार्थं" मार्ग से च्युत नही होने व निर्जरा के लिये जो चारो तरफ से सहन किया जावे वह परीषह कहलाता है ।

प्रश्न ३–परीषह कितने व कौनसे है ?

उत्तर– **क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्या-निषद्याशय्याक्रोशवधयाचनालाभरोगतृणस्पर्श-मलसत्कार पुरस्कार प्रज्ञाज्ञानादर्शनानि ॥ ९ ॥**

सूत्रार्थ–१ क्षुधा, २ पिपासा, ३ शीत, ४ उष्ण, ५ दशमशक, ६ नग्नता, ७ अरति, ८ स्त्री, ९ चर्या, १० निषद्या, ११ शय्या, १२ आक्रोश, १३ वध, १४ याचना, १५ अलाभ, १६ रोग, १७ तृणस्पर्श, १८ मल, १९ सत्कारपुरस्कार, २० प्रज्ञा, २१ अज्ञान और २२ अदर्शन, ये २२ परीषह है ।

प्रश्न १–क्षुधा किसे कहते है, क्षुधा परीषह का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–जो मुनि निर्दोष आहार ग्रहण करता है और निर्दोष आहार के नही मिलने पर या अल्पमात्रा मे मिलने पर क्षुधा वेदना को प्राप्त नही होते, अकाल या अदेश मे जो भिक्षा लेने की इच्छा नहीं करते तथा जो भिक्षालाभ

की अपेक्षा उसके अलाभ को गुणकारी मानते है उनका क्षुधाजन्य बाधा का चिन्तन नही करना क्षुधा परीषह जय कहलाता है । कहा भी है—

अनशन ऊनोदर तप पोषत पक्षमास दिन बीत गये है ।
जो नहिं बने योग्य भिक्षा विधि सूख अग सब शिथिल भये है ।।
तब तहाँ दुस्सह भूख की वेदन सहत साधु नही नेक नये है ।
तिनके चरण-कमल प्रति प्रतिदिन हाथ जोड़ हम शीश नये है ।। ३ ।।

प्रश्न २-पिपासा किसे कहते है, पिपासा परीषह का स्वरूप क्या है ?

उत्तर-तृषा/पानी आदि पीने की इच्छा पिपासा कहलाती है । जिस मुनि ने जल स्नान, जल-अवगाह, जल से सिचन करने का त्याग कर दिया है जो अतिखारे, अतिस्निग्ध, अतिरूक्ष, प्रकृति विरुद्ध आहार, ग्रीष्मकालीन आतप पित्तज्वर और अनशन आदि के कारण उत्पन्न हुई तीव्र पिपासा (प्यास) का प्रतीकार करने की इच्छा रहित है और जो प्यास रूपी अग्निशिखा को सन्तोष रूपी, शीतल सुगन्धित जल से शान्त करते है, उन मुनिराज के तृषा परीषहजय होता है ।

पराधीन मुनिवर की भिक्षा परघर लेय कहै कछु नाही ।
प्रकृति विरुद्ध पारणा भुजत बढत प्यास की त्रास तहॉ ही ।।
ग्रीषमकाल पित्त अतिकौपै लोचनदोय फिरे जब जाही ।
नीर न चहै सहै ऐसे मुनि जयवन्ते वर्तो जगमाही ।। ४ ।।

प्रश्न ३-शीत परीषह जय का स्वरूप क्या है ?

उत्तर-जिन मुनिराज ने पाँच प्रकार के वस्त्रो का त्याग कर दिया है, पक्षी के समान जिनका आवास निश्चित नही है, जो वर्षा आदि तीनो ही ऋतुओ मे वृक्षमूल, शिलातल, चौपथ आदि पर निवास करते हुए शीतल हिमपात या झझावात होने पर भी अग्नि आदि के द्वारा शीत का प्रतीकार करने की इच्छा नही करते है तथा पहले अनुभव किये गये शीत के प्रतीकार के हेतु भूत वस्तुओ का जो स्मरण भी नही करते है और जो ज्ञानभावना रूपी गर्भगृह मे निवास करते है उनके शीत परीषह जय होता है—

शीतकाल सबही तन कम्पत खड़े तहाँ वन वृक्ष डहे है ।
झझा वायु चलै वर्षा ऋतु वर्षत बादल झूम रहे है ।।
तहॉ धीर तटनी तट चौपट ताल पाल परकर्म दहे है ।
सहै सभाल शीत की बाधा ते मुनि तारण-तरण कहे है ।। ५ ।।

प्रश्न ४-पॉच प्रकार के वस्त्र कौनसे है ?

उत्तर-चर्मज, वल्कल, रोमज, तृण और सूतादि पाँच प्रकार के वस्त्र होते है ।

प्रश्न ५-मुनिराज तीन ऋतुओ मे तीन योग कौन से धारण करते हैं ?

उत्तर-मुनिराज ग्रीष्म-ऋतु मे—आतापन योग । शीत-ऋतु मे-अभ्राव-काश योग और वर्षा-ऋतु मे—वृक्षमूल योग धारण करते है ।

प्रश्न ६-उष्ण परीषह जय का स्वरूप क्या है ?

उत्तर-छायारहित, वृक्षो से युक्त वन के मध्य जो अपनी इच्छानुसार प्राप्त हुए है, अनशन आदि की अधिकता से जिसे दाह उत्पन्न हुई है, दावाग्निजन्य दाह, अति कठोर वायु, और आतप के कारण जिनके गले मे शोष उत्पन्न हुआ है, जो उसके प्रतीकार के बहुत से अनुभूत हेतुओ को जानता हुआ भी उन पदार्थों का चिन्तन भी नही करता है, जिसका हृदय प्राणियो की पीडा के परिहार मे लगा हुआ है उस साधु के चारित्र रक्षणरूप उष्ण परीषह जय होता है ।

भूख प्यास पीडे उरअतर प्रजुलै आत देह सब दागै ।
अग्नि सरूप धूप ग्रीषम की ताती वायु झालसी लागै ॥
तपै पहाड़ ताप तन उपजति कौपे पित्त दाह ज्वर जागै ।
इत्यादिक गर्मी की बाधा सहै साधु धीरज नहि त्यागै ॥ ६ ॥

प्रश्न ७-दशमशक परीषह का स्वरूप क्या है ?

उत्तर-जो साधु दशमशक के उपद्रव को सहन करता है उसे दशमशक परीषहजय होता है ।

डस मशक मक्खी तनु काटै पीडै वन पक्षी बहुतेरे ।
डसै ब्याल विषहारे बिच्छू लगै खजूरे आन घनेरे ॥
सिंह स्याल सुडाल सतावै रीछ रोझ दुख देहि घनेरे ।
ऐसे कष्ट सहै मनभावन ते मुनिराज हरो अघ मेरे ॥ ७ ॥

प्रश्न ८-जो साधु दशमशक के उपद्रव को सहन करता है वह खटमल, चीटी, पिस्सू आदि के द्वारा उपद्रव होने पर क्या उनका प्रतीकार कर सकता है ?

उत्तर-वह शेष जीवो से होने वाले उपद्रव का प्रतीकार नही कर सकता है ।

प्रश्न ९-यदि ऐसा है तो सूत्र मे "दशमशक" पद मात्र का ग्रहण किसलिये किया है ?

उत्तर-सूत्र मे दशमशक पद का ग्रहण उपलक्षणार्थ है । जैसे कौओ से घी की रक्षा करनी चाहिये यहाँ काक शब्द से क्या कुत्ता, बिल्ली आदि

से घी की रक्षा नही करना चाहिये अपितु रक्षा करनी ही चाहिये। उसी प्रकार जो मुनि दशमशक के उपद्रव को सहन करता है, वह दीमक, चीटी, कीट, मक्षिका, खटमल, बिच्छू आदि के उपद्रव को भी सहन करते है उन्हे दशमशक परीषहजय होता है।

प्रश्न १०–मुनिराज कौन सी शुभभावना के द्वारा दशमशक परीषह को जीतने है ?

उत्तर–मन-वचन-काय से किसी जीव को बाधा नही पहुँचाना और निर्वाण प्राप्ति मात्र ही जिनका ओढ़ना है ऐसी भावना से प्रेरित मुनिराज दशमशक परीषह पर विजय प्राप्त करते है।

प्रश्न ११–नाग्न्य परीषहजय किसे कहते है ?

उत्तर–जो बालक के स्वरूप के समान निष्कलक रूप है, याचना, रक्षा, हिमादि दोषो से जो रहित है, जो निष्परिग्रहरूप होने से निर्वाण प्राप्ति का अनन्य साधन है, जो अन्य बाधाकर नही है, ऐसे नाग्न्यरूप को धारण करने वाले मुनिराज को नाग्नपरीषहजय होता है।

अन्तर विषय वासना बरतै बाहरलोक लाज भय भारी।
यातै परम दिगम्बर मुद्रा धर नहि सकै दीन ससारी॥
ऐसी दुर्द्धर नगन परीषह जीतै साधु शीलव्रतधारी।
निर्विकार बालकवत् निर्भय तिनके चरणो धोक हमारी॥ ७॥

प्रश्न १२–मुनिराज किस भावना का चिन्तन करते हुए नाग्न्यपरीषह को जय करते है ?

उत्तर–मन के विक्रियारूप उपद्रव से रहित हो मुनिराज निरन्तर स्त्रियो के रूप की अत्यन्त बदबूदार, दुर्गन्धयुक्त, घृणित अनुभव करते है तथा रात-दिन अखड ब्रह्मचर्य की भावना स्मरण करते हुए नाग्न्यपरीषह को जीतते है।

प्रश्न १३–अरति परीषह का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–जो मुनि इन्द्रियविषयो से विरत रहते है, गीत, नृत्य, वादित्र आदि से रहित शून्यघर, देवकुल, तरुकोटर और शिलागुफा आदि मे स्वाध्याय ध्यान और भावना मे लीन है, पूर्व मे देखे, सुने और अनुभव किये विषय भोगो के स्मरण, तत्सबधी कथा के श्रवण और कामशर (कामबाण) के प्रवेश के लिये जिनका हृदय निश्छिद्र है, जो सदाकाल दया परिणाम वाले होते है उनके अरति परीषहजय होता है। कहा भी है—

देशकाल का कारण लहिकै होत अचैन अनेक प्रकारै ।
तब तहाँ छिन्न होत जगवासी कलमलाय थिरतापद छाडैं ।।
ऐसी अरति परीषह उपजत तहाँ धीर धीरज उर धारै ।
ऐसे साधुन को उर अतर वासो निरन्तर नाम हमारे ।। ८ ।।

प्रश्न १४–अरति परीषहजय के समय साधु क्या चिन्तन करते है ?

उत्तर–साधुगण निरन्तर ज्ञान-ध्यान मे रत हो विचार करते है कि हे आत्मन् ! इस ससार मे तूने काम-भोग और बध की कथाओ का अनेक बार श्रवण किया, उनका परिचय किया तथा उन्हे अनुभव मे भी लाया किन्तु इन सबसे भिन्न एकत्व विभक्त आत्मा का आज तक चिन्तन, श्रवण, स्मरण भी नही किया उसी की प्राप्ति दुर्लभ है, उसे प्राप्त करने का पुरुषार्थ कर—

सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबधकहा ।
एयत्तस्सुवलभो णवरि ण सुलहो विहत्तस्स ।। -स सा ३

प्रश्न १५–स्त्रीबाधा परीषह का स्वरूप बताइये ?

उत्तर–एकान्त उद्यान, भवन आदि स्थानो पर नवयौवना, प्रमत्त मदभ्रमित, काम से पीड़ित स्त्रियो के द्वारा बाधा पहुँचाने पर भी जिन्होने अपनी इन्द्रियो को कछुए के समान समेट लिया है, जिसने हृदय विकार को रोक लिया है तथा जिसने मन्द मुस्कान, कोमल सम्भाषण, तिरछी नजरो से देखना, हॅसना और कामबाण मारना आदि को विफल कर दिया है उन मुनिराज के स्त्रीबाधा परीषहजय होता है, ऐसा जानना चाहिये ।

प्रश्न १६–चर्यापरीषह जय का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–जिसने दीर्घकाल तक गुरुकुल मे रहकर ब्रह्मचर्य व्रत को धारण किया है जिसने बन्ध, मोक्ष पदार्थो के मर्म को जान लिया है, जो सयम के आयतन एव यतिजनो की विनय तथा भक्ति करने के लिये गुरुजनो की अनुज्ञा पाकर देशान्तरो मे विहार करते है, वायु के समान नि सग हैं ।

अनशन, ऊनोदर आदि तपो से शरीर को कृश करने वाले, सहिष्णु है, देश काल के अनुसार सयम के अविरोधी गमनागमन करते है, जो खड़ाऊ आदि पदरक्षक वस्तुओ के त्यागी है, तीक्ष्ण बालू, पाषाण, कॉटे और मिट्टी के कठोर टुकड़े आदि के लगने से उत्पन्न पादपीड़ा को पीड़ा नही मानते है । गृहस्थ अवस्था के योग्य यान, वाहन आदि का स्मरण नही करते है, ऐसे मुनिराज के चर्या परीषहजय होता है—

चार हाथ परवान परख पथ चलत दृष्टि इत उत नहि तानै ।
कोमल चरण कठिन धरती पर धरत धीर बाधा नहि मानै ।

नाग तुरग पालकी बढ़ते ते सर्वादि यादि नहि आनै ।
यो मुनिराज सहै चर्य्या दुख तब दृढ़कर्म कुलाचल भानै ।। ११ ।।

प्रश्न १७–निषद्या परीषहजय का स्वरूप बताइये ?

उत्तर–जो पूर्व मे अनभ्यस्त ऐसे श्मशान, शून्यघर, पर्वत, गुफा, गह्वर आदि मे निवास करते है सामायिक आदि आवश्यक क्रियाओ मे नियत काल तक आसन (निषद्या) लगाकर बैठते है, सिह, व्याघ्र, भालू, हाथी आदि जीवो के भीषण शब्दो को सुनकर भी जो निर्भय रहते है, उपसर्गों को शान्त भाव से सहन करते है, नाना आसनो को स्थिरता से धारण करते हुए जरा भी शरीर को चलायमान नही करते है, नाना उपसर्गो के आने पर भी जो मोक्षमार्ग से च्युत नही होते है उन मुनीश्वरो के निषद्या परीषहजय होता है ।

गुफा मशान शैल तरुकोटर निवसै जहॉ शुद्ध भू हेरै ।
परिमितकाल रहै निश्चल तन बार-बार आसन नहि फेरै ।
मानुषदेव अचेतन पशुकृत बैठे विपति आन जब घेरै ।
ठोर न तजै भजै थिरतापद ते गुरु सदा बसो उर मेरे ।। १२ ।।

प्रश्न १८–उपसर्ग कितने प्रकार के होते है ?

उत्तर–उपसर्ग चार प्रकार के होते है—देवकृत, तिर्यंचकृत, मनुष्यकृत और अचेतनकृत ।

प्रश्न १९–शय्या परीषहजय का स्वरूप बताइये ?

उत्तर–स्वाध्याय-अध्ययन, ध्यान और अध्वश्रम के कारण थककर जो कठोर, विषम तथा प्रचुर मात्रा मे ककड़ और खपरो के टुकड़ो से व्याप्त ऐसे अतिशीत तथा अति उष्ण भूमि प्रदेशो मे एक मुहूर्त प्रमाण निद्रा का अनुभव करते है, जो यथाकृत एक पार्श्वभाग से या दण्डायित आदि रूप से शयन करते है, करवट लेने से प्राणियो को बाधा होगी ऐसा विचारकर जो लकड़ी के कुन्दे के समान या मुर्दा के समान करवट नही बदलते है, जिनका चित्त ज्ञान भावना मे लगा हुआ है, ऐसा मुनिराजो के शय्या परीषहजय होता है ।

जो प्रधान सोने के महलन सुन्दर सेज सोय सुख जोवै ।
ते अब अचल अग एकासन कोमल कहिन भूमि पर सौवै ।।
पाहनखड कठोर काकरी गड़त कोर कायर नहि होवै ।
ऐसी शयन परीषह जीतै ते मुनि कर्मकालिमा धोवै ।। ११ ।।

प्रश्न २०–श्मशान आदि स्थानो मे सिह आदि के भय से मुनिराजो का मन खेदित होता है या नही ? वे दुष्टप्राणियो के जाने या भगाने का विचार करते हैं या नही ?

उत्तर–शय्यापरीषहजयी मुनिराज कभी खेदखिन्न नही होते है वे ऐसा विचार भी नही करते है कि इस स्थान मे सिंह आदि दुष्ट प्राणी रहते हैं अत यहा से जाना ही अच्छा है अथवा रात्रि का अन्त कब होगा आदि खेदित विचार से वे रहित होते है । अत अखेदित मनवाले अपनी रक्षा के लिये वन्य प्राणियो को भगाने का विचार तो कभी कर ही नही सकते ।

प्रश्न २१–आक्रोशपरीषहजय का स्वरूप बताइये ?

उत्तर–जो मुनि मिथ्यादर्शन से उद्धत तीव्र क्रोध सहित, अज्ञानी जीवो के अवज्ञाकारक, निन्दारूप और असभ्य वचनो को सुनते हुए भी क्रोधरूपी अग्निज्वाला को प्रकट नही करते है, उन आक्रोश वचनो का तत्काल प्रतीकार करने मे समर्थ होने पर भी जो शान्त भाव से सहन करते है, कषायरूपी विष के कण (लेश) को भी अपने हृदय मे अवकाश नही देते है वे आक्रोशपरीषहजयी कहलाते है ।

जगतजीव जावन्त चराचर सबके हित सबको सुखदानी ।
तिन्हे देख दुर्वचन कहै खल पाखडी ठग यह अभिमानी ॥
मारो याही पकड़ पापी को तपसी भेष चोर है छानी ।
ऐसे वचन बाण की बेला क्षमा ढाल ओढ़ै मुनि ज्ञानी ॥ १२ ॥

प्रश्न २२–दुष्टजन जब मुनिराज को दुर्वचन कहते है तब मुनिराज क्या विचार करते है ?

उत्तर–मुनिराज दुर्वचनो के प्रतीकार का सामर्थ्य होने पर भी बार-बार यही विचार करते है कि —"यह सब स्वकीय पाप कर्म का उदय है" अत मुझे अपने तपश्चरण द्वारा कर्मो को खपा देना ही उचित है पुन प्रतीकार करना मेरा स्वभाव नही है । इस प्रकार विचार करते हुए वे ज्ञानभावना मे, तपश्चरण मे ही तत्पर रहते है ।

प्रश्न २३–वध परीषहजय का स्वरूप बताइये ?

उत्तर–जो मुनि तीक्ष्ण शस्त्र, मुषढि, मुद्गर, मूशल, भाला, गोफण (गोल रस्सी मे जाल बनाकर उसमे पत्थर फेकना) आदि के द्वारा पीड़ित शरीर होने पर भी मारने वाले पर लेशमात्र भी कलुषता नही करते है, जिनके बसूले से छीलने मे और सुगन्धयुक्त द्रव्य के अनुलेपन मे समभाव है अर्थात् जिनके शत्रु-मित्र मे समभाव है, वे मुनि वधपरीषह विजयी होते हैं ।

निरपराध निर्वैर महामुनि तिनको दुष्ट लोग मिल मारै ।
कोई खैच खभ से बाधै कोई पावक मै परजारै ।।
तहॉ कोप करते न कदाचित् पूरब कर्म विपाक विचारै ।
समरथ होय सहै वध-बन्धन ते गुरु भव-भव शरण हमारे ।। १३ ।।

प्रश्न २४–जिस समय मुनिराज को कोई दुष्टजन वध-बधन आदि करते है तब वे क्या विचार करते है ?

उत्तर–मुनिराज अपने लिये वध-बधन होने पर विचार करते है कि "यह सब मेरे पूर्वकृत कर्म का ही फल है ये बेचारे क्या कर सकते है ? यह शरीर जो जल के बुदबुदे के समान विघटन (नाश) स्वरूप है, दुख के कारणभूत है, इस शरीर का इनके द्वारा विघात हो सकता है, मेरे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रस्वरूप आत्मा का विघात करने के लिये कोई भी समर्थ नही है । कहा भी है—

अज्ञानभावादशुभाशयाद्वा करोति चेत् कोपि नर खलत्वम् ।
तथापि सद्‌भि शुभमेव चिन्त्य न मथ्यमानेऽप्यमृते विषहि ।

अज्ञानभाव या अशुभ आशय से यदि कोई मानव दुष्टता करता है, तपस्वियो को गाली आदि देता है तथापि मुनिराज उसका शुभ ही चिन्तन करते है क्योकि और भी वे विचारते है—

आकृष्टोऽह हतो नेव हतो वा न द्विधाकृत ।
मारितो न हृतो धर्मो मदीयोऽनेन बन्धुता ।।

आकृष्ट करने पर सोचते है इसने मुझे लाठी से तो नही मारा है, लाठी से मारने पर सोचते है, मेरे दो टुकड़े तो नही किये है, दो टुकड़े करने पर सोचते है, इसने मेरे बन्धु ने मेरे प्राण तो नही लिये अर्थात् मुझे जान से तो नही मारा और जान से मारने पर सोचते है कि इसने मेरा धर्म तो नष्ट नही किया है ।

प्रश्न २५–याचना परीषहजय का स्वरूप बताइये ?

उत्तर–जिन मुनिराज ने बाह्य और आभ्यतर तपो के द्वारा शरीर को कृश किया है तथा तपरूपी सूर्य के द्वारा शरीर को सुखा दिया है, जले हुए वृक्ष के समान जो निष्काति शरीरवाला है, अस्थि और शिराजाल मात्र से युक्त जिसका शरीर यन्त्र रह गया है, जो प्राणो का वियोग होने पर भी आहार, वसति और दवाई आदि की दीन शब्द कहकर, मुख की विवर्णता दिखाकर वा सज्ञा आदि के द्वारा याचना नही करते है तथा भिक्षा समय भी जिनकी

मूर्ति (शरीर) बिजली की चमक के समान दुरुपलक्ष्य रहती है, ऐसे साधु के याचनापरीषहजय होता है ।

> घोर वीर तप करत तपोधन भये क्षीण सूखी गल बाँही ।
> अस्थिचाम अवशेष रहो तन नसाँजाल झलकै तिसमाही ।।
> औषधि असन पान इत्यादिक प्राण जाउ पर जाचत नाही ।
> दुर्द्धर अयाचीक व्रत धारै करै न मलिन धरम परछाही ।।

कहा भी है— रानी तो काते नही, जो काते सो राड ।
साधु तो मागे नही, जो मागे सो भाड ।।

प्रश्न २६–अलाभ परीषहजय का स्वरूप बताइये ?

उत्तर–जो वायु के समान नि सग होने से जो अनेक देशो मे विचरण करता है । जिसने दिन मे एक काल के भोजन को स्वीकार किया है, जो मौन रहते हैं या भाषासमिति का पालन करते हैं, एक बार शरीर दिखलाना मात्र जिनका सिद्धान्त है, पाणिपुट ही जिनका पात्र है बहुत दिन तक या बहुत घरो मे भिक्षा के प्राप्त नही होने पर भी जिनका चित्त सक्लेश से रहित है, दाता विशेष की परीक्षा मे जो निरुत्सुक है तथा लाभ से भी अलाभ मेरे लिये परम तप है इस प्रकार जो सन्तुष्ट है उन मुनिराज के अलाभ परीषहजय जानना चाहिये ।

कहा भी है—

> एक बार भोजन की बेला मौनसाध बस्तीमै आवै ।
> जो न बनै योग्य भिक्षा विधि तो महन्त मन खेद न लावै ।।
> ऐसे भ्रमत बहुत दिन बीतै तब तपवृद्धि भावना भावै ।
> यो अलाभ की परम परीषह सहै साधु सो ही शिव पावै ।। १५ ।।

प्रश्न २७–रोगपरीषहजय का स्वरूप बताइये ?

उत्तर–जिन मुनिराज ने शरीर की स्थिति के निमित्त भोजन को प्रचुर उपकार मानकर स्वीकार किया है प्रकृति विरुद्ध आहार-पान के सेवनरूप विषमता से जिनके वातादि विकाररूप रोग उत्पन्न हुए है, एक साथ सैकड़ो व्याधियो का प्रकोप होने पर भी जो उनके आधीन नही हुए हैं तथा तपोविशेष से जल्लौषधि, सर्वौषधि आदि अनेक ऋद्धियो का सम्बन्ध होने पर भी जो शरीर से निस्पृह होने के कारण उनके प्रतीकार की अपेक्षा नही करते है उन मुनिराज के रोगपरीषहजय होता है—

> वात पित्त कफ श्रोणित चारो ये जब घटै बढ़ै तनु माही ।
> रोग सयोग शोक जब उपजत जगत जीव कायर हो जाही ।

ऐसी व्याधि वेदना दारूण सहै सूर उपचार न चाही ।
आतमलीन विरक्त देहसो जैनयती निज नेम निवाही ।। १६ ।।

प्रश्न २८–रोग परीषह आने पर मुनिराज शरीर के सबध मे क्या विचारते है ?

उत्तर–रोगादि आने पर मुनि चितन करते है कि यह शरीर अशुचि पदार्थो का आश्रय है, अनित्य है, परित्राण से रहित है, रोगो का घर है । इसमे ५६८९९५८४ रोग है तुम किस-किस का उपचार करोगे । अत रोगजनित पीड़ा को वे शान्तभाव से महते है ।

प्रश्न २९-तृणस्पर्श परीषह का स्वरूप बताइये ?

उत्तर–जो कोई बधनेरूप दु ख का कारण है उसका "तृण" पद का ग्रहण उपलक्षण है । इसलिये सूखा तिनका, कठोर ककड़, कॉटा, तीक्ष्ण मिट्टी और शूल आदि के बिधने से पैरो मे वेदना होने पर भी जिनका चित्त चलायमान नही है, उस पीड़ा मे उपयुक्त नही है तथा निषद्या, चर्या और शय्या मे प्राणिपीड़ा के परिहार करने के लिये जिनका चित्त निरन्तर प्रमादरहित है उन मुनिराज के तृणस्पर्शादि बाधापरीषहजय होता है—

सूखे तृण अरु तीक्षण काटे कठिन काकरी पाय विदारै ।
रज उड आन पड़े लोचन मै तीर फास तनु पीर विथारै ।।
तापर पर सहाय नहि वाछत अपने करमै काढ़ न डारै ।
यो तृण परस परीषह विजयी ते गुरु भव-भव शरण हमारै ।। १७ ।।

प्रश्न ३०–मलपरीषहजय का स्वरूप बताइये ?

उत्तर–जलकायिक जीवो की पीडा का परिहार करने के लिये जिन्होने मरणपर्यत अस्नानव्रत स्वीकार किया है, तीक्ष्ण सूर्य की किरणो जनित ताप से उत्पन्न हुए पसीने मे जिनके वायु द्वारा लाया गया धूलिसचय चिपक गया है, सिध्य, खाज, दाद आदि के होने से खुजली के होने पर भी जो उसमे उत्पन्न जन्तुओ की पीड़ा के परिहार के लिये खुजलाने, मर्दन करने और दूसरे पदार्थ से घिसने रूप क्रिया को नही करते । मेरे शरीर मे मैल है, इस भिक्षुक का शरीर कितना निर्मल है, जो ऐसा विकल्प नही करते है, तथा सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूपी विमल जल के प्रक्षालन द्वारा जो कर्ममलपक को दूर करने के लिये निरन्तर उद्यत हैं, जो केशलोच के सस्कार को खेदरूप नही मानते है उन मुनिराज के मलपरीषहजय होता है—

यावज्जीव जलन्हौन तजो जिन नग्नरूप वनदान खड़े है ।
चलै पसेव धूप की बेला उड़तधूल सब अग भरे हैं ।।

मलिन देह को देख महामुनि मलिन भाव उर नाहिं करैं है ।
यो मल जनित परीषह जीतैं तिनहिं हाथ हम सीस धरे हैं ।। १८ ।।

प्रश्न ३१–सत्कार-पुरस्कार परीषहजय का स्वरूप बताइये ?

उत्तर–इस विषय मे यह मेरा अनादर करता है । चिरकाल से मैंने ब्रह्मचर्य का पालन किया है, मै महातपस्वी हूँ, स्वसमय-परसमय का निर्णयज्ञ हूँ, मैने बहुत बार परवादियो को जीता है, तो भी कोई मुझे प्रणाम नही करता और भक्ति नही करता है, कोई मुझे उत्साह से आनद नही देता, मिथ्यादृष्टि ही अत्यत भक्तिवाले होते है, कुछ नही जानने वाले का भी सर्वज्ञ समझकर आदर-सत्कार करके अपने समय की प्रभावना करते है । व्यन्तरादिक पहले अत्यन्त उग्र तप करने वालो की प्रत्यग्र पूजा रचते थे यह यदि मिथ्या श्रुति नही है तो इस समय वे हमारे समान तपस्वियो की क्यो नही करते है इस प्रकार खोटे अभिप्राय से जिनका चित्त रहित है उन महामुनि के सत्कार-पुरस्कार परीषहजय होता है ।

जो महान विद्यानिधि विजयी, चिर तपसी गुण अतुल भरे है ।
तिनकी विनय वचन से अथवा उठ प्रणाम जन नाहिं करे है ।।
तो मुनि तहाँ खेद नहि मानत, उर मलीनता भाव हरे है ।
ऐसे परम साधु के अहनिशि हाथ जोड़ हम पॉव परे है ।। १९ ।।

प्रश्न ३२–सत्कार-पुरस्कार का लक्षण क्या है ?

उत्तर–सत्कार—पूजा प्रशसा को कहते है ।

पुरस्कार—क्रिया-आरम्भ आदि मे आगे करना या आमन्त्रण देना पुरस्कार ।

प्रश्न ३३–प्रज्ञा परीषह का स्वरूप बताइये ?

उत्तर–मै अग पूर्व और प्रकीर्णक शास्त्रो मे विशारद हूँ तथा शब्दशास्त्र, न्यायशास्त्र और अध्यात्मशास्त्र मे निपुण हूँ । मेरे आगे दूसरे जन सूर्य की प्रभा से पराजित खद्योत के प्रकाश की तरह बिल्कुल सुशोभित नही होते है इस प्रकार विज्ञानमद का निरास होना प्रज्ञापरीषहजय है ।

तर्क छन्द व्याकरण कलानिधि आगम अलकार पढ जानै ।
जाकी सुमति देख परवादी बिलखत होय लाज उर आनै ।।
जैसे सुनत नाद केहरिका वनगयद भाजत भय मानैं ।
ऐसी महाबुद्धि के भाजन पर मुनीश मद रच न ठानै ।। २० ।।

प्रश्न ३४–अज्ञान परीषहजय का स्वरूप बताइये ?

उत्तर–यह मूर्ख है, कुछ नही जानता है, पशु के समान है, इत्यादि तिरस्कार के वचनो को मैं सहन करता हूँ, मैने परम दुश्चर तप का अनुष्ठान किया है, मेरा चित्त निरन्तर अप्रमत्त रहता है तो भी मेरे अभी तक ज्ञान का अतिशय नही उत्पन्न हुआ है इस प्रकार विचार नही करने वाले मुनिराज के अज्ञानपरीषहजय होता है । अथवा

जो मुनि सकलशास्त्रार्थ रूपी सुवर्ण की परीक्षा मे कसौटी के समान है, परन्तु असहिष्णु मूर्खों के द्वारा ''यह मूर्ख है, बैल है'' इत्यादि वचनो के द्वारा तिरस्कृत होने पर भी जो इन आक्षेपो को सहन करते है वे मुनि अज्ञानपरीषहविजयी होते है । कहा भी है—

सावधान वर्ते निशिवासर सयमशूर परमवैरागी ।
पालत गुप्ति गये दीरघ दिन सकलसग ममता परत्यागी ।।
अवधिज्ञान अथवा मनपर्य्यय केवलि ऋद्धि न अजहू जागी ।
यो विकल्प नहि करै तपोनिधि सो अज्ञान विजयी बड़भागी ।। २१ ।।

प्रश्न ३५–अदर्शन परीषह का स्वरूप बताइये ?

उत्तर–परमवैराग्य की भावना से मेरा हृदय शुद्ध है, मैने समस्त पदार्थो के रहस्य को जान लिया है, मै अरहन्त, आयतन, साधु और धर्म का उपासक हूँ, चिरकाल से मै प्रव्रजित हूँ तो भी मेरे अभी ज्ञानातिशय नही उत्पन्न हुआ है । महा-उपवास आदि का अनुष्ठान करने वालो के प्रातिहार्य विशेष उत्पन्न हुए यह प्रलापमात्र है, यह प्रव्रज्या अनर्थक है, व्रतो का पालन करना निरर्थक है इत्यादि बातो का दर्शनविशुद्धि के योग से मन मे विचार नही करने वाले मुनिराज के अदर्शन परीषहजय होता है ।

मै चिरकाल घोर तपकीना अजो ऋद्धि अतिशय नहि जागैं ।
तपबल सिद्ध होत सब सुनियत सो कुछ बात झूठ सी लागै ।।
यो कदापि चित मे नहिं चितत समकित शुद्ध शाति रस पागै ।
सोई साधु अदर्शनविजई ताके दर्शन से अघ भागै ।। २२ ।।

प्रश्न ३६–परीषहो के सहन करने का फल क्या है ?

उत्तर–जो मुनिराज परीषहो को सकल्प के बिना उपस्थित हुए परीषहो को शान्तचित्त से सहन करते है, जिनका चित्त सक्लेश रहित है उसके रागादि परिणामो से होने वाले आस्रव का सवर होता है ।

प्रश्न ३७–परीषह और उपसर्ग मे क्या अन्तर है ?

उत्तर–परीषह स्वेच्छा से सहन किये जाते है और उपसर्ग परकृत होने से जबरन सहन करने पड़ते है ।

प्रश्न ३८–ससाररूपी महा-अटवी को पार करने के लिये उद्यत हुए पुरुष को क्या ये उपर्युक्त सभी परीषह प्राप्त होती है या कोई विशेषता है ?

उत्तर–बाबीस परीषह (क्षुधादिक) अलग-अलग चारित्र के प्रति विकल्प से होते है ।

सूक्ष्म साम्परायछद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दश ॥ १० ॥

सूत्रार्थ–सूक्ष्मसाम्पराय और छद्मस्थवीतराग के चौदह परीषह सभव है ।

प्रश्न १–सूक्ष्मसाम्पराय और छद्मस्थ वीतराग मुनियो के होने वाले १४ परीषहो के नाम बताइये ?

उत्तर–क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दशमसक, चर्य्या, शय्या, वध, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, प्रज्ञा और अज्ञान ये चौदह परीषह सूक्ष्म-साम्पराय और छद्मस्थवीरतराग मुनियो के होती है ।

प्रश्न २–सूक्ष्मसाम्पराय मुनि कौन से होते है ?

उत्तर–सूक्ष्म-साम्पराय चारित्र के धारक दसम गुणस्थानवर्ती मुनि सूक्ष्म-साम्पराय । मुनि होते है ।

प्रश्न ३–छद्मस्थ किसे कहते है ?

उत्तर–छद्म का अर्थ है—ज्ञानावरण और दर्शनावरण। छद्म मे रहने वाला जीव छद्मस्थ कहलाता है ।

प्रश्न ४–वीतराग किसे कहते है ?

उत्तर–मोहनीय कर्म का पूर्ण उपशम व क्षय जिन मुनियो के हो गया है ऐसे ग्यारहवे-बारहवे गुणस्थानवर्ती मुनियो को वीतराग कहते हैं ।

प्रश्न ५–वीतराग छद्मस्थ किसे कहते है ?

उत्तर–ज्ञानावरण और दर्शनावरण का उदय होने पर भी जिनको अन्तर्मुहूर्त मे केवलज्ञान होने वाला है, उन क्षीणकषायी बारहवे गुणस्थानवर्ती मुनिराज को छद्मस्थ वीतरागी कहते है । अथवा वीतराग छद्मस्थ भी कहते है ।

प्रश्न ६–छद्मस्थ वीतराग मुनियो के मोहनीय कर्म का अभाव होने से कितनी व कौनसी परीषह नही होती है ?

उत्तर–छद्मस्थ वीतराग मुनियोंकेमोहनीय कर्मोदयजनित आठ परीषह नही होती है वे इसप्रकार हैं—नाग्न्य के अरति, स्त्री, निषद्या, आक्रोश, याचना, सत्कार-पुरस्कार और अदर्शन ।

प्रश्न ७–छद्मस्थ वीतरागी मुनियो के मोह कर्म के उदय का अभाव होने से आठ परीषह नही होती है यह कथन तो ठीक ही है किन्तु सूक्ष्म-साम्पराय गुणस्थान मे तो मोहनीय कर्म का सद्भाव है अत दसम गुणस्थान मे आठ परीषह क्यो नही होती है ?

उत्तर–सूक्ष्मसाम्पराय सयमी जीवो के सर्वमोहनीय कर्म का उदय नही है मोहनीय की सत्तामात्र है । वहाँ सिर्फ सज्वलन लोभ कषाय का उदय है, वह भी बादर नही सूक्ष्म है, इसलिये सूक्ष्मसाम्पराय भी वीतराग छद्मस्थ के सदृश होने से उनमे भी चौदह परीषह ही घटित होती है ।

प्रश्न ८–सूक्ष्मसाम्पराय और वीतराग छद्मस्थ मुनियो मे मोह के मन्द उदय होने से क्षुधा आदि वेदना का अभाव है अत इनके कार्यरूप मे परीषह सज्ञा कहना युक्त प्रतीत नही होता ?

उत्तर–यहाँ शक्तिमात्र विवक्षित है । जिस प्रकार सर्वार्थसिद्धि के देवो का महातम प्रभा (सातवे नरक) पृथ्वी मे गमन नही है तथापि तद्गमन शक्ति की अपेक्षा उन देवो के सातवे नरक तक गमन कहा जाता है वे गमन नही करते उनमे केवल शक्ति मात्र है । उसी प्रकार यद्यपि सूक्ष्मसाम्पराय और छद्मस्थ वीतराग मुनियो के चौदह परीषह नही होती है, तथापि उनको सहन करने की शक्तिमात्र से उनमे चौदह परीषह कही जाती है ।

प्रश्न ९–केवलज्ञान प्राप्त चार घातिया कर्मो से रहित अरहन्त भगवान को कितने परीषह होते है ?

उत्तर– **एकादश जिने ॥ ११ ॥**

सूत्रार्थ–सयोगकेवली जिनके ग्यारह परीषह होते है ।

प्रश्न १–सयोगकेवली जिनके ग्यारह परीषह किस कर्म के सद्भाव मे होते है ?

उत्तर–वेदनीय कर्म के सद्भाव मे ।

प्रश्न २–सयोगकेवली के ग्यारह परीषह कौनसे होते है ?

उत्तर–क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दशमशक, चर्य्या, शय्या, वध, रोग, तृणस्पर्श और मल नामक ११ परीषह सयोगकेवली के होते है ।

प्रश्न ३–केवली भगवान के मोहनीय कर्म के उदय का अभाव होने से क्षुधा, पिपासा आदि के वेदन का अभाव होने पर भी ग्यारह परीषह कैसे होती है ?

उत्तर–केवली भगवान के वेदना का अभाव होने पर भी वेदनीय द्रव्य कर्म का सद्भाव है अत उसकी अपेक्षा उपचार से सयोगी जिनके ११ परीषह कही जाती है ।

प्रश्न ४–सयोगी जिनके उपचार से भी ग्यारह परीषह मानना युक्त प्रतीत नही होता है ।

उत्तर–जिस प्रकार समस्त ज्ञानावरण कर्म का नाश होने से केवलज्ञान अतिशय प्रकट होने पर चिन्ता निरोध का अभाव होने पर भी कर्मों के नाश रूप फल की अपेक्षा केवली भगवान मे ध्यान का उपचार किया जाता है उसी प्रकार परीषहो का कथन भी उपचार मात्र है । अथवा केवली भगवान मे ११ परीषह नही है, ऐसा वाक्य शेष कल्पना कर लेना चाहिये ।

प्रश्न ५–ग्यारह परीषह केवली जिनके "नही है" ऐसा अर्थ क्यो या किस प्रकार लगाया जावे ?

उत्तर–"कल्प्यो हि वाक्यशेषो वाक्य च वक्तर्यधीनम्" अर्थात् ग्यारह परीषह केवली जिनके मोह के उदय की सहायता से होने वाली क्षुधादि वेदनाओ का अभाव होने से नही है इतना वाक्यशेष कल्पित कर लेना चाहिये क्योंकि सूत्र उपस्कार सहित होते है और वाक्य वक्ता के आधीन होता है ।

प्रश्न ६–जिन भगवान् के क्षुधादि ग्यारह परीषह नही होते हैं यह कैसे समझा जाय ?

उत्तर–केवली भगवान् के शरीर मे निगोद और त्रस जीव नही रहते उनका क्षीणमोह गुणस्थान मे अभाव होकर वे परम औदारिक शरीर के धारी होते है । अत भूख, प्यास और रोगादिक का कारण नही रहने से उन्हे भूख, प्यास और रोगादिक की बाधा नही होती है । सुख–दु ख का वेदन वेदनीय कर्म का कार्य होने पर भी वह मोहनीय की सहायता से ही होता है । केवली भगवान के मोहनीय कर्म का अभाव होता है अत वहाँ क्षुधादिरूप वेदनाओ का मानना युक्तिसगत प्रतीत नही होता । इससे सिद्ध होता है कि केवली जिनके क्षुधादि ग्यारह परीषह नही होते ।

प्रश्न ७–देवो के शरीर मे भी निगोद और त्रस जीव नही होते फिर भी उन्हे समय पाकर क्षुधादि की वेदना होती ही है वैसे भी केवली जिनके भी क्षुधादि की बाधा हो सकती है इसमे क्या बाधा है ?

उत्तर–देवो के शरीर मे निगोद जीव और त्रस जीव नहीं होने से जो विशेषता होती है उससे अनन्तगुणी विशेषता केवली जिनके परमौदारिक शरीर मे उत्पन्न हो जाती है अत उनके क्षुधा आदि का मानना युक्त नही है ।

प्रश्न ८–केवली भगवान के असातावेदनीय का उदय तो है ही अत क्षुधा आदि उनके होना चाहिये ?

उत्तर–प्रथम तो श्रेणि आरोहण करने पर प्रशस्त प्रकृतियो का अनुभाग उत्तरोत्तर अनन्तगुणा बढ़ता जाता है और अप्रशस्त प्रकृतियो का अन

उत्तरोत्तर अनन्तगुणा हीन होता जाता है अत तेरहवे गुणस्थान मे होने वाला असाता प्रकृति का उदय इतना बलवान नहीं होता जिससे उसे क्षुधादि कार्यो का सूचक माना जा सके ।

दूसरी विशेषता यह है कि केवली जिनके साता का आस्रव सदाकाल होने से उसकी निर्जरा भी सदाकाल होती रहती है, इसलिये जिस समय असाता का उदय होता है उस समय केवल उसका ही उदय नही होता किन्तु अनन्तगुणी शक्ति वाले साता के साथ वह उदय मे आता है, यद्यपि उसका स्वमुख से उदय होता है तथापि प्रतिसमय बँधनेवाले साता परमाणुओ की निर्जरा के साथ ही होता है, इसलिये असाता का उदय वहाँ क्षुधादि वेदना का कारण नही हो सकता है ।

प्रश्न ९–सब परीषह कहाँ होते है ?

उत्तर– बादरसाम्पराये सर्वे ॥ १२ ॥

सूत्रार्थ–बादर साम्पराय मे सब परीषह होती है ।

प्रश्न १–साम्पराय का अर्थ क्या है, बादर साम्पराय किसे कहते है ?

उत्तर–साम्पराय का अर्थ है कषाय । जिसके साम्पराय बादर होता है उसे बादर साम्पराय कहते है ।

प्रश्न २–सब परीषह कौन से मुनिराज को होते है ?

उत्तर–बादर साम्पराय मुनि के सब परीषह होते है ।

प्रश्न ३–बादर साम्पराय से यहाँ कौनसे गुणस्थान का ग्रहण करना चाहिये ?

उत्तर–बादर साम्पराय से यहाँ गुणस्थान विशेष का ग्रहण नही है ।

प्रश्न ४–बादरसाम्पराय मुनि मे कौनसे मुनियो को लेना चाहिये और क्यो ?

उत्तर–बादरसाम्पराय से यहाँ प्रमत्त आदिक सयतो का ग्रहण होता है क्योंकि कषाय और दोषो के क्षीण न होने से इनमे सब परीषह सभव है ।

प्रश्न ५–कौनसे चारित्र मे सब परीषह सभव हैं ?

उत्तर–सामायिक, छेदोपस्थापना और परिहारविशुद्धि सयम इनमे से प्रत्येक मे सब परीषह सभव हैं ।

प्रश्न ६–बादर साम्पराय नौवे गुणस्थान का दूसरा नाम है, नौवे गुणस्थान तक स्थूल कषाय का सद्भाव होता है अत बादर साम्पराय से नौवे गुणस्थान का ग्रहण क्यो नही किया ?

उत्तर–नही किया क्योंकि बादर साम्पराय मे बाईस परीषह सभव है किन्तु बादर साम्पराय गुणस्थान मे नही । कारण इस गुणस्थान मे दर्शनमोहनीय का उदय नही होता । दर्शनमोहनीय के तीन भेदो मे सम्यक्त्व मोहनीय का उदय सातवे गुणस्थान तक ही सभव है, क्योंकि यही तक वेदक सम्यक्त्व होता है, इसलिये यहाँ बादर साम्पराय (स्थूल कषाय) मे सब परीषह सभव है । (दर्शनमोहनीय के उदय से होने वाले परीषह नौवे गुणस्थान मे असंभव है)

प्रश्न ७–ज्ञानावरण कर्म के उदय से कितने और कौनसे परीषह होते हैं ?

उत्तर– ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ॥ १३ ॥

सूत्रार्थ–ज्ञानावरण कर्म के सद्भाव (उदय) मे प्रज्ञा और अज्ञान दो परीषह होते है ।

प्रश्न १–ज्ञानावरण कर्म के अभाव मे "प्रज्ञा" होती है अत· उसे ज्ञानावरण कर्म के सद्भाव मे कहना ठीक प्रतीत नहीं होता ?

उत्तर–प्रज्ञा क्षायोपशमिकी है अत· प्रज्ञामद मतिज्ञानावरण और श्रुतज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम और अवधि–मन पर्यय व केवलज्ञानावरण का उदय होने पर ही उत्पन्न होता है सर्व आवरणो के क्षय होने पर मद उत्पन्न नही होता है ।

प्रश्न २–मद कौन से ज्ञान का होता है ?

उत्तर–मति और श्रुतज्ञान का ही मद होता है ।

प्रश्न ३–ज्ञानावरण कर्म के उदय सहित मुनि के कितने परीषह होते है ?

उत्तर–प्रज्ञा और अज्ञान दो परीषह होते है ।

प्रश्न ४–मै अधिक जानता हूँ, यह कुछ नही जानता यह विकल्प किस कर्म की अपेक्षा होता है ?

उत्तर–विकल्प का अर्थ श्रुतज्ञान है, जहाँ तक श्रुतज्ञान होता है वहॉ तक "मैं अधिक जानता हूँ यह कुछ नही जानता" ऐसा विकल्प देखा जाता है" यद्यपि ऐसा विकल्प करने वाले को अधिक ज्ञान का लाभ ज्ञानावरण कर्म के प्रकृष्ट क्षयोपशम से होता है तथापि जब तक ज्ञान क्षायोपशमिक है तब तक यह विकल्प होता है । अत. विकल्प का मुख्य कारण ज्ञानावरण कर्म का उदय है ।

प्रश्न ५–किसी जीव को मोहनीय कर्म के उदय से भी "मै महाप्राज्ञ हूँ, मेरी बराबरी करने वाला अन्य कोई नही है" ऐसा भाव होता है अत यहाँ मात्र ज्ञानावरण का उदय क्यो कहा ?

उत्तर–यहाँ मोह उदय जनित भाव का ग्रहण न कर, अपनी अज्ञानतावश जो अल्पज्ञान को महाज्ञान मानने का विकल्प होता है उसी का ग्रहण किया है और वह ज्ञानावरण कर्म के उदय से होता है ।

प्रश्न ६–दर्शनमोहनीय और अन्तराय कर्म के उदय से कितने व कौनसे परीषह होते है ?

उत्तर– **दर्शनमोहान्तराययोरदर्शनालाभौ ॥ १४ ॥**

सूत्रार्थ–दर्शनमोह और अन्तराय कर्म के उदय से अदर्शन और अलाभ दो परीषह होते है ।

प्रश्न १–दर्शनमोह से यहाँ दर्शनमोह की कौनसी प्रकृति का ग्रहण करना है ?

उत्तर–दर्शनमोह से यहाँ "सम्यक्त्वमोहनीय" प्रकृति ली गई है ।

प्रश्न २–चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से कौनसे व कितने परीषह होते है ?

उत्तर– **चारित्रमोहे नाग्न्यारतिस्त्रीनिषद्याक्रोशयाचना-सत्कारपुरस्काराः ॥ १५ ॥**

सूत्रार्थ–चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से नाग्न्य, अरति, स्त्री, निषद्या, आक्रोश, याचना और सत्कार-पुरस्कार ये सात परीषह होते है ।

प्रश्न १–नाग्न्य किसे कहते है ?

उत्तर–नग्न का भाव नाग्न्य है ।

प्रश्न २–अरति का अर्थ क्या है ?

उत्तर–रति याने प्रेम और प्रेम का नही होना अरति है ।

प्रश्न ३–स्त्री किसे कहते हैं ?

उत्तर–जो अपने दोषो का और दूसरो के गुणो का आच्छादन करे, वह स्त्री कहलाती है ।

प्रश्न ४–निषद्या, आक्रोश और याचना के लक्षण क्या है ?

उत्तर–जिसमे बैठे रहना पड़े उसे **निषद्या** कहते है ।

गाली आदि देना **आक्रोश है** । मागना **याचना है** ।

प्रश्न ५–नाग्न्यादि परीषह चारित्रमोह मे भी किस प्रकृति निमित्तक है ?

उत्तर–नाग्न्यादि परीषह चारित्रमोह मे भी पुवेद उदय आदि के निमित्त से होते है ।

प्रश्न ६–नाग्न्यादि परीषह को पुवेद-उदय होने से चारित्रमोह का कार्य कहना ठीक है परन्तु निषद्या को मोहोदय निमित्त क्यो कहा ?

उत्तर–निषद्या मे प्राणिपीड़ा के परिहार की मुख्यता होने से निषद्या को मोहोदय निमित्तक माना गया है, क्योंकि मोहोदय के होने पर प्राणिपीड़ारूप परिणाम होता है ।

प्रश्न ७–वेदनीय कर्म के उदय से कितने परीषह होते है ?

उत्तर– **वेदनीये शेषाः ॥ १६ ॥**

सूत्रार्थ–वेदनीय कर्म के उदय से शेष ११ परीषह होते है ।

प्रश्न १–वेदनीय कर्म के उदय से होने वाले ११ परीषह कौनसे है ?

उत्तर–क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दशमशक, चर्य्या, शय्या, वध, रोग, तृणस्पर्श और मल ये ११ परीषह वेदनीय कर्म के उदय से होते हैं ।

प्रश्न २–चर्या, शय्या और निषद्या ये तीनो परीषह एक श्रेणी के है फिर निषद्या को मोह निमित्तक और चर्य्या को वेदनीय निमित्तक क्यो कहा ?

उत्तर–प्राणिपीड़ारूपपरिणाम मोह के उदय से होता है और निषद्या परीषहजय मे इस प्रकार के परिणाम पर विजय पाने की मुख्यता है । इसी अपेक्षा चर्या और शय्या को मोह उदय निमित्तक मान सकते थे पर वहॉ कण्टकादिक के निमित्त से होनेवाली वेदना की मुख्यता करके उक्त दोनो परीषह वेदनीय निमित्तक कहे गये हैं ।

प्रश्न ३–एक जीव को एक साथ कितने परीषह हो सकते है ?

उत्तर– **एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नैकोन-
विंशतेः ॥ १७ ॥**

सूत्रार्थ–एक साथ एक आत्मा मे एक से लेकर उन्नीस तक परीषह विकल्प से हो सकते है ।

प्रश्न १–सूत्र मे "एकादय" शब्द किस अपेक्षा से आया है ?

उत्तर–किसी आत्मा मे एक समय मे एक परीषह, किसी के दो, किसी के तीन आदि लेकर उन्नीस तक परीषह यथासभव हो सकते हैं इसी अपेक्षा से एकादय शब्द का प्रयोग सूत्र मे हुआ है ।

प्रश्न २–एक साथ एक आत्मा मे एक से उन्नीस तक परीषह कैसे होते है ?

उत्तर–एक आत्मा मे शीत और उष्ण परीषहो मे से कोई एक तथा शय्या, चर्या और निषद्या इनमे से कोई एक परीषह ही होते है, क्योंकि शीत, उष्ण दोनो के तथा शय्या, निषद्या और चर्या इन तीनो के एक साथ होने मे विरोध आता है। अत इन तीनो को निकाल देने पर एक साथ एक आत्मा मे उन्नीस परीषह ही होते है।

प्रश्न ३–प्रज्ञा और अज्ञान परीषह मे भी विरोध है इसलिये इन दोनो का भी एक साथ होना असभव है ?

उत्तर–ऐसा मानना युक्त नही है क्योंकि एक साथ एक आत्मा मे श्रुतज्ञान की अपेक्षा परीषह और अवधि-मन पर्यय-केवलज्ञान के अभाव की अपेक्षा अज्ञान परीषह रह सकते है, इसलिये प्रज्ञा व अज्ञान मे परस्पर विरोध नही है।

प्रश्न ४–सवर के हेतुओ मे अन्तिम हेतु कौनसा है ?

उत्तर–सवर के ६ हेतुओ मे अन्तिम हेतु चारित्र है। (गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय और अन्तिम चारित्र)

प्रश्न ५–चारित्र के भेद कितने है ?

उत्तर– **सामायिकच्छेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धि-सूक्ष्मसाम्पराय यथाख्यातमिति चारित्रम् ॥ १८ ॥**

सूत्रार्थ–सामयिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात के भेद से चारित्र पॉच प्रकार का है।

प्रश्न १–सामायिक किसे कहते है ?

उत्तर–सर्व सावद्य की निवृत्तिरूप सकल्प की मुख्यता जिसमे है उसे सामायिक कहते है।

प्रश्न २–सामायिक शिक्षाव्रत, सामायिक प्रतिमा, सामायिक आवश्यक और सामायिक चारित्र मे क्या अन्तर है ?

उत्तर–दूसरी प्रतिमा मे सामायिक शिक्षाव्रत अभ्यासरूप है, तीसरी सामायिक प्रतिमा व्रत रूप है, सामायिक आवश्यक नियम रूप है और सामायिक चारित्र यम रूप है।

प्रश्न ३–सामायिक के कितने भेद हैं ?

उत्तर–परिमित (नियत) काल और अपरिमित (अनियत) काल के भेद से सामायिक दो प्रकार का है। स्वाध्याय आदि नियतकाल सामायिक है और ईर्यापथ आदि अनियतकाल सामायिक है। अर्थात् स्वाध्याय आदि मे जो परिमित नियत काल मे कायोत्सर्ग किये जाते है, सामायिक ग्रहण की जाती है वह परिमित काल सामायिक है, तथा ईर्यापथ आदि मे कायोत्सर्ग किया जाता है वह अनियत सामायिक है।

प्रश्न ४–छेदोपस्थापना सयम का लक्षण बताइये ?

उत्तर–प्रमादकृत अनर्थप्रबन्ध का अर्थात् हिंसादि अव्रतो के अनुष्ठान का विलोप अर्थात् सर्वथा त्याग करने पर जो भले प्रकार प्रतिक्रिया अर्थात् पुन व्रतो का ग्रहण होता है वह छेदोपस्थापना सयम है। अथवा विकल्पो की निवृत्ति का नाम छेदोपस्थापना चारित्र है।

प्रश्न ५–छेदोपस्थापना चारित्र का महत्त्व क्या है ?

उत्तर–छेदोपस्थापना मे चारित्र मे लगने वाले दोषो के परिमार्जन की मुख्यता है।

प्रश्न ६–सामायिक और छेदोपस्थापना चारित्र किन गुणस्थानो मे होते है ?

उत्तर–सामायिक-छेदोपस्थापना चारित्र'' षष्ठम प्रमत्त गुणस्थान से नवम अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक होते है।

प्रश्न ७–परिहारविशुद्धि चारित्र का लक्षण क्या है ?

उत्तर–प्राणिवध से निवृत्ति को परिहार कहते है। परिहार युक्त शुद्धि जिस चारित्र मे होती है वह परिहारविशुद्धि चारित्र है।

प्रश्न ८–परिहारविशुद्धि सयम कौनसे गुणस्थानो मे होता है ?

उत्तर–परिहारविशुद्धि सयम मात्र प्रमत्त-अप्रमत्त सयम षष्ठम, सप्तम गुणस्थानो मे होता है।

प्रश्न ९–परिहारविशुद्धि चारित्र किस जीव के होता है ?

उत्तर–परिहारविशुद्धि चारित्र ऐसे जीव के होता है जो तीस वर्ष तक गृहस्थ अवस्था मे सुखपूर्वक बिताकर सयम धारणकर तीर्थंकर के पादमूल मे रहकर आठ वर्ष तक प्रत्याख्यान पूर्व का अध्ययन करता है। अथवा और भी कहा है—

बत्तीसवासजम्मो वासपुधत्तं ख तित्थयरमूले।
पच्चक्खाणं पढिदो संझूणदुगाऊअविहारो ॥

अर्थात्–बत्तीस वर्ष पर्यन्त जिसने सासारिक सुखो का अनुभव किया हैं—पृथक्त्व वर्ष । आठ वर्ष तक तीर्थंकर के चरणमूल मे प्रत्याख्यान नामक ग्रन्थ का अध्ययन किया है, तीनो सध्याकाल को छोड़कर जो प्रतिदिन दो कोस विहार करते है उनके परिहारविशुद्धि सयम होता है ।

प्रश्न १०–परिहारविशुद्धि चारित्रधारक मुनिराज की विशेषता क्या है ?

उत्तर–(१) परिहारविशुद्धि चारित्रधारक मुनि जन्तुओ की रक्षा कैसे करनी चाहिये, वे किस द्रव्य के निमित्त से किस क्षेत्र और किस काल मे विशेषत उत्पन्न होते है, जीवो की योनि और जन्म कितने प्रकार के होते हैं इत्यादि बातो का भली प्रकार ज्ञाता होते है ।

(२) ये प्रमाद रहित, महाबलशाली, कर्मो की निर्जरा करनेवाले, दुष्कर चर्या का अनुष्ठान करने वाले होते है ।

(३) ये तीनो सध्याकालो को छोड़कर दो कोस गमन करने वाले होते है ।

(४) इन सयत के ऐसी सामर्थ्य उत्पन्न होती है जिसके बल से यह अन्य जीवो को बाधा पहुँचाये बिना ही चर्या करने मे समर्थ होते है ।

प्रश्न ११–पृथक्त्व वर्ष का अर्थ क्या है ?

उत्तर–तीन वर्ष के ऊपर और नौ वर्ष के भीतर की सख्या को पृथक्त्व वर्ष या वर्ष पृथक्त्व कहते है ।

प्रश्न १२–सूक्ष्मसाम्पराय चारित्र का लक्षण क्या है ?

उत्तर–जिस चारित्र मे कषाय अति सूक्ष्म हो जाती है वह सूक्ष्मसाम्पराय चारित्र है ।

प्रश्न १३–सूक्ष्मसाम्पराय चारित्र कौनसे गुणस्थान मे होता है ?

उत्तर–सूक्ष्मसाम्पराय चारित्र मात्र सूक्ष्म-साम्पराय नाम के दसम गुणस्थान मे होता है ?

प्रश्न १४–यथाख्यातचारित्र का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–जिस चारित्र मे सम्पूर्णतया मोहनीय कर्म का उपशम या क्षय हो गया है, तथा परम औदासीन्य लक्षण जीव की स्वाभाविक दशा प्रकट हुई है उसे यथाख्यातचारित्र कहते है अथवा जिस चारित्र मे जैसा आत्मा का स्वभाव कहा है, वैसा ही स्वभाव है, वह निरुक्ति से यथाख्यातचारित्र कहा गया है ।

प्रश्न १५–यथाख्यातचारित्र का दूसरा नाम क्या है ?

उत्तर–यथाख्यात का दूसरा नाम अथाख्यात भी है ।

प्रश्न १६–अथाख्यात नाम क्यो है ?

उत्तर–पूर्व चारित्र का अनुष्ठान करने वालो ने जिसका कथन किया है पर मोहनीय के क्षय या उपशम होने के पहले जिसे प्राप्त नही किया इसलिये यथाख्यात को अथाख्यात भी कहते है । अथ शब्द अनन्तर अर्थवर्ती होने से समस्त मोहनीय कर्म के क्षय या उपशम के अनन्तर वह प्रकट होता है यह तात्पर्य है ।

प्रश्न १७–पॉच चारित्र मे सबसे पहले सामायिक और छेदोपस्थापना चारित्र को क्यो रखा ?

उत्तर–सामायिक, छेदोपस्थापना की जघन्य विशुद्धिलब्धि सबसे अल्प होती है अत उन्हे प्रथम रखा गया है ।

प्रश्न १८–सामायिक छेदोपस्थापना के बाद परिहारविशुद्धि सयम को क्यो रखा ?

उत्तर–सामायिक, छेदोपस्थापना से परिहारविशुद्धि चारित्र की जघन्य विशुद्धि लब्धि अनन्तगुणी होती है अत उसे दोनो के बाद रखा है ।

प्रश्न १९–परिहारविशुद्धि सयम के बाद सूक्ष्मसाम्पराय को क्यो रखा ?

उत्तर–परिहारविशुद्धि की जघन्यविशुद्धि लब्धि से उसी की उत्कृष्ट विशुद्धि लब्धि अनन्तगुणी होती है, इससे सामायिक और छेदोपस्थापना की उत्कृष्ट विशुद्धि लब्धि अनन्तगुणी होती है और इससे भी सूक्ष्मसाम्पराय चारित्र की जघन्यविशुद्धि लब्धि अनन्तगुणी होती है अत परिहारविशुद्धि के बाद सूक्ष्मसाम्परायचारित्र को रखा है ।

प्रश्न २०–सूक्ष्म-साम्पराय के बाद यथाख्यातचारित्र को क्यो कहा गया ?

उत्तर–सूक्ष्मसाम्पराय की जघन्य विशुद्धि लब्धि से इसी की उत्कृष्ट विशुद्धि लब्धि अनन्तगुणी होती है तथा सूक्ष्मसाम्पराय से यथाख्यातचारित्र की विशुद्धि लब्धि अनन्तगुणी होती है, यही हेतु है कि सूक्ष्मसाम्पराय के बाद यथाख्यातचारित्र को कहा गया है ।

प्रश्न २१–यथाख्यातचारित्र मे विशुद्धि लब्धि के जघन्य-उत्कृष्ट भेद है या नही ?

उत्तर–नही है । यथाख्यातचारित्र मे विशुद्धि लब्धि मात्र एक प्रकार की ही होती है ।

प्रश्न २२–यथाख्यातचारित्र मे विशुद्धि अधिक होने से उसे सबसे प्रथम क्यो नही कहा ?

उत्तर–नही कहा । मोक्ष सबसे अन्त मे प्राप्त होता है और मोक्ष का साक्षात् कारण होने से यथाख्यातचारित्र को भी सबसे अन्त मे कहा है ।

प्रश्न २३–सूत्र न ६ अध्याय नव मे दस प्रकार के धर्म का निर्देश करते हुए "सयम धर्म" का कथन कर चुके है पुन यहाँ चारित्र का वर्णन क्यो किया ? सयम और चारित्र अलग-अलग है क्या ?

उत्तर–यद्यपि सामान्य से सयम और चारित्र एक ही है तथा सयमधर्म मे चारित्र का अन्तर्भाव भी हो जाता है तथापि समस्त कर्मो का क्षय चारित्र से होता है, इस विशेषता को दिखाने के लिये चारित्र का पृथक् रूप से व्याख्यान किया है ।

प्रश्न २४–यथाख्यातचारित्र कौनसे गुणस्थान से प्रारम्भ होता है ? इसके गुणस्थान बताइये ?

उत्तर–यथाख्यातचारित्र ग्यारहवे मे प्रारभ होता है । ग्यारह, बारह, तेरह और चौदह ये चार गुणस्थान यथाख्यातचारित्र के होते है ।

प्रश्न २५–यथाख्यातचारित्र का प्रादुर्भाव किस जीव के होता है ?

उत्तर–यथाख्यातचारित्र की उत्पत्ति कर्मभूमिया मनुष्य, उनमे भी सयमी, सयमी मे भी दर्शनमोह-चारित्रमोह के पूर्ण उपशम या पूर्ण क्षय करने वाले निकट भव्य जीव के ही होती है ।

प्रश्न २६–पाँचो चारित्र को धारण करने का अधिकारी किस गति का जीव हो सकता है ?

उत्तर–पाँचो (सामायिक आदि पाँच) को धारण करने का अधिकारी मनुष्यगति का जीव ही हो सकता है, उनमे भी द्रव्य पुरुष ही चारित्र का धारक हो सकता है । द्रव्यस्त्री वेदी या नपुसकवेदी मनुष्य चारित्र का पालन/ धारण नही कर सकता है ।

प्रश्न २७–कोई-कोई स्त्रियाँ व तिर्यंच भी देशसयम के धारी पाये जाते है फिर उन्हे चारित्रधारी कहेगे या नही ?

उत्तर–यद्यपि आर्यिका, क्षुल्लक व ऐलक के देशसयम स्वीकार किया गया है पर उन्हे चारित्रधारक नही कहा जा सकता है । क्योंकि पाँचो चारित्र मे देशसयम नाम का चारित्र किसी भी आचार्य ने नही कहा है । अर्थात् देश सयम नाम का कोई चारित्र नही है ।

प्रश्न २८–क्षायोपशमिक चारित्र और देशसयम मे क्या अन्तर है ?

उत्तर–क्षायोपशमिक चारित्र और देशसयम मे बहुत अन्तर है, उसका कारण यह है कि अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान दोनो सर्वघाति हैं, देशसयम

मे उनका उदय है अत देशसयम को क्षायोपशमिक भाव कहते है पर क्षायोपशमिक चारित्र नही ।

प्रश्न २९–पञ्चम गुणस्थान मे पुन कौनसा चारित्र है ?

उत्तर–समन्तभद्राचार्य ने सकलचारित्र और विकलचारित्र के भेद से चारित्र के दो भेद कहे है तदनुसार **पञ्चमगुणस्थान में विकल चारित्र** है ।

"सकल विकल चरणं, तत्सकलं सर्वसंगविरतानाम् ।
अनगाराणां विकलं सागाराणां ससङ्गानाम्" ॥ ५० ॥ र श्रा.

अर्थात् पञ्चम गुणस्थानवर्ती गृहत्यागी आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक, दसम प्रतिमाधारी हो या गृहस्थ व्रती हो उनका चारित्र विकल चारित्र कहलाता है ।

देशसयम अपेक्षा वहाँ उपचार से क्षायोपशमिक चारित्र है । परन्तु भाव अपेक्षा पञ्चमगुणस्थान मे कोई भी चारित्र नही है ।

प्रश्न ३०–देशसयमी के उपचार से क्षायोपशमिक चारित्र कैसे ?

उत्तर–देशसयमी के सामायिक आदि पॉच चारित्र मे से कोई भी चारित्र नही है । क्षायोपशमिक चारित्र भी उसे उपचार से कहा है इसका कारण यह है कि—अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान दोनो कषाय सर्वघाति है । क्षायोपशमिक चारित्र देशघाति के उदय मे होगा सर्वघाति के उदय मे नही फिर भी वह अनन्तानुबधी की तरह तीव्रता लिये हुए नहीं है अत उपचार से देशसयमी को क्षायोपशमिक चारित्र स्वीकार कर सकते है ।

प्रश्न ३१–सूत्र न ३ मे तप को सवर व निर्जरा का कारण कहा था, वह तप कितने प्रकार का होता है ?

उत्तर– अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्याग-विविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यं तपः ॥ १९ ॥

सूत्रार्थ–अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन और कायक्लेश यह छह प्रकार का बाह्य तप है ।

प्रश्न १–अनशन का अर्थ क्या है ?

उत्तर–अनशन का अर्थ चार प्रकार के आहार का त्याग वा उपवास है ।

प्रश्न २–अनशन तप क्यो किया जाता है ?

उत्तर–जो लौकिक फल की अपेक्षा न करके सयम की सिद्धि, राग का उच्छेद, कर्मों का विच्छेद (क्षय) सद्ध्यान की प्राप्ति और शास्त्रो के अभ्यास के लिये उपवास किया जाता है ।

प्रश्न ३–अवमौदर्य तप किसे कहते है ?

उत्तर–भूख से कम खाना अवमौदर्य तप है। भूख से एक, दो, चार ग्रास भी कम खाते है तो वह अवमौदर्य तप कहलाता है।

प्रश्न ४–अवमौदर्य तप क्यो करना चाहिये ?

उत्तर–सयम के साधन के लिये, वात, पित्त, कफ आदि दोषो के शमन के लिये और ज्ञान-ध्यान आदि की सुखपूर्वक सिद्धि के लिये अवमौदर्य तप करना चाहिये।

प्रश्न ५–वृत्तिपरिसख्यान तप का लक्षण क्या है ?

उत्तर–भिक्षा के इच्छुक मुनि का एक घर आदि विषयक सकल्प अर्थात् चिन्ता का अवरोध करना वृत्तपरिसख्यान तप है।

प्रश्न ६–वृत्तिपरिसख्यान तप का फल क्या है ?

उत्तर–आशा की निवृत्ति इसका फल है।

प्रश्न ७–रसपरित्याग तप किसे कहते है ?

उत्तर–कामोत्पादक घृत आदि गरिष्ठ/रसो का त्याग करना रसपरित्याग तप हे।

प्रश्न ८–रसपरित्याग तप का फल क्या है ?

उत्तर–इन्द्रियो के मद का निग्रह, निद्रा पर विजय और सुखपूर्वक स्वाध्याय की सिद्धि रसपरित्याग तप के फल है।

प्रश्न ९–विविक्तशय्यासन तप किसे कहते है ?

उत्तर–प्राणियो की पीड़ा से रहित ऐसे शून्य घर, गुफा, पर्वतो की कन्दरा आदि मे शयन, आसन (सोना, बैठना) करना विविक्तशय्यासन तप है।

प्रश्न १०–विविक्त शय्यासन तप का फल क्या है ?

उत्तर–ब्रह्मचर्य की सिद्धि, स्वाध्याय और ध्यान की प्राप्ति इसका फल है।

प्रश्न ११–कायक्लेश तप का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–**आतापन योग**—ग्रीष्म ऋतु मे धूप मे खड़े रहना। **वृक्षमूलयोग**—वर्षा ऋतु मे वृक्षमूल मे निवास करना और **अभ्रावकाशयोग**—शीतऋतु मे निरावरण स्थान मे शयन करना। इनके अलावा भी नाना प्रकार के प्रतिमास्थान (आसन), सूर्य के सन्मुख खड़े रहना आदि सब कायक्लेश नामक बाह्य तप कहलाता है।

प्रश्न १२–कायक्लेश तप करने का प्रयोजन क्या है ?

उत्तर–देह दु·ख को सहन करने के लिये, सुखविषयक आसक्ति को कम करने के लिये और प्रवचन अर्थात् जिनधर्म की प्रभावना कायक्लेश तप का प्रयोजन है ।

प्रश्न १३–परीषह और कायक्लेश मे क्या अन्तर है ?

उत्तर–परीषह अपने आप प्राप्त होता है और कायक्लेश स्वय किया जाता है ।

प्रश्न १४–अनशन आदि को बाह्य तप क्यो कहते है ?

उत्तर-प्रथमत (१) अनशन आदि तप बाह्य द्रव्य के आलम्बन से होते है अत इन्हे बाह्य तप कहते है ।

(२) ये तप दूसरो के प्रत्यक्ष होते है अर्थात् दूसरो के देखने मे आते है इसलिये भी बाह्य तप है और

(३) जिनधर्म से जो बाह्य है ऐसे अन्यमतावलम्बी जन भी इन तपो को करते है इसलिये भी अनशन आदि को बाह्य तप कहते है ।

प्रश्न १५–बाह्य तप करना व्यर्थ है क्यो मुक्ति का कारण तो अन्तरग तप ही है ?

उत्तर–ऐसा नही कहना चाहिये क्योंकि बाह्य तप अन्तरग तप की वृद्धि का कारण कहा गया है—

बाह्य तप परमदुश्चरमाचरस्त्वमाध्यात्मिकस्य तपस परिवृहणार्थम् ।।

समन्तभद्रस्वामी ने बृहत्स्वयभू स्तोत्र मे श्री कुन्थुनाथ भगवान की स्तुति करते हुए लिखा है कि—हे भगवान् ! आपने अन्तरङ्ग तप की वृद्धि के लिये अत्यन्त कठिन अनशनादि बाह्य तप का आचरण किया था ।

प्रश्न १६–बाह्य तप कार्यकारी कब होते है ?

उत्तर–आभ्यन्तर तपो की वृद्धि के लिये यदि बाह्य तप तपे जाते हैं तो वे सुतप कहलाते है, मोक्षमार्ग मे कार्यकारी होते है अन्यथा कायक्लेश मात्र के कारण कहे जाते है ।

प्रश्न १७–अन्तरग तप के वृद्धि के अभाव मे मात्र बाह्य तप का फल क्या होगा ?

उत्तर–अन्तरग तप की वृद्धि के अभाव मे किया गया मात्र बाह्य तप स्वर्ग के सुखो को तो दे सकता है किन्तु सवर-निर्जरा का हेतु बनकर मोक्ष का साधन नही हो सकता है ।

प्रश्न १८–आभ्यन्तर तप के कौनसे व कितने भेद है ?

उत्तर– प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्यस्वाध्यायव्युत्सर्ग-ध्यानान्युत्तरम् ॥ २० ॥

सूत्रार्थ-प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान यह छह प्रकार का आभ्यन्तर तप है ।

प्रश्न १-प्रायश्चित तप का लक्षण क्या है ?

उत्तर-प्रमादजन्य दोषो का परिहार करना प्रायश्चित तप है । प्राय शब्द का अर्थ साधुलोक है उनका जिस कर्म मे चित्त होता है वह प्रायश्चित्त कहलाता है अथवा प्राय शब्द का अर्थ अपराध है और चित्त का अर्थशुद्धि है, अत प्रायश्चित्त का अर्थ अपराधो की शुद्धि करना होता है ।

प्रश्न २–विनय तप का लक्षण बताइये ?

उत्तर–पूज्य पुरुषो का आदर करना विनय तप है ।

प्रश्न ३–वैयावृत्य तप का लक्षण बताइये ?

उत्तर–शरीर की चेष्टा या दूसरे द्रव्य द्वारा उपासना करना, पादमर्दन के द्वारा आराधना करना, सेवा करना वैयावृत्य तप है ।

प्रश्न ४–स्वाध्याय तप का लक्षण क्या है ?

उत्तर–आलस्य का त्यागकर ज्ञान की आराधना करना स्वाध्याय तप है ।

प्रश्न ५–व्युत्सर्ग तप किसे कहते है ?

उत्तर–अहकार और ममकार रूप सकल्प का त्याग करना व्युत्सर्ग तप है ।

प्रश्न ६–ध्यान तप का लक्षण क्या है ?

उत्तर–चित्त के विक्षेप का त्याग करना ध्यान तप है ।

प्रश्न ७–प्रायश्चित्त आदि को अन्तरग तप क्यो कहा गया है ?

उत्तर–प्रायश्चित्त आदि मन का नियमन करने वाले होने से इन्हे अन्तरग तप कहा है ।

प्रश्न ८–प्रायश्चित्त आदि पॉच तपो के कितने भेद है ?

उत्तर– नवचतुर्दशपञ्चद्विभेदा यथाक्रमं प्राग्ध्यानात् ॥ २१ ॥

सूत्रार्थ-ध्यान से पूर्व के आभ्यतर तपो के अनुक्रम से नौ, चार, दस, पाँच और दो भेद हैं ।

प्रश्न १–क्रम से आदि के पाँच आभ्यन्तर तपो के भेद बताइये ?

उत्तर–प्रायश्चित्त नव प्रकार का है, विनय चार प्रकार का है, वैयावृत्य दस प्रकार का है, स्वाध्याय पाँच प्रकार का है और व्युत्सर्ग दो प्रकार का है ।

प्रश्न २–प्रायश्चित्त तप के नव भेद कौनसे है ?

उत्तर– **आलोचनाप्रतिक्रमणतदुभयविवेकव्युत्सर्ग-तपश्छेदपरिहारोपस्थापना: ॥ २२ ॥**

सूत्रार्थ–(१) आलोचना, (२) प्रतिक्रमण, (३) तदुभय, (४) विवेक, (५) व्युत्सर्ग, (६) तप, (७) छेद, (८) परिहार, (९) उपस्थापना यह नव प्रकार का प्रायश्चित्त है ।

प्रश्न १–आलोचना प्रायश्चित्त किसे कहते है ?

उत्तर–गुरु के समक्ष दस दोषो को टालकर अपने प्रमाद का निवेदन करना आलोचना नामक प्रायश्चित्त है ।

प्रश्न २–आलोचना के दस दोष कौनसे है ?

उत्तर–(१) आकम्पित, (२) अनुमानित (३) दृष्ट, (४) बादर, (५) सूक्ष्म, (६) छन्न, (७) शब्दाकुलित, (८) बहुजन, (९) अव्यक्त और (१०) तत्सेवी ये आलोचना के दस भेद है ।

प्रश्न ३–आलोचना के प्रथम आकपित का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–उपकरण देने पर मुझे लघु प्रायश्चित्त देगे ऐसा विचारकर उपकरण आदि देकर गुरु मे अनुकम्पा उत्पन्न करके आलोचना करना आकम्पित दोष है ।

प्रश्न ४–अनुमानित दोष किसे कहते हैं ?

उत्तर–वचनो से अनुमान करके आलोचना करना अनुमानित दोष है, यथा—मैं प्रकृति से दुर्बल ग्लान हूँ, उपवास आदि नही कर सकता । यदि लघु प्रायश्चित्त दे तो दोष कहूँगा ऐसा कहना ।

प्रश्न ५–दृष्ट दोष किसे कहते हैं ?

उत्तर–अन्य अदृष्ट (गुप्त) दोषो को छिपाकर लोगो ने जिस दोष को देख लिया हो उसी की आलोचना करना दृष्ट या मायाचार नामक तीसरा दोष है ।

प्रश्न ६–बादर दोष का लक्षण क्या है ?

उत्तर–आलस्य या प्रमादवश अपने अपराधो की जानकारी प्राप्त करने मे निरुत्सुक होने पर स्थूल दोष कहना चौथा बादर दोष है ।

प्रश्न ७–सूक्ष्म दोष किसे कहते है ?

उत्तर–महादुश्चर प्रायश्चित्त के भय से महादोष छिपाकर उससे हल्के दोष की आलोचना करना सूक्ष्म दोष है ।

प्रश्न ८–छन्न दोष किसे कहते है ?

उत्तर–किसी के द्वारा उसके दोष को प्रकाशित किये जाने पर कहना कि जिस प्रकार का दोष उसने प्रकाशित किया है उसी प्रकार का दोष मेरा भी है । इस प्रकार गुप्तदोष की आलोचना करना छन्न दोष है ।

प्रश्न ९–शब्दाकुलित दोष किसे कहते है ?

उत्तर–कोलाहल के बीच आलोचना जिससे गुरु ठीक तरह से न सुन सके सो शब्दाकुलित दोष है ।

प्रश्न १०–बहुजन दोष किसे कहते है ?

उत्तर–गुरु द्वारा दिया हुआ प्रायश्चित्त क्या युक्त है ? आगम मे इसका विधान है या नही इस प्रकार की शका अन्य साधुओ के समक्ष प्रकट करके आलोचना करना बहुजन दोष है ।

प्रश्न ११–अव्यक्त दोष किसे कहते है ?

उत्तर–दोषो को नही समझने वाले गुरु के पास आलोचना करना अव्यक्त दोष है ।

प्रश्न १२–तत्सेवी दोष किसे कहते है ?

उत्तर–ऐसे गुरु के पास दोषो की आलोचना करना जो दोष उस गुरु मे भी हो, यह तत्सेवी दोष है ।

प्रश्न १३–दोष सहित आलोचना करने का फल क्या है ?

उत्तर–दोष सहित आलोचना करने वाला साधु मायाचार से दूषित होता है तथा वह परिणामो की शुद्धि के अभाव मे विशुद्ध रत्नत्रय की साधना नही कर सकता है ।

प्रश्न १४–प्रतिक्रमण किसे कहते है ?

उत्तर–"मिच्छा मे दुक्कड़" मेरा दोष मिथ्या हो ऐसा निवेदन करना प्रतिक्रमण है ।

प्रश्न १५–प्रतिक्रमण के कितने भेद है ?

उत्तर–(१) दैवसिक, (२) रात्रिक, (३) पाक्षिक, (४) चातुर्मासिक, (५) वार्षिक, (६) ईर्यापथ और (७) उत्तमार्थ ये प्रतिक्रमण के सात भेद है ।

प्रश्न १६–तदुभय प्रायश्चित्त किसे कहते है ?

उत्तर–गुरु की आज्ञा से प्रतिक्रमण शिष्य करता है और के द्वारा जो आलोचना पूर्वक प्रतिक्रमण किया जाता है वह तदुभय कहलाता है ।

प्रश्न १७–विवेक प्रायश्चित्त किसे कहते है ?

उत्तर–जिस वस्तु के न खाने का नियम हो उस वस्तु के बर्तन या मुख मे आ जाने अथवा जिन वस्तुओ से कषाय उत्पन्न हो उन सब वस्तुओ का त्याग कर देना विवेक नामक प्रायश्चित्त है ।

प्रश्न १८–व्युत्सर्ग प्रायश्चित्त किसे कहते है ?

उत्तर–नियतकाल पर्यन्त शरीर, वचन और मन का त्याग कर देना व्युत्सर्ग प्रायश्चित्त है ।

प्रश्न १९–तप प्रायश्चित्त का लक्षण क्या है ?

उत्तर–उपवास आदि छह प्रकार का बाह्य तप तप प्रायश्चित्त है ।

प्रश्न २०–छेद प्रायश्चित्त किसे कहते है ?

उत्तर–दिन, मास, पक्ष आदि का छेदकर देना छेद प्रायश्चित्त है ।

प्रश्न २१–परिहार प्रायश्चित्त किसे कहते है ?

उत्तर–दिन, पक्ष, मास, वर्ष आदि नियत काल तक सघ से पृथक् कर देना परिहार नामक प्रायश्चित्त है ।

प्रश्न २२–उपस्थापना प्रायश्चित्त किसे कहते हैं ?

उत्तर–महाव्रतो का मूलच्छेद करके पुन दीक्षा देना उपस्थापना नामक प्रायश्चित्त है ।

प्रश्न २३–प्रायश्चित्त के दस भेद भी ग्रन्थो मे पढ़े जाते है वे कौन से है ?

उत्तर–जी हॉ ! मूलचार मे प्रायश्चित्त के दस भेद लिखे है— (१) आलोचना, (२) प्रतिक्रमण, (३) तदुभय, (४) विवेक, (५) व्युत्सर्ग, (६) तप, (७) छेद, (८) मूल, (९) परिहार और (१०) श्रद्धान ।

प्रश्न २४–मूल और श्रद्धान प्रायश्चित्त के लक्षण क्या है ?

उत्तर–मूल प्रायश्चित्त का अर्थ वही है जो उपस्थापना का है । अर्थात् व्रतो का मूलच्छेद करना मूल प्रायश्चित्त है । मूल और उपस्थापना पर्यायवाची है । तथा

मानसिक दोष के होने पर उसके परिमार्जन के लिये मेरा दोष मिथ्या हो ऐसा अभिव्यक्त करने को श्रद्धान नामक प्रायश्चित्त कहते है ।

प्रश्न २५–आलोचना प्रायश्चित्त कब-कब करना चाहिये ?

उत्तर–निम्न दोषो के होने पर आलोचना प्रायश्चित्त करना चाहिये—

(१) आचार्य से बिना पूछे आतापन आदि योग करने पर ।

(२) पुस्तक, पीछी, कमण्डुल आदि उपकरण दूसरो के लेने पर ।

(३) परोक्ष मे प्रमाद से आचार्य की आज्ञा का पालन नही करने पर ।

(४) दूसरे सघ से बिना पूछे अपने सघ मे आने पर ।

(५) आचार्य से बिना पूछे आचार्य के काम को चले जाकर आने पर ।

(६) नियत देश-काल मे करने योग्य कार्य को धर्मकथा आदि मे व्यस्त रहने के कारण भूल जाने पर, कालान्तर मे करने पर आलोचना की जाती है । इसी प्रकार अन्य कार्यो मे भी स्खलित होने पर आलोचना नामक प्रायश्चित्त होता है ।

प्रश्न २६–प्रतिक्रमण प्रायश्चित्त किन दोषो के होने पर किया जाता है ?

उत्तर–(१) पाँच इन्द्रिय और मन मे से वचन आदि की दुष्प्रवृत्ति होने पर ।

(२) आचार्य आदि से हाथ, पैर आदि का सघट्ट (रगड़) हो जाने पर ।

(३) व्रत समिति और गुप्ति मे स्वल्प अतिचार लगने पर ।

(४) पैशुन्य, कलह आदि करने पर ।

(५) वैयावृत्य, स्वाध्याय आदि मे प्रमाद करने पर ।

(६) कामविकार होने पर तथा दूसरो को सक्लेश आदि देने पर प्रतिक्रमण प्रायश्चित्त किया जाता है ।

प्रश्न २७–तदुभय (आलोचना और प्रतिक्रमण) प्रायश्चित्त कब-कब किया जाता है ?

उत्तर–(१) दिन और रात्रि के अन्त मे, (२) भोजन, गमन आदि करने पर, (३) केशलोच करने पर, (४) नखो का छेद करने पर, (५) स्वप्नदोष होने पर, (६) रात्रिभोजन करने पर और (७) पक्ष, मास, चार मास, वर्ष पर्यन्त दोष करने पर आलोचना और प्रतिक्रमण दोनो प्रायश्चित्त किये जाते है ।

प्रश्न २८–साधु को रात्रिभोजन दोष किस प्रकार होता है ?

उत्तर–यद्यपि साधु रात्रिभोजन नही करते तथापि क्वचित्-कदाचित् उन्हे रात्रिभोजन दोष लग सकता है । काल की मर्यादा भूल जाने पर ।

प्रश्न २९–वह कैसे ?

उत्तर–जैसे कोई साधु रात्रि मे अधिक बीमार हो गया, अब उसे पानी की बहुत प्यास सता रही है, ऐसी स्थिति मे सूर्योदय के ४८ मिनट बाद ही उन्होंने आहार ले लिया, यह रात्रिभोजन दोष कहा जायेगा क्योंकि साधु को सूर्योदय के ढ़ाई घड़ी बाद आहार लेने का विधान है। इस प्रकार कोई साधु तीर्थराज की वदना करने गये थे। आने मे कुछ देर हो गई। आहार को गये, अब आहार करने मे समय अधिक हो गया सूर्यास्त होने मे मात्र ३० मिनट शेष था तब उनका आहार पूर्ण हुआ, ऐसी स्थिति मे भी साधु रात्रिभोजन दोष को प्राप्त होते है क्योंकि सूर्यास्त होने के ढ़ाई घड़ी पूर्व आहार हो जाना चाहिये, अधिक समय होने पर प्रायश्चित्त का भागीदार होता है।

प्रश्न ३०–व्युत्सर्ग प्रायश्चित्त कब किया जाता है ?

उत्तर–निम्नाकित दोष होने पर व्युत्सर्ग प्रायश्चित्त किया जाता है—

(१) मौन के बिना केशलोच करने पर,, (२) पेट से कीड़े निकलने पर, (३) हिमपात मच्छर या प्रचण्ड वायु से सघर्ष होने पर, (४) गीली भूमि पर चलने पर, (५) कीचड़ मे चलने पर, (६) जघा तक जल मे घुसने पर, (७) दूसरे की वस्तु उपयोग मे लेने पर, (८) नाव आदि से नदी पार करने पर, (९) बिना देखे स्थान मे शौच आदि करने पर, (१०) पुस्तक के गिर जाने पर, (११) प्रतिमा के गिर जाने पर, (१२) स्थावर जीवो का विघात होने पर, (१३) पाक्षिक प्रतिक्रमण व्याख्यान आदि क्रियाओ के अन्त मे अनजान मे मल निकल जाने पर, (१४) मल-मूत्र करके आने पर और भोजन करके आने पर व्युत्सर्ग प्रायश्चित्त किया जाता है।

प्रश्न ३१–प्रायश्चित्त करने से लाभ क्या है ?

उत्तर–प्रायश्चित्त करने से व्रतो की शुद्धि होती है, भावो की शुद्धि होती है, चञ्चलता का अभाव होता है, शल्य का परिहार होता है और धर्म मे दृढ़ता आदि होती है। अत निर्दोष व्रतो की आराधना करनेवाले आराधक को नव प्रकार का प्रायश्चित्त अवश्य ही करना चाहिये।

प्रश्न ३२–विनय नामक अन्तरग तप के नाम बताइये ?

उत्तर– **ज्ञानदर्शनचारित्रोपचाराः ॥ २३ ॥**

सूत्रार्थ–ज्ञानविनय, दर्शनविनय, चारित्रविनय और उपचारविनय ये चार प्रकार का विनय है।

प्रश्न १–ज्ञान विनय का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–बहुत आदर के साथ मोक्ष के लिये ज्ञान का ग्रहण करना, अभ्यास करना और स्मरण करना आदि ज्ञानविनय है ।

प्रश्न २–दर्शनविनय किसे कहते है ?

उत्तर–शका, काक्षादि दोषो से रहित तत्त्वार्थ श्रद्धान करना दर्शनविनय है ।

प्रश्न ३–चारित्रविनय किसे कहते है ?

उत्तर–निर्दोष चारित्र का स्वय पालन करना और ज्ञानदर्शन-चारित्र धारक पुरुषो की भाव से भक्ति करना चारित्रविनय है । अथवा सम्यग्दृष्टि का चारित्र मे चित्त लगना चारित्रविनय है ।

प्रश्न ४–उपचारविनय किसे कहते है ?

उत्तर–आचार्य, उपाध्याय आदि को देखकर खड़े होना, उनके पीछे-पीछे चलना और नमस्कार करना, उनके परोक्ष होने पर मन, वचन, काय से नमस्कार करना, उनके गुणो का स्मरण करना, उनके गुणो का कीर्तन करना आदि उपचार विनय है ।

प्रश्न ५–विनय तप का फल क्या है ?

उत्तर–विनय तप के करने से ज्ञान लाभ होता है, आचार विशुद्धि होती है, सम्यक् आराधना सिद्ध होती है तथा मुक्ति कपाट खुल जाते है, इसीलिये कहा भी है "विणओ मोक्ख द्वार" ।

प्रश्न ६–वैयावृत्य के भेदो के नाम बताइये ?

उत्तर– **आचार्योपाध्यायतपस्विशैक्षग्लानगणकुल-सङ्घसाधुमनोज्ञानाम् ॥ २४ ॥**

सूत्रार्थ–आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष्य, ग्लान, गण, कुल, सघ, साधु और मनोज्ञ इनकी वैयावृत्य के भेद से वैयावृत्य दस प्रकार का है ।

प्रश्न १–वैयावृत्य के दस भेद क्यो कहे ?

उत्तर–वैयावृत्य का विषय दस प्रकार का है अत विषय की अपेक्षा इसके दस भेद है । यथा आचार्य-वैयावृत्य, उपाध्याय-वैयावृत्य आदि ।

प्रश्न २–आचार्य किन्हे कहते है ?

उत्तर–जिनके निमित्त से व्रतो का आचरण करते है, वे आचार्य कहलाते है ।

प्रश्न ३–उपाध्याय किन्हे कहते है ?

उत्तर–मोक्षप्राप्ति के लिये जिनके पास जाकर शास्त्र पढ़ते है, वे उपाध्याय कहलाते है ।

प्रश्न ४–तपस्वी किन्हे कहते है ?

उत्तर–महा उपवास आदि का अनुष्ठान करने वाले तपस्वी कहलाते है ।

प्रश्न ५–शैक्ष साधु कौन होते है ?

उत्तर–शिक्षाशील साधु शैक्ष कहलाते है ।

प्रश्न ६–ग्लान साधु का लक्षण बताओ ?

उत्तर–रोग आदि से क्लान्त शरीर वाले मुनि ग्लान कहलाते है ।

प्रश्न ७–गण किसे कहते है ?

उत्तर–स्थविरो की सन्तति को गण कहते है ।

प्रश्न ८–कुल किसे कहते है ?

उत्तर–दीक्षकाचार्य के शिष्य समुदाय को कुल कहते है ।

प्रश्न ९–सघ किसे कहते है ?

उत्तर–चार वर्ण के श्रमणो के समुदाय को सघ कहते है ।

प्रश्न १०–साधु किसे कहते है ?

उत्तर–चिरकाल से प्रव्रजित को साधु कहते है ।

प्रश्न ११–मनोज्ञ किसे कहते है ?

उत्तर–वक्तृत्व आदि गुणो से शोभित और लोक सम्मत मुनि को मनोज्ञ कहते है । वक्तृत्व आदि गुणो से युक्त असयत सम्यग्दृष्टि को भी मनोज्ञ कहते है ।

प्रश्न १२–इन दस प्रकार के साधुओ की वैयावृत्य कब व किस प्रकार करना चाहिये ?

उत्तर–दस प्रकार के मुनियो को व्याधि होने पर प्रासुक औषधि, भक्तपान आदि पथ्यवस्तु स्थान और सस्तरण आदि के द्वारा उनकी वैयावृत्य करना चाहिये । इसीप्रकार धर्मोपकरण पिच्छी, शास्त्र, माला आदि देकर, परीषहो को नाश कर, उपसर्गों को दूर कर, मिथ्यात्व आदि के होने पर सम्यक्त्व मे स्थापना करके तथा बाह्य वस्तु के न होने पर अपने शरीर से ही श्लेष्मा आदि शरीर मल को पोंछ करके अनुकूल अनुष्ठान आदि करके वैयावृत्य करना चाहिये ।

प्रश्न १३–मुनिराज को रोग होने पर उचित औषधि देकर वैयावृत्य करने वाले महापुरुष का नाम बताओ ?

उत्तर–श्रीकृष्णजी (नारायण)

प्रश्न १४–स्थान सस्तरण देकर समाधि के समय गुरु की वैयावृत्य करने वाला महापुरुष कौन था ?

उत्तर–"राजा चन्द्रगुप्त" (आपने गुरु भद्रबाहु स्वामी की महान् वैयावृत्ति की थी)

प्रश्न १५–धर्मोपकरण शास्त्र देकर मुनिराज की वैयावृत्य करने वाला कौन था ?

उत्तर–"कौण्डेश ग्वाला" (जो वैय्यावृत्य के फल से अग्रिम भव मे कुन्दकुन्दाचार्य बने)

प्रश्न १६–मुनिराज का उपसर्ग दूर कर वैयावृत्य करने वाली रानी कौन थी ?

उत्तर–"चेलना रानी" (जिसने यशोधर मुनिराज का उपसर्ग दूर कर वैयावृत्य किया था)

प्रश्न १७–गुरु के अनुकूल चलकर वैयावृत्य करनेवाले वर्तमान आचार्य कौन है ?

उत्तर–"आचार्य श्री १०८ भरतसागरजी" (जिन्होने गुरुदेव के अनुकूल रहकर चरण-कमल मे सत्ताईस वर्ष रहकर महान् वैयावृत्ति की)

प्रश्न १८–मिथ्यात्व मे स्थित मुनि का उपकार कर सम्यक्त्व मे स्थापित कर वैयावृत्य करने वाले महामुनि का नाम बताओ ?

उत्तर–"वारिषेण मुनिराज" (आपने पुष्पडाल मुनिराज जो दीक्षा के बाद १२ वर्ष तक मिथ्यात्व मे रहे, सम्यक्त्व मे स्थापित कर उनका उपकार किया।

प्रश्न १९–वैयावृत्य को अन्तरग तप क्यो कहा ?

उत्तर–वैयावृत्य अन्तरग अनुकम्पा, करुणा रूप परिणामो के बिना नही हो सकती। तथा इसमे सबसे बड़ी विशेषता यह है कि "ग्लानि को जीते बिना, मान को जीते बिना वैयावृत्ति कभी हो नही सकती, अत वैयावृत्य को अन्तरग तप कहा।

प्रश्न २०–वैयावृत्य तप का फल क्या है ?

उत्तर–समाधि की प्राप्ति, ग्लानि का अभाव, प्रवचन वात्सल्य की प्रकटता और निरोग शरीर, उत्तमसहनन आदि वैयावृत्य का फल है। कहा भी है—

"निशदिन वैयावृत्य करैया, सो निहचै भवनीर तिरैया"।

प्रश्न २१–स्वाध्याय तप के भेद बताइये ?

उत्तर– **वाचनापृच्छनानुप्रेक्षाम्नायधर्म्मोपदेशाः ॥ २५ ॥**

सूत्रार्थ–वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय और धर्मोपदेश ये स्वाध्याय के पाँच भेद है ।

प्रश्न १–वाचना स्वाध्याय का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–निर्दोष ग्रन्थ और अर्थ दोनो का प्रदान करना वाचना स्वाध्याय है । अथवा जो गुरु पापक्रियाओ से विरत है, अध्यापन के क्रियाफल की अपेक्षा नही करता है, वह गुरु शास्त्रो को पढ़ाता है, शास्त्र के अर्थवाच्य को कहता है, ग्रन्थ और अर्थ इन दोनो की व्याख्या करता है, पात्र के लिये ग्रन्थ (अक्षर), अर्थ और उभय इन तीनो प्रकार के शास्त्र का उपदेश देता है, शास्त्रज्ञान प्रदान करता है, वह वाचना कहलाती है ।

प्रश्न २–पृच्छना किसे कहते है ?

उत्तर–पृच्छना का अर्थ है पूछना । सशय का उच्छेद करने के लिये अथवा निश्चित बल को पुष्ट करने के लिये प्रश्न करना पृच्छना है ।

प्रश्न ३–अपनी उन्नति या दूसरो की हँसी उड़ाने के लिये पूछना क्या है ?

उत्तर–जो अपनी उन्नति और दूसरो को ठगने या उसकी हॅसी के लिये पूछता है उसका वह स्वाध्याय सवर का हेतु नही होता, अपितु मान कषाय का पोषक होता है ।

प्रश्न ४–अनुप्रेक्षा किसे कहते है ?

उत्तर–अनुप्रेक्षा का अर्थ है पुन -पुन चिन्तन करना । जाने हुए अर्थ का पुन -पुन मन मे अभ्यास करना अनुप्रेक्षा स्वाध्याय है ।

प्रश्न ५–आम्नाय का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–उच्चारण की शुद्धिपूर्वक पाठ को पुन -पुन दुहराना आम्नाय है ।

प्रश्न ६–अक्षरो के उच्चारण स्थान कितने व कौनसे है ?

उत्तर–अक्षरो के उच्चारण स्थान दस है—(१) कण्ठ, (२) तालु, (३) मूर्धा, (४) दन्त, (५) ओष्ठ, (६) कण्ठतालु, (७) कण्ठ ओष्ठ, (८) दन्त ओष्ठ, (९) नासिका, (१०) कण्ठनासिका आदि है ।

प्रश्न ७–कौन वर्ण का उच्चारण किस स्थान से होता है ?

उत्तर–अ आ क् ख् ग् घ् ङ् (कण्ठ)

इ ई य, श, च, छ, ज, झ, ञ (तालु)

ऋ, ॠ, र्, ष्, ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण् (मूर्धा)

लृ ल् स् त् थ् द् ध् न् (दन्त)

उ ऊ ꣲ प फ प् फ् ब् भ् म् (ओष्ठ)
ए ऐ (कण्ठतालु) ओ औ (कण्ठओष्ठ)
व (दन्तओष्ठ) अनुस्वार (नासिका)
ङ आदि का स्थान (कण्ठनासिका) आदि ।

प्रश्न ८–धर्मोपदेश का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–धर्मकथा आदि का अनुष्ठान करना धर्मोपदेश है ।

प्रश्न ९–धर्मोपदेश क्यो किया जाता है ?

उत्तर–प्रत्यक्ष और परोक्ष फल की अपेक्षा न करके उन्मार्ग का उच्छेद करने के लिये, सन्मार्ग को स्थापित करने के लिये, सशय का उच्छेद करने के लिये, अपूर्व अर्थ का प्रकाशन करने के लिये तथा आत्मकल्याण के लिये धर्मोपदेश किया जाता है ।

प्रश्न १०–धर्मोपदेश कौनसे अनुयोग का होता है ?

उत्तर-प्रथमानुयोग का धर्मोपदेश होता है ।

प्रश्न ११–धर्मोपदेश देने वाले वक्ता का कर्तव्य क्या है ?

उत्तर–वक्ता जो धर्मपदेश करता है वह—(१) सदा हितकारी प्रमित वचन को बोले, (२) यशस्कारी धर्मयुक्त वचनो को ही बोले तथा (३) कितना ही विपरीत प्रसग आने पर भी वह अधर्मयुक्त और अपयशकारी वचनो का प्रयोग न करे ।

प्रश्न १२–पॉच प्रकार के स्वाध्याय से क्या लाभ होता है ?

उत्तर-स्वाध्याय करने से—(१) प्रज्ञा का अतिशय बढ़ता है, (२) प्रशस्त अध्यवसाय होता है, (३) उत्कृष्ट सवेग होता है, (४) प्रवचन स्थिति की जागृति होती है, (५) जिनधर्म का उद्योतन होता है, (६) तप की वृद्धि होती है, (७) अतीचारो की विशुद्धि होती है, (८) सशय का उच्छेद होता है तथा (९) मिथ्यामतो का खण्डन होता है । इस प्रकार साक्षात् व परम्परा से स्वाध्याय के अनेको लाभ है ।

प्रश्न १३–व्युत्सर्ग तप के भेद कौनसे हे ?

उत्तर– **बाह्याभ्यन्तरोपध्योः ॥ २६ ॥**

सूत्रार्थ–बाह्य और आभ्यतर उपधि का त्याग यह दो प्रकार का व्युत्सर्ग है ।

प्रश्न १–व्युत्सर्ग किसे कहते है यह कितने प्रकार का है ?

उत्तर–व्युत्सर्जन करना व्युत्सर्ग है । व्युत्सर्ग का अर्थ है त्याग । व्युत्सर्ग दो भेद रूप है—(१) बाह्य उपधि त्याग और (२) आभ्यतर उपधित्याग ।

प्रश्न २–बाह्य उपधि किसे कहते है ? तथा बाह्य उपधि व्युत्सर्ग क्या है ?

उत्तर–आत्मा से एकत्व को नही प्राप्त हुए ऐसे वास्तु, धन और धान्य आदि बाह्य उपधि कहलाते है । बाह्य उपधि का त्याग बाह्य उपधि व्युत्सर्ग कहलाता है ।

प्रश्न ३–आभ्यतर उपधि और आभ्यतर उपधि व्युत्सर्ग दोनो का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–क्रोधादिरूप आत्मभाव आभ्यतर उपधि है । तथा नियत काल तक या यावज्जीवन तक काय का त्याग करना भी आभ्यन्तर उपधि त्याग या आभ्यतर उपधि व्युत्सर्ग कहलाता है ।

प्रश्न ४–व्युत्सर्ग तप का फल क्या है ?

उत्तर–व्युत्सर्ग के अनेक फल प्राप्त होते है । यथा—(१) निस्सगता, (२) निर्भयता, (३) जीवित आशा का परिहार, (४) व्रतो मे लगे हुए दोषो का उच्छेदन और (५) मोक्षमार्ग की प्रभावना ।

प्रश्न ५–पॉच महाव्रतो मे परिग्रहत्याग का उपदेश है, दस धर्मों मे त्याग धर्म का उपदेश दिया है, नव प्रकार के प्रायश्चित्त मे भी व्युत्सर्ग नामक प्रायश्चित्त अलग ही रखा है पुन आभ्यतर तप मे व्युत्सर्ग का ग्रहण क्यो किया ? यहाँ पुनरुक्त दोष प्राप्त होता है ?

उत्तर–ऐसा नही है क्योकि महाव्रतो मे जो परिग्रह त्याग महाव्रत है उसमे गृहस्थसम्बन्धी उपधि के त्याग की मुख्यता है । त्यागधर्म मे आहारादिक विषयक आसक्ति के कम करने की मुख्यता है । व्युत्सर्ग प्रायश्चित्त मे परिग्रह त्याग धर्म मे लगनेवाले दोषो के परिमार्जन की मुख्यता है और व्युत्सर्ग तप मे वसतिका आदि बाह्य व मनोविकार तथा शरीर आदि आभ्यतर उपधि मे आसक्ति के त्याग की मुख्यता है अत यहाँ पुनरुक्त दोष का प्रसग नही आता । व्युत्सर्ग का शब्दाधिकरण एक होने पर भी अर्थाधिकरण अलग-अलग है ।

प्रश्न ६–पूर्व मे ध्यान को अन्तरग तप कहा उस ध्यान का स्वरूप, ध्याता और ध्यान का काल बताइये ?

उत्तर– **उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यान-मान्तर्मुहूर्तात् ॥ २७ ॥**

सूत्रार्थ–उत्तम संहनन वाले का एक विषय मे चित्त की वृत्ति को रोकना ध्यान है, जो अन्तर्मुहूर्त काल तक होता है ।

प्रश्न १–उत्तम सहनन कितने व कौनसे है ?

उत्तर–आदि के तीन सहनन उत्तम सहनन होते है—वज्रर्षभनाराचसहनन, वज्रनाराचसहनन और नाराचसहनन ।

प्रश्न २–ध्यान के साधन कितने सहनन है तथा मोक्ष के साधन कितने सहनन हैं ?

उत्तर–ध्यान के साधन तीनो ही सहनन है और मोक्ष का साधन तो एक मात्र वज्रर्षभनाराचसहनन ही है ।

प्रश्न ३–ध्याता कौन होता है ?

उत्तर–आदि के तीन सहनन वाला जीव ही ध्याता होता है । सूत्र मे उत्तमसहननस्य पद से ध्याता का लक्षण सूचित होता है ।

प्रश्न ४–सूत्र मे आया "एकाग्रचिन्तानिरोध" पद ध्यान का लक्षण बताता है । अर्थात् नाना पदार्थों का अवलम्बन लेने से चिन्ता परिस्पन्दवती होती है । उसे अन्य मुखो से लौटाकर एक अग्र अर्थात् एक विषय मे नियमित करना एकाग्रचिन्ता निरोध ध्यान कहलाता है । (अथवा निश्चल अग्निशिखा के समान निश्चलरूप से अवभासमान ज्ञान ही ध्यान है)

प्रश्न ५–ध्यान की अवधि/काल कितना है ?

उत्तर–"अन्तर्मुहूर्तात्" पद से ध्यान की अवधि का ज्ञान होता है अर्थात् ध्यान का काल अन्तमुहूर्त मात्र है ।

प्रश्न ६–मुहूर्त किसे कहते है ?

उत्तर–दो घटिका को मुहूर्त कहते हैं ।

प्रश्न ७–घटिका किसे कहते है ?

उत्तर–२४ मिनिट की एक घटिका होती है ।

प्रश्न ८–अन्तर्मुहूर्त किसे कहते है ?

उत्तर–जो मुहूर्त के भीतर होता है, वह अन्तर्मुहूर्त कहलाता है ।

प्रश्न ९–ध्यान का काल अन्तर्मुहूर्त ही क्यो कहा ?

उत्तर–अन्तर्मुहूर्त काल के बाद एकाग्र चिन्ता दुर्धर होती है अर्थात् अन्तर्मुहूर्त काल के बाद एकाग्रचिन्तानिरोध नही होता ।

प्रश्न १०–ध्यान का फल क्या है ?

उत्तर–अचलत्व से प्रकाशमान वह ध्यान सर्व कर्म को भस्म कर देता है । अन्तर्मुहूर्त किया हुआ एक बार का भी ध्यान घातिया कर्म को नष्ट कर केवलज्ञान प्राप्त कराता है ।

प्रश्न १२–ध्यान के भेद बताओ ?

उत्तर– **आर्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि ॥ २८ ॥**

सूत्रार्थ–आर्त्त, रौद्र, धर्म्य और शुक्ल ये ध्यान के चार भेद है ।

प्रश्न १–आर्त्तध्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर–आर्त्त शब्द "ऋत' अथवा अर्ति इनमे से किसी एक से बना है। इनमे से ऋत का अर्थ दु ख है। और अर्तिकी "अर्दन अर्ति " ऐसी निरुक्ति होकर पीड़ा पहुँचाना उसका अर्थ है। अत ऋत मे या अर्ति मे जो होता है वह आर्त्त है। आर्त्त परिणामो मे होने वाला चिन्तानिरोध आर्त्तध्यान है।

प्रश्न २–रौद्रध्यान किसे कहते है ?

उत्तर–रुद्र का अर्थ क्रूर आशय वाला प्राणी है । रुद्र का कर्म या रुद्र मे होने वाला कर्म रौद्र है । रौद्र परिणामो मे होने वाला चिन्तानिरोध रौद्रध्यान है ।

प्रश्न ३–धर्म्यध्यान किसे कहते है ?

उत्तर–वस्तु के स्वरूप को धर्म कहते है । जो धर्म से युक्त होता है उसे धर्म्य कहते है । धर्म्यरूप परिणामो मे "चिन्तानिरोध" धर्म्यध्यान कहलाता है ।

प्रश्न ४–शुक्लध्यान का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–जो मल (कषाय) रहित जीव के परिणामो से उत्पन्न होता है वह शुक्ल है अथवा जिसमे शुचिगुण का सबध है वह शुक्ल है । शुक्ल परिणामो मे चिन्तानिरोध हो जाना शुक्लध्यान है ।

प्रश्न ५–चार प्रकार के ध्यानो मे प्रशस्त व अप्रशस्त ध्यान कितने है ?

उत्तर–चार प्रकार के ध्यानो मे आर्त्त और रौद्रध्यान को अप्रशस्त और धर्म्य-शुक्लध्यान को प्रशस्त ध्यान कहा है ।

प्रश्न ६–आर्त्त-रौद्र को अप्रशस्त क्यो कहा ?

उत्तर–पापास्रव के कारण होने से आर्त्त-रौद्र ध्यानो को अप्रशस्त ध्यान कहा है ।

प्रश्न ७–धर्म्य-शुक्ल ध्यान को प्रशस्त क्यो कहा ?

उत्तर–कर्म कलक को निर्दहन (क्षय) करने मे समर्थ होने से धर्म्य-शुक्ल दोनो ध्यानो को प्रशस्त ध्यान कहते हैं ।

प्रश्न ८–वर्तमान युग मे प्रशस्त ध्यान तो होता नही है ,

उत्तर–ऐसा नहीं कहना चाहिये आज भी प्रशस्त ध्यान का निषेध नही है । श्रीकुन्दकुन्दाचार्य मोक्षप्राभृत ग्रन्थ मे लिखते है—

भरहे दुस्समकाले धम्मज्झाण हवेइ साहुस्स ।

त अप्पसहावठिदे ण हु मण्णइ सो वि अण्णाणी ।। ७६ ।। –मो प्रा

अर्थात् भरतक्षेत्र मे दु षम नामक पञ्चमकाल मे मुनि के धर्म्यध्यान होता है तथा वह धर्म्यध्यान आत्म स्वभाव मे स्थित साधु के होता है, ऐसा जो नही मानता । वह अज्ञानी है । तथा और भी कहा है—

अज्जवि तिरयणसुद्धा अप्पा झाएवि लहहि इदत्त ।

लोयतिय देवत्त तत्थ चुआ णिव्वुदि जति ।। ७७ ।। –मो प्रा

आज भी रत्नत्रय से शुद्धता को प्राप्त हुए मनुष्य आत्मा का ध्यान कर इन्द्र पद तथा लौकातिक देवो के पद को प्राप्त होते है । और वहाँ से च्युत होकर निर्वाण को प्राप्त होते है ।

प्रश्न ९–प्रशम्तध्यान का फल क्या है ?

उत्तर– **परे मोक्षहेतू ॥ २९॥**

सूत्रार्थ–उनमे से पर अर्थात् अन्त के दो ध्यान मोक्ष के हेतु है ।

प्रश्न १–मोक्ष के हेतु ध्यान कितने है ?

उत्तर–धर्म्य और शुक्ल ये दो ध्यान मोक्ष के कारण होते है ।

प्रश्न २–साक्षात् मोक्ष का कारण कौनसा ध्यान है ?

उत्तर–धर्म्य और शुक्ल ये दो ध्यान मोक्ष अर्थात् परमनिर्वाण के कारण होते है । उनमे भी परमशुक्लध्यान साक्षात् उसी भव मे मोक्ष का कारण है और उपशमश्रेणी की अपेक्षा तीसरे भव मे मोक्ष को देनेवाला है । यह तीक्ष्ण तलवार के समान शीघ्र कर्मो के क्षय करने मे समर्थ है ।

प्रश्न ३-परम्परा से मुक्ति का हेतु कौनसा ध्यान है ?

उत्तर-धर्म्यध्यान परम्परा से मोक्ष का कारण है अत उसको गौणरूप से, उपचार से मोक्ष का कारण कहते है । (यह बोथरे शस्त्र की तरह परम्परा से मुक्ति का हेतु है)

प्रश्न ४–उपशमश्रेणी वाले जीव को तीसरे भव मे मोक्ष कैसे होता है इस सिद्धान्त को स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर–उपशमश्रेणी पर आरूढ होने वाले को जो तीसरे भव मे मुक्ति की प्राप्ति कही है वह सम्यग्दर्शन नही छूटने की अपेक्षा से है, जिसका

सम्यग्दर्शन छूट जाता है वह अर्द्धपुद्गलपरिवर्तन काल तक ससार मे परिभ्रमण कर सकता है परन्तु जो मुनि पुगव क्षायिक सम्यक्त्व सहित उपशमश्रेणी पर आरूढ़ होता है वह तीसरे भव मे नियम से मोक्ष चला जाता है।

प्रश्न ५–ससार के हेतु कितने ध्यान है ?

उत्तर–आर्त्त-रौद्र ध्यान ससार के हेतु है।

प्रश्न ६–यह कैसे जाना जाता है ?

उत्तर–"अर्थापत्ति न्याय से"। धर्म्य-शुक्ल ध्यान मोक्ष के हेतु है तो आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान ससार के हेतु है यह अर्थापत्ति न्याय से सिद्ध होता है, क्योकि मोक्ष और ससार के सिवाय कोई तीसरा साध्य है ही नही।

प्रश्न ७–सूत्र मे "पर" को मोक्ष का हेतु कहा है और वह "पर" अन्तिम शुक्लध्यान होता है, पुन धर्म्यध्यान को मोक्ष हेतु क्यो कहा ?

उत्तर–"पर" का अर्थ यहाँ अन्तिम शुक्लध्यान है और इसका समीपवर्ती होने से धर्म्यध्यान भी पर है, ऐसा उपचार किया जाता है, सूत्र मे "परे" यह द्विवचन है इसलिये उसकी सामर्थ्य से गौण का भी ग्रहण हो जाता है। अत धर्म्यध्यान भी मोक्ष का हेतु है।

प्रश्न ८–आर्त्तध्यान के कितने व कौन से भेद है ?

उत्तर–आर्त्तध्यान के ४ भेद है—(१) अनिष्टसयोगज, (२) इष्टवियोगज, (३) वेदनाजन्य और (४) निदान।

प्रश्न ९–प्रथम अनिष्ट सयोगज नामक आर्त्तध्यान का स्वरूप क्या है ?

उत्तर– आर्त्तममनोज्ञस्य सम्प्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहारः ॥ ३० ॥

सूत्रार्थ–अमनोज्ञ पदार्थ के प्राप्त होने पर उसके वियोग के लिये चितासातत्य का (सतत चिता) होना प्रथम आर्त्तध्यान है।

प्रश्न १–अमनोज्ञ किसे कहते है ?

उत्तर–विष, कण्टक, शत्रु और शस्त्र आदि जो अप्रिय पदार्थ है वे बाधा के कारण होने से अमनोज्ञ कहे जाते है।

प्रश्न २–अमनोज्ञ पदार्थ कितने प्रकार के होते है ?

उत्तर–दो प्रकार के—(१) चेतन, (२) अचेतन। कुत्सित रूप, दुर्गन्ध शरीर, दौर्भाग्यादि सहित स्त्री आदि और सर्प आदि चेतन पदार्थ तथा शस्त्र, विष, कण्टक आदि अचेतन अमनोज्ञ पदार्थ है।

प्रश्न ३–स्मृतिसमन्वाहार किसे कहते है ?

उत्तर–चिन्ता के अन्य विकल्पो से हटकर (रहित होकर) पुन -पुन उसी के चिन्ता मे लगे रहना स्मृति समन्वाहार है ।

प्रश्न ४–अनिष्टसयोगज ध्यान मे जीवो के परिणाम कैसे होते है ?

उत्तर–अनिष्ट वस्तु का सयोग होने पर "इनका मेरे से विनाश/वियोग कब होगा या ये मुझसे पृथक् कब होगे ऐसे अशुभ परिणाम सतत होते रहते है ।

प्रश्न ५–द्वितीय आर्त्तध्यान इष्ट वियोग का स्वरूप क्या है ?

उत्तर– विपरीतं मनोज्ञस्य ॥ ३१ ॥

सूत्रार्थ–मनोज्ञ वस्तु के वियोग होने पर उसकी प्राप्ति की सतत चिन्ता करना दूसरा "इष्ट वियोगज" नामक आर्त्तध्यान है ।

प्रश्न १–सूत्र मे "विपरीत" शब्द से किससे विपरीत अर्थ लेना ?

उत्तर–सूत्र सोपस्कार सहित होते है अत "विपरीत" पद मे पूर्व सूत्र मे कहे हुए मे विपरीत अर्थ लगाना चाहिये ।

प्रश्न २–द्वितीय आर्त्तध्यान मे परिणामो की विचित्रता किस प्रकार की होती है ?

उत्तर–इष्ट पुत्र, स्त्री और धनादिक के वियोग होने पर उनकी प्राप्ति के लिये निरन्तर चिता बनी रहती है ।

प्रश्न ३–वेदनाजन्य तृतीय आर्तध्यान का स्वरूप क्या है ?

उत्तर– वेदनायाश्च ॥ ३२ ॥

सूत्रार्थ–वेदना के होने पर उसे दूर करने के लिये सतत चिन्ता करना तृतीय पीड़ा चिन्तन नामक आर्त्तध्यान है ।

प्रश्न १–वेदना शब्द किस अर्थ मे होता है ?

उत्तर–सुख-दु ख का वेदन करना वेदना है ।

प्रश्न २–प्रकृत मे आर्त्तध्यान की कारणभूत वेदना कौनसी है ?

उत्तर–दु ख रूप वेदना से आर्त्तध्यान होता है । तात्पर्य यह है कि वातादि विकारजन्य दु ख रूप वेदना के होने पर उसके अभाव के लिये निरन्तर चिन्ता करना वेदनाजनित आर्त्तध्यान है ।

प्रश्न ३–वेदना जनित (पीड़ाचिन्तन) आर्त्तध्यान मे जीवो के परिणाम किस रूप होते है ?

उत्तर–वेदना से पीड़ित कायर पुरुष वेदना के सन्निधान होने पर "इस वेदना का अभाव कैसे होगा" ? इस प्रकार वेदना के वियोग के लिये बार-बार चिन्तन करता है, हाथ-पैर पटकता है, चिल्लाता है, रोता है, अश्रुपात करता है, हाय ! हाय ! मेरे तीव्र पाप का उदय है, यह वेदना मुझे बहुत दु ख दे रही है इस वेदना का छुटकारा कैसे होगा इत्यादि रूप से निरन्तर उसके परिणाम बने रहते है ।

प्रश्न ४–सूत्र मे "चकार" का प्रयोग क्यो किया गया है ?

उत्तर–सूत्र मे चकार परस्पर समुच्चय अर्थ मे है, जिसका तात्पर्य यह है कि केवल अमनोज्ञ या मनोज्ञ के सयोग वियोग मे ही विपरीत ध्यान नहीं होता अपितु "वेदना" मे भी विपरीत आर्त्तध्यान होता है ।

प्रश्न ५–चतुर्थ आर्त्तध्यान का नाम क्या है ?

उत्तर– **निदानञ्च ॥ ३३ ॥**

सूत्रार्थ–निदान नाम का भी आर्त्तध्यान है । (निदान यह चतुर्थ आर्त्तध्यान है)

प्रश्न १–सूत्र मे चकार क्यो दिया है ?

उत्तर–सूत्र मे "च" कार समुच्चय अर्थ मे है । जिसका अर्थ है कि केवल इष्टवियोगज, अनिष्टसयोगज, पीड़ा चिन्तन ही आर्त्तध्यान नही हैं, निदान नामक चौथा आर्त्तध्यान भी है ।

प्रश्न २–निदान किसे कहते है ?

उत्तर–अनागत भोगो की वाञ्छा को निदान कहते हैं ।

प्रश्न ३–निदान नामक ध्यान का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–भोगो की आकाक्षा के प्रति आतुर हुए व्यक्ति के आगामी विषयो की प्राप्ति के लिये मन प्रणिधान होना अर्थात् सकल्प तथा निरन्तर चिन्ता करना निदान नाम का आर्त्तध्यान है ।

प्रश्न ४–निदान बध (शल्य) और निदान नामक आर्त्तध्यान मे क्या अन्तर है ?

उत्तर–(१) शल्य काँटे की तरह अथवा दाँत मे लगे तृण की तरह सदैव चुभती रहती है जबकि निदान नामक आर्त्तध्यान क्वचित्-कदाचित् होता है । (२) शल्य मे कषाय की तीव्रता होती है निदान ध्यान मे कषाय की तीव्रता नही है । (३) निदान शल्य मिथ्यादृष्टि के ही होती है, इसके एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही होता है जबकि निदान नामक आर्त्तध्यान एक से पचम गुणस्थान तक होता है ।

प्रश्न ५–लौकान्तिक देव, सौधर्म इन्द्र बनने की इच्छा करना, मुक्ति जाने की इच्छा करना निदान नामक आर्त्तध्यान है या नही ?

उत्तर–लौकान्तिक देव, सौधर्म इन्द्र बनकर शीघ्र मुक्ति प्राप्ति की भावना तथा मुक्ति की इच्छा मे भी कर्मो से छूटने की भावना है, अत इसे निदान नामक आर्त्तध्यान नही कह सकते क्योंकि आगामी विषय-भोगो की इच्छा, उनकी प्राप्ति की आकाक्षा ही निदान आर्त्तध्यान है ।

प्रश्न ६–निदान कितने प्रकार का होता है ?

उत्तर–निदान दो प्रकार का होता है—(१) अप्रशस्त निदान, (२) प्रशस्त निदान (सासारिक विषय भोगो की वाञ्छा अप्रशस्त निदान है यथा—नारायण, प्रतिनारायण, धरणेन्द्र आदि के ऐश्वर्य की प्राप्ति या उन पदो की प्राप्तिरूप चिन्ता । ससार मे एकभव लेकर मुक्ति देने वाले—सौधर्म इन्द्र, लौकान्तिक देव, सर्वार्थसिद्धि के देव बनने की भावना तथा मुक्ति प्राप्त करने की बार-बार भावना/इच्छा यह प्रशस्त निदान है ।

प्रश्न ७–आर्त्तध्यान के स्वामी कौन है ?

उत्तर– **तदविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतानाम् ॥ ३४ ॥**

सूत्रार्थ–यह आर्त्तध्यान अविरत, देशविरत और प्रमत्तसयत जीवो के होता है ।

प्रश्न १–अविरत जीव कौन है ?

उत्तर–जिसके व्रत नही है वह जीव अविरत है ।

प्रश्न २–अविरत के कितने गुणस्थान होते है ?

उत्तर–मिथ्यादृष्टि, सासादन, मिश्र और असयतसम्यग्दृष्टि इन चार गुणस्थानवर्ती जीवो को अविरत कहते है ।

प्रश्न ३–देशविरत कौनसे गुणस्थान मे होते है ?

उत्तर–पञ्चमगुणस्थानवर्ती श्रावक देशविरत कहलाता है ।

प्रश्न ४–प्रमत्तसयत कौन जीव होते है ?

उतर–चारित्र का अनुष्ठान करनेवाले प्रमादयुक्त मुनिगण प्रमत्तसयत कहलाते है ।

प्रश्न ५–आर्तध्यान किन गुणस्थानो मे होता है ?

उत्तर–मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, असयत, देशसयत, प्रमत्तसयत छह गुणस्थानो मे आर्त्तध्यान होता है ।

प्रश्न ६–प्रथम गुणस्थान से प्रमत्तसयत गुणस्थान तक चारो ही आर्त्तध्यान होते है, या कोई विशेषता है ?

उत्तर–कुछ विशेषता है—अविरत (१-४ गुण०), देशविरत जीवो के अर्थात् १-५, गुणस्थानवर्ती जीवो के चारो ही प्रकार का आर्त्तध्यान होता है, क्योंकि ये असयमरूप परिणाम से युक्त होते हैं। प्रमत्तसयत मुनियो के निदान को छोड़कर बाकी के तीन ध्यान प्रमाद की तीव्रतावश कदाचित् होते हैं।

प्रश्न ७–प्रथमानुयोग मे ऐसे कई उदाहरण पाये जाते है जिनसे मुनियो ने निदान किया सिद्ध होता है ?

उत्तर–यह कथन ठीक है कि पुराण ग्रन्थो मे मुनियो के निदान करने का उल्लेख पाया जाता है परन्तु इन उदाहरणो से प्रमत्तसयत मुनियो ने निदान किया ऐसा अर्थ नही लेना चाहिये। क्योंकि यह सत्य है कि भावलिंगी साधुओ के आगामी भोगो की वाञ्छा होती ही नही है और यदि कदाचित् होती है तो उस समय से वे भावलिंगी नही रहते ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिये।

प्रश्न ८–निदान वाले को व्रत का अभाव होने से देशविरत के भी निदान नाम का ध्यान नही होना चाहिये ?

उत्तर–निदान शल्य वालो के व्रत का अभाव है, कहा भी है—"नि शल्योऽव्रती" शल्य रहित जीव व्रती होता है अर्थात् शल्य सहित जीवो के व्रत का विरोध है किन्तु निदानध्यान वालो के देशविरती देशसयम होने मे बाधा नही है। निदानशल्य मिथ्यादृष्टि जीव को होता है किन्तु (निदान ध्यान सम्यग्दृष्टि व देशसयमी के भी हो सकता है)।

प्रश्न ९–रौद्रध्यान के लक्षण, भेद व स्वामी बताइये ?

उत्तर– **हिंसानृतस्तेयविषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरतदेशविरतयोः ॥ ३५ ॥**

सूत्रार्थ–हिंसा, असत्य, चोरी और विषयसरक्षण के लिये सतत चिन्तन करना रौद्रध्यान है। वह अविरत और देशविरत के होता है।

प्रश्न १–रौद्रध्यान की उपत्ति के हेतु क्या है ?

उत्तर–हिंसा—जीवो की विराधना, अनृत—असत्य भाषण, स्तेय—परद्रव्य अपहरण, विषय सरक्षण—पञ्चेन्द्रिय विषय सम्बन्धी भोगोपभोग सामग्री का सम्यक् परिपालन, उनके संरक्षण का प्रयत्न इन चार कारणो से रौद्रध्यान उत्पन्न होता है।

प्रश्न २–रौद्रध्यान के कितने भेद है ?

उत्तर–रौद्रध्यान के चार भेद है—(१) हिसानन्द, (२) मृषानन्द, (३) चौर्यानन्द और (४) परिग्रहानन्द ।

प्रश्न ३–हिसानन्द रौद्रध्यान का स्वरूप बताइये ?

उत्तर–दूसरे जीवो का प्राणघात कर या दूसरो को दुखी करके आनन्द मानना हिसानन्द नामक रौद्रध्यान है । यथा—गृहस्थावस्था मे जीव घर की, मकान की दुकान आदि की सफाई करते हुए अनेको जालो को तोड़ता है, सूक्ष्म जीवो की हिंसा भी करता है फिर भी घर को साफ स्वच्छ सुथरा देखकर आनन्दित होता है । दूसरो को भड वचन बोलकर, दूसरो को ठगकर आनन्द मानता है यह सब हिसानन्द रौद्रध्यान है ।

प्रश्न ४–मृषानन्द रौद्रध्यान का लक्षण बताइये ?

उत्तर–झूठ बोलकर आनन्द मानना मृषानन्द नामक रौद्रध्यान है । अल्प मूल्य की वस्तु बहुमूल्य की कहना, अपनी गल्ती को छुपाने के लिये झूठ बोलकर आनन्द मनाना यह सब मृषानन्द नामक रौद्रध्यान है ।

प्रश्न ५–चौर्यानन्द ध्यान का स्वरूप बताइये ?

उत्तर–दूसरो की वस्तुओ का अपहरण करके आनन्द मानना चौर्यानन्द नाम का रौद्रध्यान है । असली वस्तु को नकली वस्तु मे मिलाकर आनद मानना, परीक्षाओ मे चोरी से नकल करके आनन्द मानना आदि रौद्रध्यान है ।

प्रश्न ६–परिग्रहानन्द रौद्रध्यान किसे कहते है ?

उत्तर–परिग्रह सचय करके आनन्दित होना, विषय भोगो की वस्तुओ का सरक्षण करना, उनके सरक्षण व सचय मे आनन्द मानना परिग्रहानन्द रौद्रध्यान है ।

प्रश्न ७–रौद्रध्यान कितने गुणस्थानो मे होता है ?

उत्तर–रौद्रध्यान अविरत—१-४ गुणस्थान व देशविरत पञ्चम गुणस्थान मे होता है ?

प्रश्न ८–अविरत अवस्था मे रौद्रध्यान तो हो सकता है पर देशविरत जीवो के रौद्रध्यान कैसे हो सकता है ?

उत्तर–हिसादिक के आवेश से या वित्त/धनादि के सरक्षणभाव के निमित्त से देशविरत जीवो के भी कदाचित् रौद्रध्यान हो सकता है ।

प्रश्न ९–अविरत जीव के रौद्रध्यान और देशविरत के रौद्रध्यान मे विशेषता है या सामान्य है ?

उत्तर–देशविरत के होने वाला रौद्रध्यान नरक आदि दुर्गतियो का कारण नही होता है, क्योंकि सम्यग्दर्शन की ऐसी ही सामर्थ्य है ।

प्रश्न १०–आर्तध्यान और रौद्रध्यान का फल क्या है ?

उत्तर–आर्त्तध्यान का फल तिर्यंचगति तथा रौद्रध्यान का फल नरकगति है ?

प्रश्न ११–मोक्ष के कारणभूत धर्म्यध्यान के कितने भेद है ?

उत्तर- आज्ञापायविपाकसंस्थानविचयाय धर्म्यम् ॥ ३६ ॥

सूत्रार्थ–आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थानविचय ये धर्म्यध्यान के चार भेद है ।

प्रश्न १–विचय किसे कहते हैं ?

उत्तर–विचयन करना विचय है । विचय, विवेक और विचारणा ये पर्यायवाची नाम है ।

प्रश्न २–आज्ञाविचय, अपायविचय आदि का अर्थ मात्र आज्ञा विचारणा, विपाक विचारणा है तो उसे ध्यान कैसे कहा ?

उत्तर–ऐसा नही है, आज्ञाविचय, अपायविचय के साथ सूत्र ३० मे आया 'स्मृतिसमन्वाहार'' पद की यहॉं अनुवृत्ति है । अर्थात् आज्ञाविचयस्मृति-समन्वाहार, अपायविचयस्मृतिसमन्वाहार, विपाकविचयस्मृतिसमन्वाहार और सस्थानविचयस्मृतिसमन्वाहार । अत· आज्ञाविचय के लिये विपाक विचय, अपाय विचय के लिये सस्थान विचय के लिये स्मृतिसमन्वाहार होने से ये ध्यान कहे है ।

प्रश्न ३–आज्ञाविचयस्मृतिसमन्वाहार का स्वरूप बताइये ?

उत्तर–उपदेष्टा का अभाव होने से, बुद्धि का मन्द होने से, कर्मों का उदय होने से, पदार्थों के सूक्ष्म होने से, तथा तत्त्व के समर्थन मे हेतु और दृष्टान्त का अभाव होने पर सर्वज्ञ प्रणीत आगम को प्रमाण करके ''यह इसी प्रकार है, क्योंकि जिनेन्द्रदेव अन्यथावादी नही होते'' इस प्रकार गहन पदार्थ के श्रद्धान द्वारा अर्थ का अवधारण करना आज्ञाविचय धर्म्यध्यान है ।

सूक्ष्म जिनोदित तत्त्व हेतुभिर्नैवहन्यते ।
आज्ञासिद्ध तु तद्ग्राह्य नान्यथावादिनो जिना ॥ -आ प

अथवा

स्वय पदार्थों के रहस्य को जानता है और दूसरो के प्रति उसका प्रतिपादन करना चाहता है इसलिये स्वसिद्धान्त के अविरोध द्वारा तत्त्व का समर्थन करने

के लिये उसके जो तर्क, नय और प्रमाण की योजनारूप निरन्तर चिन्तन होता है वह सर्वज्ञ की आज्ञा को प्रकाशित करने वाला होने से आज्ञाविचय धर्म्यध्यान कहा जाता है ।

प्रश्न ४–अपायविचय धर्म्यध्यान का लक्षण बताइये ?

उत्तर–मिथ्यादृष्टि जीव जन्मान्ध पुरुष के समान सर्वज्ञप्रणीत मार्ग से विमुख हो रहे है, ये प्राणी मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र से कब, कैसे छूटेगे इस प्रकार निरन्तर चिन्तन करना अपायविचय धर्म्यध्यान है ।

प्रश्न ५–विपाकविचय का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–ज्ञानावरणादि कर्मों के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव निमित्तक फल के अनुभव के प्रति उपयोग का होना विपाकविचय धर्म्यध्यान है ।

प्रश्न ६–कर्मो के उदय या उदीरणा से जीव के औदयिक भाव होते है और विविध शरीर आदि की प्राप्ति होती है पुन विपाकविचय मे कर्मो के उदय के लिये द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव व भाव को निमित्त क्यो कहा है ?

उत्तर–यद्यपि कर्मो के उदय-उदीरणा से जीव के औदयिकभाव और विविध शरीर आदि की प्राप्ति होती है परन्तु इन कर्मो का उदय-उदीरणा बिना अन्य निमित्त के नही होती है । किन्तु द्रव्य-क्षेत्र-काल-भव और भाव का निमित्त पाकर ही कर्मो का उदय और उदीरणा होती है ।

प्रश्न ७–कर्मों के उदय-उदीरणा मे द्रव्य का निमित्त किस प्रकार होता है उदाहरण देकर बताइये ?

उत्तर–एक व्यक्ति खेल रहा है, वह अपने बाल-बच्चो के साथ गप-शप मे तल्लीन है । इतने मे अकस्मात् मकान की छत टूटती है और वह उससे घायल होकर दु ख का वेदन करने लगता है तो यहाँ उस व्यक्ति के दु.खवेदन के कारणभूत असातावेदनीय के उदय और उदीरणा मे टूटकर गिरनेवाली छत का सयोग द्रव्य निमित्त है । तात्पर्य यह है कि टूटकर गिरनेवाली छत के निमित्त से उस व्यक्ति के असातावेदनीय की उदय-उदीरणा हुई और असातावेदनीय के उदय व उदीरणा से उस व्यक्ति के दु ख का अनुभवन हुआ ।

प्रश्न ८–काल निमित्तक उदय-उदीरणा किस प्रकार होती है ?

उत्तर–काल निमित्तक उदय-उदीरणा का विचार दो प्रकार से किया जाता है—प्रथम तो प्रत्येक कर्म का उदय-उदीरणा काल और दूसरा जिसके निमित्त से बीच मे कर्मों की उदय-उदीरणा बदल जाती है । जैसे सामान्य

से हास्य और रति का उत्कृष्ट उदय व उदीरणा काल छह महीना होता है। इसके बाद इनकी उदय व उदीरणा नही होकर अरति और शोक की उदय-उदीरणा होने लगती है, किन्तु छह माह के भीतर यदि हास्य-रति के विरुद्ध निमित्त मिलता है तो बीच मे ही उनकी उदय-उदीरणा बदल जाती है। यह कर्म का उदय-उदीरणा काल है।

उदय-उदीरणा मे काल निमित्त कैसे ? जैसे एक व्यक्ति जो निर्भय होकर देशान्तर को जा रहा है किन्तु किसी दिन मार्ग मे ही ऐसे जगल मे रात्रि हो जाती है जहॉ हिस्र जीवो का प्राबल्य है तथा विश्राम के लिये कोई स्थान भी नही है। यदि दिन होता तो उसे जरा भी भय नही होता किन्तु रात्रि होने से वह भयभीत होता है इससे उसके असाता, अरति, शोक और भय कर्म की उदय-उदीरणा होने लगती है। यह काल निमित्तक उदय-उदीरणा है। इसी प्रकार क्षेत्र, भव, भाव सबधी निमित्त को भी लगा लेना चाहिये।

प्रश्न ९–उदय किसे कहते हैं ?

उत्तर–काल प्राप्त कर्म परमाणुओ के अनुभव करने को उदय कहते है।

प्रश्न १०–उदीरणा किसे कहते है ?

उत्तर–काल प्राप्त कर्मपरमाणुओ के अनुभव करने को उदय कहते है और उदयावलि के बाहर स्थित कर्मपरमाणुओ को कषायसहित या कषायरहित योग सज्ञावाले वीर्यविशेष के द्वारा उदयावलि मे लाकर उनका उदयप्राप्त कर्मपरमाणुओ के साथ अनुभवन करने को उदीरणा कहते है।

प्रश्न ११–उदय और उदीरणा मे क्या अन्तर है ?

उत्तर–उदय मे काल प्राप्त कर्मपरमाणु रहते है और उदीरणा मे अकाल प्राप्त परमाणु रहते हैं। इस प्रकार कर्मपरमाणुओ का अनुभवन उदय और उदीरणा दोनो मे लिया जाता है, अन्तर मात्र काल प्राप्त परमाणुओ और अकालप्राप्त परमाणुओ का है।

प्रश्न १२–आदि के दो शुक्लध्यानो के स्वामी कौन है ?

उत्तर– **शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः ॥ ३७ ॥**

सूत्रार्थ–आदि के दो शुक्लध्यान पूर्वविद् के होते है।

प्रश्न १–आदि के दो कौनसे ध्यान पूर्वविद् के होते है ?

उत्तर–पृथक्त्ववितर्क विचार और एकत्ववितर्क विचार ये दो शुक्लध्यान पूर्वविद् के होते है।

प्रश्न २–पूर्वविद् से किसका ग्रहण होता है ?

उत्तर–पूर्वविद् से पूर्वज्ञानधारी श्रुतकेवली का ग्रहण होता है।

प्रश्न ३–सूत्र मे च शब्द क्यो दिया है ?

उत्तर–सूत्र मे "च" शब्द आया है उससे धर्म्यध्यान का समुच्चय होता है। तात्पर्य यह है कि सकल श्रुतधारी के अपूर्वकरणगुणस्थान के पूर्व अर्थात् अप्रमत्तगुणस्थान पर्यन्त धर्म्यध्यान होता है।

प्रश्न ४–दो शुक्लध्यान कौनसे गुणस्थान मे होते है ?

उत्तर–अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय और उपशान्त कषाय इन चारो गुणस्थानो मे पृथकत्ववितर्क विचार नामक प्रथम शुक्लध्यान होता है तथा क्षीणकषाय नामक १२वे गुणस्थान मे एकत्ववितर्क विचार नामक द्वितीय शुक्लध्यान होता है।

(विशेष—षट्खण्डागम मे दसवे गुणस्थान तक धर्म्यध्यान और ११-१२-१३-१४ गुणस्थानो मे क्रमश शुक्लध्यान माना है।)

प्रश्न ५–अन्त के दो शुक्ल ध्यानो के स्वामी कौन है ?

उत्तर– **परे केवलिनः ॥ ३८ ॥**

सूत्रार्थ–शेष के दो शुक्ल ध्यानकेवली के होते है ॥ ३८ ॥

प्रश्न १–शेष के दो कौन से ध्यान कौन से केवली को होते है ?

उत्तर–शेष के सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती और व्युपरतक्रियानिवर्ति नामक दो शुक्लध्यान सम्पूर्ण ज्ञानावरण कर्म का अभाव होने से सयोगकेवली व अयोगकेवली जिनो को होते है। अर्थात् सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती ध्यान सयोगी जिन के होता है और व्युपरतक्रियानिवर्ति ध्यान अयोगकेवली जिन के होता है।

प्रश्न २–शुक्लध्यान के भेद व नाम बताइये ?

उत्तर– **पृथक्त्वैकत्ववितर्कसूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति-**
व्युपरतक्रियानिवर्तीनि ॥ ३९ ॥

सूत्रार्थ–पृथक्त्ववितर्क, एकत्ववितर्क, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति और व्युपरत-क्रियानिवर्ती ये चार शुक्लध्यान।

प्रश्न १–पृथकत्ववितर्क शुक्लध्यान किसे कहते है ?

उत्तर–पृथक्-पृथक् अर्थ, व्यञ्जन, योग की सक्रान्ति और श्रुत जिसका आधार है वह पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान होता है।

प्रश्न २–एकत्ववितर्क शुक्लध्यान किसे कहते है ?

उत्तर–जो शुक्लध्यान तीनो योगो मे से किसी एक योग के साथ होता है तथा अर्थ, व्यञ्जन योग की सक्रान्ति से रहित है वह एकत्ववितर्क शुक्लध्यान है।

प्रश्न ३–सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती ध्यान का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–सूक्ष्मकाययोग के अवलबन लेकर केवली जिन के जो ध्यान होता है वह सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती है। सूक्ष्म क्रिया तथा अप्रतिपाती होने से इसका नाम सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती है।

प्रश्न ४–समुच्छिन्नक्रियानिवृत्ति ध्यान का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–जिस ध्यान मे सर्व मन-वचन-काय सबधी क्रियाओ का निरोध होता है उसे समुच्छिन्नक्रियानिवर्ति अथवा व्युपरतक्रियानिवर्ती ध्यान कहते है।

प्रश्न ५–ध्यान के योग्य स्थान की विशेषता बताइये ?

उत्तर–ध्यान के योग्य स्थान—पर्वत, गुफा, वृक्ष की कोटर, (खोह), नदी तट, श्मशान, जीर्ण उद्यान, शून्यागर आदि जिस स्थान मे व्याघ्र, सिंह, मृग, पशु, पक्षी, मनुष्य आदि दृष्टिगोचर न हो। वह पवित्र स्थान चीटी आदि जन्तुओ से रहित, समशीतोष्ण, अति शीत-उष्णता से रहित, अति वायु से रहित, वर्षा आतप से रहित तथा सर्वत्र बाह्य और मन को विक्षेप करने वाले कारणो से रहित पवित्र और अनुकूल स्पर्श वाले भूमितल सहित हो।

प्रश्न ६–मुमुक्षु ध्यानी की विशेषताएँ बताइये ?

उत्तर–ध्यान के लिये प्रयत्नशील मुमुक्षु—(१) सुख पूर्वक पल्याकासन से बैठे। (२) शरीर को सरल और निश्चल करके अपनी गोदी मे बाएँ हाथ पर दाहिना हाथ रखे। (३) नेत्र न खुले हुए न बन्द हो, ईषत् खुले हो। (४) दॉतो पर दॉत रखकर कुछ ऊपर किये मुख युक्त हो। (५) सीधा कमर हो। (६) निश्चलमूर्ति, (७) गभीर गर्दन, (८) प्रसन्न मुख, (९) अनिमेष स्थिर सौम्यदृष्टि, (१०) निद्रा, आलस्य, कामराग, रति, अरति, शोक, हास्य, भय, जुगुप्सा, द्वेष, विचिकित्सा आदि को छोड़कर मन्द-मन्द श्वासोच्छ्वास लेने आदि परिकर्म युक्त मुमुक्षु साधु नाभि के ऊपर हृदय, मस्तक, या शरीर के किसी भी अवयव पर अभ्यास-अनुसार चित्तवृत्ति को स्थिर करके प्रशस्त ध्यान का प्रयत्न करे।

प्रश्न ७–चारो शुक्लध्यान का आलम्बन क्या है ?

उत्तर– **त्र्येकयोगकाययोगायोगानाम् ॥ ४० ॥**

सूत्रार्थ–वे चार ध्यान क्रम से तीन योगवाले, एक योगवाले, काययोग वाले और अयोग के होते हैं।

प्रश्न १–कौनसा योग किस ध्यान का आलबन है ?

उत्तर–(१) मन-वचन-काय से योग वालो के पृथक्त्ववितर्कवीचार शुक्लध्यान होता है ।

(२) तीन योग मे से किसी एक योग वाले के एकत्ववितर्कवीचार शुक्लध्यान होता है ।

(३) काययोग वाले के सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती शुक्लध्यान होता है । तथा

(४) अयोगी जिन के व्युपरतक्रियानिवर्ति शुक्लध्यान होता है ।

प्रश्न २–त्रियोग का अर्थ क्या है ?

उत्तर–मन-वचन-काय के अवलम्बन से आत्मप्रदेशो का परिस्पन्दन/कम्पन त्रियोग कहलाता है ।

प्रश्न ३–एक योग का अर्थ क्या है ?

उत्तर–मन-वचन-काय रूप तीन योग के मध्य मे किसी एक योग के द्वारा आत्मप्रदेशो का जो कम्पन होता है उसे एक योग कहते हैं ।

प्रश्न ४–काययोग से क्या अर्थ है ?

उत्तर–काययोग के अवलम्बन से आत्मप्रदशो का कम्पन काययोग है ।

प्रश्न ५–अयोग से क्या अर्थ है ?

उत्तर–"अयोगकेवली" ।

प्रश्न ६–आदि के दो पृथक्त्व वितर्क और एकत्ववितर्क दो ध्यानो की विशेषता क्या है ?

उत्तर– **एकाश्रये सवितर्कवीचारे पूर्वे ॥ ४१ ॥**

सूत्रार्थ–पहले दो ध्यान एक आश्रयवाले, सवितर्क और सवीचार होते है ।

प्रश्न १–आदि के दो शुक्लध्यान एक आश्रय कैसे है स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर–आदि के दो शुक्लध्यान एक श्रुतज्ञान के आश्रय होते है अर्थात् एक अद्वितीय परिपूर्ण श्रुतज्ञानवाला पुरुष ही दोनो का आश्रय है अत एकाश्रय है ।

अथवा

पूर्व के दोनो शुक्लध्यान श्रुतकेवली के द्वारा आरभ किये जाते हैं अत दोनो का आश्रय एक ही होने से एकाश्रय कहते है अर्थात् इन दोनो ही ध्यानो का एक ही प्रकार का सकल श्रुतकेवली स्वामी है ।

प्रश्न २–"सवितर्कवीचार" का अर्थ स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर–जो वितर्क और वीचार सहित होता है वह सवितर्क सवीचार कहलाता है। पृथक्त्व भी वितर्क सहित है और एकत्व भी वितर्क सहित है अत पृथक्त्ववितर्क, एकत्ववितर्क कहलाते है। तथा पृथक्त्ववितर्क भी वीचार सहित है और एकत्व भी वीचार सहित है अत. पृथक्त्ववितर्कवीचार प्रथमशुक्लध्यान है और एकत्ववितर्कवीचार द्वितीय शुक्लध्यान है। यह "पूर्वे" पद से स्पष्ट होता है।

प्रश्न ३–क्या पृथक्त्ववितर्क सवितर्क और एकत्ववितर्क शुक्लध्यान सवीचार है ?

उत्तर–ऐसा नही है, इसी अनिष्ट की निर्वृत्ति के लिये आचार्यश्री ने दूसरा सूत्र बनाया है—

अवीचारं द्वितीयम् ॥ ४२ ॥

सूत्रार्थ–*द्वितीय एकत्ववितर्क शुक्लध्यान वीचार रहित है।*

प्रश्न १–इस सूत्र का भाव बताइये ?

उत्तर–एकत्ववितर्क शुक्लध्यान सवितर्क तो है, परन्तु वीचार से रहित है, प्रथम शुक्लध्यान वितर्क और वीचार सहित है।

प्रश्न २–वितर्क किसे कहते है ?

उत्तर– **वितर्कः श्रुतम् ॥ ४३ ॥**

सूत्रार्थ–वितर्क का अर्थ श्रुतज्ञान है।

प्रश्न १–वितर्क का अर्थ स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर–वितर्क का अर्थ है विशेष रूप से तर्क या विचार करना। वितर्क ही श्रुत है अर्थात् श्रुतज्ञान को ही वितर्क कहते है। अथवा—"विशेषेण तर्कणमूहन वितर्क" विशेषरूप से तर्कणा करना वितर्क है।

प्रश्न २–पृथक्त्ववितर्क और एकत्ववितर्क ध्यानो को सवितर्क क्यो कहते है ?

उत्तर–पृथक्त्व और एकत्ववितर्क ये दोनो ध्यान श्रुतज्ञान के बल से होते है अत ये दोनो ध्यान सवितर्क है।

प्रश्न ३–वीचार किसे कहते है ?

उत्तर– **वीचारोऽर्थव्यञ्जनयोगसंक्रान्तिः ॥ ४४ ॥**

सूत्रार्थ–अर्थ, व्यञ्जन और योग की सक्रान्ति वीचार है।

प्रश्न १–अर्थ किसे कहते है ?

उत्तर–ध्येय को अर्थ कहते है । इससे द्रव्य और पर्याय लिये जाते है ।

प्रश्न २–व्यञ्जन किसे कहते है ?

उत्तर–वचन को व्यञ्जन कहते है ।

प्रश्न ३–योग किसे कहते है ?

उत्तर–मन-वचन-काय की क्रिया को योग कहते है ।

प्रश्न ४–सक्रान्ति का अर्थ क्या है ?

उत्तर–परिवर्तन को सक्रान्ति कहते है ?

प्रश्न ५–अर्थसक्रान्ति का लक्षण क्या है ?

उत्तर–द्रव्य को छोड़कर पर्याय को प्राप्त होना और पर्याय को छोड़कर द्रव्य को प्राप्त होना अर्थ सक्रान्ति है ।

प्रश्न ६–व्यञ्जन सक्रान्ति का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–एक श्रुतवचन का आलम्बन लेकर दूसरे श्रुतवचन का आलम्बन होता है और उसे भी छोड़कर अन्य वचन का आलम्बन होना व्यञ्जन सक्रान्ति है ।

प्रश्न ७–योग सक्रान्ति का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–काययोग को छोड़कर दूसरे योग को स्वीकार करना और दूसरे योग को छोडकर काययोग को स्वीकार करना यह योग सक्रान्ति है ।

प्रश्न ८–वीचार का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–द्रव्य से पर्याय, पर्याय से द्रव्य का आलबन, एक श्रुतवचन से दूसरे श्रुतवचन का, दूसरे से तीसरे श्रुतवचन का आलबन । इसी प्रकार एक योग को छोड़कर दूसरे योग का आलबन इस प्रकार द्रव्य, पर्याय, वचन से वचनान्तर, योग से योगान्तर परिवर्तन को वीचार कहते है ।

प्रश्न ९–अर्थ-व्यञ्जन-योग की सक्रान्ति होने पर ध्यान मे स्थिरता नही आ सकती और स्थिरता के अभाव मे ध्यान कैसे हो सकता है ?

उत्तर–ध्यान की सन्तान को भी ध्यान कहने मे कोई दोष नही है । क्योंकि द्रव्य की सन्तान पर्याय है । शब्द की सन्तान शब्दान्तर है और योग की सन्तान योगान्तर है । अत एक सन्तान को छोड़कर दूसरे सन्तान का ध्यान करने पर भी वह सन्तान एक रहने से ध्यान स्थिर रहता है । अत सक्रान्ति मे भी ध्यान स्थिर रहता ही है ।

प्रश्न १०–चार प्रकार के धर्म्यध्यान और शुक्लध्यान के स्वामी कौन है ?

उत्तर-जिन मुनिराज ने ससार को नाश करने के लिये गुप्ति, समिति, दशलक्षणधर्म, बारह अनुप्रेक्षा, बाईस परीषह व पॉच प्रकार के चारित्र का भले प्रकार अभ्यास किया है, जो ससार नाश के बहुत प्रकार के उपायो से युक्त है ऐसे मुनिराज ही वास्तव मे धर्म्यध्यान व शुक्लध्यान के ध्याता होते है ।

प्रश्न ११-पृथक्त्ववितर्कवीचार ध्यान के ध्याता का स्वरूप बताइये ?

उत्तर-जिस प्रकार अपर्याप्त उत्साह से युक्त बालक अव्यवस्थित और बौथरे शस्त्र (अतीक्ष्ण शस्त्र) के द्वारा भी चिरकाल मे वृक्ष को छेदता है उसी प्रकार मुनि भी गुप्ति आदि मे किये गये अभ्यास से चित्त के सामर्थ्य को प्राप्त करते है जो द्रव्य परमाणु व भाव परमाणु का ध्यान करते हैं वे अर्थ और व्यञ्जन तथा काय और वचन मे पृथक्त्व रूप मे सक्रमण करने वाले मन के द्वारा मोहनीय कर्म की प्रकृतियो का उपशमन और क्षय करने वाले होते है वे मुनिराज पृथक्त्ववितर्कवीचार ध्यान को धारण करने वाले होते है ।

प्रश्न १२-एकत्ववितर्कध्यान के ध्याता का स्वरूप बताइये ?

उत्तर-पुन वही पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यानी मुनि जो सूक्ष्मलोभ सहित समूल मोहनीय कर्म का क्षय करना चाहता है, अनन्तगुणी विशुद्धता को प्राप्त कर बहुत प्रकार की ज्ञानावरण की सहायीभूत कर्मप्रकृतियो को रोक रहा है, जो कर्मो की स्थिति को न्यून और नाश कर रहा है, जो श्रुतज्ञान के उपयोग से युक्त है, जो अर्थ, व्यञ्जन, योग की सक्रान्ति से रहित है, निश्चल मन वाला है, क्षीणकषाय है और वैडूर्यमणि के समान निरुपलेप है, ध्यान करके पुन नही लौटता है । ऐसे योगी के एकत्ववितर्क नामका शुक्लध्यान होता है ।

प्रश्न १३-पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान का कार्य क्या है ?

उत्तर-मोहनीय कर्म का उपशम या क्षय पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान का कार्य है ।

प्रश्न १४-एकत्ववितर्क शुक्लध्यान का कार्य क्या है ?

उत्तर-ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय घातिया कर्मों का क्षय करना एकत्ववितर्क शुक्लध्यान का कार्य है ।

प्रश्न १५-घातिया कर्मों का क्षय होने पर महामुनि की अवस्था कैसी बनती है ?

उत्तर- केवलणाणदिवायरकिरण-कलावप्पणासियण्णाणो ।
णवकेवललद्धुग्गम सुजणियपरमप्पववएसो ॥६३॥ -जी का

एकत्ववितर्क शुक्लध्यानरूपी अग्नि के द्वारा जिन्होने घातिया कर्म रूपी ईंधन को जला दिया, जिनका केवलज्ञानरूपी सूर्य की अविभागप्रतिच्छेद रूप किरणो के समूह (उत्कृष्ट अनन्तानन्त प्रमाण) से अज्ञान अन्धकार सर्वथा नष्ट हो गया है, ऐसे वे महामुनि नव केवललब्धि प्रकट होने पर परमात्मा/अर्हंत/केवली इस सज्ञा को प्राप्त होते है । ऐसे तीर्थंकर परमात्मा तथा अन्य केवली तीन लोक के ईश्वरो के द्वारा अर्चनीय, पूजनीय होते हैं । तथा वे कुछ कम उत्कृष्ट एक कोटि पूर्वकाल तक विहार करते है (जगत के प्राणियो को धर्म का उपदेश देते है)

प्रश्न १६–सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती ध्यान के स्वामी कौन होते है, वे इस ध्यान को कब करते है ?

उत्तर–वे ही तेरहवे गुणस्थानवर्ती केवली जिन जब उनकी आयु अन्तर्मुहूर्त शेष रहती है तथा वेदनीय, नाम और गोत्र की स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त शेष रहती है तब सभी मन-वचन-योग और बादर-काय-योग को छोड़कर सूक्ष्म काययोग का अवलम्बन लेकर सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती ध्यान प्रारभ करते है । सूक्ष्म काययोगी के द्वारा यह ध्यान किया जाता है अत सूक्ष्मक्रिया तथा अप्रतिपाति होने से सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती यह इस ध्यान का सार्थक नाम है ।

प्रश्न १७–जिन केवली के आयु कर्म को स्थिति तो अन्तर्मुहूर्त की शेष है परन्तु अन्य तीन (वेदनीय, नाम, गोत्र) कर्मो की स्थिति अधिक रहती है तब उनकी क्या स्थिति बनती है ?

उत्तर–आयु कर्म की स्थिति मात्र अन्तर्मुहूर्त और शेष कर्मो की स्थिति अधिक होने पर केवली जिन विशिष्ट आत्मोपयोगवाली परमसामायिक परिणत विशिष्टकर महासवर की कारणभूत शीघ्र ही कर्मो की निर्जरा करने वाली समुद्घात क्रिया करते है । इस समुद्घात क्रिया के द्वारा शेष कर्म रेणुओ का परिपाक करने के लिये चार समयो मे दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण मे आत्मप्रदेशो को पहुँचाकर फिर क्रमश चार ही समयो मे उन प्रदेशो का सहरण कर चारो कर्मो की स्थिति समान कर लेते है । इस दशा मे वे फिर अपने शरीर प्रमाण हो जाते है । इस पूर्ण क्रिया को केवलिसमुद्घात कहते है ।

प्रश्न १८–समुद्घात किसे कहते है ? ये कितने होते है ?

उत्तर–स=समीचीन, उद्घात=उद्गमन । समीचीन उद्घात को समुद्घात कहते है । अथवा "जीव के प्रदेशो का फैलना" समुद्घात है । कहा भी है—

मूलसरीरमछडिय उत्तरदेहस्स जीवपिंडस्स ।
णिग्गमण देहादो होदिसमुग्घादणाम च ।।

समुद्घात सात होते है—वेदना, कषाय, विक्रिया, आहारक, मारणान्तिक, तेजस और केवलिसमुद्घात।

वेयण कसायवेगुव्वियो य मारणत्तियो समुग्घादो।
तेजोहारो छट्ठो, सत्तमो केवलीण तु ।।

प्रश्न १९–केवलिसमुद्घात किसे कहते है ?

उत्तर–केवलियो के समुद्घात का नाम केवलिसमुद्घात है । अथवा अघातिकर्मों की स्थिति को समान करने के लिये केवली जीव के प्रदेशो का समय के अविरोधपूर्वक ऊपर, नीचे और तिरछे फैलना केवलिसमुद्घात है ।

प्रश्न २०–क्या सभी केवली समुद्घात पूर्वक ही मोक्ष जाते हैं ?

उत्तर–यतिवृषभाचार्य के उपदेशानुसार क्षीणकषाय गुणस्थान के चरम समय मे सम्पूर्ण अघातिया कर्मों की स्थिति समान नही होने से सभी केवली समुद्घात करके ही मुक्ति को प्राप्त होते है किन्तु जिन आचार्यों के मतानुसार लोकपूरण समुद्घात करने वाले केवलियो की बीस सख्या का नियम है उनके मतानुसार कितने ही केवली समुद्घात करते है और कितने ही नही करते है । और भी देखिये–

य षण्मासावशेषायु केवलज्ञानमश्नुते ।
अवश्य स समुद्घात याति शेषो विकल्पते ।। २१८१ ।। –म क

जिन मुनिराज का छह मास आयु शेष रहने पर केवलज्ञान प्राप्त हुआ है, वे नियम से समुद्घात करते है और शेष केवली समुद्घात करते भी है और नही भी करते है ।

प्रश्न २१–समुद्घात नही करने वाले केवली कौनसे हैं ?

उत्तर–जिन केवलियो के आयु कर्म की स्थिति वेदनीय, नाम,गोत्र तीन कर्मों की स्थिति के समान है वे समुद्घात नही करते हैं, शेष केवली समुद्घात करते है ।

प्रश्न २२–केवली समुद्घात कब होता है ?

उत्तर–सयोगकेवली भगवान की आयु जब अन्तर्मुहूर्त शेष रहती है तब धीर सयमी कर्मों की स्थिति ह्रास करने के लिये समुद्घात करते हैं ।

प्रश्न २३–केवली समुद्घात मे आत्मा के प्रदेश तीन लोक मे फैलते हैं, उससे कर्मों की स्थिति कम होती है । यह सब ठीक है, परन्तु प्रदेशो के फैलने से कर्मों की स्थिति कम किस प्रकार होती है ?

उत्तर–जैसे गीले वस्त्र को फैला देवे तो सूख जाता है, बिना फैलाये सूखता नही वैसे ही कर्म भी फैलाने पर कम स्थिति वाला होता है, बिना फैलाये उनकी स्थिति घटती नही है। तात्पर्य यह है कि तीनो लोक मे आत्मा के प्रदेश फैलाते हैं उस वक्त आत्मप्रदेशो के साथ ही नीर क्षीरवत् मिले कर्मप्रदेश भी फैलते ही हैं और इस तरह कर्मप्रदेशो के फैल जाने से उनकी स्थिति कम हो जाती है।

दूसरी विशेष बात यह भी है कि "कर्म प्रदेशो का परस्पर जो सबध है वह उनके स्नेह या स्निग्ध गुण के कारण है, समुद्घात करने पर कर्मों की स्थिति का हेतु जो स्निग्धता या स्नेह गुण था वह नष्ट हो जाता है, (कर्म प्रदेशो के फैला देने से उनकी स्निग्धता कम हो जाती है) स्नेह गुण के क्षीण होने से समस्त कर्म अल्प स्थिति वाला हो जाता है।

प्रश्न २४–केवलीसमुद्घात मे आत्मा के प्रदेश किस क्रम से फैलते व सकोच होते है ?

उत्तर–सयोगी जिन चार समयो द्वारा दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण इस तरह चार प्रकार से आत्मा के प्रदेशो को फैलाते है और चार समयो द्वारा उन प्रदेशो को सकुचित करते है। वे सर्वप्रथम पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख होकर कायोत्सर्ग या पद्मासन मे स्थित होते है। समुद्घात मे सर्वप्रथम आत्मप्रदेश दण्डाकार होते है। इसमे मूल शरीर के प्रमाण चौड़े होकर कुछ कम चौदह राजू प्रमाण ऊपर नीचे लोक मे फैल जाते है। (यहाँ कुछ कम का प्रमाण लोक के ऊपर लोकपर्यन्त वातवलय से रोका गया क्षेत्र है क्योंकि स्वभाव से ही उस अवस्था मे वातवलय के भीतर केवली जिनके जीवप्रदेशो का प्रवेश नही होता है) इसी प्रकार पल्यंकासन से समुद्घात करने वाले केवली जिन के दण्डसमुद्घात होता है, उनमे विशेषता यह है कि मूल शरीर की परिधि से उनकी उस अवस्था मे परिधि तिगुणी हो जाती है। इस प्रकार की अवस्थाविशेष का नाम दण्डसमुद्घात है। दण्डाकार रूप से जीव प्रदेशो का फैलना दण्ड समुद्घात है।

कपाटसमुद्घात—दूसरे समय मे आत्मप्रदेश कपाटाकार फैलते हैं। इसमे जो पूर्वाभिमुख है उनके दक्षिण-उत्तर चौड़े सात राजू प्रमाण और जो उत्तराभिमुख है उनके पूर्व-पश्चिम चौड़े सात राजू प्रमाण होकर आत्मप्रदेश फैलते है। अर्थात् जैसे किवाड़ बाहल्य मोटाई मे स्तोक होकर भी लम्बाई और चौड़ाई मे बड़ा रहता है वैसे विस्तार मे जीव प्रदेश कुछ कम चौदह राजू लम्बे और दोनो पार्श्वभागो मे सात राजू चौड़े होकर फैलते हैं। (क्योंकि लोकाकाश की चौड़ाई पूर्व-पश्चिम हानि-वृद्धिरूप सात राजू है)

प्रतरसमुद्घात–तीसरे समय मे प्रतराकार से जीवप्रदेश फैलते हैं अर्थात् मोटाई को लिये हुए वातवलय के अतिरिक्त समस्त लोक मे फैलते हैं ।

लोकपूरणसमुद्घात–चौथे समय मे जीवप्रदेश लोकपूरणरूप फैलते अर्थात् वातवलयो मे भी सर्वत्र फैल जाते है ।

इस प्रकार प्रथम समय मे आत्मप्रदेश दण्डाकार लम्बे, दूसरे समय मे कपाटाकार मे चौड़े, तीसरे समय मे प्रतराकार में मोटाई रूप फैलते हैं तथा चौथे समय मे लोकपूरण रूप फैलते हैं । पुन: संकोच होता है उसमें पाँचवे समय मे प्रतराकार, छठे समय मे कपाटाकार, सातवे समय मे दण्डाकार और आठवे समय मे मूल शरीर प्रमाण आत्म- प्रदेश हो जाते है । इस प्रकार केवली समुद्घात का काल आठ समयप्रमाण है ।

प्रश्न २५–समुद्घात के आठ समयो मे केवली जिन के कौन–कौन योग होते है ?

उत्तर–(१) केवली समुद्घात के प्रथम दण्डाकार समय मे केवली भगवान के औदारिक काययोग होता है ।

(२) दूसरे कपाटाकार के समय औदारिक मिश्रकाययोग होता है ।

(३) तीसरे प्रतराकार के समय कार्माण काययोग होता है ।

(४) चौथे लोकपूरण के समय कार्माण काययोग होता है ।

(५) पुन· सकोच करते हुए प्रतराकार (पाँचवे समय मे) मे कार्माण काययोग होता है ।

(६) सकोच के कपाटाकार मे औदारिक मिश्र काययोग होता है ।

(७) सकोच के दण्डाकार मे औदारिक काययोग होता है ।

प्रश्न २६–समुच्छिन्नक्रियानिवृत्ति ध्यान किसे कहते हैं ? इस ध्यान के स्वामी कौन होते है ?

उत्तर–१४वे गुणस्थानवर्ती अयोगी केवली जिन समुच्छिन्नक्रियाप्रतिपाती ध्यान के स्वामी होते हैं । जिस ध्यान मे श्वासोच्छ्वास आदि सर्व मन–वचन और काय सम्बन्धी व्यापारो का निरोध होता है यह ध्यान समुच्छिन्नक्रियानिवृत्ति कहलाता है ।

प्रश्न २७–समुच्छिन्न क्रियानिवृत्ति ध्यान का कार्य बताइये ?

उत्तर–समुच्छिन्नक्रियानिवृत्ति ध्यान के बल से सर्व आस्रव–बन्ध का निरोध होकर समस्त कर्मों को नष्ट करने का सामर्थ्य उत्पन्न हो जाता है । इसके धारक अयोगकेवली के ससार दु·खजाल के उच्छेदक, साक्षात्

मोक्षमार्ग के कारण परिपूर्ण यथाख्यातचारित्र, ज्ञान, दर्शन आदि गुण प्रकट हो जाते है । वे अयोगकेवली जिन समस्त कर्ममल कल्कबन्धो को भस्मकर किट्ट-कालिमा रहित सुवर्ण के समान परिपूर्ण स्वरूप लाभ करके निर्वाण को प्राप्त हो जाते है ।

प्रश्न २८–अन्तरग-बहिरग दोनो तप का फल क्या है ?

उत्तर–अन्तरग-बहिरग दोनो प्रकार के तप नूतन कर्मास्रव के निरोधक होने से सवर के कारण है तथा पुरातन कर्मरज के नाशक होने से निर्जरा के भी कारण है । तात्पर्य यह है कि दोनो ही प्रकार के तप कर्मों के सवर निर्जरा के कारण हैं । सवर निर्जरा तप का फल है ।

प्रश्न २९–तेरहवे, चौदहवे गुणस्थान मे सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती और व्युपरतक्रियानिवृत्ति ध्यान क्यो कहे ? जबकि वहाँ चिन्तानिरोध तो पाया नही जाता है ?

उत्तर–सयोगकेवली और अयोगकेवली जिनो के चिन्तानिरोध रूप ध्यान का लक्षण घटित नही होता है तथापि वहाँ उपचार से ध्यान कहा है ।

प्रश्न ३०–उपचार से ध्यान करते ऐसे क्यो कहा जाता है ?

उत्तर–सयोगकेवली व अयोगकेवली जिनो के उपचार से ध्यान कहने का हेतु यह है "वहाँ ध्यान का कार्य योगो का निरोध और अघातिया कर्मो के नाश का सद्भाव पाया जाता है । अर्थात् सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती ध्यान से योग का निरोध होता है और व्युपरतक्रियानिवृत्ति ध्यान से अघातिया कर्मों का क्षय होता है ।

प्रश्न ३१–नवम अध्याय मे सवर-निर्जरा के कारणभूत तप का वर्णन कितने सूत्रो मे किया गया है ?

उत्तर–"तप का वर्णन २५ सूत्रो मे किया गया है" ।

प्रश्न ३२–सवर और निर्जरा का अधिकारी कौन जीव है ?

उत्तर–"सम्यग्दृष्टि जीव" ।

प्रश्न ३३–क्या मिथ्यादृष्टि जीव के भी निर्जरा देखी जाती है ?

उत्तर-मिथ्यादृष्टि के अकामनिर्जरा होती है । मिथ्यादृष्टि की निर्जरा गजस्नानवत् है अत ससार क्षय का कारण नही है । सवर पूर्वक निर्जरा ही मोक्ष की हेतु है । ऐसी निर्जरा सम्यग्दृष्टि के ही होती है । कहा भी है—

उदयभोग सविपाक समय, पक जाय आम डाली ।
दूजी है अविपाक पकावै, पालविषै भाली ॥

पहली सबके होय नही, कुछ सरै काम तेरा ।
दूजी करै जु उद्यम करके, मिटै जगत फेरा ॥
सवर सहित करो तप प्राणी, मिले मुकत रानी ।
इस दुलहन की यही, सहेली, जानै सब ज्ञानी ॥

प्रश्न ३४–सभी सम्यग्दृष्टि जीवो के समान निर्जरा होती है या उनमे कुछ विशेषता है ?

उत्तर–सम्यग्दृष्टिश्रावकविरतानन्तवियोजक दर्शनमोहक्षपकोपशमकोपशान्तमोहक्षपकक्षीणमोह-जिनाः क्रमशोऽसंख्येय गुणनिर्जराः ॥ ४५ ॥

सूत्रार्थ–सम्यग्दृष्टि, श्रावक, विरत, अनन्तानुबधीवियोजक, दर्शनमोहक्षपक, उपशमक, उपशान्तमोह, क्षपक, क्षीणमोह और जिन ये क्रम से असख्य गुण निर्जरावाले होते है ।

प्रश्न १–असख्येय गुण निर्जरा का प्रारभ कहाँ से होता है ?

उत्तर–"सम्यग्दृष्टि से" ।

प्रश्न २–जिस सम्यग्दृष्टि अवस्था से असख्येय गुण निर्जरा प्रारभ होती है उसकी दुर्लभता बताइये ?

उत्तर–जैसे मद्यपायी के शराब का कुछ नशा उतरने पर अव्यक्त ज्ञानशक्ति प्रकट होती है, या दीर्घ निद्रा के हटने पर जैसे ऊँघते-ऊँघते भी अल्प स्मृति होती है उसी प्रकार अनन्तकाय आदि एकेन्द्रियो मे बार-बार जन्म-मरण-परिभ्रमण करते-करते दो इन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रिय त्रस पर्याय मिलती है । कोई निगोद से निकलकर दो इन्द्रिय आदि मे भ्रमण कर पुन निगोद मे चले जाते है । कोई हजारो बार एकेन्द्रिय आदि मे भ्रमण कर नरकादि पर्यायो मे भ्रमण करते हुए अतीव कठिनता से मनुष्य पर्याय प्राप्त करते है ।

मनुष्य पर्याय प्राप्त करके भी अतिदुर्लभ उत्तम देश, कुल आदि प्राप्ति कर अल्पसक्लेश परिणामो के कारण वह भव्यजीव प्रतिभाशक्ति वाला हो परिणामो की विशुद्धि भी करता है पर योग्य उपदेश के अभाव मे सन्मार्ग नही पाता है । मिथ्यादृष्टि होकर कुतीर्थों के द्वारा प्रतिपादित मिथ्यापदार्थों को मानकर परिभ्रमण करता है । फिर क्रम से क्षयोशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि व देशनालब्धि को प्राप्त करता है । कभी मुनिराज कथित जिनधर्म को सुनता है तथा कदाचित् प्रतिबन्धी कर्मों के दब जाने से उस पर श्रद्धान भी करता है । पश्चात् कालादिलब्धि को प्राप्त कर जिनेन्द्र वचनो पर परम रुचि श्रद्धा

करता हुआ उपशम सम्यग्दृष्टि होता है तथा कर्मों की असख्यातगुणी निर्जरा करता है । तात्पर्य यह है कि पञ्चपरावर्तन रूप संसार में त्रस पर्याय उसमे भी मनुष्य पर्याय, उत्तम कुल, बुद्धि आदि दुर्लभ है । सब प्राप्त होने पर भी देशना मिलना कठिन है । देशना मिलने पर श्रद्धान अति दुर्लभ है ।

प्रश्न ३–निर्जरा का प्रारभ कहाँ से होता है तथा असख्येयगुण निर्जरा किसके होती है ?

उत्तर–जिस जीव ने अतिदुर्लभता से कालादिलब्धि की सहायता से परिणामो की विशुद्धि द्वारा वृद्धि की प्राप्ति की है वह सज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तक भव्य जीव क्रम से अपूर्वकरण आदि करणोरूप सोपान पक्ति पर चढ़ता हुआ बहुतर कर्मो की निर्जरा करने वाला होता है । सर्वप्रथम वह ही प्रथम सम्यक्त्व की प्राप्ति के निमित्त मिलने पर सम्यग्दृष्टि होता हुआ असंख्येय गुण निर्जरा वाला होता है ।

प्रश्न ४–सम्यग्दृष्टि से श्रावक के असख्यातगुणी निर्जरा क्यो होती है ?

उत्तर–वह ही सम्यग्दृष्टि चारित्रमोह के भेद अप्रत्याख्यानावरण कर्म के क्षयोपशम निमित्तक परिणामो की प्राप्ति के समय विशुद्धि का प्रकर्ष प्राप्त होने से श्रावक होता है तथा सम्यग्दृष्टि से असख्येय गुण निर्जरावाला होता है ।

प्रश्न ५–श्रावक से असख्यातगुणी निर्जरा किसके और क्यो होती है ?

उत्तर–श्रावक से विरत की असख्यातगुणी निर्जरा होती है वही श्रावक प्रत्याख्यानावरण कर्म के क्षयोपशम निमित्तक परिणामो की विशुद्धिवश विरत सज्ञा प्राप्त होता हुआ असख्येय गुण निर्जरावाला होता है ।

प्रश्न ६–विरत से असख्यात गुण निर्जरा का स्वामी कौन है ?

उत्तर–विरत से अनन्तानुबन्धी का विसयोजन करने वाला असख्यात गुण निर्जरा का स्वामी होता है । अर्थात् वह ही विरत जब अनन्तानुबधी क्रोध-मान-माया-लोभ की विसयोजना करता है तब परिणामो की विशुद्धि के प्रकर्षवश उससे असख्येय गुण निर्जरावाला होता है ।

प्रश्न ७–अनन्तानुबधी के विसयोजन करने वाले से भी असख्यातगुण निर्जरा करने वाला कौन है ?

उत्तर–वह ही अनन्तानुबधी का विसयोजक दर्शनमोहनीयत्रयरूपी तृणसमूह को भस्मसात् करता हुआ परिणामो की विशुद्धिवश दर्शनमोह क्षपक सज्ञा प्राप्त कर पहले से असख्येय गुण निर्जरावाला होता है ।

प्रश्न ८–दर्शनमोह क्षपक से भी असख्येय गुणनिर्जरा का स्वामी बताइये ?

उत्तर–पुन: वह क्षायिक सम्यग्दृष्टि श्रेणि पर चढ़ने के सन्मुख होता हुआ तथा चारित्रमोह के उपशम करने के लिये प्रयत्न करता हुआ "उपशमक" सज्ञा को प्राप्त हो विशुद्धि के प्रकर्षवश असख्यातगुणश्रेणि निर्जरा करता है ।

प्रश्न ९–उपशमक से असख्येय गुण निर्जरा का स्वामी कौन है ?

उत्तर–वह ही उपशमक समस्त चारित्रमोहनीय के उपशम के निमित्त मिलने पर "उपशान्त कषाय" नाम प्राप्त होता हुआ असख्येय गुण निर्जरा वाला होता है ।

प्रश्न १०–"उपशान्तकषाय" वालो से असख्येय गुण निर्जरा का स्वामी कौन है ?

उत्तर–वह ही उपशान्त कषायी जीव चारित्रमोहनीय की क्षपणा के लिये सम्मुख होता हुआ परिणामो की विशुद्धि से क्षपक सज्ञा को प्राप्त हुआ असख्येय गुण निर्जरा का स्वामी होता है ।

प्रश्न ११–क्षपक से भी असख्येय गुणनिर्जरा का स्वामी कौन है ?

उत्तर–वह ही क्षपक समस्त चारित्रमोह की क्षपणा के कारणो से प्राप्त हुए परिणामो के अभिमुख होकर क्षीणकषाय सज्ञा प्राप्त कर असख्येय गुण निर्जरा का स्वामी बनता है ।

प्रश्न १२–क्षीणमोह से असख्यात गुण निर्जरा किन्हे होती है ?

उत्तर–वे ही क्षीणमोही महामुनि द्वितीय शुक्लध्यानरूपी अग्नि के द्वारा घातिकर्म समूह का नाश करके जिन सज्ञा को प्राप्त होते हुए पहले कही निर्जरा से असख्येय गुण निर्जरावाले होते है ।

प्रश्न १३–दस स्थानो मे सबसे स्तोक निर्जरा व सबसे अधिक निर्जरा के स्वामी कौन है ?

उत्तर–सबसे स्तोक निर्जरा सम्यग्दृष्टि के होती है और सबसे अधिक निर्जरा "जिनदेव" को होती है । अर्थात् "स्तोक निर्जरा का स्वामी सम्यग्दृष्टि और महानिर्जरा के स्वामी जिन हैं" ।

प्रश्न १४–निर्जरा का प्रारभ जीव कौन है ?

उत्तर–मिथ्यात्व गुणस्थान मे जो जीव सम्यक्त्व के सन्मुख है वह कर्मों की निर्जरा का प्रारभक है उसे सातिशय मिथ्यादृष्टि कहते हैं ।

प्रश्न १५–सूत्र मे निर्जरा स्थानो मे "सम्यग्दृष्टि" को ग्रहण किया है उससे कौनसा जीव ग्राह्य है ?

उत्तर–"प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टि" । अनादि मिथ्यादृष्टि जीव सर्वप्रथम प्रथमोपशम सम्यक्त्व को ही प्राप्त होता है उसे ही सातिशय मिथ्यादृष्टि से असख्येयगुणी निर्जरा होती है ।

प्रश्न १६–निर्जरा का द्वितीय स्थान श्रावक को प्राप्त है वह कौन हो सकता है ?

उत्तर–जो प्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय रहने से पूर्ण सयम को प्राप्त नही होता, किन्तु अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय रहने से एकदेशव्रतधारी है ऐसा व्रती श्रावक यहाँ ग्रहण योग्य है ।

प्रश्न १७–विरत कौन है ? (सूत्रप्राप्त)

उत्तर–षष्ठम, सप्तम गुणस्थानवर्ती सकलसयमी को यहाँ सूत्र मे विरत नाम से ग्रहण किया है ।

प्रश्न १८–सूत्र मे आया अनन्तानुबधीवियोजक शब्द किनका वाचक है ?

उत्तर–दर्शनमोह की क्षपणा को प्रारभ करनेवाले असयत, देशसयत, प्रमत्तसयत और अप्रमत्त जीव जो अनतानुबधी की विसयोजना करने वाले है उनका वाचक यह "अनन्तानुबधी वियोजक" पद है ।

प्रश्न १९–अनन्तानुबधी-वियोजक क्या करता है ?

उत्तर–वह सप्तप्रकृतियो का नाश करते हुए सर्वप्रथम तीने करण करता है उनमे से अनिवृत्तिकरण के अन्तर्मुहूर्त काल के अन्तिम समय मे अनन्तानुबधी चार कषाय की युगपत् विसयोजना करता है ।

प्रश्न २०–विसयोजना किसे कहते है ?

उत्तर–अनन्तानुबधी कषाय का अप्रत्याख्यान आदि १२ कषाय रूप परिणमन करना विसयोजना कहते है ।

प्रश्न २१–दर्शनमोहक्षपक कौन है ?

उत्तर–सात-अनन्तानुबधी ४ और मिथ्यात्व, सम्यक्‌मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृति का क्षय इनकी सत्ता-व्युच्छित्ति करने वाला जीव दर्शनमोह क्षपक है ।

प्रश्न २२–"उपशमकशब्द" किन जीवो का वाचक है ?

उत्तर–यहाँ सूत्र प्राप्त उपशमक शब्द उपशम श्रेणी मे स्थित ८-९-१०वे गुणस्थानवाले जीवो का वाचक है, ये जीव चारित्रमोह की २१ प्रकृतियो के उपशामक है ।

प्रश्न २३–"उपशान्तमोह" के वाच्य कौन जीव है ?

उत्तर–११वे गुणस्थानवर्ती जीव उपशान्तमोह कहलाते है ।

प्रश्न २४–"क्षपक" पद से कौन जीव ग्राह्य है ?

उत्तर–अष्टम, नवम, दसम गुणस्थानवर्ती जीव जो क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ है वे ही यहाँ "क्षपक" पद से ग्राह्य हैं, ये जीव चारित्रमोह की २१ प्रकृतियो के क्षय करने वाले हैं ।

प्रश्न २५–क्षीणमोह के वाच्य जीव कौन है ?

उत्तर–१२वे गुणस्थानवर्ती जीव क्षीणमोही कहलाते है । यहाँ मोह कर्म का सर्वथा अभाव हो जाता है ।

प्रश्न २६–जिन पद से यहाँ कौन से जिन ग्रहण योग्य है ?

उत्तर–सयोगी जिन और अयोगी जिन । १२वे गुणस्थानवर्ती से सयोगी जिन के और उनसे भी अयोगी जिन के असख्यात गुणी निर्जरा होती है ।

प्रश्न २७–निर्जरा के स्थान कितने है ?

उत्तर–निर्जरा के कुल दस स्थान है । इनमे भी यदि सम्यग्दृष्टि के साथ सातिशय मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि दो पद ग्रहण करने से ११ स्थान हो जाते है अथवा जिनके सयोगी-अयोगी दो भेद करने मे भी निर्जरा के ११ स्थान हो जाते है ।

प्रश्न २८–एक जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व कितनी बार प्राप्त कर सकता है ?

उत्तर–अर्द्धपुद्गलपरावर्तनकाल मे एक जीव कम से कम १ बार और अधिक से अधिक असख्यात बार (पल्य के असख्यात भाग बार) प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है ।

प्रश्न २९–एक बार प्रथमोपशम सम्यक्त्व होने के बाद पुन कितने काल बाद हो सकता है

उत्तर–प्रथमोपशम सम्यक्त्व का अन्तराल पल्य का असख्यात भाग है ।

प्रश्न ३०–उपशम श्रेणी किसे कहते है और उसे कौन जीव प्राप्त करता है ?

उत्तर–चारित्रमोहनीय का उपशम करने के लिये जो श्रेणी माढ़ी जाती है उसे उपशमश्रेणी कहते है । इसे द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि तथा क्षायिकसम्यग्दृष्टि दोनो माँढ सकते हैं ।

प्रश्न ३१–उपशमश्रेणी की विशेषता क्या है ?

उत्तर–उपशमश्रेणी का प्रारभ सातवे गुणस्थान के सातिशय भेद— अध करण परिणामो से होता है । इस श्रेणी वाला जीव अध करण,

अपूर्वकरण, अनिवृत्ति और सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानो को क्रम से प्राप्त करता हुआ सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान के अन्त मे चारित्रमोह का बिल्कुल उपशम कर चुकता है और उसके बाद ग्यारहवे उपशान्तमोह गुणस्थान को प्राप्त होता है। वहाँ से क्रमपूर्वक गिरकर नीचे आता है। उपशम सम्यग्दृष्टि जीव गिरता हुआ प्रथम गुणस्थान तक आ सकता है परन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव चतुर्थ गुणस्थान से नीचे नही आता है।

प्रश्न ३२–ग्यारहवे गुणस्थान से गिरने का कारण क्या है ? वहाँ परिणामो मे कौनसी मलिनता आती है जो महामुनियो को भी नीचे धकेल देती है ?

उत्तर–ग्यारहवे गुणस्थान से गिरने का कारण परिणामो की मलिनता नही है। वहाँ से गिरने के दो कारण है—(१) कालक्षय (गुणस्थान का काल), (२) भव क्षय (आयु का नाश)।

प्रश्न ३३–उपशमश्रेणी कितनी बार प्राप्त की जा सकती है ?

उत्तर–उपशमश्रेणी अधिक से अधिक चार बार प्राप्त की जा सकती है। पाँचवी बार वह जीव नियम से क्षपकश्रेणी प्राप्त कर मुक्ति को प्राप्त होता है।

प्रश्न ३४–क्षपकश्रेणी किसे कहते है और इसे कौन जीव प्राप्त करते है ?

उत्तर–जिसमे चारित्र मोहनीय का क्षय होता है उसे क्षपकश्रेणी कहते है। इस श्रेणी की भी प्राप्ति सप्तम गुणस्थान के सातिशय भेद अध करण परिणामो से होती है। इस श्रेणी वाला जीव क्रम से ८-९-१० गुणस्थानो को प्राप्त करता हुआ चारित्रमोह का सर्वथा क्षय करके १२वे गुणस्थान को प्राप्त होता है। इस श्रेणीवालो का नीचे पतन और मरण दोनो नही होता है।

प्रश्न ३५–निर्ग्रन्थ कितने प्रकार के होते हैं ?

उत्तर– पुलाकबकुशकुशीलनिर्ग्रंथस्नातक निर्ग्रन्थाः ॥ ४६ ॥

सूत्रार्थ–पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक ये पाँच निर्ग्रन्थ है।

प्रश्न १–पुलाक मुनि का लक्षण बताइये ?

उत्तर–जिनका मन उत्तरगुणो की भावना से रहित है, जो कही पर और कदाचित् व्रतो मे भी ये परिपूर्णता को प्राप्त नहीं होते है वे अविशुद्ध पुलाक (तुच्छ धान्य) के समान होने से पुलाक कहे जाते हैं।

प्रश्न २–अविशुद्ध पुलाक किसे कहते हैं ? निर्ग्रन्थ को पुलाक की सज्ञा क्यो दी गई है ?

उत्तर–मलिन चावल को पुलाक कहते है । अर्थात् चावल मे कुछ तुष लालिमा आदि लगी रहती है, उस मलिन चावल को पुलाक कहते है । मलिन तन्दुल के समान अपरिपूर्ण व्रत धारण करने वाले (व्रत मलिन मुनि) होने से निर्ग्रन्थ को भी पुलाक सज्ञा है ।

प्रश्न ३–बकुश निर्ग्रन्थ का स्वरूप बताइये ?

उत्तर–जो निर्ग्रन्थ होते है, व्रतो का अखण्ड रूप से पालन करते हैं, शरीर और उपकरणो की शोभा बढ़ाने मे लगे रहते है, परिवार से घिरे रहते है, और विविध प्रकार के मोह से युक्त होते है वे बकुश कहलाते है ।

प्रश्न ४–बकुश शब्द का अर्थ क्या है ?

उत्तर–यहाँ बकुश शब्द "शबल" चित्र-विचित्र शब्द का पर्यायवाची है ?

प्रश्न ५–कुशील निर्ग्रन्थ के कितने भेद है ?

उत्तर–दो भेद है—(१) प्रतिसेवनाकुशील और (२) कषायकुशील ।

प्रश्न ६–प्रतिसेवनाकुशील का लक्षण क्या है ?

उत्तर–जो परिग्रह से घिरे रहते है, मूल और उत्तरगुणो मे परिपूर्ण है लेकिन कभी-कभी उत्तरगुणो की भी विराधना करते है वे प्रतिसेवनाकुशील कहलाते है ।

प्रश्न ७–कषायकुशील निर्ग्रन्थ का स्वरूप बताइये ?

उत्तर–जिन्होने अन्य कषायो को जीत लिया है और जो केवल सज्वलन कषाय के आधीन है वे कषायकुशील निर्ग्रन्थ कहलाते है ।

प्रश्न ८–निर्ग्रन्थ मुनि का स्वरूप बताइये ?

उत्तर–जिस प्रकार जल मे लकड़ी से की गयी रेखा अप्रकट है उसी प्रकार जिनके कर्मों का उदय अप्रकट है और जो अन्तर्मुहूर्त के बाद प्रकट होने वाले केवलदर्शन व केवलज्ञान को प्राप्त करते है वे निर्ग्रन्थ कहलाते हैं ।

प्रश्न ९–स्नातक निर्ग्रन्थ का लक्षण क्या है ?

उत्तर–जिन्होने चार घातिया कर्मों का नाश कर दिया है वे सयोगकेवली व अयोगकेवली स्नातक कहलाते है ।

प्रश्न १०–ये पाँचो मुनिराज निर्ग्रन्थ है या सग्रन्थ ?

उत्तर–पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक ये पाँचो मुनि निर्ग्रन्थ ही होते है ।

प्रश्न ११–पुलाक आदि पॉच मुनि सब निर्ग्रन्थ होते है तो इनमे भेद क्यो किया ?

उत्तर–पुलाक आदि मुनियो मे चारित्र परिणाम की न्यूनाधिकता की अपेक्षा भेद किया है । फिर भी नैगम, सग्रह आदि नयो की अपेक्षा वे सब निर्ग्रन्थ ही है । अथवा चारित्रगुण का क्रम विकास और क्रम प्रकर्ष दिखाने के लिये पुलाकादि भेद किये है ।

प्रश्न १२–पुलाक मुनि के मूलगुण भी अपरिपूर्ण होते है, किञ्चित् विराधित व्रतो मे भी यदि निर्ग्रन्थ शब्दो का प्रयोग किया जाता है तो श्रावक मे भी निर्ग्रथ शब्द का प्रयोग करना चाहिये, क्योंकि अतिप्रसग दोष आ रहा है ?

उत्तर–हम निर्ग्रन्थ रूप को प्रमाण मानते है, अत भग्नव्रत मे निर्ग्रन्थशब्द प्रयोग करके भी श्रावक व्रत मे निर्ग्रन्थ शब्द का प्रयोग नही कर सकते, क्योकि श्रावक मे निर्ग्रन्थरूपता नही है, इसलिये अतिप्रसग दोष नही आता है ।

प्रश्न १३–यदि भग्नव्रत मे भी निर्ग्रन्थता(नग्नता) प्रमाण है तब तो जिस किसी मिथ्यादृष्टि मे भी निर्ग्रन्थ शब्द का प्रयोग करना चाहिये ?

उत्तर–जिस किसी नग्न मे निर्ग्रन्थ शब्द का प्रयोग नही किया जा सकता, क्योंकि उनमे सम्यग्दर्शन नही पाया जाता है । जिनमे सम्यग्दर्शन सहित निर्ग्रन्थपना है, वही निर्ग्रन्थ है, केवल नग्नरूप मात्र निर्ग्रन्थ नही है । कहा है—

दव्वेण सयलणग्गा णारयतिरिया य सयलसघाया ।
परिणामेण असुद्धा ण भावसवणत्तण पत्ता ।। ६७ ।। –भा पा

द्रव्य अर्थात् शरीररूप बाह्य कारण की अपेक्षा सभी जीव नग्न है । नारकी और तिर्यञ्च तो समुदाय रूप से नग्न ही रहते है परन्तु भाव से अशुद्ध है (मिथ्यादृष्टि है) अत भाव श्रमणपने को प्राप्त नही होते है । और भी—

णग्गो पावइ दुक्ख णग्गो ससारसायरे भमई ।
णग्गो ण लहइ बोहि जिणभावणवज्जिओ सुइर ।।६८।। भा पा ।

जिन भावना जिन सम्यक्त्व से रहित नग्न पुरुष दु ख प्राप्त करता है । जिन भावना से रहित नग्न पुरुष चिरकाल तक ससार भ्रमण करता है और जिन

भावना से रहित नग्न पुरुष चिरकाल रत्नत्रय को प्राप्त नही करता है। (जिन भावना का अर्थ सम्यक्त्व है)

ण वि सिज्झइ वत्थधरो जिणसासणे जइ वि होइ तित्थयरो।
णग्गो वि मोक्खमग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे ॥ २३ ॥

जिनशासन मे कहा है कि वस्त्रधारी पुरुष सिद्धि को प्राप्त नही होता भले ही वह तीर्थंकर भी क्यो न हो ? नग्न वेष ही मोक्षमार्ग है शेष सब उन्मार्ग है, मिथ्यामार्ग है।

प्रश्न १४–पुलाक आदि मुनियो मे विशेषता किस अपेक्षा होती है ?

उत्तर– संयमश्रुतप्रतिसेवनातीर्थलिङ्गलेश्योपपाद-स्थानविकल्पतः साध्या ॥ ४७ ॥

सूत्रार्थ–सयम, श्रुत, प्रतिसेवना, तीर्थ, लिग, लेश्या, उपपाद और स्थान इन आठ अनुयोगो के द्वारा पुलाक आदि मुनियो मे परस्पर विशेषता पाई जाती है।

प्रश्न १–सयम की अपेक्षा पुलाक आदि पॉच निर्ग्रन्थो मे विशेषता बताइये ?

उत्तर–(१) पुलाक, बकुश और प्रतिसेवनाकुशील मुनि के सामायिक और छेदोपस्थापना दो सयम होते है।

(२) कषायकुशील के सामायिक, छेदोपस्थापना और परिहारविशुद्धि और सूक्ष्मसाम्पराय सयम होते है।

(३) निर्ग्रन्थ और स्नातक के एकमात्र यथाख्यात सयम होता है।

प्रश्न २–श्रुत की अपेक्षा पुलाक आदि मुनियो मे विशेषता बताइये ?

उत्तर–(१) पुलाक बकुश और प्रतिसेवनाकुशील उत्कृष्ट रूप से अभिन्नाक्षर दस पूर्वधर होते है।

(२) कषायकुशील और निर्ग्रन्थ चौदह पूर्वधर होते है।

(३) पुलाक जघन्यरूप से आचार वस्तु निरूपक श्रुत के धारी होते है।

(४) बकुश-कुशील, और निर्ग्रन्थो का श्रुत अष्ट प्रवचन मातृका प्रमाण होता है।

(५) स्नातक श्रुतज्ञान से रहित केवली होते हैं।

प्रश्न ३–प्रतिसेवना की अपेक्षा पुलाक आदि मुनियो की विशेषता बताइये ?

उत्तर–(१) पुलाक मुनि के दूसरो के दबाववश, जबरदस्ती से महाव्रतमूलक पॉच मूलगुण और रात्रिभोजन वर्जन व्रत मे से किसी एक की प्रतिसेवना होती है ।

(२) बकुश दो प्रकार के होते है—(क) उपकरण बकुश और शरीर बकुश । इनमे उपकरण बकुश के उपकरणो के सस्कार-प्रतीकार की अपेक्षा प्रतिसेवना होती है । तथा

(ख) शरीर बकुश के शरीर के उबटन, मर्दन, क्षालन, विलेपन आदि सस्कार करने की अपेक्षा प्रतिसेवना होती है ।

(ग) प्रतिसेवनाकुशील मूलगुणो की विराधना तो नही करता परन्तु कभी-कभी उत्तरगुणो की विराधना करते है यही उनकी प्रतिसेवना है ।

कषायकुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक के प्रतिसेवना कभी नही होती है अत उनके अप्रतिसेवना है ।

प्रश्न ४–प्रतिसेवना का अर्थ क्या है ?

उत्तर–व्रतो मे दोष लगने को प्रतिसेवना कहते है ।

प्रश्न ५–पुलाक मुनि को व्रत मे दूषण कैसे लगता है ?

उत्तर–इसके द्वारा श्रावक आदि का उपकार होगा अथवा इस विद्यार्थी के द्वारा अधिक जैनधर्म की प्रभावना होगी ऐसा विचारकर पुलाक मुनि विद्यार्थी आदि को रात्रि मे भोजन कराकर रात्रिभोजन त्याग व्रत का विराधक होता है ।

प्रश्न ६–तीर्थ की अपेक्षा पाँच मुनियो मे क्या विशेषता है ?

उत्तर–ये सब निर्ग्रन्थ सब तीर्थंकर के तीर्थ मे होते हैं ।

प्रश्न ७–लिग की अपेक्षा पुलाक आदि मुनियो मे क्या विशेषता है ?

उत्तर-लिग दो प्रकार होते है—(१) द्रव्यलिंग, (२) भावलिंग

भावलिग की अपेक्षा पॉचो ही साधु निर्ग्रन्थ लिंग वाले होते है ।

द्रव्यलिग की अपेक्षा शरीर की ऊँचाई, रग व पीछी आदि की अपेक्षा इनमे भेद है ।

प्रश्न ८–लेश्या की अपेक्षा पॉच प्रकार के मुनियो मे क्या विशेषता है ?

उत्तर–(१) पुलाक मुनि के तीन शुभ पीत-पद्म-शुक्ल लेश्याएँ होती है ।

(२) बकुश और प्रतिसेवना कुशील के छहो लेश्याएँ होती है ।

(३) कषायकुशील और परिहारविशुद्ध वाले के उत्तर की चार नील, पीत, पद्म, शुक्ल लेश्या होती है ।

(४) सूक्ष्मसाम्पराय निर्ग्रन्थ और स्नातक के एक शुक्ल लेश्या ही होती है ।

प्रश्न ९–पुलाक के मूलव्रत मे दोष लगने पर भी उनके तीन शुभलेश्या क्यो कही ?

उत्तर–पुलाकमुनि के आर्त्तध्यान के कारणो का अभाव होने से तीन अशुभ लेश्याएँ नही है, अपितु तीन शुभ लेश्या होती है ।

प्रश्न १०–बकुश और प्रतिसेवना कुशील के छहो लेश्याएँ कैसे कही है ? जबकि चतुर्थ गुणस्थान के ऊपर तीन शुभलेश्या ही कही है ?

उत्तर–भावलिगी मुनि छट्ठे आदि गुणस्थानो मे होते है । परन्तु बकुश आदि मुनियो के छह लेश्याओ का वर्णन आर्त्तध्यान की अपेक्षा किया है । उन दोनो मुनियो के कभी-कभी उपकरणो के प्रति आसक्ति होने से तत्सबधी आर्त्तध्यान हो सकता है अत· उनके आर्त्तध्यान से होने वाली अशुभ तीन लेश्या सभव है ।

"कृष्णलेश्यादित्रितय तयो कथमिति चेदुच्यते—तयोरुपकरणासक्ति-सभवादार्तध्यान कदाचित् सभवति आर्त्तध्यानेन च कृष्णादिलेश्यात्रितय सभवतीति" ।

प्रश्न ११–कषायकुशील मुनि के कापोत लेश्या कैसे ?

उत्तर–कषायकुशील के भी आर्त्तध्यान की अपेक्षा कापोत लेश्या का वर्णन है, यहाँ कार्य मे कारण का उपचार किया है ।

प्रश्न १२–उपपाद की अपेक्षा पुलाक आदि मुनियो मे विशेषता बताइये ?

उत्तर–**पुलाक मुनि** का उत्कृष्ट उपपाद **सहस्रार** कल्प के उत्कृष्ट अठारह सागर की स्थिति वाले देवो मे होता है ।

बकुश और प्रतिसेवनाकुशील का उत्कृष्ट उपपाद आरण और **अच्युत** कल्प मे बाईस सागर की स्थिति वाले देवो मे होता है ।

कषायकुशील और **निर्ग्रन्थ** का उत्कृष्ट उपपाद **सर्वार्थसिद्धि** मे तैतीस सागर की स्थिति वाले देवो मे होता है । पुलाक, बकुश, कुशील और निर्ग्रन्थ का जघन्य उपपाद सौधर्मकल्प मे **दो सागर** की स्थिति वाले देवो मे होता है । तथा **स्नातक मोक्ष** मे ही जाते है ।

प्रश्न १३–स्थान का यहाँ क्या अर्थ है ?

उत्तर–स्थान से सयमस्थान यहाँ अर्थ है ।

प्रश्न १४–सयमस्थान कितने होते है ?

उत्तर–कषायनिमित्तक असख्यात सयमस्थान होते है ।

प्रश्न १५–कषायनिमित्तक असख्यात सयमस्थान कैसे बनते है ? तथा इन्हे कषायनिमित्तक क्यो कहते है ?

उत्तर–कषायो की तरतमता से सयम के असख्यात स्थान बनते है । कषायो की ही तरतमता से सयम के भेद होने से इनको कषायनिमित्तक कहते है ।

प्रश्न १६–पुलाक व कषाय कुशील के कौनसा स्थान है ?

उत्तर–पुलाक व कषाय कुशील के सबसे जघन्य लब्धिस्थान होते है ।

प्रश्न १७–सर्वनिकृष्ट लब्धिस्थान का क्या अर्थ है ?

उत्तर–पुलाक और कषायकुशील के पाये जाने वाले सर्वजघन्य सयमस्थान सर्वनिकृष्ट स्थान कहलाते है ।

प्रश्न १८–पुलाक आदि मुनियो के स्थान बताइये ?

उत्तर–पुलाक और कषायकुशील के सबसे जघन्य लब्धिस्थान होते है । वे दोनो असख्यात स्थानो तक एक साथ जाते है । इसके बाद पुलाक की व्युच्छित्ति हो जाती है । आगे कषायकुशील असख्यात स्थानो तक अकेला जाता है । इसके आगे कषायकुशील, प्रतिसेवना कुशील और बकुश असख्यात स्थानो तक एक साथ जाते है । यहॉ बकुश की व्युच्छित्ति हो जाती है । इससे भी असख्यातस्थान आगे जाकर प्रतिसेवना कुशील की व्युच्छित्ति हो जाती हे । पुन इससे भी असख्यात स्थान आगे जाकर कषायकुशील की व्युच्छित्ति हो जाती है । इससे आगे अकषाय स्थान है जिन्हे निर्ग्रंथ प्राप्त होता है । उसकी भी असख्यात स्थान आगे जाकर व्युच्छित्ति हो जाती है । इनके आगे एक स्थान जाकर स्नातक निर्वाण को प्राप्त होता है । इनकी सयमलब्धि अनन्तगुणी होती है ।

इति श्रीमदुस्वामिविरचिते मोक्षशास्त्रे नवमोऽध्याय

●

दशम अध्याय

मोक्ष तत्त्व विवेचना [९]

सूत्र १-२ मे—केवलज्ञान की उत्पत्ति का कारण, मोक्ष का हेतु और लक्षण ।

सूत्र ३ मे—मोक्ष मे किसका अभाव होता है ।

सूत्र ४ मे—मोक्ष मे कितने भावो का सद्भाव है ।

सूत्र ५ मे—कर्मक्षय बाद जीव की स्थिति ।

सूत्र ६-७ मे—मुक्त जीव के उर्ध्वगमन मे कारण व दृष्टान्त ।

सूत्र ८ मे—लोकाग्र के आगे जीव के गमन का अभाव क्यो ?

सूत्र ९ मे—मुक्त जीवो मे भेद होने के कारण ।

इस प्रकार दशम अध्याय मे मोक्ष तत्त्व की विवेचना है ।

●

अथदशमोऽध्याय:

प्रश्न १–पूर्व मे नवम अध्याय मे "आस्रवनिरोध सवर " सूत्र द्वारा सवर तत्त्व का वर्णन किया अब क्रमप्राप्त निर्जरा तत्त्व का व्याख्यान दसम अध्याय मे करना चाहिये ?

उत्तर–यहाँ दसम अध्याय मे निर्जरा तत्त्व का वर्णन नही किया जायेगा क्योंकि तप के द्वारा होने वाली अविपाक निर्जरा का और कर्मफल का अनुभव देकर नाश होनेवाली सविपाक निर्जरा का वर्णन पूर्व मे कर ही दिया है जैसा कि—अपने नामानुसार उपभुक्त है विचित्र फल जिनका ऐसे कर्मों का (फल देकर) झड़ जाना ही निर्जरा है ।

"विपाकोऽनुभव ,स यथानाम्, ततश्च निर्जरा" इत्यत्र व्याख्याता । (अ ८ सू २१-२२-२३)

प्रश्न २–पूर्व मे निर्जरा के वर्णन का कोई प्रसग ही नही है ?

उत्तर–यद्यपि पूर्व मे निर्जरा के वर्णन का प्रसग नही है तथापि अनुभागबन्ध के प्रकरण से निर्जरा का कथन हो जाता है ।

प्रश्न ३–सवर के बाद निर्जरा का वर्णन करना चाहिये ?

उत्तर–सवर के बाद निर्जरा का वर्णन किया है । कैसे ? अर्थात् सवर के अनन्तर निर्जरा का वर्णन करना चाहिये अत गुप्ति, समिति, धर्मानुप्रेक्षा परीषहजय और चारित्ररूप सवर के कारणो का वर्णन करके । "तपसानिर्जरा च" सूत्र द्वारा निर्जरा का वर्णन किया है । अथवा

सवर के बाद निर्जरा का स्वतत्र प्रकरण बनाना उचित नही समझा गया क्योंकि प्राय सवर कारणो से निर्जरा होती है, इसलिये सवर के प्रकरण से ही निर्जरा का कथन हो गया है ।

प्रश्न ४–निर्जरा का कथन पूर्व मे कर चुके है अत अब क्रमप्राप्त किस तत्त्व का वर्णन करना चाहिये ?

उत्तर–अब मोक्ष तत्त्व का वर्णन करना चाहिये ।

प्रश्न ५–मोक्ष की प्राप्ति किस ज्ञानपूर्वक होती है ?

उत्तर–केवलज्ञानपूर्वक मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

प्रश्न ६–अत अब किसका वर्णन क्रम प्राप्त है ?

उत्तर–केवलज्ञान की उत्पत्ति का वर्णन क्रम प्राप्त है ।

प्रश्न ७–केवलज्ञान की उत्पत्ति के हेतु बताइये ?

उत्तर– मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम् ॥ १ ॥

सूत्रार्थ–मोह का क्षय होने से तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय कर्म का क्षय होने से केवलज्ञान प्रकट होता है । (अर्थात् चार घातिया कर्मों का क्षय केवलज्ञानोत्पत्ति का हेतु है ।)

प्रश्न १–इस सूत्र को समासान्त करना उचित था, उससे सूत्र लघु हो जाता ? अर्थात्

समासान्त करने से सूत्र मे एक क्षय शब्द नही देना पड़ता तथा दूसरी विभक्ति का प्रयोग न करने से एक च का प्रयोग भी नही करना पडता । यथा—

"मोहज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयात्केवलम्"

उत्तर–यद्यपि यह कथन सत्य है, तथापि घातिया कर्मो के क्षय के क्रम का कथन करने के लिये वाक्यो का भेद करके सूत्र निर्देश किया है ।

प्रश्न २–केवलज्ञान की उत्पत्ति के हेतु घातिया कर्मो के क्षय का क्रम क्या है ?

उत्तर–सर्वप्रथम मोहनीय का क्षय करके, अन्तर्मुहूर्त काल तक क्षीणकषाय सज्ञा को प्राप्त होकर अनन्तर ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्म का एक साथ क्षय करके महामुनिराज केवलज्ञान को प्राप्त होते है ।

प्रश्न ३–सूत्र मे पञ्चमी का निर्देश क्यो किया है ?

उत्तर–इन कर्मों (घातिया) का क्षय केवलज्ञान की उत्पत्ति का हेतु है, यह बताने के लिये "हेतुरूप पञ्चमी" विभक्ति का निर्देश किया है ।

प्रश्न ४–सर्वप्रथम मोह का क्षय कैसे प्राप्त होता है ?

उत्तर–विशुद्धि की वृद्धि को प्राप्त होता हुआ असयतसम्यग्दृष्टि, सयतासयत, प्रमत्तसयत और अप्रमत्तसयत इन चार गुणस्थानो मे से किसी एक गुणस्थान मे मोहनीय की सात प्रकृतियो का क्षय करके क्षायिकसम्यग्दृष्टि होकर क्षपकश्रेणी पर आरोहण करने के लिये सम्मुख होता हुआ अप्रमत्तसंयत (सातिशय अवस्था मे) गुणस्थान मे अध प्रवृत्तकरण को प्राप्त होकर अपूर्वकरण के प्रयोग द्वारा अपूर्वकरण क्षपक गुणस्थान सज्ञा का अनुभव करके वहाँ पर नूतन परिणामो की विशुद्धिवश पापप्रकृतियो

की स्थिति अनुभाग को कृश करके तथा शुभ कर्मों के अनुभाग की वृद्धि करके अनिवृत्तिकरण की प्राप्ति द्वारा अनिवृत्ति, बादर, साम्पराय, क्षपक गुणस्थान पर चढ़कर वहाँ आठ कषायो का नाश करके तथा नपुसक और स्त्रीवेद का क्रम से क्षय करके छह नो कषाय का पुरुषवेद मे सक्रमण द्वारा नाश करके तथा पुरुषवेद का क्रोध सज्वलन मे, क्रम से बादर कृष्टि विभाग के द्वारा सक्रमण करके तथा लोभ सज्वलन को कृश करके, सूक्ष्मसाम्पराय क्षपक का अपना करके सर्वप्रथम समस्त मोहनीय का समूल नाश को प्राप्त होता है।

प्रश्न ५–शेष ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मो के क्षय का क्रम किस प्रकार है ?

उत्तर–वे महामुनि दसम गुणस्थान मे समूल मोहनीय का क्षय करके क्षीणकषाय गुणस्थान पर आरोहण करके मोहनीय के भार को उतारकर क्षीणकषाय गुणस्थान के उपान्त्य समय मे निद्रा और प्रचला का नाश करके तथा अन्तिम समय मे पॉच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पॉच अन्तराय कर्मो का अन्त करके ज्ञानदर्शनस्वभावरूप केवलज्ञान पर्याय को प्राप्त होते है।

प्रश्न ६–मोह-क्षय किसे कहते है ?

उत्तर–मोह का नाश, मोह का विध्वस, सत्ता व्युच्छित्ति को मोहक्षय कहते है।

प्रश्न ७–केवलज्ञान की उत्पत्ति कितनी कर्म प्रकृतियो के क्षय से होती है ?

उत्तर–मोहनीय की २८, ज्ञानावरण की ५, दर्शनावरण की ९, अन्तराय की पाँच तथा सूत्र प्राप्त "च" शब्द से तीन आयु तथा नामकर्म की १३ कुल मिलाकर ६३ कर्म प्रकृतियो के क्षय होने से केवलज्ञान प्राप्त होता है।

प्रश्न ८–उन ६३ प्रकृतियो का नाम बताओ जिनके क्षय से केवलज्ञान प्राप्त होता है ?

उत्तर–ज्ञानावरण ५—मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मन पर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण।

दर्शनावरण ९—चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण, निद्रा, निद्रा-निद्रा, प्रचला, प्रचला-प्रचला और स्त्यानगृद्धि।

मोहनीय २८–दर्शनमोहनीय, ३–मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व आर सम्यक् प्रकृति तथा चारित्रमोहनीय की -

आयु कर्म की ३—नरक आयु, तिर्यक् आयु और देवायु ।

नामकर्म की १३—एकेन्द्रिय आदि ४ जाति, सूक्ष्म, साधारण,आतप, स्थावर, उद्योत, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी—१३ और

अन्तराय कर्म की ५—दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, वीर्यान्तराय ।

प्रश्न ९–क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति के लिये मोह कर्म की सात प्रकृतियो के क्षय का क्रम बताइये ?

उत्तर–असयतादि चार गुणस्थान वाले जीव अनिवृत्तिकरण के चरमसमय मे अनन्तानुबधी की चार (क्रोध-मान-माया लोभ) कषायो की युगपत् विसयोजना करते है । पुन तीनकरण करके अनिवृत्तिकरण काल के बहुभाग बीत जाने पर शेष सख्यातवे एक भाग मे क्रम से मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व तथा सम्यक्प्रकृति का क्षय करते है । इस प्रकार सात प्रकृतियो के क्षय का क्रम है ।

विशेष—अनन्तानुबधी ४ व दर्शनमोह की ३ इन सात प्रकृतियो का नाश करते हुए प्रथम तीन करण करता है उनमे से अनिवृत्तिकरण के अन्तर्मुहूर्तकाल के अन्तिम समय मे अनन्तानुबधी चार कषाय की युगपात् विसयोजना करता है । पश्चात् अन्तर्मुहूर्त विश्राम करके पीछे दर्शनमोह के नाश के लिये उद्यम करके पहले अध करण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण ऐसे तीन करण करता है । यहाँ अनिवृत्तिकरण का जो अन्तर्मुहूर्त काल है उसमे सख्यात का भाग देकर उसमे से एक भाग बिना बहुभाग व्यतीत हो जाय तब उस एक भाग के प्रथम समय मे क्रम से तीन प्रकृतियो का क्षय करता है । प्रथम समय मे मिथ्यात्व प्रकृति का क्षय करता है, पश्चात् सम्यग्मिथ्यात्व का क्षय करता है पश्चात् सम्यक् प्रकृति का क्षय करता है (मिथ्यात्व को सम्यक् मिथ्यात्व रूप करता है, सम्यक् मिथ्यात्व को सम्यक् प्रकृतिरूप करता है और सम्यक् प्रकृति स्वमुख से क्षय को प्राप्त होती है) तब क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त होता है ।

प्रश्न १०–दर्शनमोह की क्षपणा कब कौन व कहाँ करता है ?

उत्तर–दर्शनमोह की क्षपणा ४-७ (असयत, देशसयत, सयत और अप्रमत्त) गुणस्थानो मे कर्मभूमिया मनुष्य के केवली-श्रुतकेवली के पादमूल मे करता है । (परन्तु पहले विसयोजन होता है)

प्रश्न ११–अध करण परिणाम किसे कहते है ?

उत्तर–जहाँ समान समयवर्ती जीवो के परिणाम भिन्न समयवर्ती जीवो के परिणामो के समान और असमान दोनो प्रकार के होते हैं उन्हे अध·करण परिणाम कहते हैं ।

प्रश्न १२–अपूर्वकरण परिणाम किसे कहते है ?

उत्तर–जहाँ सम समयवर्ती के परिणाम समान असमान दोनो प्रकार और भिन्न समयवर्ती जीवो के परिणाम असमान ही होते हैं उन्हे अपूर्वकरणपरिणाम कहते है । यहाँ अपूर्व-अपूर्व परिणाम होते है ।

प्रश्न १३–अनिवृत्तिकरण परिणाम का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–जहाँ सम समयवर्ती जीवो के परिणाम समान ही हो और भिन्न समयवर्ती जीवो के परिणाम असमान ही हो उन्हे अनिवृत्तिकरण परिणाम कहते है ।

प्रश्न १४–करण का अर्थ क्या है ?

उत्तर–करण का अर्थ परिणाम है ।

प्रश्न १५–करण कितने है व कितनी बार होते है ?

उत्तर–करण तीन है—(१) अध करण, (२) अपूर्वकरण, (३) अनिवृत्तिकरण ।

ये तीनो ही करण ६ स्थानो मे होते है—(१) दर्शनमोह की उपशमना के समय, (२) दर्शनमोह की क्षपणा के समय, (३) चारित्रमोहोपशमना के समय, (४) चारित्रमोहक्षपणा के समय, (५) द्वितीयोपशम सम्यक्त्व के समय और अनन्तानुबधी की विसयोजना के लिये ?

प्रश्न १६–दर्शनमोह क्षपणा मे अनन्तानुबंधी का विसयोजन क्यो होता है ?

उत्तर–अनन्तानुबधी स्वमुख से कभी नहीं जाती है यह परमुखी प्रकृति है अत इसका विसयोजन आवश्यक है ।

प्रश्न १७–विसयोजना किसे कहते है ?

उत्तर–अनन्तानुबधी ४ का अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान, सज्वलन रूप १२ प्रकृतियो मे परिणमन करना विसयोजना है ।

प्रश्न १८–असयत गुणस्थान का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–जो इन्द्रियो के विषय से तथा त्रस-स्थावर जीवो की हिसा से विरत नही है किन्तु जिनेन्द्रदेव के द्वारा कथित प्रवचन का श्रद्धान करता है वह चतुर्थ गुणस्थानवर्ती असयतसम्यग्दृष्टि है ।

णो इदियेसु विरदो, णो जीवे थावरे तसे वापि ।

जो सद्दहदि जिणुत्त सम्माइट्ठी अविर दो सो ।। २९ ।। -जी का

प्रश्न १९–देश-सयत गुणस्थान का स्वरूप क्या है ?

उत्तर–जहाँ प्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय रहने से पूर्ण सयम तो नही है, किन्तु जहाँ अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय न रहने से एकदेश व्रत होते है अत. उस गुणस्थान का नाम देशविरत है । यही पाचवाँ गुणस्थान है । इस गुणस्थान वाला जीव त्रस हिसा से विरत और स्थावर हिसा से अविरत होने से एक ही समय मे विरता-विरत नाम से कहा जाता है ।

प्रश्न २०–प्रमत्तसयत गुणस्थान का स्वरूप बताओ ?

उत्तर–यहाँ सकल सयम को रोकनेवाली प्रत्याख्यानावरण कषाय का क्षयोपशम होने से पूर्ण सयम तो हो चुका है किन्तु उस सयम के साथ-साथ सज्वलन और नो कषाय का उदय रहने से सयम मे मल को उत्पन्न करने वाला प्रमाद भी होता है अत. इसे प्रमत्तसयत गुणस्थान कहते है । इस गुणस्थान मे जीव व्यक्त-अव्यक्त दोनो प्रकार के प्रमादो को करता है अत इसे चित्रल आचरणवाला माना गया है ।

प्रश्न २१–मोक्ष का लक्षण क्या है ? मोक्ष किस कारण से होता है ?

उत्तर– बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः ।। २ ।।

सूत्रार्थ–बध के हेतुओ का अभाव (सवर) और निर्जरा के द्वारा (पूर्व सचित) सम्पूर्ण कर्मों का क्षय हो जाना मोक्ष है ।

प्रश्न १–मोक्ष किस आत्मा को होता है ?

उत्तर–घातिया कर्मों के क्षय से केवलज्ञान दर्शनवाले सशरीरी अपनी प्रभा से उपार्जित अनन्त ऐश्वर्यशाली और वेदनीय नाम, आयु, नाम, गोत्र की सत्तावाले केवली के बध के हेतुओ का अभाव और सम्पूर्ण कर्मों का क्षय होने पर मोक्ष होता है । अथवा जिसने भवस्थिति के हेतुभूत आयु कर्म के बराबर शेष कर्मों की स्थिति को कर लिया है उसके बध हेतु अभाव और निर्जरा के साथ एक साथ सब कर्मों का आत्यतिक क्षय होता है ।

प्रश्न २–सूत्र मे दो पदो का भाव बताइये ?

उत्तर–सूत्र के प्रथम पद से मोक्ष के हेतुओ का कथन है और दूसरे पद से मोक्ष के स्वरूप का प्रतिपादन किया है । यथा "बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्या" से बन्ध के हेतु मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योगो रूप बन्ध

के कारणो का अभाव होने पर नूतन कर्मों का प्रवेश नही होता । क्योंकि कारण के अभाव मे कार्य का अभाव होता ही है ।

द्वितीय पद ''कृत्स्न कर्मों का सम्पूर्ण क्षय रूप का लक्षण प्रदर्शित करता है ''कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्ष '' ।

प्रश्न ३–कर्मबन्ध सन्तान जब अनादि है तो उसका अन्त नही होना चाहिये ? क्योंकि जो अनादि होता है उसका अन्त नही होता तथा प्रत्यक्ष से विपरीत की कल्पना करने पर प्रमाण का अभाव का होता है ?

उत्तर–जो अनादि होता है उसका अन्त नही हो ऐसा कोई नियम नही है क्योंकि जैसे बीज और अकुर की सन्तान अनादि होने पर भी अग्नि से अन्तिम बीज को जला देने पर उससे अकुर उत्पन्न नही होते है, उसी प्रकार ध्यानाग्नि के द्वारा अनादिकालीन मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय आदि कर्मबध के कारणो को भस्म कर देने पर भवाङ्कुर का उत्पाद नही होता । कहा भी है—बीज के जल जाने पर अकुर उत्पन्न नही होता, उसी प्रकार कर्म बीज के जल जाने पर भवांकुर उत्पन्न नही होता है ।

प्रश्न ४–मोक्ष किसे कहते है ?

उत्तर–मोक्ष शब्द भाव साधन है । मोक्ष धातु ''असने'' क्षेपण अर्थ मे होता है अत मोक्षण = छूट जाना मोक्ष है । यह भावसाधन शब्द है । यह मोक्ष मोक्तव्य और मोचक की अपेक्षा द्विविषयक है क्योंकि वियोग दो का होता है मोक्तव्य = छोड़ने योग्य । मोचक = छूटने वाला, इन दो का मोक्ष होता है । अर्थात् पौद्गलिक कार्माण वर्गणाएँ और आत्म दोनो का वियोग होना मोक्ष है ।

''कृत्स्न'' शब्द से बन्ध, उदय, उदीरणा, सत्ता इन चार भागो मे बटे आठ कर्मों का छूटना मोक्ष है ऐसा ग्रहण करना चाहिये ।

प्रश्न ५–कर्म का अभाव कितने प्रकार का है ?

उत्तर–कर्म का अभाव दो प्रकार का है—(१) यत्नसाध्य, (२) अयत्नसाध्य ।

प्रश्न ६–अयत्नसाध्य कर्म अभाव किनका है ?

उत्तर–चरमशरीरी जीव के नरकायु, तिर्यंचायु, देवायु का अभाव अयत्नसाध्य है, क्योंकि उनके इनका अभाव स्वय है ।

प्रश्न ७–यत्नसाध्य कर्म अभाव (सत्व व्युच्छित्ति) बताइये ?

उत्तर–असयत सम्यग्दृष्टि, देशसयत, प्रमत्त और अप्रमत्त इन चार गुणस्थानो मे से किसी एक गुणस्थान मे अनन्तानुबधी क्रोध-मान-माया-

लोभ, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति, इन सात प्रकृतियो का विषवृक्षवन शुभ अध्यवसाय रूप तीक्ष्ण फरसे से समूल काटा जाता है।

पश्चात् अनिवृत्ति गुणस्थान के नौ भागो मे १६, ८, १, १, ६, १, १, १, १ प्रकृतियो को क्रमश क्षय करते है। यथा—

१६ प्रकृतियाँ—निद्रा-निद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, नरकगति, तिर्यग्गति, एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जाति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, स्थावर, साधारण, इन सोलह प्रकृतियो की सेना को अनिवृत्ति बादर साम्पराय गुणस्थान वाला एक साथ अपने समाधि रूप चक्र से जीतता है अर्थात् समूल उच्छेद कर देता है।

८ प्रकृतियाँ—तदनन्तर वही अनिवृत्ति बादर साम्पराय जीव एक साथ अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ व प्रत्याख्यान क्रोध-मान-माया लोभ इन आठ कषायो का नाश करता है। पश्चात्

१ प्रकृति—नपुसक वेद का क्षय करता है।

१ प्रकृति—स्त्रीवेद का क्षय करता है। पुन

६ प्रकृति—पुन एक ही प्रहर मे छह नो कषायो (हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा) का क्षय करता है। पश्चात् क्रमश

१ प्रकृति—पुरुषवेद

१ प्रकृति—सज्वलन क्रोध

१ प्रकृति—सज्वलन मान

१ प्रकृति—सज्वलनमाया का क्षय करता है।

पश्चात् सूक्ष्मसाम्पराय के अन्त मे सज्वलन लोभ का क्षय करते है। पश्चात् छद्मस्थवीतराग क्षीणमोह बारहवे गुणस्थान के उपान्त्य समय मे निद्रा और प्रचला कर्म प्रकृति क्षय को प्राप्त होती है तथा १४ प्रकृति—ज्ञानावरण पाँच, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तराय का क्षीणमोह गुणस्थान के अन्त समय मे क्षय होता है। अत· १२वे गुणस्थान मे १६ प्रकृतियाँ क्षय होती है। इस प्रकार ६३ प्रकृतियो का क्षय हो जाने पर यह जीव सयोगीकेवली जिन हो जाता है।

सयोगकेवली जिन किसी भी कर्म का क्षय नही करते। तत्पश्चात् विहार करके और क्रम से योग निरोध करके वे अयोगकेवली होते हैं।

अयोगकेवली अपने काल के द्विचरम समय मे वेदनीय दोनो प्रकृतियो मे से अनुदयरूप कोई एक वेदनीय देवगति, पाँच शरीर, पाँच सघात, पाँच बन्धन, छह सस्थान, तीन आगोपाग, छह संहनन, पाँच वर्ण, दो गन्ध, पाँच

रस, आठस्पर्श, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, अप्रशस्तविहायोगति, अपर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर-अस्थिर शुभ, अशुभ, दुर्भग, सुस्वर-दुस्वर, अनादेय, अयशस्कीर्ति, निर्माण और नीचगोत्र इन ७२ प्रकृतियो का क्षय करते है । पश्चात् अपने काल के अन्तिम समय मे उदयागत कोई एक वेदनीय, मनुष्यायु, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यशस्कीर्ति, तीर्थंकर और उच्चगोत्र १३ प्रकृतियो का क्षय करते हैं ।

अथवा मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी सहित अयोगकेवली अपने द्विचरम समय मे ७३ प्रकृतियो का और चरम समय मे १२ प्रकृतियो का क्षय करते है । कुल ८५ प्रकृतियो का अयोगकेवली जिनके क्षय होता है ।

प्रश्न ८–क्या इन पौद्गलिक द्रव्यप्रकृतियो के अभाव से ही मोक्ष मिलता है या भाव कर्मों के अभाव से भी मोक्ष मिलता है ?

उत्तर– औपशमिकादिभव्यत्वानां च ॥ ३ ॥

सूत्रार्थ–औपशमिकादि भावो और भव्यत्व भाव का अभाव होने से मोक्ष होता है । (यहाँ मोक्ष पद की अनुवृत्ति है)

प्रश्न १–कौन से भावो का क्षय होने से मोक्ष होता है ?

उत्तर–औपशमिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और भव्यत्व इन चार भाव कर्मो का नाश होने से मोक्ष होता है ।

प्रश्न २–सूत्र मे चकार का प्रयोग क्यो किया गया है ?

उत्तर–सूत्र मे चकार परस्पर समुच्चय अर्थ मे है । चकार से यहाँ तात्पर्य है कि केवल पौद्गलिक सर्व कर्मों के नाश होने से मोक्ष नही होता अपितु औपशमिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और भव्यत्व भावरूप भावकर्मों के नाश से मोक्ष होता है ।

प्रश्न ३–औपशमिक के साथ पारिणामिक भाव को ग्रहण क्यो नही किया, जबकि भव्यत्व पारिणामिक भाव है ?

उत्तर–पारिणामिक भावो मे सिर्फ भव्यत्व भाव का ही नाश होता है, अन्य जीवत्व, सत्त्व, वस्तुत्व आदि भावो का क्षय नही होता, क्योंकि इनका क्षय होने पर जीव के शून्यत्व का प्रसग आता है । इसीलिये सूत्र मे पारिणामिक को न ग्रहणकर मात्र भव्यत्वभाव को ही ग्रहण किया है ।

प्रश्न ४–द्रव्य कर्मों का नाश होने पर उस द्रव्य के निमित्त से होने वाले औपशमिकादि भावो का अभाव स्वय ही सिद्ध हो जाता है तब इस सूत्र की रचना से क्या प्रयोजन है ?

उत्तर–यह कोई एकान्त नियम नही है कि "निमित्त के न होने पर कार्य नही होता है किन्तु निमित्त के अभाव मे भी कार्य देखा जाता है, जैसे दण्ड, चक्र आदि के अभाव मे भी घट कार्य देखा जाता है । अत द्रव्यकर्म के नाश हो जाने पर भाव कर्मों का भी नाश हो जाता है, यह सामर्थ्य से लब्ध है भावकर्मों के क्षय की स्पष्टता करने के लिये इस सूत्र की रचना सार्थक है ।

प्रश्न ५–सिद्ध जीवो के मुक्तावस्था मे औपशमिक आदि भावो के समान क्षायिक भावो का भी अभाव हो जाता है या कोई विशषता है ?

उत्तर– अन्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्यः ॥ ४ ॥

सूत्रार्थ–मोक्ष मे केवल सम्यक्त्व, केवलज्ञान, केवलदर्शन और सिद्धत्व, इन चार भावो का क्षय नही होता है ।

प्रश्न १–यदि मुक्त जीवो के चार ही भाव शेष रहते है तो अनन्तवीर्यादि (अनन्तवीर्य, अनन्त सुख आदि) भावो का अभाव प्राप्त होता है ?

उत्तर–ज्ञान दर्शन के अविनाभावी अनन्तवीर्य आदि सिद्धो मे अवशिष्ट रहते है । क्योकि अनन्त सामर्थ्य से हीन व्यक्ति के अनन्तज्ञान की वृत्ति (प्राप्ति) नही हो सकती है । और सुख तो ज्ञान-दर्शन की पर्याय है, सुख ज्ञानमय होता है अत अनन्तसुख का भी कभी नाश नही होता है । अर्थात् ज्ञान-दर्शन कहने से उनके अविनाभावी अनन्तवीर्यादि "अनत" सज्ञक गुण भी गृहीत हो जाते है, उनका अभाव नही होता है ।

प्रश्न २–सिद्ध जीव निराकार होने से उनके अभाव का प्रसग प्राप्त होता है ?

उत्तर–ऐसा नही है, उनके अतीत, अनन्तर (अन्तिम) शरीर का आकार उपलब्ध होता है । सिद्धो का लक्षण बताते हुए लिखा भी है—

"सायारमणायारा लक्खणमेय तु सिद्धाण"

सिद्ध कथचित् साकार है और कथचित् निराकार भी है । और भी—

पुरुसायारो अप्पा, किंचूणा चरमदेहदो सिद्धा । इत्यादि

प्रश्न ३–जीव शरीर के आकार का अनुकरण करता है "स्वदेहपरिमाण" ऐसा सिद्धान्त है तो शरीर का अभाव होने पर आत्मा के प्रदेश लोकाकाश प्रमाण होना चाहिये ।

उत्तर–यह कोई दोष नही है क्योंकि शरीर नामकर्म के सबध से जीव के सकोच विस्तार होता था किन्तु मुक्त जीवो के नामकर्म का अभाव होने से प्रदेशो का सकोच विस्तार नही होता ।

प्रश्न ४–एक बार बन्धन से छूटने पर मुक्त जीव पुन बन्ध को प्राप्त होता है या नही ?

उत्तर–बध के कारण मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद और कषाय आदि के समूल उच्छेद होने पर मुक्त जीवो के बन्धन रूप कार्य का भी सर्वथा अभाव हो जाता है । अर्थात् बन्ध के हेतुओ का अभाव होने से मुक्त जीवो के बन्ध रूप कार्य का भी अभाव हो जाता है ।

प्रश्न ५–दु खरूपी समुद्र मे निमग्न सारे जगत् के प्राणियो को देखने वाले, जानने वाले भगवान को कारुण्य भाव उत्पन्न हो सकता है और उस कारुण्य भाव से उन्हे बन्ध भी हो सकता है ?

उत्तर–भक्ति, स्नेह, कृपा, और स्पृहा आदि राग-विकल्पो का अभाव हो जाने से वीतराग भगवान को जगत् के प्राणियो को दु खी और कष्ट मे पड़े हुए देखकर करुणा और तत्पूर्वक बन्ध नही होता, क्योकि उनके सर्व आस्रवो का परिक्षय हो गया है ।

प्रश्न ६–सिद्ध जीव मुक्तावस्था मे अनन्तकाल तक रहते है, कभी तो बन्ध होता ही होगा ?

उत्तर–सिद्ध जीवो के बन्ध के कारणो का अभाव होने से अनन्तकाल तक भी बध नही होता, और अकारण भी यदि बध माना जाय तो कभी भी मोक्ष नही हो सकेगा ।

प्रश्न ७–सिद्धो के द्वारा अवगाहन करने योग्य आकाश प्रदेश अल्प है और आधेयभूत सिद्ध अनन्त है, अत इन सिद्धो मे परस्पर अवरोध होता है या नही ?

उत्तर–अवगाहनशक्ति के योग से जब मूर्तिमान् भी अनेक मणि-प्रदीप प्रकाशो के अल्प आकाश मे अविरोधी अवगाह की बाधा नही है तब अमूर्तिक अवगाहनशक्तियुक्त सिद्धो मे तो परस्पर बाधा हो ही कैसे सकती है अर्थात् अनन्तसिद्ध बिना किसी विरोध के अल्प स्थान मे अवगाहन पाते है ।

प्रश्न ८–मुक्त हो जाने पर जीव का अवस्थान कहॉ होता है ?

उत्तर– **तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात् ॥ ५ ॥**

सूत्रार्थ–कर्मबन्ध का उच्छेद होते ही आत्मा समस्त कर्मभार से रहित होने के कारण लोकाकाशपर्यंत ऊर्ध्वगमन करता है ।

प्रश्न १–सूत्र मे तत् शब्द क्यो दिया ?

उत्तर–सूत्र मे तत् शब्द प्रकृत (कर्मबन्ध उच्छेद) के निर्देश के लिये है। यहाँ तत् "कृत्स्नकर्मविप्रमोक्ष" इस प्रकरण को सूचित करता है।

प्रश्न २–सर्व कर्मों का अभाव होने से मुक्त जीव कहा जाता है ?

उत्तर–सर्व कर्मों का अभाव होने पर आत्मा ऊपर लोक के अन्तिम भाग तक ऊपर जाता है।

प्रश्न ३–सूत्र "आ" लोकान्तात् पद मे "आङ" किस अर्थ मे दिया है ?

उत्तर–सूत्र मे आङ् अभिविधि अर्थ मे है। लोक के अन्त को लोकान्त कहते है और लोकाकाश पर्यन्त का अर्थ है आलोकान्त। अर्थात् लोकाकाश पर्यन्त मुक्तजीव का ऊर्ध्वगमन होता है, आगे नही।

प्रश्न ४–मुक्तजीव ऊर्ध्वगमन क्यो करते है ? (इसका हेतु बताइये क्योंकि हेतु के बिना पक्ष की सिद्धि नही होती है)

उत्तर– पूर्वप्रयोगादसङ्गत्वाद् बन्धच्छेदात्तथागति-परिणामाच्च ॥ ६ ॥

सूत्रार्थ–पूर्व के सस्कार, कर्म के सग के अभाव होने से, बन्धन के टूटने से, और वैसागमन (ऊर्ध्वगमन) स्वभाव होने से मुक्त जीव ऊर्ध्वगमन करते है।

प्रश्न ५–ऊर्ध्वगमन के पूर्व प्रयोग आदि हेतुओ को दृष्टान्त द्वारा बताइये क्योंकि बिना दृष्टान्त के हेतु अधूरा रह जाता है ?

उत्तर– आविद्धकुलालचक्रवद् व्यपगतलेपा-लाबुवदेरण्डबीजवदग्निशिखावच्च ॥ ७ ॥

सूत्रार्थ–कुम्हार के घुमाये गये चक्र के समान, लेप से मुक्त हुई तूबी (तूमड़ी) के समान, एरण्ड के बीज के समान और अग्नि की शिखा के समान जीव ऊर्ध्वगमन करता है।

प्रश्न १–पूर्व प्रयोग से जीव ऊर्ध्वगमन किस प्रकार होता है, उदाहरण देकर बताइये ?

उत्तर–जिस प्रकार कुम्हार के प्रयोग से उसके हाथ का दण्ड से और दण्ड का चाक से सयोग होने पर चाक का भ्रमण होता है, किन्तु जब कुम्हार चाक पर दण्ड को घुमाना बन्द भी कर देता है तब भी पूर्व प्रयोग के कारण

सस्कारक्षयपर्यन्त चक्र बराबर घूमता रहता है, उसी प्रकार ससारी आत्मा ने जो मोक्ष प्राप्ति के लिये अनेक अनेक बार प्रयत्न किये हैं परन्तु अब मोक्ष प्राप्ति के समय उद्योग के अभाव मे भी उस पूर्व सस्कार के आदेश पूर्वक पूर्वप्रयोग के कारण मुक्तात्मा का ऊर्ध्वगमन होता है ।

प्रश्न २–संगरहित होने से मुक्तात्मा का ऊर्ध्वगमन क्यो होता है, दृष्टान्त देकर बताओ ?

उत्तर–सग रहित होने से, लेप से मुक्त तूम्बड़ी द्रव्य के समान मुक्तात्मा का ऊर्ध्वगमन होता है । जैसे—मिट्टी के लेप से वजनदार तूम्बड़ी पानी मे डूब जाती है और वही तूम्बड़ी मिट्टी का लेप घुलते ही शीघ्र पानी के ऊपर आ जाती है उसी प्रकार कर्मभार से युक्त आत्मा, कर्मवश ससार मे यत्र-तत्र भ्रमण करता है, उसका अध पतन होता है परन्तु कर्मबन्धन से मुक्त होते ही वह ऊपर को आता है अर्थात् ऊर्ध्वगमन करता है ।

प्रश्न ३–जिस प्रकार द्रव्यान्तर से ससक्त दण्ड अवस्थित रहता है और द्रव्यान्तर के सयोग के अभाव मे अनियम से तिरछा, अध , किधर भी गिर जाता है, किधर गिरे इसका नियम नही है, उसी प्रकार कर्ममुक्त आत्मा सग अभाव मे किधर भी गमन कर सकता है, ऊर्ध्वगमन ही क्यो कहते है ?

उत्तर–दण्ड की तरह जीव की अनियत गति नही है, जीव का "ऊर्ध्वगमन" स्वभाव आचार्यों ने बतलाया है अत ऊर्ध्वगौरव (ऊर्ध्वगमन) स्वभाव वाला होने से आत्मा ऊपर ही जाता है ।

प्रश्न ४–बन्ध का उच्छेद होने से आत्मा ऊपर को किस प्रकार जाता है, उदाहरण देकर बताइये ?

उत्तर–बन्ध का उच्छेद हो जाने से एरण्ड के बीज के समान आत्मा ऊर्ध्वगमन करता है । जिस प्रकार ऊपर के छिलके के हटते ही एरण्ड का बीज ऊपर को जाता है, उसी प्रकार मनुष्य, देव, तिर्यंचादि भवो मे भ्रमण कराने वाले गति नामकर्मादि सर्वकर्मों के बध का छेद हो जाने से मुक्त जीव का स्वाभाविक ऊर्ध्वगमन ही होता है ।

प्रश्न ५–"तथागति" स्वभाव से आत्मा का ऊर्ध्वगमन सिद्ध कीजिये ?

उत्तर–तथागति (ऊर्ध्वगमन) स्वभाव से आत्मा ऊपर को ही जाता है । अग्निशिखा के समान मुक्त आत्मा का ऊर्ध्वगमन स्वभाव ही है । जैसे-तिरछी बहनेवाली वायु के अभाव मे प्रदीपशिखा स्वभाव से ऊर्ध्वगमन ही करती है, उसी प्रकार मुक्तात्मा भी नाना गतिविकार के कारणभूत कर्मों के हट जाने पर ऊर्ध्वगति स्वभाव से ऊपर को ही जाता है ।

प्रश्न ६–सगत्व और बन्धत्व मे क्या अन्तर है ?

उत्तर–बन्धत्व और सगत्व दोनों मे अन्तर है—क्योंकि परस्पर प्रवेश होकर एकमेक हो जाना बन्ध है और परस्पर प्राप्ति मात्र का नाम सग है। इसीलिये क्रिया के कारणभूत पुण्य-पाप के नष्ट हो जाने पर मुक्त जीव के स्वगति परिणाम से ऊर्ध्वगमन होता है।

प्रश्न ७–लोकाकाश के आगे मुक्तात्माओ का गमन क्यो नही होता ?

उत्तर– **धर्मास्तिकायाभावात् ॥ ८ ॥**

सूत्रार्थ–धर्मास्तिकाय का अभाव होने से लोकाकाश के बाहर मुक्तात्मा के गमन का अभाव होता है।

प्रश्न १–जीव का स्वभाव ऊर्ध्वगमन अत उसे तो गमन करते ही रहना चाहिये सिद्धो का लोकान्त मे ही अवस्थान क्यो हो जाता है ?

उत्तर–गतिरूप उपकार का कारणभूत धर्मास्तिकाय लोकान्त के ऊपर नही है अत सहायक कारण के अभाव मे गतिरूप कार्य का भी अभाव उनके पाया जाता है। लोक के अन्त तक धर्म द्रव्य होने से मुक्तात्माओ का गमन भी वही तक होकर वही अवस्थान हो जाता है।

प्रश्न २–मुक्तात्माएँ पूर्ण स्वतत्र हो चुकी है अब उन्हे बाधा कैसी ?

उत्तर–मुक्तात्माएँ यद्यपि पूर्ण स्वतत्र है, किन्तु जीव द्रव्य की गमनादि क्रिया मे उदासीन निमित्त धर्मद्रव्य का अभाव होने से उनका लोकान्त से ऊपर गमन नही हो सकता है। यह स्वभाव है।

प्रश्न ३–सभी मुक्तात्माएँ समान व्यवहार के योग्य हैं या उनमे कुछ विशेषता है ?

उत्तर–यद्यपि सिद्ध अवस्था को प्राप्त सभी जीव गति, जाति आदि भेद के कारणो का अभाव होने से भेद व्यवहार से रहित है तथापि उनमे कथचित् भेद भी है—

क्षेत्रकालगतिलिङ्गतीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धबोधितज्ञानावगाहनान्तर-संख्याल्पबहुत्वतः साध्याः ॥ ९ ॥

सूत्रार्थ–क्षेत्र, काल, गति, लिग, तीर्थ, चारित्र, प्रत्येक बुद्ध, बोधित बुद्ध बोधित, ज्ञान, अवगाहना, अन्तर, सख्या और अल्पबहुत्व इनके द्वारा सिद्ध जीव विभाग करने योग्य हैं।

प्रश्न १–क्षेत्र काल आदि की अपेक्षा सिद्ध जीवो मे भेद किस नय की अपेक्षा किया गया है ?

उत्तर–क्षेत्र काल आदि अपेक्षा सिद्ध जीवो का विभाग वर्तमान और भूत का अनुग्रह करने वाले दो नयो की विवक्षा से किया गया है ।

प्रश्न २–वर्तमानकालग्राही नय, व भूतग्राही नय कौन से है ?

उत्तर–ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ और एवभूत ये चार प्रत्युत्पन्न वर्तमान ग्राही नय है तथा शेष नैगमसग्रह, व्यवहार, उभय (वर्तमान और भूतकाल) विषयग्राही है ।

प्रश्न ३–क्षेत्र की अपेक्षा जीव किस क्षेत्र मे सिद्ध होते है ?

उत्तर–वर्तमान को ग्रहण करने वाले नय की अपेक्षा सिद्धि क्षेत्र मे, या अपने प्रदेशो मे या आकाश-प्रदेश मे मिद्धि होती है ।

भूतकाल को ग्रहण करने वाले नय की अपेक्षा जन्म की अपेक्षा पन्द्रह कर्मभूमियो मे और अपहरण की अपेक्षा मानुष क्षेत्र मे सिद्धि होती है ।

प्रश्न ४–सहरण (अपहरण) कितने प्रकार का होता है ?

उत्तर–अपहरण दो प्रकार का होता है—(१) स्वकृत, (२) परकृत ।

प्रश्न ५–स्वकृत सहरण का लक्षण क्या है ?

उत्तर–चारण ऋद्धिधारी मुनियो का और विद्याधरो का स्वकृत सहरण है । अर्थात् विद्याधर और चारणऋद्धिधारी मुनि सारे मानुषक्षत्र मे कही पर भी कर्मों का क्षयकर सिद्धि प्राप्त कर सकते है ।

प्रश्न ६–परकृत सहरण किसे कहते है ?

उत्तर–देव आदि के द्वारा अन्य मुनियो का सहरण परकृत सहरण है । अर्थात् मुनि आदि उनके द्वारा ले जाये जाकर समुद्र आदि मे डाल दिये जाते है, वह परकृत सहरण है । सहरण की अपेक्षा मानुषक्षेत्र मे स्थित नदी, समुद्र, पर्वत आदि सर्व स्थानो मे सिद्धि हो सकती है ।

प्रश्न ७–काल की अपेक्षा किस काल मे सिद्धि होती है ?

उत्तर–वर्तमानग्राही नय की अपेक्षा एक समय मे सिद्ध होता हुआ सिद्ध होता है । अतीतग्राही नय की अपेक्षा, जन्म की अपेक्षा सामान्य रूप मे उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी काल मे जीव सिद्ध होता है । विशेष रूप से—अवसर्पिणी काल के सुषमा-दुषमा के अन्त भाग मे और दुषमा-सुषमा अर्थात् तृतीय व चतुर्थ काल मे उत्पन्न हुआ जीव सिद्ध होता है ।

प्रश्न ८–चौथे (दुषमा-सुषमा) काल मे उत्पन्न जीव दुषमा (पचम) काल मे सिद्ध होता है या नही ?

उत्तर–चौथे काल मे उत्पन्न हुआ जीव पाचवे काल मे सिद्ध हो सकता है ।

प्रश्न ९—पाँचवे काल मे उत्पन्न हुआ जीव पाँचवे काल मे सिद्ध हो सकता है या नही ?

उत्तर—पाँचवे काल मे उत्पन्न हुआ जीव पाँचवे काल मे सिद्ध नही हो सकता है

प्रश्न १०—कौनसे कालो मे उत्पन्न हुआ जीव मुक्त नही हो सकता है ?

उत्तर—सुषमा-सुषमा, सुषमा, दुषमा, दुषमा-दुषमा इन चारों कालों मे उत्पन्न जीव मुक्त नही हो सकता तथा सुषमा-दुषमा तीसरे काल के अन्तिम भाग को छोड़कर शेष भाग मे उत्पन्न हुआ जीव मुक्त नही हो सकता है।

प्रश्न ११—भ आदिनाथजी, बाहुबलीजी, अनन्तवीर्यादि कब उत्पन्न हुए और कब मुक्त हुए ?

उत्तर—भगवान आदिनाथजी, बाहुबलीजी और अनन्तवीर्यादि तीसरे काल के अन्तिम भाग मे उत्पन्न होकर तीसरे काल में ही मुक्त हो गये।

प्रश्न १२—सहरण की अपेक्षा जीव किस काल मे मुक्त होता है ?

उत्तर—संहरण की अपेक्षा जीव उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के सब समयो मे सिद्ध होते हैं।

प्रश्न १३—गति अपेक्षा किस गति मे सिद्धि होती है ?

उत्तर—सिद्ध गति मे या मनुष्य गति मे सिद्धि होती है। विशेष रूप से—

प्रत्युत्पन्न वर्तमान ग्राही नय अपेक्षा सिद्धगति मे मोक्ष होता है।

अवान्तर भूतग्राही नय अपेक्षा मनुष्यगति मे मोक्ष होता है तथा

एकान्तर भूत प्रज्ञापननय की अपेक्षा चारो गतियों में मोक्ष होता है अर्थात् चारो गतियो से आकर मनुष्य पर्याय से मुक्ति होती है।

प्रश्न १४—लिग की अपेक्षा किस लिग से सिद्धि होती है ?

उत्तर—वेद अपेक्षा—अवेद भाव से या तीनों वेदों से सिद्धि होती है। (यह कथन भाव अपेक्षा है द्रव्य अपेक्षा नहीं)

द्रव्य की अपेक्षा—पुलिग से ही सिद्धि होती है अथवा निर्ग्रंथ लिग से सिद्धि होती है।

भूतपूर्व प्रज्ञापन नय अपेक्षा—सग्रन्थ लिंग से सिद्धि होती है। यथा—कोई साभरण / आभूषण सहित मोक्ष में जाते है और कोई निराभरण। पाडवो के समान उपसर्ग होने पर आभरण सहित कहलाते हैं। कोई आभरण वाले मोक्ष मे नही जाते है, परन्तु उपसर्ग के समय कोई आभूषण पहना दे तो भी

केवलज्ञान उत्पन्न कर उसी समय मुक्ति को प्राप्त हो जाते है वे साभरण सिद्ध कहलाते हैं और इतर सिद्ध निराभरण सिद्ध कहलाते हैं ।

प्रश्न १५–तीर्थ अपेक्षा किस तीर्थ से सिद्धि होती है ?

उत्तर–तीर्थ सिद्धि दो प्रकार की है—(१) तीर्थंकर सिद्ध—जो तीर्थंकर होकर सिद्ध हुए है वे तीर्थंकर सिद्ध हैं, (२) इतरसिद्ध—जो तीर्थंकर न होकर सामान्यकेवली होकर सिद्ध हुए है वे इतरसिद्ध है । इतरसिद्ध पुन दो प्रकार के होते हैं—(१) कितने ही जीव तीर्थंकर के रहते हुए सिद्ध होते है, (२) कितने ही जीव तीर्थंकर के अभाव मे सिद्ध होते है । (अर्थात् गणधर-अनगार लक्षण अतीर्थ मे सिद्ध होते है)

प्रश्न १६–चारित्र अपेक्षा किस चारित्र से सिद्धि होती है ?

उत्तर–(१) प्रत्युत्पन्न नय की दृष्टि से न तो चारित्र से सिद्धि होती है और न अचारित्र से सिद्धि होती है । अर्थात् वर्तमान प्रत्युत्पन्न नय की दृष्टि से चारित्र-अचारित्र के विकल्प रहित ''निर्विकल्प भाव'' से मुक्ति होती है ।

(२) ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा यथाख्यातचारित्र से मुक्ति होती है ।

(३) व्यवहार नय की अपेक्षा पाँचो चारित्र (सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यातचारित्र) से मुक्ति होती है अथवा किसी परिहारविशुद्धि रहित चार चारित्र से मुक्ति होती है ।

प्रश्न १७–प्रत्येक और बोधितबुद्ध किस प्रकार सिद्ध होते है ?

उत्तर–स्वशक्ति और परोपदेश निमित्त ज्ञान के भेद से प्रत्येक बुद्ध और बोधित मे दो विकल्प होते हैं ।

कुछ प्रत्येक बुद्ध सिद्ध होते है—जो स्वयमेवही पूर्वोपार्जित सस्कार के कारण ससार से विरक्त हो जाते है । और ज्ञानातिशय प्राप्त कर मुक्ति को प्राप्त करते है ।

कुछ बोधित बुद्ध होते है—जो परोपदेशपूर्वक ज्ञान प्राप्त करते है, गुरुजनो के द्वारा सम्बोधित करने पर ससार से विरक्त हो मुक्ति प्राप्त करते हैं ।

प्रश्न १८–ज्ञान की अपेक्षा किस ज्ञान से जीव सिद्ध होते है ?

उत्तर–ज्ञान की अपेक्षा कोई एक ज्ञान से, कोई दो ज्ञान, कोई तीन ज्ञान स और कोई चार ज्ञान से मुक्त अवस्था प्राप्त करते हैं । वर्तमानग्राही ऋजुसूत्र नय अपेक्षा एक केवलज्ञान से ही सिद्धि होती है । अतीतग्राही व्यवहार अपेक्षा मति, श्रुत इन दो ज्ञानो से मुक्ति होती है अथवा मति-श्रुत-अवधि तीन और मति-श्रुत-अवधि-मन:पर्यय चार ज्ञानो से मुक्ति होती है ।

प्रश्न १९–अवगाहना किसे कहते हैं ?

उत्तर–आत्मप्रदेशो मे व्याप्त करके रहना इसका नाम अवगाहना है ।

प्रश्न २०–अवगाहना कितने प्रकार की होती है ?

उत्तर–अवगाहना उत्तम, मध्यम, जघन्य के भेद से तीन प्रकार की होती है ।

प्रश्न २१–उत्तम, मध्यम, जघन्य अवगाहना का प्रमाण कितना है ?

उत्तर–उत्कृष्ट अवगाहना पाँच सौ पच्चीस धनुष है, जघन्य अवगाहना साढ़े तीन अरत्नि प्रमाण है तथा मध्यम अवगाहना के अनेक विकल्प होते है ।

प्रश्न २२–अरत्नि किसे कहते हैं ?

उत्तर–मुष्ठिबन्द हाथ को अरत्नि कहते ह ।

प्रश्न २३–कौनसी अवगाहना से जीव सिद्ध होता है ?

उत्तर–उत्कृष्ट पाँचसौ पच्चीस धनुष की अवगाहना वाले जीव सिद्ध होते हैं । जघन्य साढ़े तीन अरत्नि प्रमाण अवगाहना वाले जीव सिद्ध होते है । मध्यम अनेक अवगाहना वाले जीव सिद्ध होते है ।

प्रश्न २४–आठ वर्ष मे मुक्त होने वाले जीव की अवगाहना कितनी होगी ?

उत्तर–जो जीव सोलह वर्ष मे सात हाथ शरीर वाला होता है वह गर्भ से आठवे वर्ष मे साढ़े तीन हाथ शरीर वाला होता है और उस जीव की आठ वर्ष की अवस्था मे मुक्ति होने से जघन्य अवगाहना साढ़े तीन हाथ रहती है ।

प्रश्न २५–कितनी अवगाहना वाला जीव मुक्त नही होता ?

उत्तर–जो जीव १६ वर्ष की आयु मे साढ़े तीन हाथ शरीर वाला होता है उसकी मुक्ति नही होती है ।

प्रश्न २६–अन्तर किसे कहते हैं ?

उत्तर–सिद्धो के विरहकाल को अन्तर कहते है । अर्थात् एक सिद्ध से दूसरे सिद्ध होने के मध्य का काल वा जितने समय तक कोई भी जीव मोक्ष नहीं जाय उसको अन्तर कहते हैं ।

प्रश्न २७–सिद्ध होने का अन्तर कितना है ?

उत्तर–सिद्ध होने का जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह मास है । उसके बाद कोई-न कोई जीव अवश्य ही मोक्ष में जायेगा ।

प्रश्न २८–जीव सिद्ध निरन्तर हो तो कितने काल तक हो सकते है ?

उत्तर–जीव जघन्य से दो समय और उत्कृष्ट से आठ समय तक निरन्तर सिद्ध होते रहते है ।

प्रश्न २९–सख्या किसे कहते है ?

उत्तर–जितने जीव एक साथ मोक्ष मे जाते हैं, उसे सख्या कहते हैं ।

प्रश्न ३०–सख्या अपेक्षा एक समय मे उत्कृष्ट और जघन्य से कितने जीव मोक्ष जाते है ?

उत्तर–एक समय मे जघन्य से एक जीव सिद्ध होता है और उत्कृष्ट से १०८ जीव एक समय मे सिद्ध होते है ।

प्रश्न ३१–अल्पबहुत्व किसे कहते है ?

उत्तर–क्षेत्र, काल, लिग आदि की परस्पर सख्या के तारतम्य को अल्पबहुत्व कहते है ।

प्रश्न ३२–क्षेत्र सिद्धो मे अल्पबहुत्व बताइये ?

उत्तर–वर्तमान नय अपेक्षा सिद्धिक्षेत्र मे सिद्ध होने वाले जीवो का अल्पबहुत्व नही है ।

भूतपूर्व नय अपेक्षा क्षेत्र सिद्ध जीव दो प्रकार के हैं—(१) जन्म सिद्ध और सहरण सिद्ध । इनमे सहरण सिद्ध सबसे अल्प है । इनमे जन्मसिद्ध जीव सख्यातगुणे है ।

क्षेत्रो का विभाग इस प्रकार है—कर्मभूमि, अकर्मभूमि, समुद्र, द्वीप, ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और तिर्यग्लोक ।

इनमे से ऊर्ध्वलोक सिद्ध सबसे स्तोक है । इनसे अधोलोक सिद्ध सख्यातगुणे है । इनसे तिर्यग्लोक सिद्ध सख्यातगुणे हैं । समुद्रसिद्ध सबसे स्तोक हैं । इनसे द्वीपसिद्ध सख्यातगुणे है । (यह सामान्य कथन है)

विशेष रूप से—लवणसमुद्र सिद्ध सबसे स्तोक हैं । इनसे कालोदधि सिद्ध सख्यातगुणे हैं । इनसे जम्बूद्वीप सिद्ध सख्यातगुणे हैं । इनसे धातकीखड सिद्ध सख्यतातगुणे है । इनसे पुष्करार्द्धद्वीप सिद्ध संख्यातगुणे है ।

प्रश्न ३३–काल की अपेक्षा अल्पबहुत्व बताइये ?

उत्तर–काल विभाग तीन प्रकार का है—उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी और अनुत्सर्पिणी-अनवसर्पिणी ।

उत्सर्पिणीकाल मे सिद्ध हुए जीव सबसे कम हैं ।

अवसर्पिणीसिद्ध सिद्ध उससे विशेष अधिक हैं ।

अनुत्सर्पिणी-अनवसर्पिणी (विदेहक्षेत्रो से सिद्ध हुए जीव) सख्यात गुणे अधिक है। और प्रत्युत्पन्न नय की अपेक्षा एक समय मे सिद्ध होते है अत अल्पबहुत्व नही है।

प्रश्न ३४–अन्तर अपेक्षा अल्पबहुत्व मे निरन्तर की अपेक्षा अल्पबहुत्व बताइये ?

उत्तर–आठ समय तक लगातार सिद्ध होने वाले जीव सबसे कम हैं। सात समय तक लगातार सिद्ध होने वाले उससे असख्यातगुणे है। छह समय से कम मे जाने वाले सख्यात गुणे हैं। इस प्रकार दो समय तक सख्यात-सख्यातगुणे है।

प्रश्न ३५–सान्तर अपेक्षा अल्पबहुत्व बताइये ?

उत्तर–छह माह के अन्तर से सिद्ध होने वाले सबसे कम है।

एक समयान्तर से सिद्ध होने वाले जीव उससे सख्यातगुणे है।

यव मध्यान्तरसिद्ध सख्यात गुणे है

अधोयवमध्यान्तरसिद्ध सख्येय गुणे है और उपरियवमध्यान्तर सिद्ध विशेषाधिक है।

प्रश्न ३६–गति अपेक्षा सिद्ध होने वालो का अल्पबहुत्व बताइये ?

उत्तर–(१) वर्तमानग्राही नय अपेक्षा सिद्धगति मे ही सिद्धि होती है, अत इसमे अल्पबहुत्व नही है।

(२) भूतप्रज्ञापन नय अपेक्षा अनन्तरगति मनुष्यगति मे ही सिद्धि होती है, अत इसमे भी अल्पबहुत्व क्योंकि एक मे अल्पबहुत्व नही होता है।

(३) एकान्तरगति मे तो अल्पबहुत्व है—सबसे स्तोक तिर्यंचगति से मनुष्य होकर सिद्ध होने वाले है। उससे सख्यातगुणे मनुष्यगति से मनुष्य होकर सिद्ध होने वाले है।

प्रश्न ३७–वेद की अपेक्षा मुक्त होने वाले जीवो का अल्पबहुत्व बताइये ?

उत्तर–वर्तमानग्राही नयापेक्षा अवेद अवस्था मे ही मुक्ति होती है, अत इसमे अल्पबहुत्व नही है।

(१) भूतपूर्वनय की अपेक्षा सबसे कम नपुसकवेद सिद्ध है। उनसे सख्यातगुणे स्त्रीवेद सिद्ध हैं और उनसे भी सख्यातगुणे पुरुषवेद सिद्ध है।

(यह वर्णन श्रेणी मांडने वाले भाववेद की अपेक्षा से है, द्रव्य से तो पुरुषवेद से ही सिद्धि होती है)

प्रश्न ३८–तीर्थ अपेक्षा सिद्ध जीवो का अल्पबहुत्व बताइये ?

उत्तर–तीर्थंकर सिद्ध स्तोक है और इतर सिद्ध उससे सख्येयगुणे है ।

प्रश्न ३९–चारित्रानुयोग से सिद्ध जीवो का अल्पबहुत्व बताइये ?

उत्तर–वर्तमानग्राही नय की अपेक्षा निर्विकल्प चारित्र से सिद्ध होते है, अत इनमे अल्पबहुत्व नही है । भूतपूर्व नय की अपेक्षा अनन्तर चारित्र की दृष्टि से सभी यथाख्यातचारित्र से सिद्ध हो जाते है अत इसमे अल्पबहुत्व नही है । व्यवधान की दृष्टि से पञ्च चारित्र से सिद्ध बहुत कम होते है और चार चारित्र से सिद्ध सख्येय गुणे है ।

प्रश्न ४०–प्रत्येक बुद्ध और बोधितबुद्ध सिद्धो मे अल्पबहुत्व बताइये ?

उत्तर–प्रत्येक बुद्ध कम है और बोधितबुद्ध सख्येयगुणे है ।

प्रश्न ४१–ज्ञानानुयोग से अल्पबहुत्व बताइये ?

उत्तर–वर्तमानग्राही नय की दृष्टि से केवलज्ञानी ही सिद्ध होते है, अत इसमे अल्पबहुत्व नही है । भूतग्राही नय अपेक्षा द्विज्ञानसिद्ध सबसे कम है । चार ज्ञानसिद्ध उससे सख्यातगुणे है, त्रिज्ञानसिद्ध उसमे भी सख्यातगुणे है।

इसी प्रकार विशेषता से मति-श्रुत-मन पर्ययज्ञान सिद्ध सबसे स्तोक है, मतिश्रुतज्ञानसिद्ध इनसे सख्येयगुणे है, मति-श्रुत-अवधि-मन पर्ययज्ञानसिद्ध सख्यातगुणे है और इनसे सख्यातगुणे मतिश्रुतअवधिज्ञान सिद्ध है ।

प्रश्न ४२–अवगाहना अनुयोग से अल्पबहुत्व बताइये ?

उत्तर–जघन्य अवगाहना सिद्ध सबसे कम है, उत्कृष्ट अवगाहना सिद्ध सख्यातगुणे है । यवमध्यसिद्ध (मध्यम अवगाहनासिद्ध) इससे सख्यातगुणे है, अधोयव सिद्ध (जघन्य अवगाहना के समीप अर्थात्, चार, पॉच हाथ आदि अवगाहना से सिद्ध) सख्यात गुणे हैं और उपरियव सिद्ध (४००, ४५०, ४७५ धनुष अवगाहना सिद्ध) अधोयव सिद्ध से विशेष अधिक है ।

प्रश्न ४३–सख्या अनुयोग से अल्पबहुत्व बताइये ?

उत्तर–एक सौ आठ, एक सौ आठ एक साथ होने वाले सिद्ध सबसे स्तोक हैं । १०८ से लेकर पचास तक एक साथ सिद्ध होने वाले १०८ होने वाले सिद्धो से अनन्तगुणे हैं । ४९ से २५ तक सिद्ध होने वाले असख्यातगुणे है और चौबीस से लेकर एक-एक तक एक साथ सिद्ध होने वाले सख्यात गुणे है ।

इति श्री तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे दसमोऽध्याय:

●

प्रश्न १–आचार्यश्री ने अपनी लघुता, विनम्रता को किस प्रकार दिखाया है ?

उत्तर- अक्षरमात्रपदस्वरहीनं व्यञ्जनसन्धि विवर्जित रेफम्
साधुभिरत्र मम क्षमितव्यं को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे ॥ १ ॥

(दोधकवृत्त)

आचार्यश्री इस छन्द के माध्यम से अपनी लघुता प्रदर्शित करते हुए लिखते है कि—इस शास्त्र मे यदि कही अक्षर, मात्रा, पद या स्वर रहित हो, तथा व्यञ्जन सन्धि व रेफ से रहित हो तो सज्जन पुरुष मुझे क्षमा करे। क्योकि शास्त्ररूपी समुद्र मे कौन पुरुष मोह को प्राप्त नही होता अर्थात् भूल नही करता।

प्रश्न २–तत्त्वार्थसूत्र के दस अध्यायो के प्रतिदिन पाठ करने का क्या फल है ?

उत्तर- दशाध्याये परिच्छिन्ने तत्त्वार्थे पठिते सति।
फलं स्यादुपवासस्य भाषितं मुनिपुङ्गवैः॥

दस अध्याय मे विभक्त इस तत्त्वार्थ (मोक्षशास्त्र) सूत्र पाठ करने से तथा चिन्तन से एक उपवास का फल होता है, ऐसा श्रेष्ठ मुनियो ने कहा है।

अर्थात् जो भव्यात्मा तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थ का पाठ करते हैं, उसका चिन्तन करते है, उन्हे एक उपवास का फल प्राप्त होता है।

प्रश्न ३–तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थ के कर्ता कौन थे गृहस्थ या सन्यासी ?

उत्तर- तत्त्वार्थसूत्र कर्तारं गृद्धपिच्छोपलक्षितम्।
वन्दे गणीन्द्र-संजातमुमास्वामिमुनीश्वरम्॥

तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थराज के कर्त्ता, गृद्ध्रपिच्छ नाम से प्रसिद्ध, जो आचार्य उमास्वामि हो गये हैं, मैं उनकी वन्दना करता हूँ।

अर्थात् तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थ के कर्ता उमास्वामि आचार्य थे। उनका दूसरा नाम गृद्ध्रपिच्छाचार्य था।

प्रश्न ४–तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थ मे कितने अध्याय है तथा उनमे वर्णित विषय क्या हैं ?

उत्तर–तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थ मे दस अध्याय है, जिनमे सप्ततत्त्वो का सुन्दर विस्तृत विवेचन है ।

प्रश्न ५–दस अध्यायो मे पृथक्-पृथक् अध्यायो मे किस-किस तत्त्व का वर्णन है ?

उत्तर– **पढम चउक्के पढमं पंचमे जाणि पुग्गलं तच्च ।**
छह सत्तमे हि आस्सव अट्ठमे बन्ध णायव्वा ॥
णवमे संवर णिज्जर दहमे मोक्खं वियाणे हि ।
इह सत्त तच्च भणियं दह सुक्षेण मुणिं देहि ॥

तत्त्वार्थसूत्र के दस अध्यायो मे प्रथम अध्याय से चतुर्थ अध्याय तक जीव तत्त्व का वर्णन है । पॉचवे अध्याय मे अजीव तत्त्व का वर्णन है । छठवे और सप्तम अध्याय मे आस्रव तत्त्व का वर्णन है । अष्टम अध्याय मे बन्ध तत्त्व का वर्णन है । नवम अध्याय मे सवर-निर्जरा तत्त्व का वर्णन है और दसम अध्याय मे मोक्ष तत्त्व का वर्णन है निश्चय से ऐसा जानो। इस प्रकार दस अध्यायो मे सात तत्त्वो का वर्णन है।

प्रश्न ६–मुक्ति प्राप्ति के लिये भव्यात्मा क्या करे ?

उत्तर– **जं सक्कइ तं कीरइ जं च ण सक्कइ तहेव सद्दहणं ।**
सद्दहमाणो जीवो, पावइ अजरामर ठाणं ॥

भव्यात्माओ को जितना शक्य हो करना चाहिये, जिसे करना शक्य नही है उसका श्रद्धान करना चाहिये, क्योंकि श्रद्धान करने वाला जीव अजर-अमर स्थान को प्राप्त होता है ।

प्रश्न ७–चारो गतियो के दु खो से मुक्त होने के लिये क्या करे ?

उत्तर– **तवयरणं वयधरणं, संजमसरणं च जीव दयाकरणं ।**
अन्ते समाहिमरणं, चउविह दुक्खं णिवारेई ॥ -भ आ

हे भव्यात्माओ ! चतुर्गति के दुखो से मुक्त होने के लिए तप करो, व्रत धारण करो, सयम करो और जीवो पर दया करो तथा अन्त मे समाधिपूर्वक मरण करो ।

इति तत्त्वार्थसूत्रापरनाम-तत्त्वार्थाधिगम-मोक्षशास्त्रं समाप्तम् ।

तत्त्वार्थसूत्र

मोक्षमार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्मभूभृताम् ।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां, वन्दे तद्गुणलब्धये ॥

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥१॥ तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ॥२॥ तन्निसर्गादधिगमाद्वा ॥३॥ जीवाजीवास्रवबन्ध-संवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम् ॥४॥ नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः ॥५॥ प्रमाणनयैरधिगमः ॥६॥ निर्देशस्वामित्वसाधनाऽधिकरणस्थिति-विधानतः ॥७॥ सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालान्तरभावाल्पबहुत्वैश्च ॥८॥ मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानम् ॥९॥ तत्प्रमाणे॥ १०॥ आद्ये परोक्षम् ॥११॥ प्रत्यक्षमन्यत् ॥१२॥ मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताऽभि-निबोध इत्यनर्थान्तरम् ॥१३॥ तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् ॥१४॥ अवग्रहेहाऽवायधारणाः ॥१५॥ बहुबहुविधक्षिप्राऽनिःसृताऽनुक्तध्रुवाणां सेतराणाम् ॥१६॥ अर्थस्य ॥१७॥ व्यञ्जनस्यावग्रहः ॥१८॥ न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ॥१९॥ श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदम् ॥२०॥ भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम् ॥२१॥ क्षयोपशमनिमित्तः षड्-विकल्पः शेषाणाम् ॥२२॥ ऋजुविपुलमती मनःपर्ययः ॥२३॥ विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ॥२४॥ विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषये-भ्योऽवधिमनःपर्यययोः ॥२५॥ मतिश्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु ॥२६॥ रूपिष्ववधेः ॥२७॥ तदनन्तभागे मनःपर्ययस्य ॥२८॥ सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य ॥२९॥ एकादीनि भाज्यानि युगपदेक-स्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥३०॥ मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च॥३१॥ सदसतोर-विशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥३२॥ नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्द-समभिरूढैवम्भूता नयाः ॥३३॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे प्रथमोऽध्याय ॥१॥

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिक-पारिणामिकौ च ॥१॥ द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम् ॥२॥ सम्यक्त्वचारित्रे ॥३॥ ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च ॥४॥ ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपञ्चभेदाः सम्यक्त्वचारित्रसंयमा-सयमाश्च ॥५॥ गतिकषायलिङ्गमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्धलेश्या-श्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड्भेदाः ॥६॥ जीवभव्याभव्यत्वानि च ॥७॥ उपयोगो लक्षणम् ॥८॥ स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥९॥ संसारिणो मुक्ताश्च ॥१०॥ समनस्कामनस्काः ॥११॥ संसारिणस्त्रसस्थावराः ॥१२॥ पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ॥१३॥ द्वीन्द्रियादय-स्त्रसाः ॥१४॥ पञ्चेन्द्रियाणि ॥१५॥ द्विविधानि ॥१६॥ निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् ॥१७॥ लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ॥१८॥ स्पर्शनरसनघ्राण-चक्षुःश्रोत्राणि ॥१९॥ स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दास्तदर्थाः ॥२०॥ श्रुत-मनिन्द्रियस्य ॥२१॥ वनस्पत्यन्तानामेकम् ॥२२॥ कृमिपिपीलिका-भ्रमरमनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि ॥२३॥ संज्ञिनः समनस्काः ॥२४॥ विग्रहगतौ कर्मयाग. ॥२५॥ अनुश्रेणि गतिः ॥२६॥ अविग्रहा जीवस्य ॥२७॥ विग्रहवती च संसारिणः प्राक्चतुर्भ्यः ॥२८॥ एकसमयाऽ-विग्रहा ॥२९॥ ए[illegible] द्वौ त्रीन्वाऽनाहारकः ॥३०॥ सम्मूर्च्छनगर्भोपपादा जन्म ॥३१॥ स[illegible]शीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ॥३२॥ जरायुजाण्डज[illegible]नां गर्भः ॥३३॥ देवनारकाणामुपपादः॥३४॥ शेषाणा सम्मूर्च्छनम् ॥३५॥ औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानि शरीराणि ॥३६॥ पर पर सूक्ष्मम्॥३७॥ प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक् तैजसात् ॥३८॥ अनन्तगुणे परे ॥३९॥ अप्रतीघाते ॥४०॥ अनादि-सम्बन्धे च ॥४१॥ सर्वस्य ॥४२॥ तदादीनि भाज्यानि युगपदेक-स्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥४३॥ निरुपभोगमन्त्यम् ॥४४॥ गर्भसम्मूर्च्छनज-माद्यम् ॥४५॥ औपपादिकं वैक्रियिकम् ॥४६॥ लब्धिप्रत्ययं च ॥४७॥ तैजसमपि ॥४८॥ शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव ॥४९॥ नारकसम्मूर्च्छिनो नपुंसकानि ॥५०॥ न देवाः ॥५१॥ शेषा-

स्त्रिवेदाः ॥५२॥ औपपादिकचरमोत्तमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ॥५३॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे द्वितीयोऽध्याय ॥२॥

रत्नशर्कराबालुकापङ्कधूमतमोमहातमःप्रभा भूमयो घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठाः सप्ताधोऽधः ॥१॥ तासु त्रिंशत्पञ्चविंशतिपञ्चदशदशत्रिपञ्चोनैकनरकशतसहस्राणि पञ्च चैव यथाक्रमम् ॥२॥ नारका नित्याशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रियाः ॥३॥ परस्परोदीरितदुःखाः ॥४॥ संक्लिष्टासुरोदीरितदुःखाश्च प्राक्चतुर्थ्याः ॥५॥ तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः ॥६॥ जम्बूद्वीपलवणोदादयः शुभनामानो द्वीपसमुद्राः ॥७॥ द्विर्द्विर्विषकम्भाः पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो वलयाकृतयः ॥८॥ तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥९॥ भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ॥१०॥ तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरुक्मिशिखरिणो वर्षधरपर्वताः ॥११॥ हेमार्जुनतपनीयवैडूर्यरजतहेममयाः॥१२॥ मणिविचित्रपार्श्वा उपरि मूले च तुल्यविस्ताराः ॥१३॥ पद्ममहापद्मतिगिञ्छकेसरिमहापुण्डरीकपुण्डरीका ह्रदास्तेषामुपरि ॥१४॥ प्रथमो योजनसहस्रायामस्तदर्द्धविष्कम्भो ह्रदः ॥१५॥ दशयोजनावगाहः ॥१६॥ तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ॥१७॥ तद्द्विगुणद्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च ॥१८॥ तन्निवासिन्यो देव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिकपरिषत्काः ॥१९॥ गङ्गासिन्धुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकान्तासीतासीतोदानारीनरकान्तासुवर्णरूप्यकूलारक्तारक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः ॥२०॥ द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः ॥२१॥ शेषास्त्वपरगाः ॥२२॥ चतुर्दशनदीसहस्रपरिवृता गङ्गासिन्ध्वादयो

नद्यः ॥२३॥ भरतः षड्विंशतिपञ्चयोजनशतविस्तारः षट्चैकोनविंशतिभागा योजनस्य ॥२४॥ तद्द्विगुणद्विगुणविस्तारा वर्षधरवर्षा विदेहान्ताः ॥२५॥ उत्तरा दक्षिणतुल्याः ॥२६॥ भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम् ॥२७॥ ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः ॥२८॥ एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हैमवतकहारिवर्षकदैवकुरवकाः ॥२९॥ तथोत्तराः ॥३०॥ विदेहेषु संख्येयकालाः ॥३१॥ भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवतिशतभागः ॥३२॥ द्विर्धातकीखण्डे ॥३३॥ पुष्करार्द्धे च ॥३४॥ प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः ॥३५॥ आर्या म्लेच्छाश्च ॥३६॥ भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः ॥३७॥ नृस्थिती परावरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते ॥३८॥ तिर्यग्योनिजाना च ॥३९॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे तृतीयोऽध्याय ॥३॥

देवाश्चतुर्णिकायाः ॥१॥ आदितस्त्रिषु पीतान्तलेश्याः ॥२॥ दशाष्टपञ्चद्वादशविकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यन्ताः ॥३॥ इन्द्रसामानिकत्रायस्त्रिंशपारिषदात्मरक्षलोकपालानीकप्रकीर्णकाभियोग्यकिल्विषिकाश्चैकशः ॥४॥ त्रायस्त्रिंशलोकपालवर्ज्या व्यन्तरज्योतिष्काः ॥५॥ पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ॥६॥ कायप्रवीचारा आ ऐशानात् ॥७॥ शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचाराः ॥८॥ परेऽप्रवीचाराः ॥९॥ भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः ॥१०॥ व्यन्तराः किन्नरकिम्पुरुषमहोरगगन्धर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः ॥११॥ ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ॥१२॥ मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥१३॥ तत्कृतः कालविभागः ॥१४॥ बहिरवस्थिताः ॥१५॥ वैमानिकाः ॥१६॥ कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ॥१७॥ उपर्युपरि ॥१८॥ सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युत-

योर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजयवैजन्तजयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥१९॥ स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धीन्द्रियावधिविषयतोऽधिकाः ॥२०॥ गतिशरीरपरिग्रहाऽभिमानतो हीनाः ॥२१॥ पीतपद्मशुक्ल-लेश्या द्वित्रिशेषेषु ॥२२॥ प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः ॥२३॥ ब्रह्मलोकालया लौकान्तिकाः ॥२४॥ सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाधा-रिष्टाश्च ॥२५॥ विजयादिषु द्विचरमाः ॥२६॥ औपपादिकमनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ॥२७॥ स्थितिरसुरनागसुपर्णद्वीपशेषाणां सागरोप-मत्रिपल्योपमार्द्धहीनमिताः॥२८॥ सौधर्मैशानयोः सागरोपमेऽधिके ॥२९॥ सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः सप्त ॥३०॥ त्रिसप्तनवैकादशत्रयो-दशपञ्चदशभिरधिकानि तु ॥३१॥ आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च॥३२॥ अपरा पल्योपममधिकम् ॥३३॥ परतः परतः पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा ॥३४॥ नारकाणां च द्वितीया-दिषु ॥३५॥ दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम् ॥३६॥ भवनेषु च ॥३७॥ व्यन्तराणां च ॥३८॥ परा पल्योपममधिकम् ॥३९॥ ज्योतिष्काणां च ॥४०॥ तदष्टभागोऽपरा ॥४१॥ लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ॥४२॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे चतुर्थोऽध्याय ॥४॥

अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ॥१। द्रव्याणि ॥२॥ जीवाश्च ॥३॥ नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥४॥ रूपिणः पुद्गलाः ॥५॥ आ आकाशादेकद्रव्याणि ॥६॥ निष्क्रियाणि च ॥७॥ असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्म्मैकजीवानाम् ॥८॥ आकाशस्यानन्ताः ॥९॥ संख्येयासंख्येयाश्च पुद्गलानाम् ॥१०॥ नाणोः ॥११॥ लोकाकाशेऽवगाहः ॥१२॥ धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ॥१३॥ एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम् ॥१४॥ असंख्येयभागादिषु जीवानाम् ॥१५॥ प्रदेशसंहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत् ॥१६॥ गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः ॥१७॥ आकाश-स्यावगाहः ॥१८॥ शरीरवाङ्मनःप्राणापानाः पुद्गलानाम् ॥१९॥

सुखदुःखजीवितमरणोपग्रहाश्च ॥२०॥ परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥२१॥ वर्तनापरिणामक्रियापरत्वापरत्वे च कालस्य ॥२२॥ स्पर्श-रसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः ॥२३॥ शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थान-भेदतमश्छायाऽऽतपोद्योतवन्तश्च॥२४॥ अणवः स्कन्धाश्च ॥२५॥ भेदसङ्घातेभ्यः उत्पद्यन्ते ॥२६॥ भेदादणुः ॥२७॥ भेदसङ्घाताभ्यां चाक्षुषः ॥२८॥ सद् द्रव्यलक्षणम् ॥२९॥ उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ॥३०॥ तद्भावाव्ययं नित्यम् ॥३१॥ अर्पितानर्पितसिद्धेः ॥३२॥ स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धः ॥३३॥ न जघन्यगुणानाम्॥३४॥ गुणसाम्ये सदृशानाम् ॥३५॥ द्व्यधिकादिगुणानां तु ॥३६॥ बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च ॥३७॥ गुणपर्ययवद् द्रव्यम् ॥३८॥ कालश्च ॥३९॥ सोऽनन्तसमयः ॥४०॥ द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणा ॥४१॥ तद्भाव. परिणामः ॥४२॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे पञ्चमोऽध्याय ॥५॥

कायवाङ्मन कर्म योग ॥१॥ स आस्रवः ॥२॥ शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य ॥३॥ सकषायाकषाययोः साम्परायिकेर्यापथयोः ॥४॥ इन्द्रिय-कषायाव्रतक्रियाः पञ्चचतुःपञ्चपञ्चविंशतिसंख्याः पूर्वस्य भेदाः ॥५॥ तीव्रमन्दज्ञाताज्ञातभावाधिकरणवीर्यविशेषेभ्यस्तद्विशेषः ॥६॥ अधि-करणं जीवाजीवाः ॥७॥ आद्यं संरम्भसमारम्भारम्भयोगकृतकारिता-नुमतकषायविशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः ॥८॥ निर्वर्तनानिक्षेप-संयोगनिसर्गा द्विचतुर्द्वित्रिभेदाः परम् ॥९॥ तत्प्रदोषनिह्नवमात्स-र्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयोः ॥१०॥ दुःखशोकतापा-क्रन्दनवधपरिदेवनान्यात्मपरोभयस्थानान्यसद्वेद्यस्य ॥११॥ भूतव्रत्य-नुकम्पादानसरागसंयमादियोगः क्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य ॥१२॥ केवलिश्रुतसंघधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य ॥१३॥ कषायोदयात्तीव्र-परिणामश्चारित्रमोहस्य ॥१४॥ बह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः

॥१५॥ माया तैर्यग्योनस्य ॥१६॥ अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्य ॥१७॥ स्वभावमार्दवं च ॥१८॥ निःशीलव्रतत्वं च सर्वेषाम् ॥१९॥ सरागसंयमसंयमासंयमाकामनिर्जराबालतपांसि दैवस्य ॥२०॥ सम्यक्त्वं च ॥२१॥ योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः ॥२२॥ तद्विपरीतं शुभस्य ॥२३॥ दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नताशीलव्रतेष्वनतीचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी साधुसमाधिवैयावृत्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रभावना प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य ॥२४॥ परात्मनिन्दाप्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य ॥२५॥ तद्विपर्ययौ नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य ॥२६॥ विघ्नकरणमन्तरायस्य ॥२७॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे षष्ठोऽध्याय ॥६॥

हिंसाऽनृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ॥१॥ देशसर्वतोऽणुमहती ॥२॥ तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पञ्च पञ्च ॥३॥ वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पञ्च ॥४॥ क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्युवीचिभाषण च पञ्च ॥५॥ शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्षशुद्धिसधर्माविसंवादाः पञ्च ॥६॥ स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहराङ्गनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीरसंस्कारत्यागाः पञ्च ॥७॥ मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पञ्च ॥८॥ हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनम् ॥९॥ दुःखमेव वा ।।१०।। मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यानि च सत्त्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनयेषु ॥११॥ जगत्कायस्वभावौ वा संवेगवैराग्यार्थम् ॥१२॥ प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा ॥१३॥ असदभिधानमनृतम् ॥१४॥ अदत्तादानं स्तेयम् ॥१५॥ मैथुनमब्रह्म ॥१६॥ मूर्च्छा परिग्रहः ॥१७॥ निःशल्यो व्रती ॥१८॥ अगार्यनगारश्च ॥१९॥ अणुव्रतोऽगारी

॥२०॥ दिग्देशानर्थदण्डविरतिसामायिकप्रोषधोपवासोपभोगपरिभोग-परिमाणातिथिसंविभागव्रतसम्पन्नश्च ॥२१॥ मारणान्तिकीं सल्लेखना जोषिता ॥२२॥ शङ्काकांक्षाविचिकित्साऽन्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवाः सम्यग्-दृष्टेरतीचाराः ॥२३॥ व्रतशीलेषु पञ्च पञ्च यथाक्रमम् ॥२४॥ बन्धवधच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः ॥२५॥ मिथ्योपदेश-रहोभ्याख्यानकूटलेखक्रियान्यासापहारसाकारमंत्रभेदाः ॥२६॥ स्तेन-प्रयोगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रमहीनाधिकमानोन्मानप्रतिरूपकव्य वहारा ॥२७॥ परविवाहकरणेत्वरिकापरिगृहीताऽपरिगृहीतागमनान-ङ्गक्रीडाकामतीव्राभिनिवेशाः ॥२८॥ क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्य-दासीदासकुप्यप्रमाणातिक्रमाः ॥२९॥ ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धि-स्मृत्यन्तराधानानि ॥३०॥ आनयनप्रेष्यप्रयोगशब्दरूपानुपातपुद्गल-क्षेपाः ॥३१॥ कन्दर्पकौत्कुच्यमौखर्यासमीक्ष्याधिकरणोपभोग-परिभोगानर्थक्यानि ॥३२॥ योगदुष्प्रणिधानानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥३३॥ अप्रत्यवेक्षिताऽप्रमार्जितोत्सर्गादानसंस्तरोपक्रमणानादरस्मृत्य-नुपस्थानानि ॥३४॥ सचित्तसंबन्धसम्मिश्राभिषवदुःपक्वाहाराः ॥३५॥ सचित्तनिक्षेपापिधानपरव्यपदेशमात्सर्यकालातिक्रमाः ॥३६॥ जीवित-मरणाशंसामित्रानुरागसुखानुबन्धनिदानानि ॥३७॥ अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम् ॥३८॥ विधिद्रव्यदातृपात्रविशेषात्तद्विशेषः ॥३९॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे सप्तमोऽध्याय ॥७॥

मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतवः ॥१॥ सकषाय-त्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान्पुद्गलानादत्ते स बन्धः ॥२॥ प्रकृति-स्थित्यनुभवप्रदेशास्तद्विधयः ॥३॥ आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीय-मोहनीयायुर्नामगोत्रान्तरायाः ॥४॥ पञ्चनवद्व्यष्टाविंशतिचतुर्द्विचत्वा-रिंशद्द्विपञ्चभेदा यथाक्रमम् ॥५॥ मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानाम् ॥६॥ चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रानिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाप्रचला-

स्त्यानगृद्धयश्च ॥७॥ सदसद्वेद्ये ॥८॥ दर्शनचारित्रमोहनीयाकषाय-कषायवेदनीयाख्यास्त्रिद्विनवषोडशभेदाः सम्यक्त्वमिथ्यात्वतदुभया-न्यकषायकषायौ हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुन्नपुंसकवेदाः अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनविकल्पाश्चैकशः क्रोध-मानमायालोभाः ॥९॥ नारकतैर्यग्योनमानुषदैवानि ॥१०॥ गतिजाति-शरीराङ्गोपाङ्गनिर्माणबन्धनसंघातसंस्थानसंहननस्पर्शरसगंधवर्णानु पूर्व्यगुरुलघूपघातपरघातातपोद्योतोच्छ्वासविहायोगतयः प्रत्येक-शरीरत्रससुभगसुस्वरशुभसूक्ष्मपर्याप्तिस्थिरादेययशःकीर्तिसेतराणि तीर्थकरत्वं च ॥११॥ उच्चैर्नीचैश्च ॥१२॥ दानलाभभोगोपभोग-वीर्याणाम् ॥१३॥ आदितस्तिसृणामन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपम-कोटीकोट्यः परा स्थितिः ॥१४॥ सप्ततिर्मोहनीयस्य ॥१५॥ विंशतिर्नामगोत्रयोः ॥१६॥ त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः ॥१७॥ अपरा द्वादशमुहूर्ता वेदनीयस्य ॥१८॥ नामगोत्रयोरष्टौ ॥१९॥ शेषाणामन्तर्मुहूर्ताः ॥२०॥ विपाकोऽनुभवः ॥२१॥ स यथानाम ॥२२॥ ततश्च निर्जरा ॥२३॥ नामप्रत्ययाः सर्वतो योगविशेषात्सूक्ष्मैक-क्षेत्रावगाहस्थिताः सर्वात्मप्रदेशेष्वनन्तानन्तप्रदेशाः ॥२४॥ सद्वेद्य-शुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यम् ॥२५॥ अतोऽन्यत्पापम् ॥२६॥

इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रेऽष्टमोध्याय ॥८॥

आस्रवनिरोधः संवरः ॥१॥ स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षा-परीषहजयचारित्रैः ॥२॥ तपसा निर्जरा च ॥३॥ सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः ॥४॥ ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गा समितयः ॥५॥ उत्तम-क्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः ॥६॥ अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रवसंवरनिर्जरालोकबोधि-दुर्लभधर्मस्वाख्यातत्त्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः ॥७॥ मार्गाच्यवननिर्जरार्थं परिषोढव्याः परीषहाः ॥८॥ क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारति-स्त्रीचर्यानिषद्याशय्याक्रोशवधयाचनालाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुर-स्कारप्रज्ञाऽज्ञानादर्शनानि ॥९॥ सूक्ष्मसाम्परायछद्मस्थवीतरागयोश-

चतुर्दश ॥१०॥ एकादश जिने ॥११॥ बादरसाम्पराये सर्वे ॥१२॥ ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ॥१३॥ दर्शनमोहान्तराययोरदर्शनलाभौ ॥१४॥ चरित्रमोहे नाग्न्यारतिस्त्रीनिषद्याक्रोशयाचनासत्कारपुरस्काराः ॥१५॥ वेदनीये शेषाः ॥१६॥ एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नैकोनविंशतिः ॥१७॥ सामायिकच्छेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसाम्पराययथाख्यातमितिचारित्रम् ॥१८॥ अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यं तपः ॥१९॥ प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्त्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम् ॥२०॥ नवचतुर्दशपञ्चद्विभेदा यथाक्रमं प्राग्ध्यानात् ॥२१॥ आलोचनप्रतिक्रमणतदुभयविवेकव्युत्सर्गतपश्छेदपरिहारोपस्थापनाः ॥२२॥ ज्ञानदर्शनचारित्रोपचाराः ॥२३॥ आचार्योपाध्यायतपस्विशैक्षग्लानगणकुलसंघसाधुमनोज्ञानाम् ॥२४॥ वाचनापृच्छनानुप्रेक्षाम्नायधर्मोपदेशाः ॥२५॥ बाह्याभ्यन्तरोपध्योः ॥२६॥ उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्तात् ॥२७॥ आर्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि ॥२८॥ परे मोक्षहेतू ॥२९॥ आर्तममनोज्ञस्य सम्प्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहारः ॥३०॥ विपरीतं मनोज्ञस्य ॥३१॥ वेदनायाश्च ॥३२॥ निदानं च ॥३३॥ तदविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतानाम् ॥३४॥ हिंसानृतस्तेयविषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरतदेशविरतयोः ॥३५॥ आज्ञापायविपाकसंस्थानविचयाय धर्म्यम् ॥३६॥ शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः ॥३७॥ परे केवलिनः ॥३८॥ पृथक्त्वैकत्ववितर्कसूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिव्युपरतक्रिया निवर्तीनि ॥३९॥ त्र्येकयोगकाययोगायोगानाम् ॥४०॥ एकाश्रये सवितर्कवीचारे पूर्वे ॥४१॥ अवीचारं द्वितीयम् ॥४२॥ वितर्कः श्रुतम् ॥४३॥ वीचारोऽर्थव्यञ्जनयोगसंक्रान्तिः ॥४४॥ सम्यग्दृष्टिश्रावकविरतानन्तवियोजकदर्शनमोहक्षपकोपशमकोपशान्तमोहक्षपकक्षीणमोहजिनाः क्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जराः ॥४५॥ पुलाकबकुशकुशीलनिर्ग्रन्थस्नातकाः निर्ग्रन्थाः ॥४६॥ संयमश्रुतप्रतिसेवनातीर्थलिङ्गलेश्योपपादस्थानविकल्पतः साध्याः ॥४७॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे नवमोऽध्यायः ॥९॥

मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम् ॥१॥ बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः ॥२॥ औपशमिकादिभव्यत्वानां च ॥३॥ अन्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्यः ॥४॥ तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात् ॥५॥ पूर्वप्रयोगादसंगत्वाद्बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च ॥६॥ आविद्धकुलालचक्रवद्व्यपगतलेपालाम्बुवदेरण्डबीजवदग्निशिखावच्च ॥७॥ धर्मास्तिकायाभावात् ॥८॥ क्षेत्रकालगतिलिङ्गतीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धबोधितज्ञानावगाहनान्तरसंख्याल्पबहुत्वतः साध्याः ॥९॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे दशमोऽध्याय ॥१०॥

कोटिशत द्वादश चैव कोट्यो लक्ष्याण्यशीतिस्त्यधिकानि चैव ।
पञ्चाशदष्टौ च सहस्रसख्यामेतद् श्रुत पञ्चपद नमामि ॥
अरहत भासियत्थ गणहरदेवेहिं गथिय सव्व ।
पणमामि भत्तिजुत्तो, सुदणाणमहोवय सिरसा ॥
अक्षरमात्रपदस्वरहीन व्यञ्जनसन्धिविवर्जितरेफम् ।
साधुभिरत्र मम क्षमितव्य को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे ॥
दशाध्याये परिच्छिन्ने तत्त्वार्थे पठिते सति ।
फल स्यादुपवासस्य भासित मुनिपुङ्गवै ॥
तत्त्वार्थसूत्रकर्त्तार गृद्धपिच्छोपलक्षितम् ।
वन्दे गणीन्द्रसजातमुमास्वामिमुनीश्वरम् ॥
ज सक्कइ त कीरइ, ज पण सक्कइ तहेव सद्दहण ।
सद्दहमाणो जीवो पावइ अजरामर ठाण ॥
तवयरण वयधरण सजमसरण च जीवदयाकरण ।
अते समाहिमरणं चउविहदुक्ख णिवारेई ॥

माँ जिनवाणी स्तुति

माँ जिनवाणी ममता न्यारी, प्यारी प्यारी गोद है थारी।
आँचल में मुझको तू रख ले, तू तीर्थंकर राजदुलारी ।। टेक ।।

वीर प्रभो पर्वत निर्झरणी, गौतम के मुख कंठ झरी हो।
अनेकान्त और स्याद्वाद की, अमृतमय माता तुम ही हो।
भव्यजनो की कर्णपिपासा, तुझसे शमन हुई जिनवाणी ।। १ ।।
माँ जिनवाणी...... ...

सप्तभग मय लहरों से माँ, तू ही सप्त तत्व प्रकटाये।
द्रव्य गुणों अरू पर्यायों का, ज्ञान आतमा में करवाये।
हेय ज्ञेय अरू उपादेय का, भान हुआ तुमसे जिनवाणी ।। २ ।।
माँ जिनवाणी ....

तुझको जानूँ तुझको समझूँ, तुझसे आतम बोध को पाऊँ।
तेरे आँचल मे छिप-छिपकर दुग्धपान अनुयोग को पाऊँ।
माँ बालक की रक्षा करना, मिथ्यातम को हर जिनवाणी ।। ३ ।।
माँ जिनवाणी

धीर बनूँ मैं वीर बनूँ माँ, कर्मबली को दल दल जाऊँ।
ध्यान करूँ स्वाध्याय करूँ बस, तेरे गुण को निशदिन गाऊँ।
अष्ट करम की हान करे यह, अष्टम क्षिति को दे जिनवाणी ।। ४ ।।
माँ जिनवाणी ..

ऋषि मुनि यति सब ध्यान धरे माँ, शरण प्राप्त कर कर्म हरें।
सदा मात की गोद रहूँ मैं, ऐसा शिर आशीष फले।
नमन करे "स्याद्वादमती" नित, आत्म सुधारस दे जिनवाणी ।। ५ ।।
माँ जिनवाणी .. .

गणिनी आर्यिका स्याद्वादमती